श्रीमद्भगवद्गीता

मैथिली अनुवाद

BHAGAVAD-GEETA IN MAITHILI



गणेश चन्द्र झा

श्रीमद्भगवद्गीता
मैथिली अनुवाद

BHAGAVAD-GITA IN MAITHILI

मूल संस्कृत पाठ, शब्दार्थ, अनुवाद तथा
विस्तृत तात्पर्य सहित

गणेश चन्द्र झा

श्रीमद्भगवद्गीता
मैथिली अनुवाद

BHAGAVAD-GITA IN MAITHILI

लेखक : **गणेश चन्द्र झा**

प्रणेता : **स्व० श्रीमान् चन्द्रधारी सिंह जी**
(संस्थापक चन्द्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा)
स्व० श्री उपेन्द्र नाथ झा (महात्मा जी)

प्रकाशन सहयोगी : **सुश्री ट्विंकल राजेश**
: **श्री तुषार राज**

कला-संपादन : **कमल मोहन ठाकुर**

संस्करण : प्रथम, रामनवमी (10 अप्रील, 2022)
सहयोगराशि : **500/-रुपया**

प्रकाशक : **हेमलता मिथिला ट्रस्ट**
पॉकेट-सी-13, हाउस 168, सेक्टर-3,
रोहिणी, दिल्ली-110085

संपर्क (मोबाइल) : **9999025311**
ई-मेल : **gcjha.fma@gmail.com**

श्रीमद्भगवद्गीता
मैथिली अनुवाद

BHAGAVAD-GITA IN MAITHILI

समर्पण

भगवत्प्रेमोपासनाक प्रणेता
स्व० धर्मपरायिणी श्रीमती हेमलता झा
स्व० भगवत्प्रेमी श्री राजेश कुमार झा
ग्राम-कसरौर, थाना-घनश्यामपुर,
जिला-दरभंगा, बिहार
केँ पुण्यस्मृतिमे समर्पित।

-गणेश चन्द्र झा

श्रीमद्भगवद्गीता
मैथिली अनुवाद

BHAGAVAD-GITA IN MAITHILI



स्व0 श्रीमती एवं श्रीमान् उपेन्द्र नाथ झा

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।



आलोचक दृष्टिकोण-भगवद्गीताक मैथिली अनुवाद

Critics View–Bhagavad Gita Maithili Translation

कुरुक्षेत्रक पृष्ठभूमि ५००० वर्ष पूर्व भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन केँ उपदेश देलथिन जे श्रीमद्भगवद्गीताक नाम सँ प्रसिद्ध अछि। ई कौरव एवं पाण्डवक बीच युद्ध महाभारतक भीष्मपर्वक अंग अछि। गीताक शंकर भाष्यमे कहल अछि- **तं धर्म भगवता यथोपदिष्ट वेदव्यासः सर्वज्ञोभगवान् गीताख्यैः सप्तभिः श्लोक शतैरु पनिबन्ध।** महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महाभारत ग्रन्थक रचयिता छलाह। महाभारत ग्रन्थक लेखन भगवान् श्री गणेश महर्षि वेदव्यास सँ सुनि-सुनि कऽ कएने छलाह। वेदव्यास महाभारतक रचयिते टा नहि, बल्कि ओहि सब घटनाक साक्षी सेहो रहला अछि, जे क्रमानुसार घटित भेल अछि। अपन आश्रम सँ हस्तिनापुरक समस्त गतिविधिक सूचना हुनका तक पहुँचैत छल। गीतामे १८ अध्याय एवं ७०० श्लोक अछि। गीताक गणना प्रस्थानत्रयीमे कएल जाइत अछि, जाहिमे उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र भी सम्मिलित अछि। गीता वैदिक ज्ञानक सार अछि आओर वैदिक साहित्यक सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपनिषद् अछि। भगवद्गीता वक्ता भगवान् श्री कृष्ण छथि। भगवान् श्री कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् छथि। भगवान् अर्जुन केँ सूचित करैत छथि कि भगवद्गीताक ई योगपद्धति सर्वप्रथम सूर्यदेव केँ बताएल गेलैन। सूर्यदेव एकरा मनु केँ बतेलखिन आओर मनु एकरा इक्ष्वाकु केँ बतेलखिन। एहि प्रकार गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा ई योगपद्धति एक वक्ता सँ दोसर वक्ता तक पहुँचैत रहल। लेकिन कालान्तरमे ई छिन्न-भिन्न भऽ गेल। फलस्वरूप भगवान् केँ एकरा पुनः बताबए पड़ि रहलनि अछि। एहि बेर अर्जुन केँ कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलक मध्य। सम्पूर्ण गीता शास्त्रक निचोड़ अछि, बुद्धि केँ हमेशा सूक्ष्म करैत महाबुद्धि आत्मामे लगौने राखी तथा संसारक कर्म अपन स्वभावक अनुसार सरल रुपसँ करैत रही। भगवान् कहैत छथि- हे अर्जुन! जे व्यक्ति हमर जन्म आओर कर्मक दिव्यभाव केँ वस्तुतः जानि लैत अछि, ओ देहत्याग केलाक उपरान्त पुनः एहि

भौतिक जगतमे जन्म नहि लैत, अपितु हमर सनातन धाम केँ प्राप्त करैत अछि। हम जतेक आओर जे छी ओ केवल भक्ति द्वारा ही जानल जा सकैत अछि आओर भक्ति द्वारा तत्त्व सँ हमरा जानबाक उपरान्त मनुष्य भगवद्धाममे प्रवेश कऽ सकैत अछि। हे अर्जुन! समस्त प्राणीक मूल बीज हमही छी। जगत मे चर, अचर एहन किछु नहि अछि जकर अस्तित्व हमरा बिना सम्भव भऽ सकए। एहि ब्रह्माण्डमे जड़-चेतन जे किछु अछि ओहि सब पर परमेश्वरक नियन्त्रण आओर आधिपत्य अछि। वासुदेव रुपमे हमही समस्त आध्यात्मिक एवं भौतिक जगतक उत्पत्तिक कारण छी। प्रत्येक वस्तु हमरे सँ उद्भूत अछि। हे कुन्तीपुत्र! निडर भऽ कऽ धोषणा कऽ दियौ कि हमर भक्त कहियो नष्ट नहि होइत अछि। अतः सब धर्म केँ छोड़ि कऽ अहाँ हमरा शरणमे आबि जाउ। हम अहाँक समस्त पाप सँ मुक्त कऽ देब, शोक नहि करू। गीताक परम गुह्य ज्ञान अछि।

गीतामे कहल गेलै अछि- जे व्यक्ति गीता ज्ञान कथा दोसर केँ बाँटैत छथि ओ भगवानक बड़ प्रिय होइत छथि। स्वभावतः अनेको आदमी भगवत्कृपा प्राप्त कऽ चुकला अछि। भगवद्गीता मैथिली अनुवाद (Bhagavad Gita in Maithili)क लेखक श्री गणेश चन्द्र झा प्रशंसनीय कार्य कैलनि अछि। आशा करैत छी जे भगवद्गीताक मैथिली अनुवाद द्वारा समस्त मैथिल समाज केँ सद्बुद्धि प्राप्त हैत, जाहि सँ सब प्रेमास्पद प्रभु कृष्णक प्रेम केँ प्राप्त करक अधिकारी बनि जीवनक वास्तविक लक्ष्य प्राप्त कऽ सकब। लेखक हमर अनुज छथि। सफल अभियन्ता छथि। बचपने सँ मेधावी छात्र छलाह, भगवत्भक्तिक भावना सेहो बचपने सँ अर्जित केने छलाह। देश-विदेशमे नौकरी कएलोपरान्त, अवकाश प्राप्त जीवनमे आध्यात्मिक पुस्तक लिखबामे रमल रहैत छथि-

I commend the author for his pioneering effort. Whatever our outlook may be, we should all be grateful for the labour that has led to this illuminating work.

May God bless him.

डॉ. इन्द्र कान्त झा
भूतपूर्व यूनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
मैथिली विभाग, पटना विश्वविद्यालय,
पटना

Shri Ganesh Jha Ji, You have done this work (Maithili Translation of Bhagavad Gita) with great dedication and pain taking efforts. Many thanks for this Unique work. Jha family has repaid its obligation to its land of origin. I believe being in Maithili, I may not be able to fully appreciate the same but shall try.

With best wishes.

A. M. Joshi

Wireless Advisor to Govt. of india (Retd.)

In this beautiful translation in Maithili shri Ganesh chandra Jha has caught the deep devotional spirit of Bhagavad Gita and has supplied the text with an elaborate commentary in the truly authentic tradition of saints. Bhagavad Gita (Maithili translation) is a deeply felt, powerfully conceived and beautifully explained work.It is a work of undoubted integrity.It will occupy a significant place in the intellectual and ethical life of modern man for a long time to come.

Prof. Dr. Aparna Jha

Darbhanga (Bihar)

The Bhagavad Gita can be seen as the main literary support for the great religious civilisation of India, the oldest surviving culture in the world. The present Maithili translation and commentary is another manifestation of the permanent living importance of the Gita. Bhagavad Gita as a philosophy of God realisation, is very helpful in understanding the Gita as His opulence is limitless. It is said in Bhagavad Gita that the person who tells the secret of Gita to others is very dear to God. Naturally many have already gained that blessing. Let us hope that by study of such unique work (Bhagavad Gita Maithili

translation)at least a trickle of that blessing would reach us.We are glad to learn philosophy of life in Bhagavad Gita and hope it will be popular amongst the lovers of Gita.

Dr. A. K. Ray
USA

Bhagavad Gita teaches us that the world is illusory or Maya. So we can not actually know anything for certain. All that we have ourself. So we must pay total attention to ourselves. We must do our karmas dispassionately, as everything is illusory (माया). We must surrender to God, as He is the creator of all Mayas and only He can liberate us. Lord Krishna says always think of Me and become My devotee. Worship Me and offer your homage unto Me. Thus you will come to Me without fail. I promise you Arjuna this because you are My very dear friend. If one surrenders upto Krishna and becomes His devotee, he will achieve all perfection. The Gita combines the concepts expressed in the central texts of Hinduism - The Vedas and Upnishads which are here synthesized into a single, coherent vision of belief in one God and the underlying unity of all existence. The Maithili translation of Bhagavad Gita is a uinique work and valuable assets for Maithili literature. As the emphasis of Gita is on devotional knowledge, this Maithili Anubad will be very beneficial for a common man to understand philosophy of Gita which is considered the essence of the Vedas and Upanishads. The whole Maithil society will remain grateful to writer (लेखक) for this unique work. "A nation/society that forgets its Dharma will itself soon be forgotten."

Ranjeet Kumar Jha
New Delhi

श्रीमद्भगवद्गीता
मैथिली अनुवाद

BHAGAVAD-GITA IN MAITHILI

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या

एहि ग्रन्थक विषय-वस्तु धर्मग्रन्थ, महाकाव्य विशेषतः श्रीमद्भगवद्गीता, यथारूप भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ, उपनिषद् तथा धार्मिक प्रवचन पर आधारित अनुवाद मैथिली भाषामे अछि। लेखकक उद्देश्य बद्ध जिज्ञासुमे कृष्णभावनामृत संदेश केँ प्रस्तुत कएल गेल अछि। व्यावसायिक कामना कतई नहि अछि। भगवद्गीताक ज्ञान वास्तवमे लाभप्रद अछि। थोड़ेक समय भगवानक स्मरणक अभ्यासमे लगेबाक चाही। भगवद्गीताक श्रवण सबसँ सुगम अछि। अपन समाज एकर लाभ उठाबथि।

प्रस्तावना

भगवद्गीता दिव्य साहित्य अछि। एकरा ध्यानपूर्वक पढ़बाक चाही।

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च॥

जे कियो भगवद्गीता अत्यन्त निष्ठा एवं गम्भीरता सँ पढताह, हुनका पर भगवत्कृपा सँ हुनकर पूर्व दुष्कर्म फलक कोनो प्रभाव नहि पड़तै। भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीतामे जोड़ दऽ कऽ कहैत छथिन्ह–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

सर्व धर्म केँ त्यागि एकमात्र हमरा शरणमे आबि जाउ। हम अहाँ केँ समस्त पापक फल सँ मुक्त कऽ देव। भयभीत नहि हो। एहि प्रकार भगवान् अपना शरणमे आएल भक्तक पूरा उत्तरदायित्व अपना ऊपर लऽ लैत छथिन्ह एवं समस्त पापक फल केँ क्षमा कऽ दैत छथिन्ह।

मलिनेमोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने।
सकृद्गीतामृतस्नानं संसारमलनाशनम्॥

मानव नित्य जलमे स्नान कऽ नित्य अपना केँ स्वच्छ एवं पवित्र राखि सकैत अछि, यदि कियो भगवद्गीता रूपी पवित्र गंगाजलमे एकबार भी स्नान कऽ लिअ तऽ ओ भवसागरक मलिनता सँ सदा–सदाक लेल मुक्त भऽ जाइत अछि।

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता॥

चूँकि भगवद्गीता पूर्ण पुरूषोत्तम परमेश्वरक मुखसँ निकलल अछि अतएव मानव केँ अन्य कोनो वैदिक साहित्यक अध्ययन करबाक कोनो आवश्यकता नहि रहि जाइत अछि। ओकरा सिर्फ भगवद्गीताक ही ध्यानपूर्वक एवं नित्यप्रति सँ श्रवण आ पठन करबाक चाही। वर्तमान युगमे लोग भौतिक कार्यमे एतेक व्यस्त रहैत अछि जे हुनका लेल समस्त बौद्धिक साहित्यक अध्ययन करब सम्भव नहि अछि, परन्तु एकर प्रयोजन नहि अछि। केवल एक पुस्तक, भगवद्गीता पर्याप्त अछि, कारण समस्त वैदिक साहित्यक सार ई ग्रन्थ अछि। एकर प्रवचन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण

(मूलविष्णु) केलथिन अछि, जेना कि कहल गेलै अछि।

भारतामृतसर्वस्वं विष्णुवक्त्राद्विनिः सृतम्।
गीता गंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

जे गंगा जल पीबै छथि हुनका मुक्ति प्राप्त होइत छैन्ह, परन्तु जे भगवद्गीताक अमृतपान करैत छथि हुनकर भाग्यक की वर्णन? भगवान् कृष्ण (मूल विष्णु) स्वयं सुनेलखिन जे भगवद्गीता महाभारतक आवश्यक अमृत छी। भगवद्गीता भगवान् केँ मुख सँ निकलल अछि आ गंगाजी पुरूषोत्तम परमेश्वरक चरण-कमलसँ निकलल छथि। निःसंदेह भगवानक मुख या चरणमे कोनो अन्तर नहि अछि तथापि निष्पक्ष अध्ययन सँ साधारण मनुष्य समझि सकैत छथि जे भगवद्गीता गंगाजल सँ अधिक महत्वपूर्ण अछि।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

ई गीतोपनिषद् भगवद्गीता, जे समस्त उपनिषदक सार अछि। गायक तुल्य अछि। ग्वालबाल रुपमे भगवान् कृष्ण एहि गाय केँ दुहि रहल छथिन्ह। अर्जुन बछड़ाक समान छथि। समस्त विद्वान् एवं भगवत्भक्त भगवद्गीताक अमृतमय दूधक पान करए बला छथि।

भगवद्भक्ति नौ प्रकारक होइत अछि। जाहिमे श्रवण भक्ति सबसँ सुगम अछि। श्रवण भक्ति मनुष्य केँ भगवद् चिन्तनक तरफ मोड़ि दैत अछि। परमेश्वरक स्मरण जागृत होइत अछि जे शरीर त्यागला पर मनुष्य केँ आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करबाक सक्षम बना दैत अछि। भगवान् कृष्ण कहैत छथिन्ह हे अर्जुन! जे व्यक्ति पथसँ बिना विचलित भेने अपन मन केँ निरन्तर हमरा स्मरणमे व्यस्त राखैत अछि एवं पुरूषोत्तम परमेश्वरक रुपमे हमर ध्यान करैत छथि हुनका भगवान् अवश्य प्राप्त होइत छैन। एहि तरहें, भगवान् श्रीकृष्ण कहैत छथिन्ह जे वैश्या, पतित स्त्री, श्रमिक अथवा अधमयोनि केँ प्राप्त मनुष्यो ईश्वर केँ प्राप्त कऽ सकैत अछि। ओकरा अत्यधिक विकसित बुद्धिक जरुरत नहि पड़ैत अछि। भाव ई अछि कियो भक्तियोगक सिद्धान्त स्वीकार करैत भगवद्गीताक सिद्धान्त ग्रहण करैत छथि ओ अपन जीवन पूर्ण बना सकैत छथि। जीवनक सभ समस्याक स्थायी हल पाबि सकैत अछि, ई गीतासार अछि। अन्तमे भगवान् कृष्ण कहैत छथि- हे अर्जुन! अहाँ सदैव हमरा कृष्णक रुपमे चिन्तन करैत

रहू। अपन निर्धारित युद्ध कर्म करैत रहू। अपन कर्म केँ हमरा अर्पित करैत अपन मन एवं बुद्धि केँ स्थिर राखब तऽ हम (श्रीकृष्ण) प्राप्त हैव। कहल गेलै अछि जे– अपन वर्तमान शरीरक त्याग कर समय मनुष्य जाहि भाव सँ स्मरण करैत अछि ओकरा अगिला जन्ममे ओहि भाव केँ निश्चित रुप सँ प्राप्त होइत अछि। तेँ मृत्युक समय परम भगवान्क चिन्तन मात्र केला सँ आध्यात्मिक धाममे प्रवेश करब सम्भव बना दैत अछि। अर्जुन पूर्ण सत्य केँ स्वीकार करैत कहैत छथिन्ह– ''**सर्वम् एतद् ऋतं मन्ये।**'' अहाँ जे किछु कहैत छी हम सत्य मानैत छी। भगवद्गीतामे भगवान् श्रीकृष्णक धामक वर्णन एहि प्रकार अछि–

न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

''हमर ई परमधाम नै तऽ सूर्य या चन्द्रमा द्वारा, नै अग्नि या बिजली द्वारा प्रकाशित होइत अछि। जे लोग एतै पहुँच जाइत छथि ओ एहि भौतिक जगतमे कहियो नहि लौटैत छथि।''

ई शाश्वत अविनाशी धाम हुनके प्राप्त होइत छैन जे झूठ भौतिक भोगक आकर्षण द्वारा मोहग्रस्त नहि होइत छथि, अपितु भगवद् सेवामे लागल रहैत छथि। एहन व्यक्ति केँ ओ परमधाम सहज रुप सँ प्राप्त भऽ जाइत अछि। जाधरि हम सब भौतिक उपाधिसँ चिपकल रहैत छी, ताधरि हमरा सब केँ शरीरक प्रति आसक्त बनल रहैत अछि कारण उपाधि शरीर सँ सम्बन्धित अछि, परन्तु हम ई शरीर नहि छी। एकर अनुभूति भेनाई आध्यात्मिक अनुभूतिक प्रथम अवस्था अछि। जाधरि भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व पावैक प्रवृत्ति केँ नहि छोड़ब ताधरि सनातन धाम लौटबाक कोनो सम्भावना नहि अछि। मृत्युक समय परम परमेश्वरक चिन्तन सँ आध्यात्मिक धाम प्राप्त होइत अछि। सब श्रेणीक व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्णक चिन्तन कऽ हुनकर परमधाम जा सकैत अछि। सबहक लेल द्वार खुलल अछि। ककरो लेल कोनो रोक–टोक नहि अछि। कारण भगवान्क श्रवण आ चिन्तन सब व्यक्तिक लेल सम्भव अछि। ई भगवद्गीताक सार अछि–

ज जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

The Soul has no birth or death. It has no being and hence will never cease to be Birthless, deathless and without a beginning or an end the soul is not destroyed when the body is destroyed.

आत्माक लेल कोनो समय (काल)मे न तो जन्म अछि आ न तो मृत्यु। ओ नै तऽ कहियो जनमल अछि आओर नै जन्म लेत। ओ अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन अछि। शरीरक मरला उपरान्त ओ नहि मरैत अछि। आत्मा ज्ञानसँ या चेतनासँ सदैव पूर्ण रहैत अछि। अतः चेतना आत्माक लक्षण अछि। यदि कियो हृदयस्थ आत्मा केँ नहि खोजि पाबैत अछि तैयो ओ आत्माक उपस्थिति केँ चेतनाक उपस्थिति सँ जानि सकैत अछि। अतः ककरो शोक करब युक्तिसंगत नहि अछि।

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम्।
गीता मे ज्ञानमत्युग्रं गीता मे ज्ञानमव्ययम्॥
गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं पदम्।
गीता मे परमं गुह्यं गीता मे परमो गुरुः॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहैत छथि–

गीता हमर हृदय अछि। गीता हमर उत्तम सार अछि। गीता हमर अति उग्र ज्ञान अछि। गीता हमर अविनाशी ज्ञान अछि। गीता हमर श्रेष्ठ निवास स्थान अछि। गीता हमर परम पद अछि। गीता हमर रहस्य अछि। गीता हमर परम गुरु अछि।

–गणेश चन्द्र झा

बालचन्द विज्जाबइ भाषा, दुहु नहि लागइ दुज्जन हासा।
ओ परमेश्वर हर सिर होहइ, ई ण्चि्चई नाअर मन कोहइ।



FOREWORD

All Vedic knowledge is infallible (अच्युत), and Hindus accept Vedic knowledge to be complete and infallible. Vedic knowledge is complete because it s above all doubts and mistakes. Vedic knowledge is not a question of research. Our research work is imperfect because we are researching things with imperfect (अपूर्ण) senses. We have to accept perfect knowledge which comes down as it stands in Bhagavad-Gita by disciplic succession (परम्परा). Bhagavad-Gita is also known as Gitopanisad (गीतोपनिषद्). It is essence of Vedic knowledge and one of the most Upanishad in Vedic literature. The speaker of Bhagavad-Gita is Lord Krishna who is the Supreme personality of God heads (भगवान्) which is confirmed by all great spiritual masters (आचार्य) and many other authorities of Vedic knowledge in India. He tells Arjuna that he is relating this Supreme secret to him because Arjuna is his devotee and his friend. The purport of this is that Bhagavad-Gita is a treatise which is specially meant for devotees of the Lord. He wanted Arjuna to become the authority in understanding the Bhagavad-Gita because Arjuna was a devotee of the Lord, and direct student of Krishna and His intimate friend. Therefore, Bhagavad-Gita is best understood by a person who has the qualities similar to Arjuna's. Arjuna said-You are the Supreme personality of God head, the ultimate abode, the purest, the absolute truth (परमसत्य). You are the eternal (शाश्वत), transcendental, original person, the unborn, the greatest. Lord Krishna says that whenever and wherever there is decline in religious practice and a predominant rise of irreligion (अधर्म), at that time, I descend Myself to deliver the pious and to annihilate the miscreants, as well as to re-establish the principle of religion. I Myself appear millennium after millennium. In my unmanifested form, this entire universe is pervaded.

At the end of the millennium all material manifestations enter into My nature (प्रकृति) and at the beginning of another millennium by my potency (शक्ति), I create them again. The whole cosmic order is under Me. Under My will it is automatically manifested again and again and under my will it is annihilated at the end. The Lord says that I am the father of this universe, the mother, the support (आश्रय) and the grandsire (पितामह). I am the object of knowledge (ज्ञेय), the purifier (शुद्धिकर्ता) and the syllable Om (ॐ). I am also the Rig, the Sama and the Yajurvedas. The entire cosmic manifestations (विराट जगत), moving and non moving (चराचर) are manifested by different activities of Krishna's energy. He says to Arjuna - I give heat and withhold and send forth the rain. I am immortality (अमरत्व) and I also death personified (साक्षात् मृत्यु). Both spirit (आत्मा) and matter are in Me.

Bhagavad-Gita also confirms that although the Lord is always in the Supreme abode (परमधाम), He is all pervading (सर्वव्यापी), so that everything is going so nicely. His energies are so expansive that they systematically conduct everything in the cosmic manifestation without a flaw, although the Supreme Lord is far far away.

As the sun exists diffusing its unlimited rays, so does the Supreme Soul, or Supreme Personality of God head. He exists in his all pervading form and in Him exists all the individual living entities beginning from the first great teacher Brahma, down to the small ants. Therefore, unlimited heads, legs, hands and eyes and limited living entities, all are existing in and on the Super Soul. Therefore, the Super Soul is all pervading (सर्वव्यापी). In Bhagavad-Gita the Lord says that if anyone offers Him a flower or a fruit or a little water, He accepts it, if the Lord is a far distance away, how can he accepts things? This is the omnipotence (सर्वज्ञता) of the Lord. He is situated in His own abode far far away from the earth, He can extend His

hand to accept what anyone offers. That is His potency (शक्तिमत्ता). Although He is always engaged in past times (लीला) in His transcendental planet (दिव्य लोक), He is all pervading. The Lord is situated in everyone's heart as the Super Soul. The Super Soul appears to be divided among all beings, He is never divided. He is situated as one. Although He is maintainer (पालक) of every living entities, it is to be understood that He devours (संहारकर्ता) and develops (जन्मदाता) all. The Lord says no one can surpass the Supreme personality of god head because he is transcendental, beyond both fallible and the infallible and because He is the greatest. He is celebrated both in the world and in the Vedas as that Supreme person. Further he says I am generating seed of all existences There is no being moving or non-moving that can exist without Me. Lord Krishna says those who always remember Me without deviation. I am easy to obtain, because his constant engagement in devotional service (भक्तियोग). A pure devotee constant remembers Him and meditates upon Him. He cannot forget the Supreme Lord for a moment and similarly the Supreme Lord cannot forget His pure devotees for a moment. The Bhagavad-Gita says that in the last Lord Krishna says to Arjuna, my dear friend, abandon all varieties of religion and just surrender unto Me. I shall deliver you from all sinful reactions. Do not fear.

The Bhagavad-Gita is not a unique epitome (प्रतीक) of the Hindu religion but is also accepted by all knowledgeable men as a volume that gives solution to all problems in human life and leads one ultimately to spiritualism and God realization which is the summum bonum (परमार्थ) of human life. Some learned persons (आचार्य) interpreted Bhagavad-Gita as mainly propounding Karma Yoga while others interpreted spiritualism. Mahatma Gandhi said that whenever he

gets pessimistic over a problem in personal or political life he looks to Bhagavad-Gita and his face lights up with optimism. The last 19 shlokas of Bhagavad-Gita Chapter-2 (contents of Gita summarized) was included in his evening prayer.

It is said in Bhagavad Gita that one who explains this supreme secret to the devotees, pure devotional service is guaranteed, and at the end he will come back to Me. He further said that one who listens with faith and without envy becomes free from sinful reactions and attains to the auspicious planets where the pious dwell.

I commend the author (Shri Ganesh Chandra Jha) of Bhagavad-Gita- Maithili Anuvad for his pioneering effort. A person who forgets its root will itself soon be forgotten.

Kunal Jha
Berlin, Germany

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

आजुक युगमे लोग एक शास्त्र, एक ईश्वर, एक धर्म तथा एक वृत्तिक लेल अत्यन्त उत्सुक अछि। अतएव **एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्**– केवल एक शास्त्र भगवद्गीता हो। **एको देवो देवकीपुत्र एव**– समस्त विश्वक लेल एक ईश्वर हो– श्रीकृष्ण। **एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि** आओर एक मन्त्र एक प्रार्थना हो– हुनकर नामक कीर्तन। **कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा**– आओर केवल एक ही कार्य हो– भगवानक सेवा। भगवद्गीता मैथिली अनुवाद मे एहि महान शास्त्र केँ सही रूप मे प्रस्तुत कयल गेल अछि। ई अनुवाद तथा एकर संग देल गेल भाष्य पाठक केँ श्रीकृष्णक ओर निर्देशित करैत अछि। एहि पुस्तक सँ मैथिलीक गरिमा बढ़त। भाषाक गौरव सँ ओहि क्षेत्रक गौरव बढ़ैत अछि। अन्ततः राष्ट्रक गौरव बढैत अछि। जय मिथिला, जय मैथिली।

शेफाली राय
USA

पृष्ठभूमि

श्रीमद्भगवद्गीता भारतवर्षक प्राचीन आध्यात्मिक ग्रन्थमे महानतम् अछि। भगवद्गीता केँ गीतोपनिषद् सेहो कहल जाइत अछि। ई वैदिक ज्ञानक सार मानल जाइल अछि एवं वैदिक साहित्यक महत्त्वपूर्ण उपनिषद् मे सँ एक अछि। मूलतः भगवद्गीता संस्कृत महाकाव्य महाभारतक उपकथाक रुपमे प्राप्त अछि। महाभारतमे वर्तमान कलियुग तकक विवरण भेटैत अछि। एहि युगक प्रारम्भमे आई सँ लगभग 5000 वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण अपन परम सखा एवं भक्त अर्जुन केँ भगवद्गीताक उपदेश प्रदान केलथिन अछि। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन केँ सूचित करैत छथिन जे ई योगपद्धति अर्थात् भगवद्गीता सर्वप्रथम सूर्यदेव केँ कहल गेलैन अछि। सूर्येदेव एकरा राजा मनु केँ बतौलखिन। राजा मनु एकरा राजा इक्ष्वाकु केँ कहलथिन। एहि प्रकार गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा ई योगपद्धति एक वक्ता सँ दोसर वक्ताक पास पहुँचैत एलै अछि। कालान्तरमे ई छिन्न-भिन्न भऽ गेलै। फलस्वरुप भगवान् श्रीकृष्ण केँ पुनः बताबए पड़लैन अछि। एहि बेरि सखा अर्जुन केँ कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलमे कहलथिन अछि।

भगवान् अर्जुन सँ कहैत छथिन जे ई परम रहस्य एहि लेल प्रदान करैत छी कारण अहाँ हमर भक्त एवं मित्र छी। तात्पर्य ई भगवद्गीता विशेष रुप सँ भगवत्भक्तिक लेल बनल अछि। अध्यात्मवादीक तीन श्रेणी होइत अछि। ज्ञानी, योगी एवं भक्त एहि ठाम भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन केँ स्पष्ट कहैत छथिन जे एहि नवीन परम्परा (गुरु-शिष्य परम्परा) क ग्रहण करै वाला अहाँ केँ प्रथम पात्र बना रहल छी कारण प्राचीन परम्परा खण्डित भऽ चुकल अछि। अतएव भगवान्क अभिप्राय छलैन जे सूर्यदेव सँ आवि रहल विचारधाराक दिशा मे अन्य परम्परा स्थापित कएल जाए, संगहि ई हो इच्छा छलैन हुनक शिक्षाक वितरण अर्जुनक माध्यम सँ नवीन परम्परा प्रारम्भ हो संगहि ई इच्छा सेहो छलनि जे अर्जुन भगवद्गीताक प्रमाणिक अधिकारी बनथि। अतएव ई प्रत्यक्ष देखबामे लागैत अछि जे भगवद्गीताक उपदेश अर्जुन केँ विशेष रूप सँ देल गेलैन अछि कारण अर्जुन भगवानक भक्त, साक्षात् श्रीकृष्णक शिष्य एवं घनिष्ट मित्र छलथिन। अतएव जाहि व्यक्तिमे अर्जुन जकाँ गुण प्राप्त अछि हुनका

भगवद्गीता पूर्णरुप सँ ज्ञात हेतैन। भगवान् श्रीकृष्ण एवं अर्जुनक ई वार्ता मानव इतिहासक सबसँ महान दार्शनिक तथा धार्मिक वार्तामे सँ एक अछि। ई वार्ता ओहि महायुद्धक शुभारम्भक पूर्व भेलै जे धृतराष्ट्रक सौ पुत्र एवं हुनकर चचेरा भाई पाण्डवक मध्य हुअ बला छलै। धृतराष्ट्र एवं पाण्डु भाई–भाई छलाह, जिनकर जन्म कुरुवंशमे भेल छलैन। ओ राजा भरतक वंशज छलाह, जिनका नाम पर महाभारत नाम पड़लै। चूँकि जेठ भाई धृतराष्ट्र जन्म सँ अंधा छलथिन, अतएव राजसिंहासन हुनका नहि दऽ कऽ हुनकर छोट भाई पाण्डु केँ देल गेलै। पाण्डुक मृत्यु बहुत कम आयुमे भऽ गेलैन, अतएव हुनकर पाँचों पुत्र–युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव धृतराष्ट्रक देख रेखमे राखल गेलैन कारण हुनका किछु समय लेल राजा बना देल गेल छलैन। एहि तरहें धृतराष्ट्र एवं पाण्डु पुत्रक एके राजमहलमे पालन–पोषण भेलैन। दूनू केँ गुरु द्रोण द्वारा सैन्यकलाक प्रशिक्षण प्राप्त भेलैन। पूज्य भीष्म पितामह हुनकर परामर्शदाता छलथिन। तथापि धृतराष्ट्र क पुत्र विशेषतः सबसँ ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन पाण्डव सँ घृणा एवं द्वेष करैत छलथिन। अंधा एवं दुर्बल हृदयी धृतराष्ट्र पाण्डुपुत्रक स्थान अपन बेटा दुर्योधन केँ राज्यक उत्तराधिकारी बनबए चाहैत छलथि। एहि तरह राजा धृतराष्ट्रक सहमति सँ दुर्योधन, पाण्डुक युवा पुत्र सबहक हत्याक षट्यन्त्र रचलक। पाँचों पाण्डव अपन काका विदुर एवं अपन ममेरा भाई भगवान् कृष्णक संरक्षणमे रहलाक कारण अनेक प्राणघातक आक्रमणक बावजूद अपन प्राण सुरक्षित राखि सकलाह। भगवान् श्रीकृष्ण कोनो साधारण व्यक्ति नहि छलाह अपितु साक्षात् परम ईश्वर छलथिन जे एहि धराधाममे अवतरित भऽ आब एक समकालीन राजकुमारक भूमिका निभा रहल छलथिन। ओ पाण्डुक पत्नी अथवा पृथा, पाण्डवक माताक भतीजा छलथिन। एहि तरहें सम्बन्धीक रुपमे धर्मक शाश्वत पालनकर्ता भगवान् धर्मपरायण पाण्डु पुत्रक पक्षमे रहि कऽ हुनका सबहक हमेशा रक्षा करैत छलथिन। अन्ततः चतुर दुर्योधन पाँचों पाण्डव केँ द्यूतक्रीड़ाक लेल ललकारि केँ राजी केलक। एहि निर्णायक स्पर्धामे दुर्योधन अपन मामा शकुनीक सहायता सँ पाँचों पाण्डव एवं हुनकर सती पत्नी द्रौपदी पर अधिकार जमा लेलक। तदुपरान्त राजा आओर राजकुमारक सभा मध्य द्रौपदी केँ निर्वस्त्र करैक प्रयास कैल गेलै। भगवान् श्रीकृष्णक दिव्य हस्तक्षेप सँ द्रौपदीक लाजक रक्षा भऽ सकल। ओहि द्यूतक्रीड़ामे

छल क प्रयोग क कारण पाण्डवक हार भेलैन। हुनका सब केँ अपन राज्य सँ वंचित हुअ पड़लैन। तेरह वर्षक वनवास जाए पड़लैन। द्रौपदी पाण्डव संग वन गेली। माता कुन्ती विदुरक संग रहली। वनवास लौटला पर पाँचों पाण्डव धर्म सम्मत विधिक अनुसार दुर्योधन सँ अपन राज्य मांगलखिन परन्तु ओ इन्कार कऽ देलकैन। क्षत्रियक शास्त्रोनुमोदित कर्त्तव्य पूर्ण करै हेतु पाँचों पाण्डव अन्तमे अपन राज्य नहि मांगि कऽ सिर्फ पाँच गामक माँग राखलखिन, किन्तु दुर्योधन सूईक नोक भरि भूमि देवा लेल सहमत नहि भेल, बिना युद्ध केने। एखन धरि तऽ पाण्डव सहनशील बनल छलाह, लेकिन आब हुनका सबहक लेल युद्ध करब अवश्यम्भावी भऽ गेलैन। विश्व भरिक राजकुमारमे सँ किछु धृतराष्ट्रक पुत्रक पक्षमे भेलै त किछु पाण्डवक पक्षमे गेल। ओहि समय श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डु पुत्रक संदेशवाहक बनि कऽ शान्तिक संदेश लऽकऽ धृतराष्ट्रक सभामे गेल छलाह। जखन हुनकर याचना अस्वीकृत भेल तखन युद्ध निश्चित भऽ गेलै। अत्यन्त सच्चरित्र पाँचों पाण्डव श्रीकृष्ण केँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्क रुपमे स्वीकार केलखिन, परन्तु धृतराष्ट्रक दुष्ट पुत्र हुनका नहि पहचान सकल। तथापि श्रीकृष्ण विपक्षीक इच्छानुसारे ही युद्धमे सम्मलित हेवाक प्रस्ताव राखलखिन। ओ ईश्वरक रुपमे युद्ध करै लेल इच्छुक नहि छलाह, किन्तु जे क्यो हुनकर अपार सेना केँ उपयोग कर चाहे ओ कऽ सकैत अछि, ई घोषित कऽ देलथिन। प्रतिबन्ध एतवा छल जे एक तरफ श्रीकृष्णक सम्पूर्ण सेना दोसर तरफ स्वयं एक परामर्शदाता तथा सहायकक रुपमे उपस्थित रहताह। राजनीतिमे चतुर एवं कुशल दुर्योधन आतुरता सँ श्रीकृष्णक सेना झपटि लेलक। जखन कि पाण्डव भगवान् श्रीकृष्ण केँ अत्यन्त आतुरता सँ ग्रहण कैलनि। एहि प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुनक सारथी भेलाह एवं ओ ओहि सुप्रसिद्ध धनुर्धर अर्जुनक रथ हाँकब स्वीकार कैलनि। एहि तरहें हम सब ओहि बिन्दु तक पहुँचि जाइत छी जत सँ भगवद्गीताक शुभारम्भ भेलै। कुरुक्षेत्रमे दूनू तरफ पाण्डव आ कौरवक सेना युद्धक लेल तैयार अछि। धृतराष्ट्र अपन सचिव संजय सँ पूछि रहल छथिन सेना की कऽ रहल अछि? एहि तरहें पूरा पृष्ठभूमि तैयार अछि। भगवद्गीताक प्रयोजन मानव जातिक भौतिक संसारक अज्ञान सँ उद्धार करब अछि। प्रत्येक व्यक्ति अनेक प्रकारक कठनाईमे अछि। जेना अर्जुन कुरुक्षेत्रमे युद्ध करबाक विवशतामे छलाह। अर्जुन भगवान्

श्रीकृष्णक शरण ग्रहण कैलनि। फलस्वरुप एहि भगवद्गीताक प्रवचन भेल। केवल अर्जुने नहि वरन् हमरा सबमे प्रत्येक व्यक्ति एहि भौतिक अस्तित्वक कारण चिन्ता सँ घेरायल छी। हमरा सबहक अस्तित्वो मात्र ही अनस्तित्वक परिवेशमे अछि। वस्तुतः हम सब अनस्तित्व सँ भयभीत करबाक लेल निर्मित नहि छी। हमरा सबहक अस्तित्व सनातन अछि, किन्तु कोनो–ने–कोनो कारण बस हम सब असत् मे डालि देल जाइत छी। असत्क अर्थ अछि जकर अस्तित्व नहि हो। अर्जुन श्रीकृष्ण केँ पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वरक रुपमे स्वीकार करैत छथि। संगहि भगवान् कृष्णक प्रसंशा करैत कहैत छथि जे नारद, असित, देवल एवं व्यासदेव सनक महापुरुष सब हुनका परमेश्वर मानैत छथिन। अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण सँ कहैत छथिन जे अहाँ जे किछु कहैत छी ओकरा हम पूर्ण रुपें स्वीकार करैत छी। **''सर्वम् एतद् ऋतं मन्ये।''** अहाँ जे किछु कहैत छी ओकरा हम सत्य मानैत छी। संगहि इहो कहैत छथिन जे देवतागण हुनका समझै मे असमर्थ छथि। श्रीकृष्ण केँ बिना भक्त बनने समझब कठिन अछि। अतएव भगवद्गीता केँ भक्तिभाव सँ ग्रहण करक चाही। भगवद्गीताक पाठ विनम्र भाव सँ करबाक चाही। कारण भगवद्गीता केँ समझब अत्यन्त कठिन अछि, ई एक महान रहस्य अछि। भगवद्गीता सँ शिक्षा भेटैत अछि जे हमरा सब केँ भौतिकता सँ कलुषित चेतना केँ शुद्ध करक अछि। शुद्ध चेतना भेला उत्तर हमरा सबक कर्म ईश्वरक इच्छा सँ जुड़ि जाएत जाहि सँ सब कियो सुखी भऽ जाएब। भगवद्गीताक उपदेशक मन्तव्य अछि शुद्ध चेतनाक जागृत करब। शुद्ध चेतनाक अर्थ अछि भगवान्क आदेशानुसार कर्म करब। शुद्ध चेतनाक ई सार अछि। भगवानक अंश भेलाक कारण मनुष्यमे चेतना शुरु सँ रहैत अछि। परन्तु मनुष्यमे प्रकृतिक निकृष्ठ गुण द्वारा प्रभावित हेवाक प्रवृत्ति भेटैत अछि। किन्तु भगवान् परमेश्वर भेलाक कारणे एहि सँ कौखन प्रभावित नहि होइत छथि। परमेश्वर आ साधारण मानव जीवमे इहे अन्तर होइत अछि। प्रत्येक जीव सोचैत अछि जे ओ भौतिक जगतक स्वामी तथा स्त्रष्टा अछि। भौतिक चेतनाक दू मनोमय भाग होइत अछि। एकक अनुसार हम ही स्त्रष्टा छी आओर दोसरक अनुसार हमही भोक्ता छी। परन्तु वास्तवमे परमेश्वर स्त्रष्टा एवं भोक्ता दूनू छथि। परमेश्वरक अंश भेला उत्तर जीव न तो स्त्रष्टा छी आ न तो भोक्ता। ओ मात्र सहयोगी अछि।

प्रारम्भमे अर्जुन निश्चय केने छलाह जे कुरुक्षेत्रक युद्ध मे नहि लड़ब। ई हुनकर अपन निर्णय छल। अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण सँ कहलथिन जे अपन सम्बन्धी केँ मारि कऽ हम राज्य नहि भोगए चाहैत छी। हुनकर निर्णय शरीर पर आधारित छल। भगवद्‌गीताक प्रवचन एहि दृष्टिकोण केँ बदलबाक लेल देल गेलै। अन्तमे अर्जुन भगवान्‌क आदेशानुसार युद्ध करवाक निश्चय करैत व्यक्त करैत छथि– **"करिस्ये वचनं तव।"** हम अहाँक वचनक अनुसार करब। अहाँ जे किछु चाहब, जे किछु कहब, बस हम ओतबे करब। इहै हमर जीवनक व्रत हैत। एकरे अर्जुन जीवन भरि निबाहलथि। इहै प्रेमतत्व अछि। इहै शरणागति अछि। इहै गीता साधक साधना अछि।

अर्जुन उवाच:

नष्टो मोहः समृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥

ARJUNA Said: My dear Krishna, O infallible one, my illusion is now gone. I have regained my memory by Your mercy. I am now firm and free from doubt and am prepared to act according to Your instructions.

अर्जुन कहलनि–हे अच्युत! आव हमर मोह भंग भऽ गेल। अहाँक अनुग्रह सँ हमर अपन स्मरण शक्ति वापस भेट गेल। आब हम संशयरहित तथा दृढ़ छी आओर अपनेक आदेशानुसार कर्म करबाक लेल उद्यत छी। अर्जुन पुनः भगवान् श्रीकृष्णक आदेशानुसार युद्ध करक लेल अपन धनुष–वाण ग्रहण कऽ लेलथि।

संजय, राजा धृतराष्ट्र सँ कहलखिन– एहि प्रकार हम कृष्ण तथा अर्जुन एहि दुनू महापुरूषक वार्ता सुनलहुँ आओर ई संदेश एतेक अद्‌भुत अछि कि हमरा शरीरमे रोमांच भऽ रहल अछि।



गीताक सार

ESSENCE OF GITA

अध्याय-१ कुरूक्षेत्रक युद्धस्थलमे सैन्य-निरीक्षण

Due only to worldly attachments man is trapped in the dilema "What should I do and what should not do? and becomes unable to do his duty. Therefore one should not come under the sway of delusion and desire for happiness.

अध्याय-२ गीताक सार

This body is destructible, and the knower of this body is indestructible (अविनाशी)- giving importance to the discrimination (विवेक) and fulfilling our duties on imbibing and rendering useful any one of these two solutions, worries (चिन्ता) and sorrows (शोक) will end.

अध्याय-३ कर्मयोग

By simply doing one's duties promptly primarily for the well being of others, without being attached to the fruits of these actions. One can attain Salvation. (मोक्ष)

अध्याय-४ दिव्यज्ञान

There are two ways for being released from the bondage of actions.

1. Realising the essential nature of activity (कर्म) and doing duties in a selfless manner (निःस्वार्थ भाव) or
2. Realization of the Supreme knowledge (दिव्यज्ञान)

अध्याय-५ कर्मयोग- कृष्णभावनाभावित कर्मः

Faced with favourable and unfavourable circumstances one should not become happy or sad. A man that becomes, happy or sad from changing situations is unable to rise above worldly matters and

can never experience eternal joy (परम आनन्द)

अध्याय-६ ध्यानयोग :

With any spiritual practice equanimity (समता) should come without equanimity a human being can not entirely become free of mental agitations (निर्विकार) and attain peace.

अध्याय-७ भगवद्ज्ञान :

Every thing is God-accepting this is the best of all spiritual practices.

अध्याय-८ भगवद्प्राप्ति :

Depending on the last thoughts, this embodied soul attains its end. Therefore man should at all times be engaged in remembrance (स्मरण) of GOD, and at the same time fulfill his duties in life. Doing so even at the end, man will remain in remembrance of God.

अध्याय-९ परम गुह्य ज्ञान :

All men have the right to attain God Realization whatever their caste, status in life, organisation (sect), country, race, colour etc.

अध्याय-१० श्रीभगवानक ऐश्वर्य:

In this world wherever one sees-something exceptional and wonderous, something extraordinary special, something magnificient, something prominent, something with enormous strength etc. consider all these to be only God's and remain in remembrance of only God.

अध्याय-११ विराट रूप:

By considering this world to be God's divine form (Manifestation) every man is capable of realising God's Universal form (विराट स्वरूप)

अध्याय-१२ भक्तियोगः

The one who with this body, senses, mind, intelect and entire being, surrenders his self (स्वयं) to God, that man is dearer to God.

अध्याय-१३ प्रकृति, पुरुष तथा चेतना :

In this World there is only one the Supreme consciousness (परमात्मा तत्त्व) that is worth knowing. On knowing this ultimate consciousness one can realize immortality.

अध्याय-१४ प्रकृतिक तीन गुण :

To be released from bondage of this World, it is essential to rise above the three modes of nature goodness (सत्य), High activity, Passion (राजस), Ignorance (तामस). A man can get beyond these three modes of nature. This material existence, through single minded exclusive devotion.

अध्याय-१५ पुरुषोत्तम योगः

In this world the main benefactor, the praisworthy personality and Ultimate one is only God. Believing this implicity and whole heartedly one should engage in devotion and worship of God.

अध्याय-१६ दैवी तथा आसुरी स्वभावः

It is only through evil propensities and ill conduct that a human being gets caught, hurted in the cycle of birth and death and experiences sorrow. To break away from this cycle, it is indispensable to give up evil propensities and unrighteousness.

आसुरी गुणवला व्यक्ति अधम योनि केँ प्राप्त होइत अछि आओर आगाँ भवबन्धनमे पड़ल रहैत छथि मुदा दैवी गुणसँ सम्पन्न मनुष्य आध्यात्मिक सिद्धि केँ प्राप्त करैत अछि।

अध्याय-१७ श्रद्धाक विभागः

Whatever auspicious work performed with deep faith and conviction, man must commence it first by remembering God and reciting His Holy Name.

भौतिक प्रकृतिक तीन गुणसँ तीन प्रकारक श्रद्धा उत्पन्न होइत अछि। रजोगुण आ तमोगुणमे श्रद्धापूर्वक कएल गेल कर्मसँ अस्थायी फल प्राप्त होइत अछि जखन कि सतोगुणमे रहि समस्त कर्म हृदय के शुद्ध करैत अछि। ई भगवानक प्रति शुद्ध श्रद्धा आ भक्ति उत्पन्न करएबला होइत अछि।

अध्याय-१८ उपसंहार- संन्यासक सिद्धिः

The essence of all the scriptures is the Vedas, the essence of the Vedas is Upanishads, and the essence of Upnishadas is GITA, and the esssence of Gita is Sharanagat (Taking refuge in God, शरणागत). The one who with a firm resolve and with implicit faith, exclusively takes refuge in God, God releases him from all sins.

Lord Krishna says that :

This confidential knowledge may never be explained to those who are not austere, or devoted or engaged in devotional service, nor to one who is envious to Me. For one who explains this supreme secret to the devotees, pure devotional serivice is guaranteed, and at the end he will come back to Me.

Arjun said: My dear Krishna, My illusion is now gone I have regained my memory by your mercy I am now firm and free from doubt and am prepared to act according to your instructions.

श्रीकृष्णक शरणागति सर्वोच्च सिद्धि अछि। भगवद्गीताक आदेश धर्म तथा नीतिक परम विधि अछि। गीताक अन्तिम आदेश समस्त नीति एवं धर्मक सार वचन अछि- कृष्णक शरण करू या कृष्ण केँ आत्मसमर्पण करू।



भगवद्गीता-संदेश-सार

महाभारतक युद्धक समय जखन अर्जुन युद्ध करए सँ मना करैत छथि तखन श्रीकृष्ण हुनका उपदेश दैत छथिन आओर कर्म व धर्मक सच्चा ज्ञानसँ अवगत कराबैत छथिन। श्रीकृष्णक इहे उपदेश केँ श्रीमद्भगवद्गीता नाम ग्रन्थमे संकलित कएल गेल अछि। ई महाभारतक भीष्मपर्वक अंग थिक। दुनियामे बहुत धार्मिक किताब अछि जे धर्मक मार्ग पर लऽ जेबाक प्रेरणा दैत अछि परन्तु भगवद्गीताक एक एहन किताब अछि जे सिर्फ धर्मक ही नहि बल्कि अपन मन, शरीर, बुद्धि एहि सब केँ नियंत्रण करक लेल शिक्षा प्रदान करैत अछि।

गीतामे १८ अध्याय आओर ७०० श्लोक अछि। गीताक गणना प्रस्थानत्रयीमे कएल जाइत अछि, जाहिमे उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र सेहो सम्मिलित अछि। अतएव भारतीय परम्पराक अनुसार गीताक स्थान वैह अछि जे उपनिषद् एवं धर्मसूत्रक अछि। उपनिषद् केँ गौ आओर गीता केँ दुग्ध कहल गेलै अछि। एकर तात्पर्य ई अछि जे उपनिषद्क जे अध्यात्म विद्या अछि, ओकरा गीता सर्वांशमे स्वीकार करैत अछि। उपनिषद्क अनेक विद्या गीतामे अछि। जेना संसारक स्वरुपक सम्बन्धमे अश्वत्थ विद्या, अनादि अजन्मा ब्रह्मक विषयमे अव्ययपुरुष विद्या, परा प्रकृति अथवा जीवक विषयमे अक्षरपुरुष विद्या आओर अपरा प्रकृति या भौतिक जगत्क विषयमे क्षर पुरुषविद्या। एहि प्रकार वेदक ब्रह्मवाद आओर उपनिषदक अध्यात्म, एहि दूनूक विशिष्ट सामग्री गीता सँ संनिविष्ट अछि। ओकरे पुष्पिकाक शब्दमे ब्रह्मविद्या कहल गेलै अछि। गीतामे ब्रह्मविद्याक आशय निवृत्तिपरक ज्ञानमार्ग सँ अछि। एकरा सांख्यमत कहल जाइत अछि जकरा संग निवृत्तिमार्गी जीवन पद्धति जूड़ल अछि। लेकिन गीता उपनिषदक मोड़ सँ आगाँ बढ़ि कऽ ओहि युगक देन अछि, जखन नव दर्शन जन्म लऽ रहल छल जे गृहस्थ प्रवृत्ति धर्मक निवृत्ति मार्गक समकक्ष आओर ओतबे फलदायक मानैत छल। एकरे संकेत दिअवाला गीताक पुष्पिकामे योगशास्त्रे शब्द अछि। एतय 'योगशास्त्रे'क अभिप्राय निःसन्देह कर्म योगसँ अछि। गीतामे योगक दू टा परिभाषा पाओल गेल अछि। एक निवृत्ति मार्गक दृष्टि सँ जाहिमे ''**समत्वं योग उच्यते**'' कहल गेलै अछि। अर्थात् गुणक वैषम्यमे साम्यभाव राखब ही

योग अछि। सांख्य स्थिति इहे अछि। योगक दोसर भाषा अछि– ''**योग: कर्मसु कौशलम्**'' अर्थात् कर्mमे लागल रहलो पर एहन उपाय सँ कर्म करएबला ओहि असंग या निर्लेप स्थिति मे अपना केँ राखि सकए जे ज्ञानमार्ग केँ भेटैत अछि। एहि युक्तिक नाम बुद्धियोग अछि आओर इहे गीताक योगक सार अछि।

गीताक दोसर अध्याय मे जे ''**तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता**''क धुनि पायल जाइत अछि, ओकर अभिप्राय निर्लेप कर्मक क्षमतावली बुद्धि सँ ही अछि। ई कर्मक सन्यास द्वारा वैराग्य प्राप्त करक स्थितिमे नहि छल बल्कि कर्म करैत पदे पदे मन केँ वैराग्यवला स्थितिमे ढ़ालैक युक्ति छल। इहे गीताक कर्मयोग अछि।

गीताक उपदेश अत्यन्त पुरातन योग अछि। श्रीभगवान् कहैत छथि कि हम सबसँ पहिने सूर्यसँ कहने रही। सूर्य ज्ञानक प्रतीक छथि। अत: श्रीभगवानक वचनक तात्पर्य अछि जे पृथ्वी उत्पत्ति सँ पहिनहुँ भी अनेक स्वरुप अनुसंधान करवला भक्त केँ ई ज्ञान दऽ चुकल अछि। ई ईश्वरवाणी अछि जाहिमे सम्पूर्ण जीवनक सार अछि एवं आधार अछि। हम के छी? ई देह की अछि? एहि देहक संग हमर की सम्बन्ध अछि आदि आओर अन्त अछि? देह त्याग कऽ पश्चात् की हमर अस्तित्व रहत? आओर ई अस्तित्व कतय आओर कोन रुपमे रहतै? हमरा संसारमे आबैक की कारण अछि? हमरा देह त्यागक बाद की हैत? कतय जाय पड़त? कोनो भी जिज्ञासुक हृदयमे ई बात सब घूमैत रहैत अछि। हम सदा एहि बात सब केँ सोचैत छी आओर स्वयं केँ अपन स्वरुप केँ जानि पाबैत छी। गीता शास्त्रमे एहि सब प्रश्नक उत्तर सहज ढंग सँ श्रीभगवान् धर्म सम्वादक माध्यम सँ देलनि अछि। एहि देह केँ जाहि मे ३६ तत्त्व जीवात्माक उपस्थितिक कारण जुड़िक कार्य करैत अछि, क्षेत्र कहल गेल अछि आओर जीवात्मा एहि क्षेत्रमे निवास करैत अछि।, ओहे एहि देहक स्वामी अछि, परन्तु एक तेसर पुरुष भी अछि, जखन ओ प्रकट होइत अछि, अधिदैव अर्थात् ३६ तत्त्ववाला एहि देह (क्षेत्र) केँ आओर जीवात्मा (क्षेत्रज्ञ)क नाश करि डालैत अछि। इहै उत्तम पुरुष ही परम स्थिति आओर परम सत् अछि। जीवात्मा नित्य अछि आओर आत्मा (उत्तम पुरुष) केँ जीव भावक प्राप्ति भेल अछि। शरीर केँ मरि गेलाक बाद जीवात्मा अपन कर्मानुसार विभिन्न योनिमे विचरण करैत अछि।

गीताक प्रारम्भ धर्म शब्द सँ होइत अछि तथा गीताक अठारहम अध्यायक अन्तमे एकरा धर्म सम्वाद कहल गेल अछि। धर्मक अर्थ अछि धारण कर वाला अथवा जकरा धारण कैल गेल अछि। धारण करए वाला जे अछि ओकरा आत्मा कहल गेलै अछि आओर जकरा धारण कैल गंल अछि ओ प्रकृति अछि। आत्मा एहि संसारक बीज अर्थात् पिता अछि आओर प्रकृति गर्भ धारण करए वाली योनि माता अछि।

धर्म शब्दक प्रयोग गीतामे आत्म स्वभाव एवं जीव स्वभावक लेल जगह-जगह प्रयुक्त भेल अछि। एहि परिपेक्षमे धर्म एवं अधर्म केँ समझब आवश्यक अछि। आत्माक स्वभाव धर्म अछि अथवा कहल जाय धर्म ही आत्मा अछि। आत्माक स्वभाव अछि पूर्ण शुद्ध ज्ञान, ज्ञान ही आनन्द आओर शान्तिक अक्षय धाम अछि। एकर विपरीत अज्ञान, अशान्ति, क्लेश आओर अधर्मक द्योतक अछि। आत्मा अक्षय ज्ञानक श्रोत अछि। ज्ञान शक्तिक विभिन्न मात्रा सँ क्रिया शक्ति क उदय होइत अछि, प्रकृति क जन्म होइत अछि। प्रकृतिक गुण सत्व, रज, तम क जन्म होइत अछि। सत्व-रजक अधिकता धर्म केँ जन्म दैत अछि, तम-रजक अधिकता भेला पर आसुरी वृत्ति प्रवल होइत अछि आओर धर्मक स्थापना अर्थात् गुणक स्वभाव केँ स्थापित करक लेल सतोगुणक बुद्धिक लेल, अविनाशी ब्राह्मी स्थिति केँ प्राप्त आत्मा अपन संकल्प सँ देह धारण करि अवतार ग्रहण करैत अछि। सम्पूर्ण गीता शास्त्रक निचोड़ अछि बुद्धि केँ हमेशा सूक्ष्म करैत महाबुद्धि आत्मामे लगेने राखी तथा संसारक कर्म अपन स्वभावक अनुसार सरल सँ करैत रही। स्वभावगत कर्म करब सरल अछि आओर दोसरक स्वभावगत कर्म केँ अपना कऽ चलब कठिन अछि किएक तऽ प्रत्येक जीव भिन्न-भिन्न प्रकृति केँ लऽ कऽ जन्मल अछि, जीव जाहि प्रकार लऽकऽ संसारमे आयल अछि ओहिमे सरलता सँ ओकर निर्वाह भऽ जाइत अछि। श्रीभगवान् सम्पूर्ण गीता शास्त्रमे बारम्बार आत्मरत, आत्म स्थित हुअक लेल कहलथिन अछि। स्वभाविक कर्म करैत बुद्धिक अनासक्त होयब सरल अछि, अतः एकरा ही निश्चयात्मक मार्ग मानल अछि। यद्यपि अलग-अलग देखल जाय तऽ ज्ञान योग, बुद्धियोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदिक गीतामे उपदेश देल गेल अछि, परन्तु सूक्ष्म दृष्टिक विचार कयल जाय तऽ सब योग बुद्धि सँ श्रीभगवान् केँ अर्पण कएल जा सकैत अछि। एहि सँ अनासक्त योग निष्काम कर्मयोग स्वतः सिद्ध

भऽ जाइत अछि। (सन्दर्भ–बसंतेश्वरी भगवद्गीता सँ)

भगवद्गीता महाभारतक भीष्मपर्वक अंग अछि। हिन्दूक पवित्रतम ग्रन्थमे एकर स्थान अछि। भगवद्गीतामे एकेश्वरवाद, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोगक बहुत सुन्दर ढंग सँ चर्चा भेल अछि।

श्रीमद्भगवद्गीताक पृष्ठभूमि महाभारतक युद्ध अछि। जाहि प्रकार एक सामान्य मनुष्य अपन जीवनक समस्यामे उलझि कऽ किंकर्तव्यविमूढ़ भऽ जाइत अछि आओर जीवनक समस्या सँ लड़क बजाय ओहिसँ भागैक मन बना लैत अछि, ओहि प्रकार अर्जुन जे महाभारतक महानायक छथि, अपन सामने आबएबला समस्या सँ भयभीत भऽ कऽ जीवन आओर क्षत्रीय धर्म सँ निराश भऽ गेल छलाह, अर्जुन जकाँ हमसब कहियो–कहियो अनिश्चयक स्थितिमे या तऽ विचलित भऽ कऽ अलग ठाढ़ भऽ जाइत छी। भारतवर्षक ऋषि गहन विचारक पश्चात् जाहि ज्ञानक आत्मसात कैलनि ओकरा वेदक नाम सँ देलनि। इहै वेदक अन्तिम भाग उपनिषद् कहाबैत अछि। मानव जीवनक विशेषता मानव केँ प्राप्त बौद्धिक शक्ति अछि आओर उपनिषद्मे निहित ज्ञान मानवक बौद्धिकताक उच्चतम तऽ अछि ही, अपितु बुद्धिक सीमाक परे मनुष्यक अनुभव कऽ सकैत अछि ओकर एक झलक भी दिखाबैत अछि। भगवद्गीता मे वर्तमान मे धर्म सँ ज्यादा जीवनक प्रति अपन दार्शनिक दृष्टिकोण केँ लऽ कऽ भारतवर्ष मे ही नहि विदेश मे भी लोगक ध्यान अपन ओर आकर्षित कऽ रहल अछि। निष्काम कर्मक गीताक संदेश प्रबंधन गुरु केँ भी लुभा रहल अछि। गीताक दृष्टि एकांगी नहि, सर्वांगपूर्ण अछि। गीतामे दर्शनक प्रतिपालन करैत भी जे साहित्यक आनन्द अछि ओ एकर अतिरिक्त विशेषता अछि। तत्त्वज्ञानक सुसंस्कृत काव्यशैलीक द्वारा वर्णन गीताक निजी सौरभ अछि जे ककरो सहृदय केँ मुग्ध केने कियो नहि रहता। एहि लेल एकर नाम गीता पड़लै। भगवानक गायल ज्ञान। श्रीमद्भगवद्गीताक श्लोकमे मनुष्य जीवनक प्रत्येक समस्याक हल छिपल अछि। गीताक १८ अध्याय ७०० गीताश्लोकमे कर्म, धर्म, कर्मफल, जन्म, मृत्यु, सत्य, असत्य आदि जीवन सँ जुड़ल प्रश्नक उत्तर/समाधान मौजूद अछि। गीता श्लोक श्रीकृष्ण अर्जुन केँ ओहि समय सुनेलथिन जखन महाभारतक युद्धक समय अर्जुन युद्ध कर सँ मना कऽ देलखिन, तखन श्रीकृष्ण अर्जुन केँ गीता श्लोक सुनबैत छथि आओर कर्म एवं धर्मक सच्चा ज्ञान सँ अवगत कराबैत छथि।

श्रीकृष्णक एहि उपदेश केँ भगवद्गीता नामक ग्रन्थमे संकलित अछि। गीता पर अनेक आचार्य एवं विद्वान टीका कयलनि अछि। गीताभाष्य- शंकराचार्य, गीताभाष्य- रामानुज, गीता रहस्य- बालगंगाधर तिलक, ज्ञानेश्वरी- संत ज्ञानेश्वर, गीता-प्रबवचन- बिनोवा भावे आदि सर्वाधिक लोकप्रिय तथा जन सुलभ अछि।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्व प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां वुधा भावसमन्विताः।।

भगवान् श्री कृष्ण कहैत छथि- हम समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतक कारण छी, प्रत्येक वस्तु हमरा सँ ही उद्भूत अछि। जे बुद्धिमान ई ठीक-ठीक जानैत अछि, ओ हमर प्रेमाभक्तिमे लागैत अछि तथा हृदय सँ पूर्ण रुपेन हमर पूजामे तत्पर होइत अछि।

वेदक कथन अछि-ब्रह्मण्यो देवकीपुत्र- देवकी पुत्र, कृष्ण ही भगवान् छथि। सृष्टिक प्रारम्भ मे केवल भगवान् नारायण छलाह। न ब्रह्मा छलाह, न शिव, न अग्नि छल, न चन्द्रमा, न नक्षत्र आओर न सूर्य। महा उपनिषद्मे ई भी कहल गेलै अछि कि शिवजी परमेश्वरक मस्तक सँ उत्पन्न भेलाह। अतः वेदक कहब अछि कि ब्रह्मा तथा शिवक स्रष्टा भगवानक ही पूजा करक चाहिए।

प्रजापतिं च रुद्रं चाप्यहमेव सृजामि बै।
तौ हि मां न विजानीतो मन मायाविमोहितौ।

मोक्षधर्ममे कृष्ण कहैत छथि- हम ही प्रजापति केँ, शिव तथा अन्य केँ उत्पन्न कैलहुँ, किन्तु ओ हमर माया सँ मोहित भेलाक कारण ई नहि जानैत छथि कि हमही हुनका उत्पन्न कैलहुँ अछि। नारायण उपनिषद्मे कहल गेलै अछि। नारायण भगवान् छथि, जिनका सँ ब्रह्मा उत्पन्न भेलाह आओर पुनः ब्रह्मा सँ शिव उत्पन्न भेलाह। भगवान् कृष्ण समस्त उत्पत्तिक श्रोत छथि आओर ओ सर्वकारण कहलाबैत छथि। ओ स्वयं कहैत छथि- चूँकि सब वस्तु हमरा सँ उत्पन्न छथि, अतः हम सबहक मूल कारण छी। समस्त वस्तु हमरा अधीन अछि। हमरा ऊपर कियो नहि अछि। हमरा सँ पैघ कियो नियन्ता नहि अछि। जे व्यक्ति प्रमाणिक गुरु सँ या वैदिक साहित्य सँ एहि प्रकार कृष्ण केँ जानि लैत अछि, ओ अपन सब शक्ति कृष्ण भावनामृतमे लगबैत अछि आओर सचमुच विद्वान पुरुष बनि जाइत अछि। जे प्रेमपूर्वक हमर सेवामे निरन्तर लागल रहैत अछि,

ओकरा हम ज्ञान प्रदान करैत छी, जकरा द्वारा ओ हमरा तक आबि सकैत अछि। करोड़ों जन्मक भौतिक संसर्गक कल्मषक कारणेँ मनुष्यक हृदय भौतिकताक मल (धूलि) सँ आच्छादित भऽ जाइत अछि, किन्तु जखन मनुष्य भक्तिमे लागैत अछि आओर निरन्तर हरे कृष्णक जप करैत अछि तऽ ई मल तुरन्त दूर भऽ जाइत अछि आओर ओकरा शुद्ध ज्ञान प्राप्त होइत अछि। परम लक्ष्य विष्णु केँ एहि जप तथा भक्ति सँ प्राप्त कैल जा सकैत अछि, अन्य कोनो प्रकारक मनोधर्म या तर्क द्वारा नहि। शुद्ध भक्त जीवनक भौतिक आवश्यकताक लेल चिन्ता नहि करैत अछि, न तो ओकरा कोनो चिन्ताक आवश्यकता अछि, किएक तऽ हृदय सँ अंधकार हटि गेला पर प्रेमाभक्ति सँ प्रसन्न भऽ कऽ भगवान् स्वतः सब किछु प्रदान करैत छथिन। इहे भगवद्गीताक उपदेश सार अछि। भगवद्गीताक अध्ययन सँ मनुष्य भगवानक शरणागत भऽ कऽ शुद्धभक्तिमे लागि जाइत अछि। जखने भगवान् अपन ऊपर भार लऽ लैत छथिन, मनुष्य समस्त भौतिक प्रयास सँ मुक्त भऽ जाइत अछि।

भगवान् कृष्णक पार्षद भेलाक कारण अर्जुन समस्त अज्ञान (अविद्या) सँ मुक्त छलाह, लेकिन कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलमे ओ अज्ञानी बनि भगवान् कृष्णसँ जीवनक समस्याक विषयमे प्रश्न करए लगलाह जाहि सँ भगवान् ओकर व्याख्या भावी पीढ़ीक मनुष्यक लाभक लेल कऽ देथि आओर जीवनक योजनाक निर्धारण कऽ देथि। तखन मनुष्य तदनुसार कार्य कऽ पाओत आओर मानव जीवनक उद्देश्य केँ पूर्ण कऽ सकत। भगवानक सन्देश सार अछि– अन्तकालमे जे कियो हमर (कृष्णक) स्मरण करैत शरीर त्याग करत ओकरा तुरन्त हुनकर स्वभाव केँ प्राप्त होइत, एहि मे रंचमात्र सन्देह नहि अछि।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स सद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥



गीता ज्ञान कथा प्रारम्भ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय विश्वेश्वराय।
आदि पुरुष अपरम्पार अलेख पुरुषाय नमः॥

जखन कौरव एवं पाण्डव महाभारतक युद्ध लेल चललाह तखन धृतराष्ट्र कहलखिन हमहूँ देखए जाएब। श्री व्यास जी कहलखिन हे राजन्! नेत्रक बिना की देखबै? राजा धृतराष्ट्र कहलखिन– प्रभुजी देखबै नहि मुदा श्रवण तऽ कऽ सकबै। तखन व्यासजी कहलखिन हे राजन्! जे किछु महाभारतक युद्धक लीला कुरुक्षेत्रमे हेतै ओ अहाँक सारथी संजय एतै बैसले श्रवण करायत। व्यास जीक मुँहसँ ई वचन सुनि संजय विनती केलखिन– हे प्रभु! एतय हस्तिनापुरमे बैस कऽ कुरुक्षेत्रक लीला कोना जानबै एवं राजा केँ कोन भाँतिसँ कहबैन? तखन व्यास जी प्रसन्न भऽ कऽ संजय केँ ई वचन कहलखिन– संजय! हमर कृपासँ अहाँ केँ एतै सब किछु दिखाई पड़त। व्यास जीक एतबे कहैत देरी, ओहि समय संजय केँ दिव्य दृष्टि भेलैन एवं हुनक बुद्धि सेहो दिव्य भऽ गेलैन। आब आगाँ महाभारतक कौतुक कहैत छथि– ओ सुनू! सात अक्षोहिणी सेना पाण्डवक तरफ आ ग्यारह अक्षोहिणी सेना कौरवक। दूनू पक्षक सेना कुरुक्षेत्रमे जा कऽ एकत्र भेलै।

जखन मनुष्य जीवनक वास्तविक प्रयोजन बिसरि जाइत अछि तखन भगवान् कृष्ण विशेष रूपसँ ओहि प्रयोजनक पुनर्स्थापनाक लेल अवतार लैत छथि। श्री कृष्ण अपन सखा अर्जुन केँ अपन शिष्य बना कऽ भगवद् गीताक प्रवचन देलथि। कुरूक्षेत्रक युद्धस्थलमे ओ अज्ञानी बनि कऽ भगवान् कृष्ण सँ जीवनक समस्याक विषयमे प्रश्न करए लगलाह जाहिसँ भगवान् ओ व्याख्या भावी पीढ़ीक मनुष्यक लाभ लेल देलथिन जे आगाँ सविस्तर प्रस्तुत अछि।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन केँ गीता ज्ञान देलथिन। कहल गेलै अछि गीता ज्ञानक उच्चारण कएलासँ भगवत्भक्त केँ पूर्ण ब्रह्म प्राप्त होइत अछि। अर्जुन केँ जे गीता ज्ञान भेटलैन ओ हमरो सब केँ भेटय।



अध्याय-एक



कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलमे सैन्यनिरीक्षण

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय॥१॥

धर्मक्षेत्रे- धर्मभूमि (तीर्थस्थल)मे; **कुरुक्षेत्रे**- कुरुक्षेत्र नामक स्थानमे; **समवेताः**- एकत्र; **युयुत्सवः**- युद्ध करबाक इच्छा सँ; **मामकाः**- अपन पक्ष; **पाण्डवाः**- पाण्डुपुत्र सब; **च**- तथा; **एव**- निश्चय ही; **किम्**- की (क्या); **अकुर्वत**- केलक; **संजय**- हे संजय।

धृतराष्ट्र कहलखिन- हे संजय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्रमे युद्धक इच्छासँ एकत्रित हमर आ पाण्डुपुत्र सब की केलक?

तात्पर्य: धर्मक्षेत्र शब्द सार्थक अछि कारण कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलमे अर्जुनक पक्षमे भगवान् श्रीकृष्ण उपस्थित छलथिन। संजय श्री व्यास जीक शिष्य छलथिन तेँ हुनकर कृपासँ संजय केँ दिव्य दृष्टि प्राप्त छलनि। संजय धृतराष्ट्रक कक्षसँ बैसल-बैसल कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलक दर्शन कऽ रहल छलाह। धृतराष्ट्र संजय सँ युद्धस्थलक स्थितिक विषय पूछि रहल छलथिन, कारण कौरवक पिता धृतराष्ट्र अपन पुत्रक विजयक सम्भावनाक विषयमे अत्यन्त संदिग्ध छलाह। हुनका ज्ञात छलैन जे एहि पवित्र स्थलक युद्धक परिणाम पाण्डुपुत्र पर अत्यन्त अनुकूल पड़तै

कारण पाण्डव सब पुण्यात्मा छलथिन। धर्मक रक्षक एवं पिता भगवान् श्रीकृष्ण ओतै उपस्थित छलथिन। कुरुक्षेत्र रूपी खेतमे कौरव अवांक्षित पौधा छलाह। ओकर समूल नष्ट कऽ युधिष्ठिर आदि नितान्त धार्मिक पुरुषक स्थापना कएल जेतैक। तेँ धृतराष्ट्र अत्यन्त भयभीत छलाह। ओ युद्धस्थल विषय पूछि रहल छलथिन।

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत्॥२॥

दृष्ट्वा– देख कऽ; **तु**– लेकिन; **पाण्डव अनीकम्**– पाण्डवक सेना केँ; **व्यूढं**– व्यूह रचना केँ; **दुर्योधनः**– राजा दुर्योधन; **तदा**– ओहि समय; **आचार्यम्**– गुरु केँ; **उपसंगम्य**– पास जा कऽ; **राजा**– राजा; **वचनम्**– शब्द; **अब्रबीत्**– कहलखिन।

संजय कहलखिन– हे राजन्! पाण्डुपुत्र द्वारा सेनाक व्यूहरचना देख कऽ राजा दुर्योधन अपन गुरुक पास गेलाह आ ओ ई शब्द कहलखिन।

तात्पर्यः धृतराष्ट्र जन्म सँ आन्हर छलाह। दुर्भाग्यवश आध्यात्मिक दृष्टि सँ भी वंचित छलाह। हुनका बूझल छलनि जे हुनकर सब पुत्र अधर्मी अछि। धार्मिक पाण्डवक संग कहियो समझौता नहि कऽ सकैत अछि। संजय युद्धभूमिक स्थितिक विषयमे धृतराष्ट्रक प्रश्नक मंतव्य समझि गेलाह। निराश राजा केँ प्रोत्साहित करैत संजय विश्वास दिआ रहल छलखिन जे अहाँक पुत्र भयभीत भऽकऽ कोनो समझौता करए लेल नहि जा रहल अछि। दुर्योधन राजनीतिज्ञ बनै लेल सर्वथा उचित छलाह। संजय दुर्योधन केँ राजा सम्बोधित करैत कहलखिन जे राजा दुर्योधन पाण्डवक सेना केँ देखि अपन सेनापति द्रोणाचार्य केँ वास्तविक स्थितिसँ अवगत करेवाक लेल अपन सेनापतिक पास गेलाह अछि। परन्तु पाण्डवक सेनाक व्यूह रचना देखि हुनकर कूटनीतिक व्यवहार हुनकर भय नहि छिपा सकलनि।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥३॥

पश्य– देखू; **एताम्**– एहि; **पाण्डुपुत्राणाम्**– पाण्डुक पुत्रक; **महतीम्**– विशाल; **चमूम्**– सेना केँ; **व्यूढाम्**– व्यवस्थित; **द्रुपद-पुत्रेण**– द्रुपदक पुत्र द्वारा; **तव**– तोहर; **शिष्येण**– शिष्यक द्वारा; **धीमता**– अत्यन्त बुद्धिमान

हे आचार्य! पाण्डुपुत्रक विशाल व्यवस्थित सेना केँ देखू, जकरा अहाँक बुद्धिमान शिष्य द्रुपदक पुत्र एतेक कला-कौशल सँ सजेलक अछि।

तात्पर्य: परम राजनीतिज्ञ दुर्योधन महान ब्राह्मण सेनापति द्रोणाचार्यक दोष जागृत करए चाहैत छल। अर्जुनक पत्नी द्रौपदीक पिता राजा द्रुपदक संग द्रोणाचार्य केँ किछु राजनीतिक मतभेद छलनि। एहि झगड़ाक फलस्वरूप द्रुपद एकटा महान यज्ञ सम्पन्न केलाह। जाहि सँ एक पुत्रक वरदान प्राप्त भेलनि जे द्रोणाचार्यक वध कऽ सकै। द्रोणाचार्य केँ ई पूर्ण ज्ञात छलैन्ह तथापि जखन द्रुपदक पुत्र धृष्टद्युम्न युद्ध-शिक्षाक लेल सौंपल गेलथि तऽ द्रोणाचार्य हुनका अपन सब सैनिक रहस्य प्रदान केलथिन। आब धृष्टद्युम्न कुरुक्षेत्रक युद्धभूमिमे पाण्डवक पक्ष लेने छलाह। द्रोणाचार्यसँ प्राप्त युद्ध कला-कौशलक आधार पर पाण्डवक सेना सुव्यवस्थित कएल गेल छल। तेँ दुर्योधन गुरु द्रोणाचार्यक दुर्बलता जागृत करैत हुनका सजग कऽ रहल छल जे अपन प्रिय शिष्य अर्जुनक प्रति कोनो उदारता नहि देखा सकथि। कारण एहि प्रकारक उदारता सँ युद्ध हारल जा सकैत छल। राजा दुर्योधन सेनापति द्रोणाचार्य केँ चेतावनी देबए लेल ई अवसरक उपयोग कएने छलाह।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥४॥

अत्र– एतै; **शूराः**– वीर; **महा-इषु-आसाः**– महान धनुर्धर; **भीम-अर्जुन**– भीम एवं अर्जुन; **समाः**– समान; **युधि**– युद्धमे; **युयुधानः**– युयुधान; **विराटः**– विकराल; **च**– आओर; **द्रुपदः**– द्रुपद; **च**– भी; **महारथः**– महान योद्धा।

एहि सेनामे भीम एवं अर्जुनक समान अनेक वीर धनुर्धर छलाह जेना महारथी युयुधान, विराट एवं द्रुपद।

तात्पर्य: यद्यपि युद्धकलामे द्रोणाचार्यक महान शक्तिक समक्ष धृष्टद्युम्न

महत्वपूर्ण बाधक नहि छलथिन तथापि दुर्योधन केँ अनेक योद्धा विजयपथमे बाधक बूझाइत छलन्हि कारण भीम–अर्जुनक समान आनो योद्धा छलै।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः॥५॥

धृष्टकेतुः– धुष्टकेतु; **चेकितानः**– चेकितान; **काशिराजः**– काशीराज; **वीर्यवान्**– अत्यन्त शक्तिशाली; **पुरुजित्**– पुरुजित्; **कुन्तिभोजः**– कुन्तिभोज; **च**– तथा; **शैब्यः**– शैब्य; **च**– तथा; **नरपुङ्गवः**– मानव समाजमे वीर।

हिनका संग धृष्टकेतु, चेकितान, काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज एवं शैब्य सनक आओर योद्धा छलन्हि।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥६॥

युधामन्युः– युद्धामन्यु; **च**– तथा; **विक्रान्तः**– पराक्रमी; **उत्तमौजाः**– उत्तमौजा; **च**– तथा; **वीर्यवान्**– अत्यन्त शक्तिशाली; **सौभद्रः**– सुभद्राक पुत्र; **द्रौपदेयाः**– द्रौपदीक पुत्र; **च**– तथा; **सर्वे**– सब; **एव**– निश्चय; **महारथाः**– महारथी

पराक्रमी युधामन्यु, अत्यन्त शक्तिशाली उत्तमौजा, सुभद्राक पुत्र एवं द्रौपदीक पुत्र, ई सब महारथी छथि।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥७॥

अस्माकम्– हमरा सबहक; **तु**– लेकिन; **विशिष्टा**– विशेष शक्तिशाली; **ये**– जे; **तान्**– हुनका; **निबोध**– जानकारी प्राप्तक हेतु; **द्विज–उत्तम**– हे ब्राह्मण श्रेष्ठ; **नायका**– सेनापति, कप्तान; **मम**– हमर; **सैन्यस्य**– सेनाक; **संज्ञा अर्थम्**– सूचनार्थ; **तान्**– हुनका, सब केँ; **ब्रबीमि**– बतबै छी; **ते**– अहाँ केँ।

किन्तु हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! अपनेक सूचनार्थ हम (दुर्योधन) अपन सेनाक ओहि सेनापतिक विषयमे सूचना दैत छी जे हमर सेनाक संचालित करबामे विशेषतः निपुण छथि।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥८॥

भवान्– अपने; **भीष्मः**– भीष्म पितामह; **च**– भी; **कर्णः**– कर्ण; **च**– आओर; **कृपः**– कृपाचार्य; **च**– तथा; **समितिञ्जयः**– सदा संग्राम विजयी; **अश्वत्थामा**– अश्वत्थामा; **विकर्णः**– विकर्ण; **च**– तथा; **सौमदत्तिः**– सोमदत्तक पुत्र; **तथा**– भी; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी।

दुर्योधन कहै छथि–हमरा सेनामे स्वयं अहाँ, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण एवं सोमदत्तक पुत्र भूरिश्रवा सब छथि जे युद्धमे हमेशा विजयी रहला अछि।

तात्पर्यः दुर्योधन ओहि अद्वितीय युद्धवीर सबहक उल्लेख करैत छथि जे युद्धमे सदैव विजयी होइत रहला अछि। विकर्ण–दुर्योधनक भाई छथि। अश्वत्थामा गुरुद्रोणक पुत्र, भूरिश्रवा वाह्लीकक राजाक पुत्र कर्ण अर्जुनक आधा भाई एवं कृपाचार्य–द्रोणाचार्यक स्त्रीक भ्राता छथि।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥९॥

अन्ये– अन्य सब; **च**– भी; **बहवः**– अनेक; **शूराः**– वीर; **मत् अर्थे**– हमरा लेल; **त्यक्तजीविताः**– जीवन उत्सर्ग करै वाला; **नाना**– अनेक; **शस्त्र**– आयुध; **प्रहरणाः**– सुसज्जित; **सर्वे**– सब; **युद्ध विशारदाः**– युद्ध विद्या मे निपुण।

एहन अन्य अनेक शूरवीर अछि जे हमरा लेल अपन जीवन उत्सर्ग कर लेल उद्यत अछि। ओ सब अनेक प्रकारक हथियार सँ सुसज्जित अछि एवं युद्धविद्यामे निपुण अछि।

तात्पर्यः अन्य शूरवीर– यथा जयद्रथ, कृतवर्मा, शल्य आदि सम्बन्धी दुर्योधनक लेल प्राणक आहुति दै लेल तैयार छल। निःसंदेह अपन मित्र एव सम्बन्धीक संयुक्त शक्तिक कारण दुर्योधन अपन विजयक प्रति आश्वस्त छलाह।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥१०॥

अपर्याप्तम्– अपरिमेय; **तत्**– ओ; **अस्माकम्**– हमर; **बलं**– शक्ति; **भीष्म**– भीष्म पितामह द्वारा; **अभिरक्षितम्**– भली–भाँति संरक्षित; **पर्याप्तम्**– सीमित; **तु**– लेकिन; **इदम्**– ई सब; **एतेषाम्**– पाण्डवक; **बलम्**– शक्ति; **भीम**– भीम द्वारा; **अभिरक्षितम्**– भली–भाँति सुरक्षित।

दुर्योधन कहैत छथि–हमर शक्ति अपरिमेय अछि। हम सब भीष्म पितामह द्वारा भली–भाँति सुरक्षित छी। जखन कि पाण्डव सबक शक्ति भीम द्वारा भलीभाँति सुरक्षित भेला उत्तर सीमित अछि।

तात्पर्यः एत दुर्योधन द्वारा तुलनात्मक शक्तिक अनुमान प्रस्तुत कैल गेल अछि। ओ सोचै छथि जे अत्यन्त अनुभवी सेना नायक भीष्म पितामह द्वारा विशेष रुप सँ संरक्षित भेलाक कारण हुनकर सशस्त्र सेनाक शक्ति अपरिमेय अछि। दोसर तरफ पाण्डवक सेना सीमित एवं कम अनुभवी नायक भीम द्वारा असंरक्षित अनुभव भऽ रहलैन अछि। यद्यपि दुर्योधन केँ ज्ञात छैन जे हुनक मृत्यु भीम द्वारा निश्चित अछि तथापि भीष्म पितामहक उपस्थिति विजय निश्चित हैत ई हुनका दृढ़ विश्वास छलैन।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥११॥

अयनेषु– मोर्चा मे; **च**– भी; **सर्वेषु**– सर्वत्र; **यथा भागम्**– अपन अपन स्थान पर; **अवस्थिताः**– स्थित; **भीष्मम्**– भीष्म पितामहक; **एव**– निश्चय ही; **अभिरक्षन्तु**– सहायता करब चाही; **भवन्तः**– आप; **सर्व**– सब क्यो; **एव हि**– निश्चय ही।

अतएव सैन्य व्यूहमे अपन-अपन मोर्चा पर खड़ा भऽकऽ भीष्म पितामहक सब क्यो सहायता प्रदान कएल जाए।

तात्पर्यः भीष्म पितामहक शौर्यक प्रशंसा केला उत्तर दुर्योधन केँ चिन्ता भेलैन जे कही आन योद्धा सब समझे जे हुनका सबक कम महत्व देल जा रहल छैन्ह। तेँ सहज कूटनीतिक ढंग सँ स्थिति संभारैत उपर्युक्त शब्द केँ दोहरा बैत व्यक्त करैत छथि। भीष्म पितामह निःसंदेह महानतम् योद्धा छथि परन्तु आब वृद्ध भऽ चुकला अछि। तेँ सब सैनिक केँ सजग भऽ चारू दिशामे अपन अपन मोर्चा पर अडिग रहवाक जरुरत अछि जाहि सँ शत्रु पक्ष सैन्य न्यूह तोड़ि नहि पाबै। दुर्योधन जानैत छलाह

जे दूनू सेनापति गुरु द्रोण एवं पितामह केँ पाण्डवक प्रति स्नेह छैन्ह। परन्तु युद्ध क्रीड़ामे असहाय द्रौपदी द्वारा न्यायक भीख माँगला पर दूनू श्रेष्ठजन चुप रहि गेल छलाह। तेँ दुर्योधन आश्वस्त छलाह जे एहि दूनू सेनापतिक उपस्थितिमे कौरवक विजय निश्चित अछि।

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंख दध्मौ प्रतापवान्॥१२॥

तस्य– ओकर; **सञ्जयन्**– बढ़बैत; **हर्षम्**– हर्ष; **कुरु वृद्धः**– कुरु वंशक वयोवृद्ध (भीष्म); **पितामहः**– पितामह, बाबा; **सिंह नादम्**– सिंहक जकाँ गर्जना; **विनद्य**– गरजक; **उच्चैः**– उच्च स्वर सँ; **शंखम्**– शंख; **दध्मौ**– बजेलक; **प्रतापवान्**– बलशाली।

तखन करुवंशक वयोवृद्ध परम प्रतापी एवं वृद्ध पितामह (भीष्म) सिंह गर्जना सन ध्वनि कर वाला अपन शंख उच्च स्वर सँ बजेलैन्ह, जाहि सँ दुर्योधन केँ हर्ष भेलैन।

तात्पर्यः कुरुवंशक वयोवृद्ध भीष्म पितामह अपन पौत्र दुर्योधनक मनोभाव जानि गेल छलाह तेँ दयावश हुनका प्रसन्न करै हेतु अत्यन्त उच्च स्वरमे अपन शंख पितामह बजेलैन्ह जे हुनक सिंहक समान स्थितिक अनुरुप छल। अप्रत्यक्ष रुप सँ शंखक द्वारा प्रतीकात्मक ढंग सँ ओ अपन हताश पौत्र दुर्योधन केँ बता देलखिन जे युद्धमे विजयक आशा नहि अछि, कारण दोसर पक्ष पाण्डवक तरफ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण छथि। तथापि युद्धक मार्गदर्शन करब हुनकर कर्तव्य छलनि तेँ एहि सम्बधमे कोनो कसर नहि रखता। दुर्योधन भगवान् श्रीकृष्णक चमत्कार सँ प्रायः अनभिज्ञ छथि। अधर्म कतबो बलशाली हैत ओकर पराजय धर्मक समझ निश्चित अछि। प्रतापवान भीष्म पितामह अधर्मक संग छथि। तेँ विजयक आशा नहि करैत छथि।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥१३॥

ततः– तत्पश्चात्; **शंखाः**– शंख; **च**– भी; **भेर्यः**– पैघ पैघ ढ़ोल नगाड़; **च**– तथा; **पणव आनक**– ढ़ोल एवं मृदंग; **गोमुखा**– शृंग; **सहसा**– अचानक; **एव**– निश्चय; **अभ्यहन्यन्त**– एक संग बजैल गेल; **सः**– ओ;

शब्दः– समवेत स्वर; **तुमुलः**– कोलाहलपूर्ण; **अभवत्**– भेल।

तत्पश्चात् शंख, नगाड़, विगुल, तुरही एवं सींग अचानक एके संग बाजि उठल। ओ समवेत स्वर अत्यन्त कोलाहलपूर्ण छल।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः॥१४॥

ततः– तत्पश्चात्; **श्वेतैः**– श्वेत; **हयैः**– घोड़ा सँ; **युक्तं**– युक्त; **महति**– विशाल; **स्यन्दने**– रथ मे; **स्थितो**– आसीन; **माधवः**– कृष्ण (लक्ष्मीपति); **पाण्डवः**– अर्जुन (पाण्डुपुत्र); **च**– तथा; **एव**– निश्चय ही; **दिव्यौ**– दिव्य; **शंखौ**– शंख; **प्रदध्मतुः**– बजौलनि।

दोसर तरफ सँ घोड़ा द्वारा खींचल जायबला विशाल रथ पर आसीन कृष्ण एव अर्जुन अपन अपन शंख बजौलैन्ह।

तात्पर्यः दिव्य शंखक नाद सँ सूचित भऽ रहल छल जे विजय पाण्डवक पक्षमे हैत। कारण भगवान् कृष्ण अर्जुनक संग रथ पर विराजमान छथि। जतय कृष्ण ओतय श्री लक्ष्मी। रथ अर्जुन केँ अग्नि देवता द्वारा प्रदत्त छनि। ई सूचित करैत छल जे तीनूलोकमे जतए कतौ ई रथ जेतै, विजय ओतए निश्चित अछि।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंख भीमकर्मा वृकोदरः॥१५॥

पाञ्चजन्यं– पाञ्चजन्य नामक; **हृषीकेशः**– हृषीकेश (कृष्ण जे भक्तक इन्द्रिय केँ निर्देश करै छथि); **देवदत्तम्**– देवदत्त नामक शंख; **धनञ्जयः**– धनंजय (अर्जुन– धन केँ जीतै वाला); **पौण्ड्रं**– पौण्ड्र नामक शंख; **दध्मौ**– बजेलक; **महाशंखम्**– भीषरा शंख; **भीमकर्मा**– अतिमानवीय कर्म करै वाला; **वृक उदरः**– भीम (अतिभोजी)।

भगवान् कृष्ण अपन पाँचजन्य शंख बजौलनि। अर्जुन अपन देवदत्त शंख तथा अतिभोजी एवं अतिमानवीय कार्य केनिहार भीम अपन पौण्ड्र नामक भयंकर शंख बजौलनि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे भगवान् कृष्ण केँ हृषीकेश कहल गेलनि अछि। कारण ओ समस्त इन्द्रियक स्वामी छथि। भगवान् समस्त जीवक

हृदयमे स्थित भऽकऽ ओकर इन्द्रिय सब केँ निर्देश दैत छथिन्ह। एतय कुरुक्षेत्रक युद्धभूमिमे भगवान् कृष्ण अर्जुनक दिव्य इन्द्रियक निर्देशन करैत छथिन्ह तेँ भगवान् केँ हृषीकेश कहल गेलहि अछि। भगवानक विविध कार्यानुसार हुनक भिन्न-भिन्न नाम छैन्ह। जेना मधुसूदन (मधु नामक असुर केँ मारै वाला), गोविन्द (गाय एवं इन्द्रिय केँ आनन्द देमैवाला), वासुदेव, देवकीनन्दन, यशोदा नन्दन, पार्थसारथी आदि। एहि श्लोकमे अर्जुन केँ धनंजय कहल गेलन्हि अछि, कारण बड़ भाई युधिष्ठिर केँ विभिन्न यज्ञ सम्पन्न करेवामे धनक आवश्यकताक पूर्ति ई केने छलथिन। भीम केँ वृकोदर कहल गेलनि अछि, कारण अतिभोजी भेलाक कारण अतिमानवीय कार्य करयमे सक्षम छथि, पाण्डवक तरफ परम निर्देशक कृष्ण छथि। विपक्षमे एहन किछु नहि छल। तेँ युद्धस्थलमे शंखक ध्वनि विपक्षक पराजयक संदेश दऽ रहल छल।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥१६॥
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥१७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥१८॥

अनन्त विजयम्– अनन्त विजय नामक शंख; **राजा**– राजा; **कुन्तीपुत्रः**– कुन्तीक पुत्र; **युधिष्ठिरः**– युधिष्ठिर; **नकुलः**– नकुल; **सहदेवः**– सहदेव; **च**– तथा; **सुघोष मणिपुष्पकौ**– सुघोष एवं मणिपुष्पक नामक शंख; **काश्यः**– काशी (वाराणसी)क राजा; **च**– तथा; **परम ईषु आसः**– महान धर्नुधर; **शिखण्डी**– शिखण्डी; **च**– भी; **महारथः**– हजारो सँ अकेले लड़ै वाला; **धृष्टद्युम्नः**– धृष्टद्युम्न (राजा द्रुपदक पुत्र); **विराटः**– विराट (ओ राजा जे पाण्डव केँ अज्ञातवासक समय आश्रय देने छलथिन्ह); **सात्यकिः**– सात्यकि; **अपराजितः**– विजय; **द्रुपदः**– द्रुपद पंचालक राजा; **द्रौपदेयाः**– द्रौपदीक पुत्र सब; **च**– भी; **सर्वशः**– सब; **पृथवीपते**– हे राजा; **सौभद्रः**– सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु; **च**– भी; **महाबाहुः**– विशाल भुजावला; **शंखान्**– शंख; **दध्मुः**– बजौलनि; **पृथक्-पृथक्**– अलग-अलग।

हे राजन्! कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अपन अनन्त विजय नामक शंख

बजौलनि एवं नकुल आ सहदेव सुघोष एवं मणिपुष्पक नामक शंख बजोलनि। महान धर्नुधर काशीराज, परमयोद्धा शिखंडी, धृष्टद्युम्न, विराट, अजेय सात्यकि, द्रुपद, द्रौपदीक पुत्र एवं सुभद्राक महाबाहु पुत्र सब क्यो अपन-अपन शंख बजौलनि।

तात्पर्यः संजय धृतराष्ट्र केँ अत्यन्त चतुराई सँ अवगत करा रहल छलखिन जे पाण्डव केँ धोखा दऽ राज्य सिंहासन पर अपन पुत्र केँ आसीन करबैक अविवेकपूर्ण नीति श्लाघनीय नहि भेल। सूचित भऽ रहल छल जे पूर्ण कुरुवंश एहि महायुद्धमे समाप्त भऽ जाएत। भीष्म पितामह सँ लक विश्वक अनेक देशक राजा समेत उपस्थित सब लोगक विनाश निश्चित छल। एहि सब दुर्घटना, राजा धृतराष्ट्रक कुनीतिक कारण हुअ जा रहल छल।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलोऽभ्यनुनादयन्॥१९॥

सः- ओ; **घोष**- शब्द; **धार्तराष्ट्राणाम्**- धृतराष्ट्रक पुत्रक; **हृदयानि**- हृदय सब कै; **व्यदारयत्**- विदीर्णक देलकै; **नभः**- आकाश; **च**- भी; **पृथिवीम्**- पृथ्वीतल केँ; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **तुमुलः**- कोलाहलपूर्ण; **अभ्यनुनादयन्**- प्रतिध्वनित करैत; शब्दायमान करैत।

एहि विभिन्न शंखक ध्वनि कोलाहलपूर्ण भऽ गेल जे आकाश एवं पृथ्वी केँ प्रतिध्वनित करैत धृतराष्ट्रक पुत्रक हृदय विदीर्ण कर लागल।

तात्पर्यः जखन भीष्म एवं दुर्योधन पक्षक अन्य महारथी अपन अपन शंख बजेलनि तखन पाण्डवक हृदय विदीर्ण नहि भेलनि कारण पाण्डव केँ भगवान् श्रीकृष्णमे विश्वास छैन्ह जे विजय श्री हमरा पक्षमे अछि। परमेश्वरक शरण ग्रहण केनहार केँ कोनो भय नहि होइत छै भले ही ओ कतबो विपत्तिमे रहै। एहि विशिष्ट श्लोकमे कहल गेलै अछि जे पाण्डव पक्षक शंखनाद सँ धृतराष्ट्रक पुत्रक हृदय विदिर्ण भऽ गेलैन।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः।
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते॥२०॥

अथ– तत्पश्चात्; **व्यवस्थितान्**– स्थित; **दृष्ट्वा**– देखक; **धार्तराष्ट्रान्**– धृतराष्ट्रक पुत्रक; **कपिध्वजः**– जकरा पताका पर हुनमान अंकित छलै; **प्रवृत्ते**– कटिवद्ध; **शस्त्र सम्पाते**– वाण चलेबाक लेल; **धनुः**– धनुष; **उद्यम्य**– ग्रहण कऽ, उठा कऽ; **पाण्डवः**– पाण्डु पुत्र(अर्जुन); **हृषीकेशम्**– भगवान् कृष्ण सँ; **तदा**– ओहि समय; **वाक्यम्**– वचन; **इदम्**– ई; **आह**– कहलैन्ह; **महीपते**– हे राजा।

ओहि समय हनुमान सँ अंकित ध्वजा लागल रथ पर आसीन पाण्डुपुत्र अर्जुन अपन धनुष उठाक तीर चलब लेल उद्यत भेला। हे राजन्! धृतराष्ट्रक पुत्र केँ व्यूहमे खड़ा देखक अर्जुन श्रीकृष्ण सँ ई वचन कहलखिन।

तात्पर्यः युद्ध प्रारम्भ हुअबला छल। उपयुक्त कथन सँ ज्ञात होइत अछि जे पाण्डवक सेनाक अप्रत्यासित व्यवस्था सँ धृतराष्ट्रक पुत्र बहुत किछु निरुत्साहित छलाह कारण युद्धभूमिमे पाण्डवक निर्देशन भगवान् श्रीकृष्णक आदेशानुसार भऽ रहल छलै। अर्जुनक ध्वजा पर हनुमान चिन्ह विजयक सूचक छल। हनुमान जीक राम आ रावणक युद्धमे विशेष भूमिका छलैन हनुमानक मदद सँ राम विजयी भेल छलाह। भगवान् कृष्ण साक्षात् राम छथि। जतए राम ओतए हनुमान निश्चित अछि। तेँ अर्जुनक रथ पर राम (कृष्ण) आ हनुमान विराजमान छलथिन। तेँ अर्जुन केँ कोनो शत्रुक भय नहि छलैन। एहि प्रकार अर्जुन केँ युद्धक मामलामे सब सत्परामर्श प्राप्त छलैन। एहन सुव्यवस्था भगवान् अपन शाश्वत भक्तक लेल केने छलथिन। तेँ निश्चित विजयक लक्षण स्पष्ट छल।

अर्जुन उवाचः

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।२१॥
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥२२॥

अर्जुन उवाच– अर्जुन कहलखिन; **सेनयोः**– सेनाक; **उभयो**– दूनू; **मध्ये**– बीचमे; **रथम्**– रथ कै; **स्थापय**– कृपया खड़ा कैल जाए; **मे**– हमर; **अच्युत**– हे अत्युत; **यावत्**– जाधरि; **एतान्**– ई सब; **निरीक्षे**– देख सकूँ; **अहं**– हम; **योद्धकामान्**– युद्धक इच्छा राखब बला केँ; **अवस्थितान्**–

युद्धभूमिमे एकत्र; **के:**- ककरा ककरा सँ; **मया**- हमरा द्वारा; **सह**- एक साथ; **योद्धव्यम्**- युद्ध करए केँ छै; **अस्मिन्**- एहि; **रण**- संघर्ष, झगड़ा केँ; **समुद्यमे**- उद्यम या प्रयासमे।

अर्जुन कहलखिन-हे अच्युत! कृपा कऽ हमर रथ दूनू सेनाक बीचमे लऽ चलू, जाहि सँ एतए उपस्थित युद्धक अभिलाषा राखएवला केँ एवं शस्त्रक एहि महान परीक्षामे, जिनका सँ हमरा संघर्ष करबाक अछि हुनका सब केँ देख सकी।

तात्पर्य: श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् छथि। ओ अपन भक्त पर स्नेह देखबैमे कौखन नहि चुकै छथि। अत: अर्जुन हुनका अच्युत कहलथिन अछि। सारथी रुपमे कृष्ण केँ अर्जुनक आज्ञा पालन करब छलनि। एहिमे ओ कोनो संकोच नहि केलखिन। ओ भक्तक सारथी पद स्वीकार केलथि जाहि सँ हुनक परम स्थिति अक्षुण्ण बनल रहै। भगवान् एवं सेवकक सम्बन्ध अत्यन्त मधुर एवं दिव्य होइत अछि। कहल गेलै अछि-भक्त भगवान् केँ पावै लेल जतेक व्याकुल होइत छथि, भगवानों हुनका अपन शरणमे लेवा लेल ओहि सँ कम व्याकुल नहि रहैत छथिन। शुद्ध भक्त अर्जुन सँ सारथीक रुपमे आज्ञा लेवामे हुनका दिव्य आनन्द होइत छलैन। भगवानक शुद्ध भक्त भेलाक कारण अर्जुन केँ अपन बन्धु बान्धव सँ युद्ध करक कोनो इच्छा नहि छलनि, किन्तु दुर्योधन द्वारा शान्तिपूर्ण समझौता अस्वीकार भेला उत्तर पाण्डव केँ युद्धभूमिमे आबए पड़लैन। तेँ अर्जुन अत्यन्त उत्सुक छलाह कि युद्धिभूमिमे के-के अग्रणी व्यक्ति उपस्थित छथि। यद्यपि युद्धभूमिमे शान्ति प्रयासक कोनो प्रश्न नहि उठैत छल तैयो ई देखए चाहैत छलथिन कि ओ सब एहि अवांछित युद्ध पर कोन हद तक तुलल छथि।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागता:।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षव:॥२३॥

योत्स्यमानान्- युद्ध केनहार के; **अवेक्षे**- देखूँ; **अहम्**- हम; **ये**- जे; **एते**- ओ सब; **अत्र**- एत; **समागता:**- एकत्र; **धार्तराष्ट्रस्य**- धृतराष्ट्रक पुत्रक; **दुर्बुद्धे:**- दुर्बुद्धि; **युद्धे**- युद्ध मे; **प्रिय**- मंगल, भला; **चिकीर्षव:**- चाहएवाला।

हमरा ओहि व्यक्ति सब केँ देख दिअ जे एहिठाम धृतराष्ट्रक दुर्बुद्धि-पुत्र (दुर्योधन) केँ प्रसन्न करैक इच्छा सँ लड़ै लेल आयल छथि।

तात्पर्य: ई सर्वविदित छल जे दुर्योधन अपन पिता धृतराष्ट्रक साँठ गाँठ सँ पापपूर्ण योजना बना केँ पाण्डवक राज्य हड़प चाहैत छलथिन। अत: जे समस्त लोग दुर्योधनक पक्ष ग्रहण केने छलाह ओ सब समानधर्मा रहल हेता। तेँ अर्जुन युद्ध प्रारम्भ भेलाक पूर्व ई ज्ञातक लेनाइ चाहैत छलाह जे कोन-कोन लोग सब ओहि पक्षमे छथि। संगहि हुनका सबहक शक्तिक अनुमान लगाबैक दृष्टि सँ देख चाहैत छलाह, यद्यपि हुनका अपन विजयक विश्वास छलैन कारण श्रीकृष्ण हुनका बगलमे विराजमान छलखिन।

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्॥२४॥

संजय उवाच- संजय कहलखिन; **एवम्**- एहि प्रकार; **उक्त**- कहल गेलै; **हृषीकेश**- भगवान् श्रीकृष्ण; **गुडाकेशेन**- अर्जुन द्वारा; **भारत**- हे भरतक वंशज; **सेनयो:**- सेना सबहक; **अभयो:**- दूनू; **मध्ये**- मध्य मे; **स्थापयित्वा**- खड़ा कऽ के; **रथ-उत्तमम्**- ओहि उत्तम रथ के।

संजय कहलखिन- हे भरतवंशी! अर्जुन द्वारा एहि प्रकार संबोधित केला उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण दूनू पक्षक (दल) बीचमे ओहि उत्तम रथ केँ लऽकऽ खड़ा कऽ देलिथिन।

तात्पर्य: एहि श्लोकमे अर्जुन केँ गुड़ाकेश कहल गेलैन अछि। गुड़ाक अर्थ छै निन्द, जे निन्द केँ जीत लैत अछि ओ भेलाह गुड़ाकेश। निन्दक अर्थ अज्ञानो होइत अछि। अर्जुन श्रीकृष्णक मित्रताक कारण निन्द एवं अज्ञान दूनू पर विजय प्राप्तक लेने छथि। भक्तक स्वभाव छै जे ओ अपन आराध्य सँ क्षण भरि भुला नहि सकैत अछि। भगवत्भक्त निरन्तर अपन आराध्यक चिन्तनमे लागल रहैत छथि। अर्जुन कृष्णभावनामृत प्राप्त कऽ चुकला अछि। श्रीकृष्ण अर्जुनक मन्तव्य समझि गेलथिन अछि कारण ओ हृषीकेश छथि। हर जीवक इन्द्रिय एवं मनक निर्देशक छथि। तेँ

भगवान् कृष्ण दूनू सेनाक बीचमे आनि कैँ खड़ाक देलखिन। भगवान् अपन भक्तक लेल कोनो हद तक जा सकै छथि। भक्तक लेल प्रेमक भीख तक माँग लेल तैयार भऽ जाइत छथिन। इन्द्रदेव सँ भगवान् कृष्ण माँग केने छलथिन जे हमरा अर्जुनक प्रति प्रेम बनल रहै।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति॥२५॥

भीष्म- भीष्म पितामह; **द्रोण**- गुरुद्रोण; **प्रमुखतः**- कैँ समक्ष; **सवेषाम्**- सबहक; **च**- भी; **महीक्षितान्**- संसार भरिक राजा; **उवाच**- कहलखिन; **पार्थ**- हे पृथाक पुत्र; **पश्य**- देखू; **एतान्**- हिनका सब कैँ; **समवेतान्**- एकत्रित; **कुरुन्**- कुरु वंशक सदस्य कैँ; **इति**- एहि प्रकार।

भीष्म, द्रोण एवं विश्वक अन्य समस्त राजाक समक्ष भगवान् कहलखिन कि हे पार्थ! एतै एकत्रित सम्पूर्ण कुरु सब कैँ देखू।

तात्पर्यः पार्थ शब्द अर्थात् पृथा या कुन्तीपुत्र अर्जनक लेल प्रयुक्त भेलाक कारण महत्त्वपूर्ण छै। मित्रक रुपमे भगवान् कृष्ण अर्जुन कैँ बता देबए चाहैत छथिन जे चूँकि अर्जुन हुनक पिता वसुदेवक बहिन पृथाक पुत्र छथि तैँ ओ अर्जुनक सारथी बनब स्वीकार केलथिन। किन्तु जखन भगवान् कृष्ण अर्जुन सँ कहैत छथिन्ह जे ''**कुरु सब कैँ देखू**'' एकर अभिप्राय की छलै? अर्जुन ओतै रुकिक कि ओ युद्ध नहि करए चाहैत छलाह? कृष्ण कैँ अपन बुआ पृथाक पुत्र सँ कहियो ई आशा नहि छलैन। एहि प्रकार सँ कृष्ण अपन मित्रक मनःस्थितिक पूर्वसचूना परिहासवश देलथिन अछि।

तत्रापश्यत्स्थितानपार्थः पितृनथ पितामहान।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि॥२६॥

तत्र- ओतए; **अपश्यत्**- देखलखिन; **स्थितान्**- खड़ा; **पार्थ**- पार्थ (कुन्तीपुत्र); **पितृन**- पितरो (चाचा- ताऊ) कैँ; **अथ**- भी; **पितामहान**- पितामह कै; **आचार्यान्**- शिक्षक सब कैँ; **मातुलान्**- मामा सब कैँ; **भ्रातृन्**- बन्धु सब कैँ; **पुत्रान्**- पुत्र सब कैँ; **पौत्रान्**- पौत्र सब कैँ; **सखीन्**- मित्र सब कैँ; **तथा**- आओर; **श्वशुरान्**- ससुर सब कैँ; **सुहृदः**-

शुभचिन्तक सब केँ; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **सेनयोः**– सेना सब कै; **अभयोः**– दूनू पक्षक; **अपि**– सहित।

अर्जुन ओहिठाम दूनू पक्षक सेनाक मध्यमे अपन चाचा, ताऊ, पितामह, गुरु, माता, बन्धु-बान्धव, पुत्र, पौत्र, मित्र, ससुर एवं शुभचिन्तक सब केँ देखलाह।

तात्पर्यः अर्जुन युद्धभूमिमे अपन सब सम्बन्धी देखलाह। ओहि मध्य हुनकर पिताक समकालीन भूरिश्रवा सनक व्यक्ति, भीष्म एवं सोमदत्त सनक पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य सनक गुरु, शकुनी मामा, दुर्योधन सनक भाई, लक्ष्मण सनक पुत्र, अश्वत्थामा, कृतवर्मा सनक मित्र, सम्बन्धी एवं शुभचिन्तक सेना सब केँ देखलाह।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।२७॥

तान्– ओहि सब कै; **समीक्ष्य**– देखक; **सः**– ओ; **कौन्तेयः**– कुन्तीपुत्र; **सर्वान्**– सब प्रकारक; **बन्धून्**– सम्बन्धी सब; **अवस्थितान्**– स्थित; **कृपया**– दयावश; **परया**– अत्यधिक; **आविष्टः**– अभिभूत; **विषीदन्**– शोक करैत; **इदम्**– एहि प्रकार; **अब्रवीत्**– कहलखिन।

जखन कुन्तीपुत्र अर्जुन अपन मित्र एवं सम्बन्धी सब केँ एहि विभिन्न श्रेणीमे देखलखिन तऽ ओ करुणा सँ अभिभूत भऽ गेला आ एहि तरहेँ कहलखिन।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।२८॥

अर्जुन उवाच– अर्जुन कहलखिन; **दृष्ट्वा**– देखक; **इमम्**– एहि सबकै; **स्वजनम्**– सम्बन्धीक; **कृष्ण**– हे कृष्ण; **युयुत्सुम्**– युद्धक इच्छा राखबला; **समुपस्थितम्**– उपस्थित; **सीदन्ति**– काँप रहल; **मम**– हमर; **गात्राणि**– शरीरक अंग; **मुखम्**– मुँह; **च**– भी; **परिशुष्यति**– सूखि रहल अछि।

अर्जुन कहलखिन– हे कृष्ण! एहि प्रकार युद्धक इच्छा राखिनहार अपन मित्र आ सम्बन्धी सबक अपन समक्ष उपस्थित देखि केँ

हमर शरीरक अंग सब काँपि रहल अछि एवं हमर मुँह सुखल जा रहल अछि।

तात्पर्यः जे भगवानक प्रति अविचल भक्ति राखै छथि हुनकामे देवताक सद्गुण भेटै छै, किन्तु जे भगवत्भक्त नै छथि, हुनका पास भौतिक योग्यता होइत छैन्ह जकर कोनो मूल्य नहि अछि। अर्जुन भगवत्भक्त छथि। तेँ देवगुण प्राप्त छैन्ह। दया भाव छैन्ह। विपक्षी दलक सेनाक आसन्न मृत्यु देख ओकरा पर दयाक अनुभव करैत छथि। अपन मित्र सम्बन्धी सबहक लेल करुणा सँ अभिभूत भऽ गेलाह। शरीर काँपए लागलैन। कंठ सूखए लागलैन। ई कोनो दुर्बलताक लक्षण नहि अपितु हुनकर हृदयक कोमलताक कारण छल, जे शुद्ध भक्तक लक्षण अछि।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।२९।।

वेपथुः– शरीरक कम्पन; **च**– भी; **शरीरे**– शरीरमे; **मे**– हमरा; **रोम हर्षः**– रोमांच; **च**– भी; **जायते**– उत्पन्न भऽ रहल अछि; **गाण्डीवम्**– अर्जुनक धुनष गाण्डीव; **स्त्रंसते**– छूट या सरक रहल अछि; **हस्तान्**– हाथ सँ; **त्वक्**– त्वचा; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **परिदह्यते**– जड़ि रहल अछि।

अर्जुन कहि रहल छथिन–हमर सम्पूर्ण शरीर काँपि रहल अछि। हमर रोंगटे ठाड़ भऽ रहल अछि। हमर धनुष गाण्डीव हमरा हाथ सँ सरकि रहल अछि एवं हमर त्वचा जड़ि रहल अछि।

तात्पर्यः शरीरमे दू प्रकारक कम्पन होइत छै आ रोंगटे दू प्रकार सँ खड़ा होइत छै। एहन या तो आध्यात्मिक परमानन्दक समय अथवा भौतिक परिस्थितिमे अत्यन्त भय उत्पन्न होइबला होइत छै। दिव्य साक्षात्कारमे कोनो भय नहि होइत अछि। अर्जुनक जे लक्षण छलैन ओ भौतिक भय यानी जीवनक हानिक कारण छल। ओ एतेक अधीर भऽ गेला जे हुनका हाथ सँ हुनकर विख्यात धनुष–गाण्डीव सरकि रहल छलैन। हुनका त्वचामे जलन भऽ रहल छलैन। ई सब लक्षण देहात्मबुद्धि सँ जन्य अछि।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।३०।।

न– नहि; **च**– भी; **शक्नोमि**– समर्थ छी; **अवस्थातुम्**– खड़ा हुअ

मे; **भ्रमति**– विसरैत; **इव**– सदृश; **च**– तथा; **मे**– हमर; **मनः**– मन; **निमित्तानि**– कारण; **च**– भी; **पश्यामि**– देखै छी; **विपरीतानि**– बिल्कुल उल्टा; **केशव**– हे केशी असुर केँ मारै वाला (कृष्ण)।

हम एतै आओर अधिक खड़ा रहएमे असमर्थ छी। हम अपना केँ बिसरि रहलहुँ अछि आ हमर सिर चकरा रहल अछि। हे कृष्ण! हमरा सिर्फ अमंगलक कारण देखाइ पड़ि रहल अछि।

तात्पर्यः भौतिक वस्तुक प्रति अत्यधिक आसक्तिक कारण ओ मोहमयी स्थितिमे पड़ि गेल छलाह। हुनका युद्धभूमिमे केवल दुखदायी पराजय प्रतीत भऽ रहल छलैन, कारण शत्रु पर विजय पाबिक भी सुखी नहि हेता। जखन मनुष्य केँ अपन आशामे केवल निराशा देखैत अछि तखन ओ सोचैत अछि जे हम एतय कियैक छी? प्रत्येक प्राणी अपन स्वार्थमे रुचि राखैत अछि। ककरो परमात्मामे रुचि नहि होइत छै। मनुष्यक वास्तविक स्वार्थ तऽ भगवानमे निहित अछि। वद्धजीव एकरा बिसरि जाइत अछि, अतः ओकरा भौतिक कष्ट उठाबए पड़ैत छैक।

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे।
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।३१॥

न– न तो; **च**– भी; **श्रेयः**– कल्याण; **अनुपश्यामि**– पहिने सँ देख रहल अछि; **हत्वा**– मारि कै; **स्वजनम्**– अपन सम्बन्धी कै; **आहबे**– युद्ध मे; **न**– न तो; **काङ्क्षे**– आकांक्षा करै छी; **विजयम्**– विजय; **कृष्ण**– हे कृष्ण; **न**– न तो; **च**– भी; **राज्यम्**– राज्य; **सुखानि**– ओकर सुख; **च**– भी।

हे कृष्ण! एहि युद्धमे अपन सम्बन्धी स्वजनक वध सँ न हमरा कोनो अच्छाई दिखाइत अछि न, हम कोनो प्रकारक विजय, राज्य या सुखक इच्छा राखैत छी।

तात्पर्यः कहल गेलै अछि–दू प्रकारक मनुष्य परम शक्तिशाली तथा जाज्वल्यमान सूर्यमण्डलमे प्रवेश करै योग्य होइत अछि। ई छथि एक त क्षत्रिय जे युद्धमे भगवानक आज्ञा सँ मरैत अछि, दोसर संन्यासी जे आध्यात्मिक अनुशीलनमे लागल रहैत छथि। अर्जुन तऽ क्षत्रियक नैतिक धर्म तक भूलि गेलाह। अर्जुन अपन शत्रु केँ मारै सँ विमुख भऽ रहल

छलाह। ओ वन जेबाक निश्चयक लेने छलाह। निराशाक एकान्त जीवन काट चाहै छलाह। क्षत्रिय भेलाक कारण जीवन निर्वाहक हेतु राज्य चाही, अन्य कार्य नहि कऽ सकैत छलाह। राज्य हुनका पास नहि छलनि। युद्ध लड़िक अपन पिताक राज्यक उत्तराधिकारी प्राप्त करी से ओ नहि चाहैत छलाह। युद्ध एकटा अवसर छलै जे बन्धु बान्धब सँ लड़ि केँ अपन पिताक राज्यक उत्तराधिकारी बनी। अतः ओ अपना केँ जंगलमे एकान्तवासक निराशाक एकान्त जीवन बिताबैक योग्य समझै छथि।

किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा।
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।३२।।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।।३३।।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।३४।।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।
निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।३५।।

किम्– कोन लाभ; **नः**– हमरा; **राज्येन**– राज्य सँ; **गोविन्द**– हे कृष्ण; **किम्**– की; **भोगैः**– भोग सँ; **जीवितेन**– जीवित रहला सँ; **वा**– अथवा; **येषाम्**– जकरा; **अर्थ**– लेल; **कांङ्क्षितम्**– इच्छित छी; **नः**– हमरा द्वारा; **राज्यम्**– राज्य; **भोगाः**– भौतिक भोग; **सुखानि**– समस्त सुख; **च**– भी; **ते**– ओ सब; **अवस्थिताः**– स्थिति; **युद्धे**– युद्ध भूमि मे; **प्राणान्**– जीवन केँ; **व्यक्त्वा**– त्यागक; **धनानि**– धन केँ; **च**– भी; **आचार्याः**– गुरुजन; **पितरः**– पितृगण; **पुत्राः**– पुत्रगण; **तथा**– आओर; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी; **पितामहाः**– पितामह; **मातुलाः**– मामा लोग; **श्वशुराः**– श्वसुर; **पौत्राः**– पौत्र; **श्यालाः**– साला सब; **सम्बन्धिनः**– सम्बन्धी; **तथा**– तथा; **एतान्**– ई सब; **न**– कहियो नहि; **हन्तुम्**– मारब; **इच्छामि**– चाहै छी; **घ्नतः**– मरला उत्तर; **अपि**– भी; **मधुसूदन**– हे मधु असुर केँ मारैवाला (कृष्ण); **अपि**– भी; **त्रैलोक्य**– तीनू लोकक; **राजस्य**– राज्यक; **हेतोः**– विनिमय मे; **किम नु**– की कहल जाय; **महीकृते**– पृथ्वीक लेल; **निहत्य**– मारि कऽ; **धार्तराष्ट्रान्**– धृतराष्ट्रक पुत्र सब केँ; **नः**– हमर; **का**– की; **प्रीतिः**– प्रसन्नता; **स्यात्**– हेतै; **जनार्दन**– हे जीवक पालक (कृष्ण)।

हे गोविन्द! हमरा राज्य, सुख अथवा एहि जीवन सँ कोन लाभ। किएक तऽ जाहि सब आदमीक लेल हम राज्य, सुख चाहै छी ओ सब एहि युद्ध भूमिमे खड़ा छथि। हे मधुसूदन! जखन गुरुजन, पितृगण, पुत्रगण, पितामह, मामा, ससुर, पौत्रगण, साला तथा अन्य सब सम्बन्धी अपन धन आ प्राण देब लेल तत्पर छथि एवं हमरा समक्ष खड़ा छथि, हुनका सब केँ हम किएक मारियै, भले ही ओ सब हमरा मारि देथि। हे जनार्दन-जीवक पालनकर्ता, हम हिनका सब सँ लड़ै लेल तैयार नहि छी भले ही हमरा तीनू लोक किएक ने प्राप्त भऽ जाए, एहि पृथ्वीक तऽ बाते छोड़ि दिअ। भला धृतराष्ट्रक पुत्र केँ मारिक हमरा केहन प्रसन्नता हैत।

तात्पर्यः अर्जुन भगवान् कृष्ण केँ गोविन्द कहिक सम्बोधित करैत छथिन, कारण गोविन्दक कृपा सँ जीवक सब इच्छा पूर्ण भऽ जाइत अछि। हर व्यक्ति अपन वैभवक प्रदर्शन अपन मित्र एवं स्वजनक समक्ष कर चाहैत अछि। अर्जुन केँ भय सता रहलैन अछि हुनकर मित्र एवं स्वजन युद्धभूमिमे मारल जेतैन तखन ओ विजयक पश्चात् अपन वैभवक उपयोग हुनका सबहक संग नहि कऽ सकैत छथि। भौतिक जीवनक ई सामान्य लेखा जोखा अछि, परन्तु आध्यात्मिक जीवन एहि सँ सर्वथा भिन्न अछि। भगवत्भक्त दुष्टजन सँ प्रतिशोध नहि लेबए चाहैत छथि, किन्तु भगवान् दुष्ट द्वारा भक्तक उत्पीड़न सहन नहि करैत छथि। अतः भगवान् एहि दुराचारी सब हक बध कर लेल उद्यत छथि, यद्यपि अर्जुन हुनका सब केँ क्षमा करए चाहैत छथि। ओहि समय अर्जुन केँ ई पता नहि छलैन कि भगवान् कृष्ण हुनका सब केँ युद्धभूमि एला सँ पूर्वे मारि चुकल छथि, आब हुनका सिर्फ निमित्त मात्र बनक छैन्ह।

पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्सबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव॥३६॥

पापम्- पाप; **एव**- निश्चय ही; **आश्रयेत्**- लागत; **अस्मान्**- हमरा; **हत्वा**- मारिक; **एतान्**- हिनका सब; **आततायिनः**- आततायी सब केँ; **तस्मात्**- अतः; **न**- कहियो नहि; **अर्हाः**- योग्य; **वयम्**- हम सब; **हन्तुम्**- मार लेल; **धार्तराष्ट्रान्**- धृतराष्ट्रक पुत्र केँ; **सबान्धवान्**- हुनकर

मित्रक संग; **स्वजनम्**- कुटुम्ब सब केँ; **हि**- निश्चय; **कथम्**- कोना; **हत्वा**- मारि केँ; **सुखिनः**- सुखी; **स्याम**- हम हैव; **माधव**- हे लक्ष्मीपति कृष्ण।

यदि हम एहि तरहक आततायी सबहक वध करैत छी तऽ हमरा पाप चढ़त, अतः ई उचित नहि हैत जे हम धृतराष्ट्रक पुत्र एवं हुनकर मित्रगणक वध करी। हे लक्ष्मीपति कृष्ण! एहि सँ हमरा की लाभ हैत एवं अपन सम्बन्धी सब केँ मारि कऽ कोन प्रकारक सुख प्राप्त हैत?

तात्पर्यः वैदिक आदेशानुसार आततायी छः प्रकारक होइत अछि। (१) विष दिअ वाला (२) घरमे अग्नि लगाव वाला (३) घातक हथियार सँ आक्रमण करै वाला (४) धन लूटै वाला (५) दोसरक भूमि हड़पै वाला (६) पर स्त्रीक हरण करै वाला। एहि तरहक आततायीक वध तुरतक देवाक चाही कारण कहल गेलै अछि जे एहिमे कोनो पाप नहि लागैत अछि। अर्जुन सामान्य व्यक्ति नहि छथि। स्वभाव सँ साधु छथि। साधुवत् व्यवहार कर चाहै छथि। अर्जुन विचारैत छथि, राजनीतिक कारणवश स्वजनक वध केलाक अपेक्षा धर्म आ सदाचारक दृष्टि सँ हुनका सब केँ क्षमाक देव श्रेयस्कर हेतैक। अतः क्षणिक शारीरिक सुखक लेल एहि तरह वध करब लाभप्रद नहि हेतैक। ओ लक्ष्मीपति कृष्ण केँ सम्बोधित कऽ बतबय चाहैत छथि जे एहन काज करबा लेल प्रेरित नहि कएल जाए जाहि सँ ककरो अनिष्ट होए। भगवान् ककरो अनिष्ट नहि चाहैत छथिन खास कऽ अपन भक्तक, कदापि नहि।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्॥३७॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन॥३८॥

यदि- यदि; **अपि**- भी; **एते**- ये; **न**- नहि; **पश्यन्ति**- देखै छथि; **लोभ**- लोभ सँ; **उपहत**- अभिभूत; **चेतसः**- चित्त वाला; **कुलक्षय**- कुल नाश; **कृतम्**- कैल गेल; **दोषम्**- दोष केँ; **मित्र द्रोहे**- मित्र सँ विरोध करै मे; **च**- भी; **पातकम्**- पाप केँ; **कथम्**- किएक; **न**- नहि; **ज्ञेयम्**-

जानबाक चाही; **अस्माभिः**– हमरा द्वारा; **पापात्**– पाप सँ; **अस्मान्**– एहि; **निवर्तितुम्**– बन्द करबाक लेल; **कुलक्षय**– वंशक नाश; **कृतम्**– भऽ गेला पर; **दोषम्**– अपराध; **प्रपश्यद्भिः**– दर्शकक द्वारा; **जनार्दन**– हे कृष्ण।

हे जर्नादन! यद्यपि लोभ सँ अभिभूत चित्त वला ई लोग सब अपने परिवारक मारै या अपन मित्रगण सँ द्रोह करएमे कोनो अपराध (दोष) नहि देखैत छथि, लेकिन हम सब जे परिवारक विनष्ट करमे अपराध देख सकैत छी, एहन पापकर्ममे किएक प्रवृत्त होइ?

तात्पर्यः अर्जुन विचार कैलथि जे भऽ सकैत अछि कि दोसर पक्ष एहि ललकारक परिणामक प्रति अनभिज्ञ हो। लेकिन अर्जुन केँ तऽ दुष्परिणाम दिखाई पड़ि रहल छलनि, अतः ओ एहि ललकार केँ स्वीकार नहि कऽ सकताह। यदि परिणाम नीक होइ तऽ कर्त्तव्य वस्तुतः पालनीय अछि, किन्तु यदि परिणाम विपरीत हो तऽ हम एकरा लेल बाध्य नहि हैव। एहि पक्ष–विपक्ष पर विचारक अर्जुन युद्ध नहि करैक निश्चय करैत छथि।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥३९॥

कुलक्षये– कुलक नाश भेला पर; **प्रणश्यन्ति**– विनष्ट भऽ जाइत छै; **कुलधर्माः**– पारिवारिक परम्परा; **सनातनाः**– शाश्वत; **धर्म**– धर्म; **नष्टे**– नष्ट भेला पर; **कुलम्**– कुल कै; **कृत्सनम्**– सम्पूर्ण; **अधर्मः**– अधर्म; **अभिभवति**– बदलि दै छै; **उतः**– कहल गेलै अछि।

कुलक नाश भेला पर सनातन कुल परम्परा नष्ट भऽ जाइत छै एवं एहि तरहेँ शेष कुल अधर्ममे प्रवृत्त भऽ जाइत छैक।

तात्पर्यः परिवारमे जन्म सँ मृत्यु तक सब संस्कारक लेल वयोवृद्ध लोग उत्तरदायित्व होइत अछि। किन्तु एहि वयोवृद्ध सबहक मृत्युक पश्चात् संस्कार सम्बन्धी पारिवारिक परम्परा रुकि जाइत छै। परिवारक जे तरुण सदस्य बचैत छथि ओ अधर्ममय व्यसनमे प्रवृत्त भेला सँ मुक्ति लाभ सँ वंचित रहि सकैत छथि। अतः कोनो कारणवश परिवारक वयोवृद्धक वध नहि हेबाक चाही।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः॥४०॥

अधर्म– अधर्म; **अभिभवात्**– प्रमुख भेलाक कारण; **कृष्ण**– हे कृष्ण; **प्रदुष्यन्ति**– दूषित भऽ जाइत छै; **कुलस्त्रियः**– कुलक स्त्री सब; **स्त्रीषु**– स्त्रीत्वक; **दुष्टासु**– दुषित भेला सँ; **वार्ष्णेय**– हे वृष्णिवंशी; **जायते**– उत्पन्न होइत छै; **वर्णसङ्करः**– अवांछित सन्तान।

हे कृष्ण! जखन कुलमे अधर्म प्रमुख भऽ जाइत छै तखन कुलक स्त्री सब दूषित भऽ जाइत अछि एवं स्त्रीत्वक पतन सँ हे वृष्णिवंशी! अवांछित सन्तान उत्पन्न होइत अछि।

तात्पर्यः जीवनमे शान्ति, सुख एवं आध्यात्मिक उन्नतिक प्रमुख सिद्धान्त मानव समाजमे नीक संतान भेनाई आवश्यक अछि। एहन संतान समाजमे स्त्रीक सतीत्व एवं हुनकर निष्ठा पर निर्भर करैत अछि। अधर्मक कारण स्त्री सब पतनोन्मुखी भऽ जाइत अछि। व्यभिचार केँ प्रश्रय भेटैत छै जाहि सँ अवांछित सन्तान उत्पन्न हेतै। निठल्ला व्यक्तियो समाजमे व्यभिचारक प्रेरित करत, एवं एहि तरहेँ अवांछित सन्तानक बाढ़ि आबि जेतै जाहि सँ मानव समाज पर युद्ध एवं महामारीक संकट आबि जेतै।

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥४१॥

सङ्करः– एहन अवांछित बच्चा; **नरकाय**– नारकीय जीवनक लेल; **एव**– निश्चय ही; **कुल ध्नानाम्**– कुलक वध कर बाला कै; **कुलस्य**– कुलक; **च**– भी; **पतन्ति**– गिर जाइत छै; **पितरः**– पितृगण; **हि**– निश्चय ही; **एषाम्**– हिनका; **लुप्त**– समाप्त; **पिण्ड**– पिण्ड अर्पणक; **उदक**– तथा जलक; **क्रिया**– कृत्य।

अवांछित सन्तानक वृद्धि सँ निश्चय ही परिवारक लेल एवं पारिवारिक परम्पराक बिनष्ट कर बलाक लेल नारकीय जीवन उत्पन्न होइत छै। एहन पतित कुलक पितर लोग (पुरखा) गिर जाइत छथि किएक तऽ हुनका सब केँ जल एवं पिण्ड दान देवाक क्रिया समाप्त भऽ जाइत अछि।

तात्पर्यः सकाम कर्मक विधिविधानक अनुसार कुलक पितर सब केँ समय-समय पर जल तथा पिण्डदान देवाक चाही। कहियो-कहियो

पितरगण विविध प्रकारक पापकर्म सँ ग्रस्त भऽ जाइत छथि एवं कौखन हुनकामे सँ थोड़ेक केँ स्थूल शरीर प्राप्त नहि भेलाक कारण हुनका प्रेतक रुपमे शूक्ष्म शरीर धारणक लेल बाध्य हुअ पड़ैत छैन्ह। अतः जखन वंशज द्वारा पितरगण केँ प्रसाद अर्पित कैल जाइत छैक त हुनका प्रेतयोनि अथवा अन्य प्रकारक सहायता पहुँचेनाय कुल-परम्परा छियै। जे व्यक्ति भक्तिक जीवन यापन नहि करैत छथि, हुनका एहि तरहक अनुष्ठान कर पड़ै छैन। केवल भगवत्भक्त अपन सैकड़ों, हजारों पितर केँ एहि संकट सँ उबारि सकैत छथि।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥४२॥

दोषैः- एहि तरहक दोष सँ; **एतैः**- ई सब; **कुलघ्नानाम्**- परिवार नष्ट करैवालाक; **वर्णसङ्कर**- अवांछित सन्तानक; **कारकैः**- कारण सँ; **उत्साद्यन्ते**- नष्ट भऽ जाइत छै; **जाति धर्माः**- सामुदायिक योजना; **कुलधर्माः**- पारिवारिक परम्परा; **च**- भी; **शाश्वताः**- सनातन।

जे व्यक्ति कुल-परम्परा केँ विनष्ट करैत छथि ओ एहि तरहक अवांक्षित सन्तानक जन्म दैत छथि, हुनके दुष्कर्म सँ समस्त प्रकारक सामुदायिक योजना एवं पारिवारिक कल्याण कार्य विनष्ट भऽ जाइत अछि।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥४३॥

उत्सन्न- विनष्ट; **कुलधर्माणाम्**- पारिवारिक परम्परा वाला; **मनुष्याणाम्**- मनुष्यक; **जनार्दन**- हे कृष्ण; **नरके**- नरक मे; **नियतम्**- सदैव; **वासः**- निवास; **भवति**- होइत छै; **इति**- एहि प्रकार; **अनुशुश्रुम**- गुरु परम्परा सँ हम सुनलियै अछि।

हे प्रजापालक कृष्ण! हम गुरु-परम्परा सँ सुनलियै अछि, जे लोग कुलधर्मक विनाश करैत छथि ओ सदैव नरकमे बास करैत छथि।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥४४॥

अहो– ओह; **बत**– कतेक आश्चर्य; **महत्**– महान; **पापम्**– पाप कर्म; **कर्तुम्**– करक लेल; **व्यवसिता**– निश्चय कैल गेलै; **वयम्**– हम; **यत्**– किएक तऽ; **राज्य सुख लोभेन**– राज्य सुखक लोभ मे आवि कै; **हन्तुम्**– मारै लेल; **स्वजनम्**– अपन सम्बन्धी कै; **उद्यताः**– तत्पर।

ओह! कतेक आश्चर्यक बात छियै जे हम सब जघन्य पाप कर्म करक लेल उद्यत भऽ रहल छी। राज्य सुख भोगक इच्छा सँ प्रेरित भऽकऽ हम अपने ही सम्बन्धी सब केँ मारैक लेल तुलल छी।

तात्पर्यः स्वार्थक वशीभूत भऽकऽ मनुष्य अपन सगा भाई, बाप या माँक वध सनक पापकर्ममे प्रवृत्त भऽ सकैत अछि। विश्वक इतिहासमे एहि तरहक अनेक उदाहरण भेटै अछि। परन्तु भगवानक साधु भक्त भेलाक कारण अर्जुन सदाचारक प्रति जागरुक छथि। अतः ओ एहि तरहक कार्य सँ बचैक प्रयत्न करैत छथि।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥४५॥

यदि– यदि; **माम्**– हमरा; **अप्रतीकारम्**– प्रतिरोध नै केलाक कारण; **अशस्त्रम्**– बिना हथियार केँ; **शस्त्र पाणयः**– शस्त्रधारी; **धार्तराष्ट्राः**– धृतराष्ट्रक पुत्र; **रणे**– युद्धभूमि मे; **हन्युः**– मारै; **तत्**– ओ; **मे**– हमरा लेल; **क्षेमतरम्**– श्रेयस्कर; **भवेत्**– हैत।

यदि शस्त्रधारी धृतराष्ट्रक पुत्र हमरा निहत्था एवं रणभूमिमे प्रतिरोध नहि करै बला केँ मारै, तऽ ई हमरा लेल श्रेयस्कर हैत।

तात्पर्यः क्षत्रीयक युद्ध नियमक अनुसार, ई प्रथा अछि जे निहत्था तथा विमुख शत्रु पर आक्रमण नहि कएल जाइत छै। अर्जुन निश्चय केने छलाह कि भले ही शत्रु आक्रमणक दिअ हम युद्ध नहि करब एहनो विषम अवस्थामे।

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥४६॥

संजय उवाच– संजय कहलखिन; **एवम्**– एहि प्रकार; **उक्त्वा**– कहिक;

अर्जुनः- अर्जुन; **संख्ये**- युद्धभूमि मे; **रथ**- रथक; **उपस्थ**- आसन पर; **उपाविशत्**- पुनः बैठ गेलाह; **विसृत्य**- एक ओर राखि कऽ; **सशरम्**- वाण सहित; **चापम्**- धनुष केँ; **संविग्न**- संतप्त, उद्विग्न; **मानसः**- मनक भीतर।

संजय कहलखिन-युद्धभूमिमे एहि प्रकार कहि कऽ अर्जुन अपन धनुष-वाण एक तरफ राखि देलथि आओर शोक संतप्त चित्त सँ रथक आसन पर बैसि गेलाह।

तात्पर्यः अपन शत्रुक स्थितिक अवलोकन करै समय अर्जुन रथ पर खड़ा भऽ गेल छलाह, किन्तु ओ शोकमे एतेक संतप्त भऽ उठलाह कि अपन धनुष-वाण एक तरफ राखि रथक आसन पर पुनः बैठ गेलाह। एहन दयालु तथा कोमल हृदय व्यक्ति, जे भगवानक सेवामे सदैव रत हो, आत्मज्ञान प्राप्त करै योग्य छथि।

कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलमे सैन्यनिरीक्षणक संक्षिप्त विवरण

धृतराष्ट्र पुछलखिन-हे संजय! धर्मक क्षेत्र कुरुक्षेत्रमे युद्धक इच्छासँ एकत्रित भेल हमर आ पाण्डुक पुत्र सब की केलक? संजय कहलखिन-पाण्डवक सेनाक व्यूहित देख कऽ दुर्योधन आचार्य द्रोणक समीप जा कऽ कहए लागलथि-हे आचार्य! देखियौ अहाँक शिष्य बुद्धिमान द्रुपद पुत्र पाण्डवक विशाल सेनाक केहन रचना कएलन्हि अछि। एहि सेना मध्य अर्जुन, भीम सनक पैघ-पैघ धनुर्धारी, वीर सम्राट महारथी द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान बलवान, काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज, नरमे श्रेष्ठ शैव्य, पराक्रमी युधामन्यु, बलवान उत्तमौजा, अभिमन्यु एवं द्रौपदीक पुत्र सब केँ सब महारथी छथि। अहाँक स्मरणार्थ आब हम अपन सेनाक प्रधान सेनापति सबहक नाम बताबै छी। भीष्म, कर्ण, युद्ध विजयी कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्तक पुत्र, भूरिश्रवा एवं बहुत शूरवीर प्राण देबाक लेल उद्धत छथि। ई लोग शस्त्र चलाबैमे अति निपुण छथि एवम् सब युद्ध विद्यामे प्रवीण छथि। हमरा सेनाक रक्षक भीष्म छथि, जिनका अपरिमित बल छैन्ह। दोसर पक्षक रक्षक भीम अछि जकरा ओहि अनुपातमे कम बल छैन। आब सबकियो अपन-अपन मोर्चा पर सावधान रहि कऽ सेनापतिक रक्षा कएल जाउ। भीष्म पितामह

दुर्योधन केँ प्रसन्न करैत ऊँच स्वर सँ गरजैत शंख बजौलन्हि फेर ओतए चारु कात शंख, नगाड़ा, ढोल, गौमुखादि अनेक बाजा बाजए लागल, जकर भयंकर शब्द भेलै। सफेद घोड़ा सँ युक्त रथ पर स्थित माधव (श्री कृष्ण) एवं पाण्डव अर्जुन दूनू दिव्य शंख बजौलन्हि। श्रीकृष्ण पंचजन्य, अर्जुन देवदत्त नामक शंख केँ एवं भीषण कर्म करएवला भीम पौण्ड्र नामक बहुत भारी शंख बजौलन्हि। कुंतीपुत्र राजा युधिष्ठिर अनन्त विजय, नकुल सुधोष आ सहदेव मणि पुष्पक एवं काशिराज, शिखंडी, धृष्टद्युम्न, विराट अपराजित सात्यकी, राजा, द्रुपद, द्रौपदीक पाँचों पुत्र, महाबाहु अभिमन्यु ई सब वीर योद्धा अपन अपन शंख बजौलनि। ओहि शंखक भारी शब्द सँ आकाश एवं पृथ्वी गूँज उठल, धृतराष्ट्रक पुत्र सबहक हृदय काँपि उठलै। राजन्! अर्जुन कौरव केँ युद्धक लेल प्रस्तुत देखक धनुष उठा कऽ श्रीकृष्ण सँ कहलखिन हे अच्युत! हमर रथ दूनू सेनाक मध्य ठाढ़ करु, जाहि सँ हम युद्ध करए बला सब केँ देख सकी कि एहि रणभूमिमे हमरा ककरा सब सँ युद्ध करए पड़त। दुर्बुद्धि दुर्योधनक मित्रगण जे एकत्रित भेल अछि ओकरा देख सकी।

संजय कहलखिन हे राजन्! अर्जुनक बात सुनि कऽ श्रीकृष्ण भीम, द्रोण आदि वीरक समक्ष उत्तम रथ केँ खड़ा कऽ कहलथिन हे वीर! युद्धक लेल उद्यत एहि कौरव सब केँ देख लिअ। अर्जुन चाचा, बाबा, गुरु, मामा, भाई, पुत्र, श्वसुर एवं स्वजन सब केँ शस्त्र सँ सुसज्जित खड़ा देखलाह। दूनू सेनामे अपने सब बन्धु–बान्धव केँ खड़ा देखि परम दयाद्र भऽ गेला। अत्यन्त खेदक साथ कहलथिन हे कृष्ण! युद्धक इच्छा सँ आएल अपन बन्धु सब केँ देख हमर अंग ढ़ीला पड़ि गेल। कंठ सुखा रहल अछि। हमर शरीर निढ़ाल भऽ रहल अछि। रोमांच खड़ा भऽ रहल अछि। गाण्डीव हाथ सँ सरकि रहल अछि। त्वचा जड़ि रहल अछि। हे केशव! एतए ठाढ़ रहबाक सामर्थ्य नहि अछि। मन चक्कर खा रहल अछि। संग्राममे स्वजनक वधक केँ कोनो लाभ नहि हैत। हे कृष्ण! हमरा जीत, राज्य, सुख नहि चाही। हे प्रभु! हमरा राज्य, भोग एवं जीवन सँ कोन काम हैत? ओ सब एहि युद्धमे प्राण आ धनक ममता छोड़ि मरै लेल तैयार छथि। पितामह, आचार्य, पिता, पुत्र, मामा, श्वसुर ई सब हमरा मारता तइयो हमरा हिनका सब केँ मारैक इच्छा नहि हैत, हे जनार्दन! धृतराष्ट्रक पुत्र केँ मारिक हमरा की भला हैत? एहि

आततायी सबक वध केला सँ पाप हैत। हे माधव! स्वजन केँ मारि कऽ कि हम सुखी रहि सकब? ई सब लोभक वशीभूत छथि। कुलक नाश एवं मित्र द्रोह करएमे पाप नहि देखै छथि। धर्म नाश भेला पर कुलमे पापक वृद्धि हेतै। हे कृष्ण! पाप सँ स्त्री सब व्याभिचारिणी होइत छै जाहि सँ वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होइत अछि वर्णसंकर कुल केँ नरक पहुँचा दैत छै। श्राद्ध, तर्पणादि बन्द भऽ जाइत अछि। हे जनार्दन! हम हमेशा सुनलियै अछि कुल धर्म नष्ट भेला पर नरकमे बास होइत छैक।

जे राज्य सुखक लोभ सँ स्वजन केँ मारैक कोशिशक रहला अछि, शस्त्र धारण केने (शस्त्रधारी) धृतराष्ट्रक पुत्र यदि हमरा सनक निहत्था एवं उपायहीन केँ रणभूमिमे वधक देथि तऽ हमर बहुत कल्याण हैत। संजय कहलखिन– हे राजन्! ई कहि अत्यन्त दुःखी भऽकऽ अर्जुन ओहि समय धनुष–वाण एक तरफ राखि कऽ रथक पछिला भागमे जा कऽ बैसि गेलाह। एहि प्रकार भगवद्गीताक पहिल अध्याय ''**कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलमे सैन्यनिरीक्षण**'' पूर्ण भेल।



धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

जे भी धर्मक नाश करैत अछि, धर्म ओकरे नाश कऽ दैत अछि। आओर जे धर्मक रक्षा करैत अछि, धर्म भी ओकर रक्षा करैत अछि।

अध्याय-दू



गीताक सार

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥१॥

संजय उवाच– संजय कहलखिन; **तम्**– अर्जुनक प्रति; **तथा**– एहि प्रकार; **कृपया**– करुणा सँ; **आविष्टम्**– अभिभूत; **अश्रु-पूर्ण-आकुल**– अश्रु सँ पूर्ण; **ईक्षणम्**– नेत्र; **विषीदन्तम्**– शोक युक्त; **इदम्**– ई (यह); **वाक्यम्**– वचन; **उवाच**– कहलखिन; **मधुसूदनः**– मधुक वध करै वाला (कृष्ण)।

संजय कहलखिन- करुणा सँ व्याप्त, शोकायुक्त, अश्रुपूरित नेत्र वाला अर्जुन केँ देखि कऽ मधुसूदन कृष्ण ई वचन कहलखिन।

तात्पर्य: ई अध्याय हमरा सब केँ भौतिक शरीर एवं आत्माक वैश्लेषिक अध्ययन द्वारा आत्म साक्षात्कारक उपदेश दैत अछि। ई साक्षात्कार तखने सम्भव अछि जखन मनुष्य निष्काम भाव सँ कर्म करय आ आत्मबोधक प्राप्ति होए। भौतिक पदार्थक प्रति करुणा, शोक तथा अश्रु, ई सब असली आत्माक नहि जानैक लक्षण ही अछि। शाश्वत आत्माक प्रति करुणा ही आत्म साक्षात्कार अछि। अर्जुन चाहैत छथि जे मधुसूदन ओहि अज्ञान रुपी असुरक वध करथि जे हमरा कर्तव्य सँ

विमुख केने अछि। भगवान् कृष्ण अज्ञानी पुरुषक शोकक विनष्ट कऽ सकैत छथि। एहि उद्देश्य सँ ओ भगवद्गीताक उपदेश देलखिन।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

श्रीभगवान् उवाच- भगवान् कहलखिन; **कुतः**- कतए सँ; **त्वा**- अहाँ केँ; **कश्मलम्**- गंदगी, अज्ञान; **इदम्**- ई शोक; **विषमे**- एहि विषम अवसर पर; **समुपस्थितम्**- प्राप्त भेल; **अनार्य**- ओ लोग जे जीवनक मूल्य नै समझै छै; **जुष्टम्**- आचरित; **अस्वर्ग्यम्**- उच्च लोक केँ जे नै लऽ जेबावाला; **अकीर्ति**- अपयशक; **करम्**- कारण; **अर्जुन**- हे अर्जुन।

श्रीभगवान् कहलखिन-हे अर्जुन! अहाँक मनमे ई कल्मष कोना आएल? ई ओहि मनुष्यक लेल तनिक भी अनुकूल नै छियै, जे जीवनक मूल्य जानैत हो। एहि सँ उच्च लोकक नहि अपितु अपयश प्राप्त होइत छै।

तात्पर्यः सम्पूर्ण गीतामे श्रीकृष्ण केँ भगवान् कहल गेलनि अछि। भगवान् परम सत्यक पराकाष्ठा छथि। संस्कृत शब्द भगवानक व्याख्या व्यासदेवक पिता पराशर मुनि केलथिन अछि। समस्त धन, शक्ति, यश, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्याग सँ युक्त परम पुरुष भगवान् कहलाबैत छथि। ब्रह्मसंहितामे स्वयं ब्रह्माजीक निर्णय अछि जे श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् छथि। नै तऽ कियो हुनका तुल्य अछि, नै हुनका सँ बढ़ि कऽ अछि। ओ आदि स्वामी या भगवान् छथि। गोविन्द रुपमे जानल जाइत छथि एवम् समस्त कारणक कारण छथि।

भगवानक उपस्थितिमे अर्जुन द्वारा स्वजनक लेल शोक केनाइ सर्वथा अशोभनीय अछि। अतः कृष्ण कुतः शब्द सँ अपन आश्चर्य व्यक्त कैलथि। आर्य सनक सभ्य जातिक कोनो व्यक्ति सँ एहन मलिनताक उम्मीद नहि कैल जा सकैत अछि। आर्य शब्द ओहि व्यक्ति सब पर लागू होइत अछि जे जीवनक मूल्य जानैत छथि। जाहि पुरुष सब केँ भौतिक बन्धन सँ मुक्तिक कोनो ज्ञान नहि होइत छैन ओ अनार्य कहबै छथि। अर्जुन क्षत्रीय छलाह। यद्ध सँ विचलित भक्त अपन कर्त्तव्य सँ

च्युत भऽ रहल छलाह। हुनकर कायरता शोभा नहि दऽ रहल छलनि। भगवान् कृष्ण अर्जुन द्वारा अपन स्वजन पर एहि प्रकारक करुणाक अनुमोदन नहि केलथिन।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥३॥

कलैब्यम्– नपुंसकता; **मा स्म**– मत; **गमः**– प्राप्त हो; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **न**– कहियो नहि; **एतत्**– ई (यह); **त्वयि**– अहाँ केँ; **उपपदद्यते**– शोभा दैत अछि; **क्षुद्रम्**– तुच्छ; **हृदय**– हृदयक; **दौर्बल्यम्**– दुर्बलता; **व्यक्त्वा**– त्याग क; **उत्तिष्ठ**– खड़ा हो; **परम् तप**– हे शत्रुक दमन केनिहार।

हे पृथापुत्र! एहि हीन नपुंसकता प्रवृत्ति केँ त्याग दिअ। ई अहाँ केँ शोभा नहि दैत अछि। हे शत्रुक दमनकर्ता! हृदयक क्षुद्र दुर्बलता त्यागक युद्धक लेल खड़ा भऽ जाउ।

तात्पर्यः अर्जुन केँ पृथापुत्रक रुपमे संबोधित कैल गेलनि अछि। पृथा कृष्णक पिता वसुदेवक बहिन छलथिन। अतः कृष्णक संग अर्जुनक रक्त–सम्बन्ध छलैन। अतएव कृष्ण ई नहि चहैत छलाह जे अर्जुन अयोग्य क्षत्रीय पुत्र कहाबथि। सर्वगुण सम्पन्न भेलो उत्तर यदि अर्जुन युद्धभूमि केँ छोड़ै छथि तऽ ओ अत्यन्त निन्दनीय कार्य करताह। अतः कृष्ण कहलखिन एहन कायरता प्रवृत्ति अर्जुनक व्यक्तित्त्व केँ शोभा नहि देतैन। अर्जुन तर्क कऽ सकता जे ओ परम पूज्य भीष्म एवं स्वजनक प्रति उदार दृष्टिकोणक कारण युद्धभूमि छोड़ि रहलाह अछि, परन्तु कृष्ण एहन उदारता केँ केवल हृदय दौर्बल्य मानैत छथि। एहन झूठ उदारताक अनुमोदन कोनो शास्त्र नहि करत। अतः अर्जुन सनक व्यक्ति केँ कृष्णक प्रत्यक्ष निर्देशनमे एहन उदारता या तथा कथित अहिंसाक परित्याग कऽ देबाक चाही। यदि क्षत्रीय पुत्र लड़ सँ मना करै छथि तऽ ओ अपन पिताक अयोग्य पुत्र मानल जाइत छथि।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥४॥

अर्जुन उवाच– अर्जुन कहलखिन; **कथम्**– कोन प्रकार; **भीष्मम्**– भीष्म

केँ; **अहम्**- हम; **संख्ये**- युद्ध मे; **द्रोणम्**- द्रोण केँ; **च**- भी; **मधुसूदन**- हे मधुक संहारकर्ता; **इषुभिः**- तीर सँ; **प्रतियोत्स्यामि**- उलटक प्रहार करब; **पूजा अर्हा**- पूजनीय; **अरिसूदन**- हे शत्रुक संहारक।

अर्जुन कहलखिन- हे शत्रुहन्ता! हे मधुसूदन! हम युद्ध भूमिमे कोन तरहेँ भीष्म एवं द्रोण सनक पूजनीय व्यक्ति पर उलटि कऽ बाण चलाएब?

तात्पर्यः ई सामान्य शिष्टाचार छियै जे गुरुजन सँ वाग्युद्ध भी न कएल जाय। भीष्म पितामह आ गुरु द्रोणाचार्य सम्मानित एवं पूज्यनीय छथि। यदि ओ आक्रमण भी करैत छथि तऽ भला अर्जुन उलटि केँ हुनका सब पर बाण कोना छोड़ि सकैत छथि। कहल गेलै अछि जे अर्जुन कृष्णक समक्ष एहि तरहक किछु तर्क प्रस्तुत केलथिन जे कि कृष्ण अपन नाना उग्रसेन या अपन आचार्य सान्दीपनि मुनि पर हाथ चला सकैत छथि?

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्॥५॥

गुरुन्- गुरुजन केँ; **अहत्वा**- नै मारि कऽ; **हि**- निश्चय ही; **महा अनुभावान्**- महापुरुष केँ; **श्रेयः**- अच्छा छी; **भोक्तुम्**- भोगनाइ; **भैक्ष्यम्**- भीख माँगि कऽ; **अपि**- भी; **इह**- एहि जीवनमे; **लोके**- एहि संसारमे; **हत्वा**- मारि कऽ; **अर्थ**- लाभ कऽ; **कामान्**- इच्छा सँ; **तु**- लेकिन; **गुरुन्**- गुरुजन केँ; **इह**- एहि संसारमे; **एव**- निश्चय ही; **भुञ्जीय**- भोगक लेल बाध्य; **भोगान्**- भोग्य वस्तु; **रुधिर**- रक्त मे; **प्रदिग्धान्**- सानल, रंजित।

एहन महापुरुष सब जे हमर गुरुजन छथि, हुनका वध, मारिक जीवैक अपेक्षा एहि संसारमे भीख माँगि कऽ खैब बढ़ियाँ अछि। भले ही ओ सांसारिक लाभक इच्छुक होथि, किन्तु छथित हमर गुरुजन! यदि हुनकर वध होइत छैन्ह तऽ हमरा द्वारा भोग्य प्रत्येक वस्तु हुनकर रक्त सँ रंजित हैत।

तात्पर्यः शास्त्रानुसार एहन गुरुजन जे निन्द्य कर्म रत छथि एवं

विवेक शून्य हो, तऽ ओ त्याज्य छथि। दुर्योधन सँ आर्थिक सहायता लेवाक कारण भीष्म एवं द्रोण हुनक पक्ष लेबाक लेल बाध्य छलाह, एहन परिस्थितिमे ओ आचार्यक सम्मान खो बैठल छलाह। किन्तु अर्जुन सोचैत छथि जे एहनो विषम दशामे ओ सब गुरुजन छथि। अतः हुनकर वधक भौतिक लाभक भोग रक्त सँ रंजित हैत।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो-
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥६॥

न- नहि; **च**- भी; **एतत्**- ई (यह); **विद्मः**- हम जानै छी; **कतरत्**- जे; **नः**- हमरा लेल; **गरीयः**- श्रेष्ठ; **यत् वा**- अथवा; **जयेम**- हम जीत जाएँ; **यदि**- यदि; **वा**- या; **नः**- हमरा; **जयेषु**- ओ जीतथि; **यान्**- जिनका; **एव**- निश्चय ही; **हत्वा**- मारि कऽ; **न**- कहियो नै; **जिजीविषामः**- हम जीव चाहै छी; **ते**- ओ सब; **अवस्थितः**- खड़ा छथि; **प्रमुखे**- सामने; **धार्तराष्ट्राः**- धृतराष्ट्रक पुत्र।

हम इहो नहि जानैत छी जे हमरा लेल की श्रेष्ठ अछि- हुनका जीतनाइ या हुनका द्वारा जीत जाएव। यदि हम धृतराष्ट्रक पुत्रक वधक दैत छी त हमरा जीवित रहैक आवश्यकता नहि अछि। तैयो ओ सब युद्धभूमिमे हमरा समक्ष खड़ा छथि।

तात्पर्यः अर्जुनक समझमे ई नहि आबि रहल छलनि जे की करी–युद्ध करी एवं अनावश्यक रक्तपातक कारण बनी। क्षत्रीय भेलाक नाते युद्ध करब हुनकर धर्म छियैन। युद्ध सँ विमुख भऽ कँ भीख माँगिक जीवन जापन करबाक भावना आवै छैन। युद्धमे कोनो पक्ष विजयी भऽ सकै छै। यदि अर्जुनक पक्ष जीतै छथि तऽ धृतराष्ट्रक पुत्र मारल जेता। हुनका बिना अर्जुन कँ रहनाई असम्भव एवं अनुचित लागैत छैन्ह। एहि दशामे हुनका दोसर प्रकारक हार हैतन्ह। ई दर्शाबै अछि जे अर्जुन अत्यन्त प्रबुद्ध आओर मन तथा इन्द्रिय पर पूर्ण नियन्त्रण राखएबला छलाह। राज परिवारमे जन्म लक भिक्षा द्वारा जीवित रहैक इच्छा हुनकर विरक्तिक दोसर लक्षण अछि। अर्जुन मुक्तिक सर्वथा योग्य छलाह। जाधरि इन्द्रिय

संयमित न हो, ज्ञानक पद तक उठब कठिन अछि। बिना ज्ञान तथा भक्तिक मुक्ति नहि होइत छै। हुनकामे समस्त दैवी गुण विद्धमान छलैन।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥७॥

कार्पण्य- कृपणता; **दोष**- दुर्वलता; **उपहत**- प्रस्त; **स्वभावः**- गुण, विशेषता; **पृच्छमि**- पूछि रहल छी; **त्वाम्**- अहाँ सँ; **धर्म**- धर्म; **सम्मूढ़**- मोहग्रस्त; **चेताः**- हृदयमे; **यत्**- जे; **श्रेयः**- कल्याणकारी; **स्यात्**- हो; **निश्चितम्**- विश्वासपूर्वक; **ब्रूहि**- कहू; **तत्**- ओ(वह); **मे**- हमरा; **शिष्यः**- शिष्य; **ते**- तोहर (तुम्हारा) अहम्- हम; **शाधि**- उपदेश दिअ; **माम्**- हमरा; **प्रपन्नम्**- शरणागत- शरणमे आएल।

आब हम अपन कृपण-दुर्बलताक कारण अपन कर्त्तव्य भूलि गेल छी आ सब धैर्य खो चुकल छी। एहन अवस्थामे हम अहाँ सँ पूछि रहल छी जे हमरा लेल श्रेयस्कर हो ओकरा निश्चित रुप सँ बताउ। आब हम अहाँक शिष्य छी एवं अहाँक शरणागत छी। कृपया हमरा उपदेश देल जाए।

तात्पर्यः देहात्मबुद्धिवश कृपण या कंजूस लोग अपन सब समय परिवार, समाज, देश आदिक अत्यधिक प्रेममे गँवा दैत अछि। कृपण ई सोचैत अछि कि ओ अपन परिवार केँ मृत्यु सँ बचा सकैत अछि। एहने पारिवारिक आसक्ति निम्न पशुमे भी पाओल जाइत छै, किएक तऽ ओ भी अपना बच्चाक देखभाल करैत अछि। बुद्धिमान भेलाक कारण अर्जुन समझि गेलथि कि पारिवारिक सदस्यक प्रति हुनकर अनुराग एवं मृत्यु सँ रक्षा करक हुनकर इच्छा ही हुनकर उलझनक कारण अछि। यद्यपि ओ समझि रहल छलाह जे युद्ध करब हुनकर कर्तव्य छैन्ह परन्तु कृपण-दुर्बलताक कारण अपन कर्तव्य नहि निभा रहला अछि। अतः ओ परम गुरु भगवान् कृष्ण सँ कोनो निश्चित हल निकालैक लेल अनुरोधक रहल छलाह। ओ कृष्णक शिष्यत्व ग्रहण करैत छथि। ओ मित्रता पूर्ण बात बन्दक गुरु एवं शिष्यक गम्भीर बात कर चाहै छथि। अतः श्री

कृष्ण भगवद्गीता– ज्ञानक आदि गुरु छथि आ अर्जुन गीता समझैवाला प्रथम शिष्य छथि। अर्जुन भगवद्गीता कोन प्रकारे समझै छथि ओ गीतामे वर्णित अछि।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥८॥

न– नहि; **हि**– निश्चय ही; **प्रपश्यामि**– देखै छथि; **मम**– हमर; **अपनुद्यात्**– दूरक सके; **यत्**– जे; **शोकम्**– शोक; **उच्छोषणम्**– सुखबै वाला; **इन्द्रियाणाम्**– इन्द्रियक; **अवाप्य**– प्राप्त करक; **भूमौ**– पृथ्वी पर; **असपत्नम्**– शत्रुविहीन; **ऋद्धम्**– समृद्ध; **राज्यम्**– राज्य; **सुराणाम्**– देवताक; **अपि**– चाहे; **च**– भी; **आधिपत्यम्**– सर्वोच्चता।

हमरा कोनो एहन साधन नहि देखाइत अछि जे हमर इन्द्रियक सुखबैवला एहि शोक केँ दूर कऽ दिए। स्वर्ग पर देवताक आधिपत्यक तरह एहि धन धान्य-सम्पन्न सम्पूर्ण पृथ्वी पर निष्कंटक राज्य प्राप्त करियो कऽ भी हम एहि शोक केँ दूर नहि कऽ सकब।

तात्पर्यः यद्यपि अर्जुन धर्म एवं सदाचारक नियम पर आधारित अनेक तर्क प्रस्तुत करैत छथि, किन्तु प्रतीत होइत अछि जे ओ अपन गुरु भगवान् श्रीकृष्णक सहायता बिना अपन असली समस्याक हल नहि कऽ पा रहला अछि। हुनका ज्ञात भऽ गेलैन अछि एहि उलझन केँ भगवान् कृष्ण सनक आध्यात्मिक गुरुक सहायताक बिना हल पायब असम्भव अछि। यदि क्यो एहिमे सहायताक सकैत छथि, तऽ ओ छथि एक मात्र गुरु। अतः यदि हम सदाक लेल शोकक निवारण चाहैत छी त हमरा सब केँ भगवान् कृष्णक शरण ग्रहण कर पड़त, जेना अर्जुन कैलनि। अर्जुन कृष्ण सँ प्रार्थना कैलनि कि ओ हुनकर समस्याक निश्चित समाधानक देथि। ई कृष्णभावनामृतक विधि अछि।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥९॥

संजय उवाच– संजय कहलखिन; **एवम्**– एहि प्रकार; **उक्त्वा**– कहि कऽ; **हृषीकेशम्**– इन्द्रियक स्वामी कृष्ण सँ; **गुड़ाकेशः**– अज्ञानक मिटाबैवाला अर्जुन; **परन्तपः**– शत्रुक दमन करै वाला– अर्जुन; **नयोत्स्ये**– नहि लड़ब; **इति**– एहि प्रकार; **गोविन्दम्**– आनन्ददायक श्रीकृष्ण; **उक्त्वा**– कहि कऽ; **तूष्णीम्**– चुप; **बभूव**– भऽ गेला; **ह**– निश्चिय ही।

संजय कहलखिन–एहि प्रकार कहलाक बाद शत्रुक दमन कैनिहार अर्जुन कृष्ण सँ कहलखिन– हे गोविन्द! हम युद्ध नहि करब, आ चुप भऽ गेला।

तात्पर्यः धृतराष्ट्र केँ ई जानिक परम प्रसन्नता भेल हेतैन जे अर्जुन युद्ध नहिक युद्ध भूमि छोड़िक भिक्षाटन कर जा रहला अछि। किन्तु संजय पुनः ई कहिक निराशक देलथिन जे अर्जुन अपन शत्रुक मार लेल सक्षम छथि। किछु समयक लेल अपन पारिवारिक स्नेहक प्रति मिथ्या शोक सँ अभिभूत भऽ ओ कृष्णक शरण ग्रहण कैलनि अछि समस्याक समाधानक हेतु। ओ शीघ्र एहि शोक सँ निवृत्त भऽ पुनः युद्ध करता। एहि तरह धृतराष्ट्रक हर्ष भंग भऽ गेलैन।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः॥१०॥

तम्– हुनका सँ; **उवाच**– कहलखिन; **हृषीकेशः**– कृष्ण; **प्रहसन्**– हँसैत; **इव**– मानू; **भारत**– हे भरतवंशी धृतराष्ट्र; **सेनयोः**– सेना क; **उभयोः**– दूनू पक्षक; **मध्ये**– बीच मे; **विषीदन्तम्**– शोकमग्न; **इदम्**– ई (निम्नलिखित); **वचः**– शब्द।

हे भरतवंशी (धृतराष्ट्र) ओहि समय दूनू सेनाक मध्य शोकमग्न अर्जुन सँ कृष्ण हँसैत ई निम्नलिखित वचन कहलखिन।

तात्पर्यः दू घनिष्ट मित्र अर्थात् हृषीकेश तथा गुड़ाकेशक मध्य चर्चा चलि रहल छल। मित्रक रुपमे दूनू पद समान छल। किन्तु एहिमे सँ एक स्वेच्छा सँ दोसरक शिष्य बनि जाइत छथि। गुरुक भूमिका निवाहक लेल शिष्य सँ गुरुक भाँति गम्भीरपूर्वक वार्ता करब अपेक्षित छल। कृष्ण हँसि रहल छलाह कारण हुनकर मित्र शिष्य बनि गेलथिन छल।

श्री भगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥११॥

श्रीभगवान् उवाच– श्रीभगवान् कहलखिन; **अशोच्यान्**– जे शोकक योग्य नै अछि; **अन्वशोचः**– शोक करै छी; **त्वम्**– अहाँ; **प्रज्ञावादान्**– पाण्डित्यपूर्ण बात; **च**– भी; **भाषसे**– कहै छथि; **गत**– चलि गेला, रहित; **असून**– प्राण; **अगत**– नहि गेलै; **न**– कहियो नहि; **अनुशोचन्ति** – शोक करै छथि; **पंडिताः**– विद्वान लोग

श्रीभगवान् कहलखिन–अहाँ पाण्डित्यपूर्ण वचन कहितो हुनका सबहक लेल शोकक रहल छी जे शोक कर योग्य नहि छथि। जे विद्वान् होइत छथि, ओ न त जीवितक लेल न ही मृतक लेल शोक करैत छथि।

तात्पर्यः–भगवान् श्रीकृष्ण तत्काल गुरुक पद संभालैत एवं अपन शिष्य केँ अप्रत्यक्षतः मूर्ख कहिक डाँटलखिन। ओ कहलखिन अहाँ विद्वानक तरह बात न करै छी परन्तु अहाँ ई नहि जानैत छी जे विद्वान् जानैत छथि कि शरीर तथा आत्मा की छियै? ओ कोनो अवस्थामे शरीरक लेल चाहे ओ जीवित हो या मृत–शोक नहि करैत छथि। ई शरीर जन्म लैत छै तेँ आइ या काल्हि एकर विनाश निश्चित अछि। अतः शरीर ओतेक महत्वपूर्ण नहि अछि जते कि आत्मा। जे एहि सत्य केँ जानैत छथि ओ असली विद्वान् छथि एवं हुनका लेल शोकक कोनो कारण नहि भऽ सकैत अछि।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥१२॥

न– नहि; **तु**– लेकिन; **एव**– निश्चय ही; **अहम्**– हम; **जातु**– कोनो समय मे; **आसम्**– छल; **न**– नहि; **त्वम्**– अहाँ; **न**– नहि; **इमे**– ई सब; **जन–अधिपः**– राजागण; **न**– कहियो नहि; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **न**– नहि; **भविष्यामः**– रहता; **सर्वेवयम्**– हम सब; **अतः परम्**– एहि सँ आगाँ।

एहन कहियो नहि भेलै अछि जे हम नहि रहल होए या अहाँ नहि

रहल होय अथवा ई समस्त राजागण नहि रहल हो, आ नै एहन अछि कि भविष्यमे हम सब नहि रहब।

तात्पर्यः वेदमे, कठोपनिषद्मे एवं श्वेताश्वतर उपनिषद्मे कहल गेलै अछि जे श्रीभगवान् असंख्य जीव सबहक कर्म तथा कर्मफलक अनुसार हुनकर अपन-अपन परिस्थितिमे पालक छथि, ओहे भगवान् अंश रुपमे हर जीवक हृदयमे बास करैत छथिन। केवल साधु पुरुष, जे एक ही ईश्वर केँ भीतर-बाहर देख सकै छथि, पूर्ण एवं शाश्वत शान्ति प्राप्तक सकैत छथि। भगवान् स्पष्ट कहैत छथिन कि ओ स्वयं, अर्जुन तथा युद्धभूमिमे एकत्रित राजागण शाश्वत प्राणी छथि एवं ओहि जीव सबहक वद्ध तथा मुक्त अवस्थामे भगवान् ही एकमात्र हुनकर पालक छथिन। भगवान् परम पुरुष छथि एवं भगवानक चिर संगी अर्जुन तथा ओतय एकत्रित राजागण शाश्वत पुरुष छथि। एना नहि छै कि ई सब भूतकालमे प्राणीक रुपमे अलग-अलग उपस्थित नहि छलाह आओर एहनो नहि अछि कि ई सब शाश्वत पुरुष बनल नहि रहता। हुनकर अस्तित्व भूतकालमे छल आओर भविष्यमे भी निर्बाध रुप सँ बनल रहतै। अतः ककरो लेल शोक कर लेल कोनो प्रयोजन अछि? आत्मा एवं परमात्माक द्वैत शाश्वत तथ्य अछि। एकर पुष्टि वेद द्वारा होइत अछि। जेना कि कहल गेलै अछि।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥१३॥

देहिनः- शरीरधारीक; **अस्मिन**- एहिमे; **यथा**- ओहि प्रकार; **देहे**- शरीरमे; **कौमारम्**- वाल्यावस्था; **यौवनम्**- यौवन, तारुण्य; **जरा**- वृद्धावस्था; **तथा**- ओहि प्रकार; **देह-अन्तर**- शरीरक स्थानान्तरक; **प्राप्तिः**- उपलब्धि; **धीरः**- धीर व्यक्ति; **तत्र**- ओहि विषयमे; **न**- कहियो नहि; **मुह्यति**- मोह प्राप्त होइत अछि।

जाहि प्रकार शरीरधारी आत्मा एहि (वर्तमान) शरीरमे वाल्यावस्था सँ तरुणावस्था मे आओर फिर वृद्धावस्थामे निरन्तर अग्रसर होइत रहैत अछि। ओहि प्रकार मृत्यु भेला पर आत्मा दोसर शरीरमे चलि जाइत अछि। धीर व्यक्ति एहन परिवर्तन सँ मोहक प्राप्त नहि होइत अछि।

तात्पर्यः प्रत्येक जीव एक व्यष्टि आत्मा अछि। ओ प्रतिक्षण अपन शरीर बदलैत रहैत अछि– कौखन बालकक रुपमे, कौखन युवा तथा कौखन वृद्ध पुरुषक रुपमे। तो भी आत्मा ओतै रहैत अछि, ओहिमे कोनो परिवर्तन नहि होइत अछि। ई व्यष्टि आत्मा मृत्यु भेला पर अन्ततोगत्वा एक शरीर बदलिक दोसर शरीरमे देहान्तरक जाइत अछि। एवं चूँकि अगला जन्ममे हिनका शरीर भेटब अवश्यम्भावी अछि चाहे ओ शरीर आध्यात्मिक हो या भौतिक। अतः अर्जुनक लेल न तो भीष्म, न ही द्रोणक लेल शोक करबाक कोनो कारण अछि। अपितु हुनका प्रसन्न हेवाक चाही कि ओ सब अपन पुरान शरीर बदलि कें नव शरीर ग्रहण करता। नव शक्ति प्राप्त हेतैन। जाहि व्यक्ति कें व्यष्टि आत्मा, परमात्मा तथा भौतिक आ आध्यात्मिक प्रकृतिक पूर्ण ज्ञान छैन ओ धीर कहलाबै छथि। एहन धीर मनुष्य कहियो शरीर परिवर्तन द्वारा ठगाइत नहि छथि। व्यष्टि अंश आत्मा कें अर्जुन रुपमे आओर परमात्मा कें श्रीभगवानक रुपमे प्रदर्शित कैल गेल अछि।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥१४॥

मात्रा-स्पर्शाः- इन्द्रिय विषय; **तु**- केवल; **कौन्तेय**- हे कुन्ती पुत्र; **शीत**- जाड़; **उष्ण**- ग्रीष्म; **सुख**- सुख; **दुःख**- दुख; **दाः**- दिअवाला; **आगम**- आब; **अपायिनः**- जाएब; **अनित्याः**- क्षणिक; **तान्**- हुनकर; **तितिक्षस्व**- सहन करक प्रयत्न करु; **भारत**- हे भरतवंशी।

हे कुन्तीपुत्र! सुख तथा दुःखक क्षणिक उदय तथा कालक्रममे हुनकर अन्तर्धान हैव सर्दी तथा गर्मीक ऋतुक आएब-जाएबक समान अछि। हे भरतवंशी! ओ इन्द्रियबोध सँ उत्पन्न होइत अछि एवम् मनुष्य कें अविरल भाव सँ सहन करब सीखक चाही।

तात्पर्यः कर्तव्य निर्वाह करैत मनुष्य कें सुख तथा दुःखक क्षणिक आबै-जायक सहन करबाक अभ्यास कर चाही। मनुष्य कें ज्ञान प्राप्त करक लेल धर्मक विधि-विधान पालन करक चाही किएक तऽ ज्ञान तथा भक्ति सँ ही मनुष्य अपना कें मायाक बन्धन सँ छुड़ा सकैत अछि। अर्जुन कें जाहि दू नाम सँ सम्बोधित कैल गेलैन अछि ओ भी महत्वपूर्ण

अछि। कौन्तेय कहिक सम्बोधित केला सँ प्रकट होइत अछि कि ओ अपन मातृकुल सँ सम्बोधित छथि आओर भरत कहला सँ हुनकर पितृकुल सँ सम्बन्ध प्रकट होइत अछि। दूनू ओर सँ हुनका महान विरासत प्राप्त छैन्ह। महान विरासत प्राप्त भेलाक फलस्वरुप कर्त्तव्य निर्वाहक उत्तरदायित्व आबि जाइत छैन्ह। अतः अर्जुन युद्ध सँ विमुख नहि भऽ सकता।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदु:खसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥१५॥

यम्– जाहि; **हि**– निश्चित रुप सँ; **न**– कहियो नहि; **व्यथयन्ति**– विचलित नै करैत; **एते**– ई सब; **पुरुषम्**– मनुष्य केँ; **पुरुष-ऋषभ**– हे पुरुषश्रेष्ठ; **सम**– अपरिवर्तनीय; **दु:ख**– दुख मे; **सुखम्**– सुख मे; **धीरम्**– धीर पुरुष; **सः**– ओ (वह); **अमृतत्वाय**– मुक्तिक लेल; **कल्पते**– योग्य अछि।

हे पुरुषश्रेष्ठ (अर्जुन) जे पुरुष सुख तथा दु:खमे विचलित नहि होइ छथि आओर एहि दूनूमे समभाव रहैत छथि, ओ निश्चित रुप सँ मुक्तिक योग्य छथि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति आत्म साक्षात्कारक उच्च अवस्था प्राप्त करक लेल दृढ़प्रतिज्ञ छथि एवं सुख तथा दु:खक प्रहार केँ समभाव सँ सहि सकैत छथि ओ निश्चय ही मुक्तिक योग्य छथि। भगवान् चैतन्य चौबीस वर्षक अवस्थामे ही संन्यास ग्रहणक लेलथि यद्यपि हुनका पर आश्रित हुनकर तरुण पत्नी तथा वृद्धा माताक देखभाल करएवाला अन्य क्यो नहि छलथिन। तो भी उच्चादर्शक लेल ओ संन्यास ग्रहणक एवं अपन कर्तव्यपालनमे स्थिर रहलाह। भववन्धन सँ मुक्ति पाबैक इहै एकमात्र उपाय अछि।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥१६॥

न– नहि; **असतः**– असत्क; **विद्यते**– अछि; **भावः**– चिरस्थायित्व; **न**– कहियो नहि; **अभावः**– परिवर्तनशील गुण; **विद्यते**– अछि; **सतः**– शाश्वतक; **उभयोः**– दूनूक; **अपि**– भी, ही; **दृढ़**– देखल गेलै; **अन्तः**– निष्कर्ष; **तु**– नि:संदेह; **अनयोः**– हिनकर; **तत्त्व**– सत्यक; **दर्शिभिः**– भविष्यद्रष्टा द्वारा।

तत्त्वदर्शी ई निष्कर्ष निकाललनि अछि कि भौतिक शरीर (असत्) क तो कोनो चिरस्थायित्व नहि अछि। किन्तु सत् (आत्मा) अपरिवर्तित रहैत अछि। ओ एहि दूनूक प्रकृतिक अध्ययन द्वारा ई निष्कर्ष निकलल अछि।

तात्पर्यः परिवर्तनशील शरीरक कोनो स्थायित्व नहि अछि। शरीरमे वृद्धि तथा वृद्धावस्था आवैत रहैत छै। किन्तु शरीर तथा तनमे निरन्तर परिवर्तन भेलो पर भी आत्मा स्थायी रहैत अछि। इहै पदार्थ एवं आत्मामे अन्तर अछि। स्वभावतः शरीर नित्य परिवर्तनशील अछि आओर आत्मा शास्वत अछि। सत् आओर असत् शब्द आत्मा एवं भौतिक पदार्थक ही द्योतक अछि। अज्ञान दूर कर लेल सदा सर्वदाक लेल जीव केँ प्रबुद्ध कर लेल भगवान् समय समय पर भगवद्गीता रुपमे उपदेश दैत छथिन्ह।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥१७॥

अविनाशि– नाशरहित; **तु**– लेकिन; **तत्**– हुनका; **विद्धि**– जानू; **येन**– जाहिसँ; **सर्वम्**– सम्पूर्ण शरीर; **इदम्**– ई; **ततम्**– परिव्याप्त; **विनाशम्**– नाश; **अव्यपस्य**– अवनाशीक; **अस्य**– एहि; **न कश्चित्**– क्यो भी नहि; **कर्तुम्**– करएलेल; **अर्हति**– समर्थ अछि।

जे सम्पूर्ण शरीरमे व्यस्त अछि ओकरे अहाँ अविनाशी समझू। ओहि अव्यय आत्मा केँ नष्ट करमे क्यो समर्थ नहि छथि।

तात्पर्यः प्रत्येक शरीरमे व्यष्टि आत्मा अछि आओर एहि आत्माक उपस्थितिक लक्षण व्यष्टि चेतना द्वारा परिलक्षित होइत अछि। आत्मा आकारमे अणु तुल्य अछि जकरा पूर्ण वृद्धि सँ जानल जा सकैत अछि। अणु आत्मा पाँच प्रकारक प्राणमे तैर रहल अछि (प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान)। ई हृदयक भीतर स्थित अछि आओर देहधारी जीवक शरीरमे अपन प्रभावक विस्तार करैत अछि। जखन आत्मा केँ पाँच वायुक कल्मष सँ शुद्धक लेल जाइत छै तखन एकर आध्यात्मिक प्रभाव प्रकट होइत अछि।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥१८॥

अन्त-वन्त- नाशवान; **इमे**- ई सब; **देहा:**- भौतिक शरीर; **नित्यस्य**- नित्य स्वरुप; **उक्त्वा**- कहल जाइत छै; **शरीरिण:**- देहधारी जीवक; **अनाशिन:**- कहियो नाश न होइवाला; **अप्रमेयस्य**- न मापा जा सकै योग्य; **तस्मात्**- अत:; **युद्धस्व**- युद्ध करु; **भारत**- हे भरतवंशी।

अविनाशी, अप्रमेय तथा शाश्वत जीवक भौतिक शरीरक अन्त अवश्यम्भावी अछि। अतः हे भरतवंशी! युद्ध करु।

तात्पर्य: भौतिक शरीर स्वभाव सँ नाशवान अछि। ई तत्क्षण नष्ट भऽ सकैत अछि आओर सौ वर्ष बाद भी। ई केवल समयक बात अछि। आत्मा एतेक सूक्ष्म अछि कि एकरा शत्रु देखियो नहि सकै अछि, मारव त दूर रहल। पूर्ण आत्माक सूक्ष्म कण अपन कर्मक अनुसार ही शरीर धारण करैत अछि। अत: धार्मिक नियमक पालन करक चाही। आत्मा ही शरीरक पोषक अछि। शरीर अपने आपमे महत्वहीन अछि। अत: अर्जुन केँ उपदेश देल गेलैन कि ओ युद्ध करथि आओर भौतिक शारीरिक कारण सँ धर्मक वलि न होम देथि।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥१९॥

य:- जे; **एनम्**- एकर; **वेत्ति**- जानै अछि; **हन्तारम्**- मारै वाला; **य:**- जे; **च**- भी; **एनम्**- एकरा; **मन्यते**- मानै अछि; **हतम्**- मरल; **उभौ**- दूनू; **तौ**- ओ; **न**- कहियो नहि; **विजानीत:**- जानै अछि; **अयम्**- ई; **हन्ति**- मारै अछि; **न**- नहि; **हन्यते**- मारल जाइत अछि।

जे एहि जीवात्मा केँ मारै वाला समझैत अछि तथा जे एकरा मरल समझैत अछि ओ दूनू अज्ञानी छथि किएक तऽ आत्मा न तऽ मरैत अछि आ ने मारल जाइत अछि।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूय:।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो-
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०॥

न- कहियो नहि; **जायते**- जन्मैत अछि; **म्रियते**- मरैत अछि; **वा**- या; **कदाचित्**- कहियो भी (भूत, वर्तमान या भविष्य); **न**- कहियो नहि;

अयम्– ई; **भूत्वा**– भऽकऽ; **भविता**– हुअवाला; **वा**– अथवा; **न**– नहि; **भूयः**– अथवा, पुनः हुअवाला; **अजः**– अजन्मा; **नित्यः**– नित्य; **शाश्वतः**– स्थायी; **अयम्**– ई; **पुराणः**– सवसँ प्राचीन; **न**– नहि; **हन्यते**– मारल जाइत अछि; **हन्यमाने**– मारल जाऽकऽ; **शरीरे**– शरीरमे।

आत्माक लेल कोनो भी कालमे न त जन्म अछि न मृत्यु। ओ न कहियो जन्मैत अछि न जन्म लेत। ओ अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन अछि। शरीरक मरला उत्तर भी ओ नहि मारल जैत अछि।

तात्पर्यः शरीरमे छह प्रकारक रुपान्तर होइत अछि। ओ माताक गर्भ सँ जन्म लैत अछि। किछु काल तक रहैत अछि, बढ़ैत अछि, किछु परिणाम उत्पन्न करैत अछि, धीरे–धीरे क्षीण होइत अछि आओर अन्तमे समाप्त भऽ जाइत अछि। किन्तु आत्मामे एहि प्रकारक परिवर्तन नहि होइत छैक। आत्मा अजन्मा अछि किन्तु चूँकि ओ भौतिक शरीर धारण करैत अछि, अतः शरीर जन्म लैत अछि। आत्मा न जन्म लैत अछि, न मरैत अछि। जकर जन्म हेतै, ओकरे मृत्यु भी हेतै। चूँकि आत्मा जन्म नहि लैत अछि, अतः ओकर न भूत अछि, न वर्तमान या भविष्य। ओ नित्य, शाश्वत तथा सनातन अछि। शरीरक वृद्धि आत्माक उपस्थितिक कारण होइत अछि। किन्तु ओकर न तो कोनो उपवृद्धि अछि न ही ओहिमे कोनो परिवर्तन होइत अछि। अतः आत्मा शरीरक छह प्रकारक परिवर्तन सँ मुक्त अछि। आत्मा दू प्रकारक अछि–एक तो अणुआत्मा आओर दोसर विभु–आत्मा। परमात्मा तथा अणु आत्मा दूनू शरीर रुपी ओहि वृक्षमे जीवक हृदयमे विद्यमान अछि आओर एहिमे सँ जे समस्त इच्छा एवं शोक सँ मुक्त भऽ गेला अछि ओहे भगवत्कृपा सँ आत्माक महिमा केँ समझि सकैत अछि। कृष्ण परमात्माक ही उद्गम छथि आओर अर्जुन अणु आत्माक समान छथि जे वास्तविक स्वरुप भूलि गेला अछि। अतः कृष्ण द्वारा या गुरु द्वारा प्रबुद्ध करबाक आवश्यकता छल।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥२१॥

वेद– जानैत अछि; **अविनाशिनम्**– अविनाशी केँ; **नित्यम्**– शाश्वत; **यः**– जे; **एनम्**– एहि (आत्मा); **अजम्**– अजन्मा; **अव्ययम्**– निर्विकार;

कथम्– केना; **सः**– ओ; **पुरुषः**– पुरुष; **पार्थ**– हे पार्थ (अर्जुन); **कम्**– किनकर; **घातयति**– मरबैत अछि; **हन्ति**– मारैत अछि; **कम्**– किनका।

हे पार्थ! जे व्यक्ति ई जानैत अछि कि आत्मा अविनाशी, अजन्मा, शाश्वत तथा अव्यय अछि, ओ भला ककरो कोना मारि सकैत अछि या मरवा सकैत अछि।

तात्पर्यः प्रत्येक वस्तुक समुचित उपयोगिता होइत अछि आओर जे ज्ञानी होइत छथि ओ जानैत छथि कि कोनो वस्तुक कतऽ एवं कोना प्रयोग कैल जाय। राजा द्वारा हत्यारा केँ फाँसीक दण्ड एक प्रकार सँ लाभप्रद होइत अछि। एहि प्रकार जखन श्री कृष्ण युद्ध करैक आदेश दैत छथि तऽ समझबाक चाही कि ई हिंसा परम न्यायक लेल अछि आओर एहि तरह अर्जुन केँ ई आदेशक पालन करक चाही, ई समझि केँ जे कृष्ण द्वारा कैल युद्ध हिंसा नहि छी किएक तऽ मनुष्य या दोसर शब्दमे आत्मा केँ मारल नहि जा सकैत अछि।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा–
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥२२॥

वासांसि– वस्त्रक; **जीर्णानि**– पुरान तथा फाटल; **यथा**– जाहि प्रकार; **विहाय**– त्याग क; **नवानि**– नव वस्त्र; **गृहणानि**– ग्रहण करै अछि; **नरः**– मनुष्य; **अपराणि**– अन्य; **तथा**– ओहि प्रकार; **शरीराणि**– शरीर क; **विहाय** – त्याग कऽ; **जीर्णानि**– वृद्ध तथा व्यर्थ; **अन्यानि**– भिन्न; **संयाति**– स्वीकार करै अछि; **नवानि**– नया; **देही**– देहधारी आत्मा।

जाहि प्रकार मनुष्य पुरान वस्त्र त्यागक नव वस्त्र धारण करैत अछि, ओहि प्रकार आत्मा पुरान एवं व्यर्थक शरीर केँ त्यागक नवीन भौतिक शरीर धारण करैत अछि।

तात्पर्यः अणु आत्मा द्वारा शरीरक परिवर्तन परमात्माक कृपा सँ सम्भव होइत अछि। परमात्मा अणु आत्माक इच्छाक पूर्ति ओहि तरह करै छथिन जाहि तरह एक मित्र दोसरक इच्छापूर्ति करैत अछि। मुण्डक तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्‌मे आत्मा तथा परमात्माक उपमा दू मित्र पक्षी

सँ देल गेलै अछि जे एके वृक्ष पर बैठल अछि। एहिमे सँ एक पक्षी (अणु आत्मा) वृक्षक फल खा रहल छल आओर दोसर पक्षी (कृष्ण) अपन मित्र केँ देख रहल अछि। यद्यपि दूनू पक्षी समान गुण वाला अछि, किन्तु एहिमे सँ एक भौतिक वृक्षक फल पर मोहित अछि, परन्तु दोसर अपन मित्रक कार्यकलापीक साक्षी मात्र अछि। कृष्ण साक्षी पक्षी छथि आओर अर्जुन फल भोक्ता पक्षी। यद्वपि दूनू मित्र छथि किन्तु फिर भी एक स्वामी आओर दोसर सेवक छथि। एतै भगवान् कृष्ण अर्जुन केँ उपदेश देलखिन अछि कि ओ अपन पितामह तथा गुरुक देहान्तरण पर शोक प्रकट न करथि अपितु हुनका एहि धर्मयुद्धमे हुनकर शरीरक वध करएमे प्रसन्नता होमक चाही, जाहि सँ ओ सब विभिन्न शारीरिक कर्म फल सँ शीघ्र मुक्त भऽ जाथि आओर उच्च लोक केँ प्राप्त करथि। अतः अर्जुन केँ शोक करब युक्ति संगत नहि अछि।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥२३॥

न– कहियो नहि; **एनम्**– एहि आत्माक; **छिन्दन्ति**– खण्ड–खण्ड कऽ सकैत अछि; **शस्त्राणि**– हथियार; **न**– कहियो नहि; **एनम्**– एहि आत्मा केँ; **दहति**– जला सकैत अछि; **पावकः**– अग्नि; **न**– कहियो नहि; **च**– भी; **एनम्**– एहि आत्मा केँ; **क्लेदयन्ति**– भिंगा सकैत अछि; **आपः**– जल; **न**– कहियो नहि; **शोषयति**– सुखा सकैत अछि; **मारुतः**– वायु।

ई आत्मा न त कहियो कोनो शस्त्र द्वारा खण्ड–खण्ड कैल जा सकैत अछि, न अग्नि द्वारा जलाया जा सकैत अछि, न जल द्वारा भिगोया या वायु द्वारा सुखाएल जा सकैत अछि।

तात्पर्यः सब हथियार–तलवार, आग्नेयास्त्र, वर्षाक अस्त्र, चक्रवात आदि आत्मा केँ मारैमे असमर्थ अछि। जे भी हो, आत्मा केँ न त कहियो खण्ड–खण्ड कैल जा सकैत अछि, न कोनो वैज्ञानिक हथियार सँ ओकर संहार कैल जा सकैत अछि, चाहे ओकर संख्या कतबो क्यो न हो। वराह पुराणमे जीव केँ परमात्माक भिन्न अंश कहल गेलै अछि। भगवद्गीताक अनुसार भी ओ शाश्वत रुप सँ एना ही अछि। अतः मोह सँ मुक्त भऽकऽ भी जीव पृथक अस्तित्व राखैत अछि, जेना कि

कृष्ण द्वारा अर्जुन केँ देल गेल उपदेश सँ स्पष्ट अछि। अर्जुन कृष्णक उपदेशक कारण मुक्त तऽ भऽ गेला, किन्तु कहियो कृष्ण सँ एकाकार नहि भेला। सब जीव परमात्मा सँ विलग होइते अंश अछि। जाहि प्रकार अग्निक स्फुलिंग अग्नि सँ विलग बुझि जाइत अछि, यद्यपि एहि दूनूक गुण समान होइत अछि।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥२४॥

अच्छेद्यः:- न टूटै वाला; **अयम्**- ई (आत्मा); **अदाह्यः**:- न जलाया जा सकै वाला; **अयम्** - ई आत्मा; **अक्लेद्यः**:- अघुलनशील; **अशोष्यः**:- न सुखाएल जा सकै अछि; **एव**- निश्चय ही; **च**- तथा; **नित्यः**:- शाश्वत; **सर्वगतः**:- सर्वव्यापी; **स्थाणु**- अपरिवर्तनशील, अविकारी; **अचलः**:- जड़; **अयम्**- ई आत्मा; **सनातनः**:- सदैव एक सा।

ई आत्मा खंडित तथा अघुलनशील अछि। एकरा न त जलाया जा सकैत अछि, न ही सुखाएल जा सकैत अछि। ई शाश्वत, सर्वव्यापी, अविकारी, स्थिर तथा सदैव एक सा रह वाला अछि।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥२५॥

अव्यक्तः:- अदृश्य; **अयम्**- ई आत्मा; **अचिन्तयः**:- अकल्पनीय; **अयम्**- ई आत्मा; **अविकार्यः**:- अपरिवर्तित; **अयम्**- ई आत्मा; **उच्यते**- कहाबैत अछि; **तस्मात्**- अतः; **एवम्**- एहि प्रकार; **विदित्वा**- ठीक तरह जानि कऽ; **एवम्**- एहि आत्माक विषयमे; **न**- नहि; **अनुशोचितुम्**- शोक करै लेल; **अर्हसि**- योग्य हो।

ई आत्मा अव्यक्त, अकल्पनीय तथा अपरिवर्तनीय कहल जाइत अछि। ई जानिक अहाँ केँ शरीरक लेल शोक नहि करक चाही।

तात्पर्यः आत्मा एतेक सूक्ष्म अछि कि एकरा सर्वाधिक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी यंत्र सँ भी नहि देखल जा सकैत अछि, अतः ई अदृश्य अछि। आत्मामे शरीर जकाँ परिवर्तन नहि होइत अछि। मूलतः अविकारी रहैत आत्मा अनन्त परमात्माक तुलनामे अणुरुप होइत अछि। परमात्मा अनन्त छथि, परन्तु अणु आत्मा अति शुक्ष्म अछि। आत्मा चेतना अछि।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि॥२६॥

अथ– यदि, फिर भी; **एनम्**– एहि आत्मा केँ; **नित्यजातम्**– उत्पन्न हुअवाला; **नित्यम्**– सदैवक लेल; **वा**– अथवा; **मन्यसे**– अहाँ एना सोचै छी; **मृतम्**– मृत; **तथा अपि**– फिर भी; **त्वम्**– अहाँ; **महा-बाहो**– हे शूरवीर; **न**– कहियो नहि; **एनम्**– आत्माक विषयमे; **सोचितुम**– शोक करबाक लेल; **अर्हसि**– योग्य हो।

यदि अहाँ ई सोचैत हो कि आत्मा (अथवा जीवनक लक्षण) सदा जन्म लैत अछि तथा सदा मरैत अछि तो भी हे शूरवीर अहाँ केँ शोक करबाक कोनो कारण नहि अछि।

तात्पर्यः यदि अर्जुन केँ आत्माक अस्तित्वमे विश्वास नहि छलन्हि, जेना कि वैभाषिक दर्शनमे होइत अछि, तो भी हुनकर शोक करक कोनो कारण नहि छल। क्यो मानव थोड़ेक रसायनक क्षतिक लेल शोक नहि करैत अछि तथा एहि लेल अपन कर्तव्य पालन नहि त्याग दैत अछि। दोसर ओर, आधुनिक विज्ञान तथा वैज्ञानिक युद्धमे शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेल अनेक टन रसायन फूँकि दैत अछि। वैभाषिक दर्शनक अनुसार आत्मा शरीरक क्षय होइते लुप्त भऽ जाइत अछि। अतः प्रत्येक दशामे चाहे अर्जुन एहि वैदिक मान्यता केँ स्वीकार करता कि अणु आत्माक अस्तित्व अछि, या कि ओ आत्माक अस्तित्व केँ स्वीकार नहि करता, हुनका लेल शोक करक कोनो कारण नहि छल। यदि आत्माक पुनर्जन्म नहि होइत तऽ अर्जुन केँ अपन पितामह तथा गुरुक वध करक पाप फल सँ डरक कोनो कारण नहि छल। क्षत्रिय भेलाक नाते, वैदिक सिद्धान्तक पालन करब अर्जुनक लेल शोभनीय छल।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥२७॥

जातस्य– जन्म लिअबला; **हि**– निश्चय ही; **ध्रुवः**– तथ्य अछि; **मृत्युः**– मृत्यु; **ध्रुवम्**– ई भी तथ्य अछि; **जन्म**– जन्म; **मृतस्य**– मृत प्राणी क; **च**– भी; **तस्मात्**– अतः; **अपरिहार्य**– जाहि सँ बच नहि जा सकए, ओकरा; **अर्थे**– विषय मे; **च**– नहि; **त्वम्**– अहाँ; **शोचितुम्**– शोक करबाक लेल;

अर्हसि– योग्य हो।

जे क्यो जन्म लेलक अछि ओकर मृत्यु निश्चित अछि, आओर मृत्युक पश्चात् पुनर्जन्म भी निश्चित अछि। अतः अपन अपरिहार्य कर्त्तव्यपालनमे अहाँ केँ शोक नहि करक चाही।

तात्पर्यः मनुष्य केँ अपन कर्मक अनुसार जन्म ग्रहण कर पड़ैत छैक आओर एक कर्म अवधि समाप्त भेला पर ओकरा मर पड़ैत छैक, जाहि सँ दोसर जन्म ल सकत। एहि प्रकार मुक्ति प्राप्त केने बिना ही जन्म–मुत्युक ई चक्र चलैत रहैत अछि। कुरुक्षेत्रक युद्ध भगवानक इच्छा भेलाक कारण अपरिहार्य छल आओर सत्यक लेल युद्ध करब क्षत्रीयक धर्म अछि। अतः अपन कर्त्तव्यपालन करैत ओ स्वजनक मृत्यु सँ भयभीत या शोकाकुल किएक छलाह? ओ विधिक भंग नहि करै चाहैत छलाह किएक तऽ एना केला पर हुनका ओहि पाप कर्मक फल भोग पड़ितैन ताहि सँ ओ अत्यन्त भयभीत छलाह। अपन कर्तव्यक पालन करैत ओ अपन स्वजनक मृत्यु नहि रोकि सकैत छलाह तथा यदि ओ अनुचित कर्तव्य पथक चुनाव करितथि त हुनका नीचा गिर पड़ितैन।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥२८॥

अव्यक्त आदीनि– प्रारम्भमे अप्रकट; **भूतानि**– सब प्राणी; **व्यक्त**– प्रकट; **मध्यानि**– मध्य मे; **भारत**– हे भरतवंशी; **अव्यक्त**– अप्रकट; **निधनानि**– विनाश भेला पर; **एव**– एहि तरह; **तत्र**– अतः; **का**– क्या; **परिदेवना**– शोक।

सब जीव प्रारम्भमे अव्यक्त रहैत अछि, मध्य अवस्थामे व्यक्त होइत अछि आओर विनष्ट भेला पर पुनः अव्यक्त भऽ जाइत अछि। अतः शोक करैक कोन आवश्यकता अछि?

तात्पर्यः दू प्रकारक दार्शनिक होइत छथि। एक तो ओ जे आत्माक अस्तित्व केँ मानैत छथि, आओर दोसर ओ जे आत्माक अस्तित्व नहि मानैत छथि। कहल जा सकैत अछि जे कोनो दशामे शोक करैक कारण नहि अछि। भौतिक शरीर कालक्रममे नाशवान अछि, किन्तु आत्मा शाश्वत अछि। तेँ हमरा सब केँ सदा स्मरण राखक चाही जे कि ई

शरीर वस्त्र (परिधान)क समान अछि, अतः वस्त्र परिवर्तन भेला पर शोक किएक? शाश्वत आत्माक तुलनामे भौतिक शरीरक कोनो यथार्थ अस्तित्व नहि होइत अछि। ई स्वप्नक समान अछि। चाहे हम आत्माक अस्तित्व केँ मानी या न मानी, शरीर–नाशक लेल शोक करैक कोनो कारण नहि अछि।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥२९॥

आश्चर्यवत्– आश्चर्यक तरह; **पश्यति**– देखै अछि; **कश्चित्**– क्यो, कोनो; **एनम्**– एहि आत्मा केँ; **आश्चर्यवत्**– आश्चर्यक तरह; **वदति**– कहै अछि; **तथा**– जाहि प्रकार; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी; **अन्यः**– दोसर; **आश्चर्यवत्**– आश्चर्य सँ; **च**– आओर; **एनम्**– एहि आत्मा केँ; **अन्यः**– दोसर; **शृणोति**– सुनै अछि; **श्रुत्वा**– सुनिक; **अपि**– भी; **एनम्**– एहि आत्मा केँ; **वेद**– जानै अछि; **न**– कहियो नहि; **च**– तथा; **एव**– निश्चय ही; **कश्चित्**– क्यो।

क्यो आत्मा केँ आश्चर्य सँ देखैत अछि, क्यो एकरा आश्चर्यक तरह बतवैत अछि तथा क्यो एकरा आश्चर्यक तरह सुनै अछि, किन्तु क्यो-क्यो एहि विषयमे सुनिक भी किछु नहि समझि पाबैत अछि।

तात्पर्यः विशाल पशु, विशाल वट वृक्ष तथा एक इंच स्थानमे लाख–करोड़क संख्यामे उपस्थित सूक्ष्म कीटाणुक भीतर अणु आत्मा उपस्थिति निश्चित रुप सँ आश्चर्यजनक अछि। वस्तुक स्थूल भौतिक बोधक कारण एहि युगमे अधिकांश व्यक्ति एकर कल्पना नहिक सकै अछि कि एतेक शूक्ष्मकण कोन प्रकार एतेक विराट तथा एतेक लघु बनि सकै अछि। अतः लोग आत्मा केँ ओकर संरचना या ओकर विवरणक आधार पर ही आश्चर्य सँ देखैत अछि। एहि आत्म–ज्ञान केँ समझै लेल भगवद्गीताक उपदेश ग्रहणक लेल जाय। यदि क्यो कोनो तरह सँ आत्माक एहि विषय केँ समझि लैत अछि त ओकर जीवन सफल भऽ जाइत अछि।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥३०॥

देही– भौतिक शरीरक स्वामी; **नित्यम्**– शाश्वत; **अवध्य**– मारल नहि जा सकैत; **अयम्**– एहि आत्मा; **देहे**– शरीरमे; **सर्वस्य**– हर एक केँ; **भारत**– हे भरतवंशी; **तस्मात्**– अत:; **सर्वाणि**– समस्त; **भूतानि**– जीव केँ (जन्म लेव वाला); **न**– कहियो नहि; **त्वम्**– अहाँ; **शोचितुम्**– शोक कर लेल; **अर्हसि**– योग्य हो।

हे भरतवंशी! शरीरमे रहै वाला (देही)क कहियो वध नहि कैल जा सकै अछि। अतः अहाँक कोनो जीवक लेल शोक करैक आवश्यकता नहि अछि।

तात्पर्य: भगवान् कृष्ण आत्मा केँ अमर तथा शरीर केँ नाशवान सिद्ध केलथिन अछि। अत: क्षत्रिय भेलाक नाते अर्जुन केँ एहि भय सँ कि युद्धमे हुनक पितामह भीष्म तथा गुरु द्रोण मारल जेताह, अपन कर्त्तव्य सँ विमुख नहि हेबाक चाही। भौतिक देह सँ भिन्न आत्माक पृथक अस्तित्व स्वीकार करैत ककरो लेल शोक अर्जुन केँ नहि करक चाही। भगवानक आज्ञाक आधार पर उचित ठहरायल जा सकैत अछि।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥३१॥

स्वधर्मम्- अपन धर्म केँ; **अपि**- भी; **च**- निस्सन्देह; **अवेक्ष्य**- विचार कऽ कऽ; **न**- कहियो नहि; **विकम्पितुम्**- संकोच करैक लेल; **अर्हसि**- योग्य हो; **धर्मात्**- धर्मक लेल; **हि**- निस्सन्देह; **युद्धात्**- युद्ध करक अपेक्षा; **श्रेय:**- श्रेष्ठ साधन; **अन्यत्**- कोनो दोसर; **क्षत्रियस्य**- क्षत्रिय क; **न**- नहि; **विद्यते**- अछि।

क्षत्रिय भेलाक नाते अपन विशिष्ट धर्मक विचार करैत अहाँ केँ जानबाक चाही कि धर्मक लेल युद्ध करब सँ बढ़िक अहाँ लेल अन्य कोनो कार्य नहि अछि। अतः अहाँ केँ संकोच करैक कोनो आवश्यकता नहि अछि।

तात्पर्य: युद्धमे विरोधी राजा सँ संघर्ष करैत मरै वाला राजा केँ मृत्युक अनन्तर उच्चलोक प्राप्त होइत छैक। अत: धर्मक लेल युद्ध भूमिमे वध

करब तथा यज्ञाग्नि लेल पशुक वध करब, हिंसा कार्य नहि मानल जाइत अछि किएक तऽ एहिमे निहित धर्मक कारण अछि।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥३२॥

यदृच्छया– अपने आप; **च**– भी; **उपपन्नम्**– प्राप्त भेल; **स्वर्ग**– स्वर्गलोकक; **द्वारम्**– दरवाजा; **अपावृतम्**– खुला; **सुखिनः**– अत्यन्त सुखी; **क्षत्रियाः**– राज परिवारक सदस्य; **पार्थ**– हे पृथा पुत्र; **लभन्ते**– प्राप्त करैत अछि; **युद्धम्**– युद्ध केँ; **ई दृशम्**– एहि तरह।

हे पार्थ! ओ क्षत्रिय गण सुखी छथि जिनका एहन युद्धक अवसर अपने आप प्राप्त भऽ जाइत अछि, जाहि सँ हुनका लेल स्वर्ग लोकक द्वार खुलि जाइत अछि।

तात्पर्यः विश्वक परम गुरु भगवान् कृष्ण अर्जुनक एहि प्रवृत्तिक भर्त्सना करै छथि जखन ओ कहै छथिन्ह जे एहि युद्धमे कोनो लाभ नहि दिख रहल अछि। एहि सँ नरकमे शाश्वत वास करै पड़त। क्षत्रियक धर्मक अनुसार शान्ति व्यवस्था बनाये राखवक लेल तथा नागरिक रक्षाक लेल हिंसा कर पड़ैत अछि। अतः अर्जुन केँ युद्ध सँ विमुख हेवाक कोनो कारण नहि छल। यदि ओ शत्रु केँ जीतता त राज्य भोग करता आओर यदि ओ युद्ध भूमिमे मरता त स्वर्ग जेता जकर द्वार हुनका लेल खुलल छलैन। युद्ध केला सँ दूनू तरफ हुनका लाभ छलैन।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥३३॥

अथ– अतः; **चेत्**– यदि; **त्वम्**– अहाँ; **इमम्**– एहि; **धर्म्यम्**– धर्मरुपी; **संग्रामम्**– युद्ध केँ; **न**– नहि; **करिश्यसि**– करब; **ततः**– तखन; **स्वधर्मम्**– अपन धर्मक; **कीर्तिम्**– यश केँ; **च**– भी; **हित्वा**– खो कऽ; **पापम्**– पापपूर्ण फल; **अवाप्स्यति**– प्राप्त करब।

अतः यदि अहाँ युद्ध करक स्वधर्म केँ सम्पन्न नहि करै छी तऽ अहाँ केँ निश्चित रुप सँ अपन कर्त्तव्यक उपेक्षा करक पाप लागत आओर अहाँ योद्धा रुपमे भी अपन यश गमा देब।

तात्पर्यः अर्जुन विख्यात योद्धा छलाह। शिव, इन्द्र आदि अनेक देवता

सँ युद्ध करक यश अर्जित केने छलाह। शिवजी सँ पाशुपतास्त्र प्राप्त भेल छलैन। द्रोणाचार्य सँ विशेष अस्त्र प्राप्त भेल छलैन जाहि सँ ओ गुरुक भी वध कऽ सकै छलाह। एहि प्रकार ओ अपन धर्मपिता एवं स्वर्गक राजा इन्द्र समेत अनेक अधिकारी सँ अनेक युद्धक प्रमाण पत्र प्राप्त कऽ चुकल छलाह। आब यदि ओ युद्धक परित्याग करता त ओ न केवल क्षत्रिय धर्मक उपेक्षाक दोषी हेता, अपितु हुनकर यशक हानि हेतैन तथा नरक जेबा लेल मार्ग तैयारक लेताह।

अकीर्तिं चापि भूतानि
कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्ति-
र्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

अकीर्तिम्- अपयश; **च**- भी; **अपि**- एकर अतिरिक्त; **भूतानि**- सब लोग; **कथयिष्यन्ति**- कहता; **ते**- अहाँक; **अव्ययाम्**- सदाक लेल; **सम्भावितस्य**- सम्मानित व्यक्तिक लेल; **च**- भी; **अकीर्तिः**- अपयश-अपकीर्ति; **मरणात्**- मृत्यु सँ भी; **अतिरिच्यते**- अधिक होइत अछि।

लोग सदैव अपयशक वर्णन करता आओर सम्मानित व्यक्तिक लेल अपयश त मृत्यु सँ भी बढ़ि कऽ होइत अछि।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण अर्जुन सँ कहै छथिन्ह-अर्जुन! यदि अहाँ युद्ध आरम्भ होइ सँ पूर्व ही युद्ध भूमि छोड़ै छी तऽ लोग अहाँ केँ कायर कहत। हमर सलाह अछि जे अहाँ केँ युद्धमे मरि जाएब ही श्रेयस्कर होएत। तेँ संग्राम सँ पलायन नहि करी अपितु युद्धमे वीरगति प्राप्त करी।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥३५॥

भयात्- भय सँ; **रणात्**- युद्धभूमि सँ; **उपरतम्**- विमुख; **मंस्यन्ते**- मानब; **त्वाम्**- अहाँ केँ; **महारथाः**- पैघ-पैघ योद्धा; **येषाम्**- जकरा लेल; **च**- भी; **त्वम्**- अहाँ; **बहुमतः**- अत्यन्त सम्मानित; **भूत्वा**- भऽ क; **यास्यसि**- जाएब; **लाघवम्**- तुच्छता केँ।

जे-जे महान योद्धा सब अहाँक नाम तथा यश केँ सम्मान देलक अछि ओ सब सोचता कि अहाँ डरक मारे युद्धभूमि छोड़ि देलहुँ

अछि आओर एहि तरह ओ सब अहाँ केँ तुच्छ समझत।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण अर्जुन केँ अपन निर्णय सुना रहल छथिन–''अहाँ ई मत सोचू कि दुर्योधन, कर्ण तथा अन्य समकालीन महारथी ई सोचता कि अहाँ अपन भाई तथा पितामह पर दया करि कऽ युद्धभूमि छोड़लहुँ अछि? ओ सब तऽ इहे सोचता कि अहाँ अपन प्राणक भय सँ युद्धभूमि छोड़लहुँ अछि। एहि प्रकार हुनका सबहक दृष्टिमे अहाँक प्रति जे सम्मान अछि जो सब धूलमे मिलि जाएत।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्॥३६॥

अवाच्य– कटु; **वादान्**– मिथ्या शब्द; **च**– भी; **बहून्**– अनेक; **वदिस्यन्ति**– कहता; **तव**– अहाँक; **अहिताः**– शत्रु; **निन्दतः**– निन्दा करैत; **तव**– अहाँक; **सामर्थ्यम्**– सामर्थ केँ; **ततः**– हुनकर अपेक्षा; **दुःखतरम्**– अधिक दुःखदायी; **नु**– निस्संदेह; **किम्**– आओर की अछि।

अहाँक शत्रु अनेक प्रकारक कटु शब्द सँ अहाँक वर्णन करता आओर अहाँक सामर्थ्यक उपहास करता। अहाँ लेल एहि सँ दुःखदायी आओर की भऽ सकैत अछि।

तात्पर्यः प्रारम्भ सँ ही भगवान् कृष्ण केँ अर्जुनक अयाचित दयाभाव पर आश्चर्य भेल छलैन आओर ओ ओहि दयाभाव केँ अनायोचित बतेने छलथिन। आव विस्तार सँ बतबै छथिन।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥३७॥

हतः– मारल जा कऽ; **वा**– या तो; **प्राप्स्यसि**– प्राप्त करब; **स्वर्गम्**– स्वर्ग लोक केँ; **जित्वा**– विजयी भऽ कै; **वा**– अथवा; **भोक्ष्यसे**– भोगब; **महीम्**– पृथ्वी केँ; **तस्मात्**– अतः; **उत्तिष्ठ**– उठू; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **युद्धाय**– लड़ लेल; **कृत**– दृढ़; **निश्चयः**– संकल्प सँ।

हे कुन्तीपुत्र! अहाँ यदि युद्धमे मारल जाएव तँ स्वर्ग प्राप्त होएत या यदि अहाँ जीत जाएव त पृथ्वीक साम्राज्यक भोग करब। अतः दृढ़ संकल्प करिक खड़ा होउ आओर युद्ध करु।

सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥३८॥

सुख– सुख; **दु:खे**– दु:ख मे; **समे**– समभाव सँ; **कृत्वा**– करि कऽ; **लाभ अलाभौ**– लाभ आओर हानि दूनू; **जय अजयौ**– विजय आओर पराजय दूनू; **ततः**– तत्पश्चात्; **युद्धाय**– युद्ध करै लेल; **युज्यस्व**– करु (लड़ू); **न**– कहियो नहि; **एवम्**– एहि तरह।

अहाँ सुख या दु:ख, हानि या लाभ, विजय या पराजयक विचार कैने बिना युद्धक लेल युद्ध करी, एना केला पर अहाँ केँ कोनो पाप नहि लागत।

तात्पर्य: आब भगवान् कृष्ण प्रत्यक्ष रुप सँ कहै छथिन कि अर्जुन केँ युद्धक लेल युद्ध करबाक चाही किएक तऽ ई हुनकर इच्छा छैन्ह। श्रीमद्भागवातमे कहल गेलै अछि– जे अन्य समस्त कार्य केँ त्यागि कऽ मुकुन्द श्रीकृष्णक शरण ग्रहणक लेलक अछि ओ न तो ककरो ऋणी अछि आओर न ककरो कृतज्ञ चाहे ओ देवता, साधु, सामान्यजन अथवा परिजन, मानव जाति या हुनकर पितर ही किएक न हो। कृष्णभावनामृतक कार्यमे सुख या दु:ख, हानि वा लाभ, जय या पराजय केँ कोनो महत्त्व नहि देल जाइत अछि। दिव्य चेतना तऽ इहै हैत कि हर कार्य कृष्णक निमित्त कएल जाय। अत: भौतिक कार्यक कोनो बन्धन (फल) नहि होइत अछि।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥३९॥

एषा– ई सब; **ते**– तोरा लेल; **अभिहिता**– वर्णन कैल गेल; **सांख्ये**– वैश्लेषिक अध्ययन द्वारा; **बुद्धिः**– बुद्धि; **योगे**– निष्काम कर्ममे; **तु**– लेकिन; **इमाम्**– एकरा; **शृणु**– सुनू; **बुद्धया**– बुद्धि सँ; **युक्तः**– संग-संग; **यथा**– जाहि मे; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **कर्म बन्धम्**– कर्मक बन्धन सँ; **प्रहास्यसि**– मुक्त भऽ जाएब।

एतै हम वैश्लेषिक अध्ययन (सांख्य) द्वारा एहि ज्ञानक वर्णन कैलहुँ अछि। आब निष्काम भाव सँ कर्म करब बता रहल छी– ओकरा सुनु। हे पृथापुत्र! अहाँ यदि एहन ज्ञान सँ कर्म करब त

अहाँ कर्मक बन्धन (फल) सँ अपना केँ मुक्तक सकै छी।

तात्पर्यः मनुष्य केँ ज्ञान लेबाक चाही कि बुद्धियोगक अर्थ कृष्णभावनामृतमे पूर्ण आनन्द तथा भक्तिक ज्ञान सँ कर्म करैत अछि। जे व्यक्ति भगवानक तुष्टिक लेल कर्म करै छथि, चाहे ओ कर्म कतवो कठिन किएक न हो, ओ बुद्धियोगक सिद्धान्तक अनुसार कार्य करैत अछि आओर दिव्य आनन्दक अनुभव करैत अछि। एहन दिव्य व्यस्तताक कारण हुनका भगवत्कृपा सँ स्वतः सम्पूर्ण दिव्य ज्ञान प्राप्त भऽ जाइत छैन्ह आओर ज्ञान प्राप्त करक लेल अतिरिक्त श्रम केने बिना ही हुनका पूर्ण मुक्ति भऽ जाइत अछि। बुद्धियोग अपना द्वारा सम्पन्न कार्यक दिव्य गुण अछि।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥४०॥

न– नहि; **इह**– एहि योग मे; **अभिक्रम**– प्रयत्न करए मे; **नाशः**– हानि; **अस्ति**– अछि; **प्रत्यवायः**– ह्रास; **न** – कहियो नहि; **विद्यते**– अछि; **सु**– अल्पम्– थोड़ा; **अपि**– यद्यपि; **अस्य**– एकर; **धर्मस्य**– धर्मक; **त्रायते**– मुक्त करैत अछि; **महतः**– महान; **भयात्**– भय सँ।

एहि प्रयासमे न त हानि होइत अछि न ही ह्रास अपितु एहि रास्ता पर कैल गेल अल्प प्रगति भी महान भय सँ रक्षाक सकैत अछि।

तात्पर्यः भौतिक कार्य तथा ओकर फल शरीरक साथ ही समाप्त भऽ जाइत अछि, किन्तु कृष्णभवनामृतमे कैल कार्य मनुष्य केँ विनष्ट भेला पर भी पुनः कृष्णभावनामृत तक ल जाइत अछि। कम सँ कम एतेक त निश्चित अछि कि अगिला जन्ममे सुसंस्कृत परिवारमे शरीर प्राप्तक सकत, जाहि सँ ओकरा भविष्यमे ऊपर उठैक अवसर प्राप्त हैतैक। कृष्णभावनामृतमे सम्पन्न कार्यक यही अनुपम गुण अछि।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥४१॥

व्यवसाय आत्मिका– कृष्णभावनामृतमे स्थिर; **बुद्धिः**– बुद्धि; **एका**– एकमात्र; **इह**– एहि संसारमे; **कुरु नन्दन** – हे कुरुक प्रिय पुत्र; **बहुशाखाः**– अनेक शाखामे विभक्त; **हि**– निस्संदेह; **अनन्ताः**– असीम;

च– भी; **बुद्धयः**– बुद्धि; **अव्यवसायिनाम्**– जे कृष्णभावनामृतमे नहि अछि ओकर।

जे एहि मार्ग पर चलै छथि, ओ प्रयोजनमे दृढ़ रहै छथि आओर हुनकर लक्ष्य भी एक होइत अछि। हे कुरु नन्दन! जे दृढ़ प्रतिज्ञ नहि छथि हुनकर बुद्धि अनेक शाखामे विभक्त रहैत छैन।

तात्पर्यः ई दृढ़ श्रद्धा कि कृष्णभावनामृत द्वारा मनुष्य जीवनक सर्वोच्च सिद्धि प्राप्तक सकत, व्यवसायात्मिका बुद्धि कहलावैत अछि। श्रद्धाक अर्थ अछि कोनो अलौकिक वस्तुमे अटूट विश्वास। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अत्यन्त दुर्लभ जीव अछि जे भली भाँति जानै अछि कि वासुदेव या कृष्ण समस्त प्रकट कारणक मूल कारण छथि। जाहि प्रकार वृक्षक जड़ सींचला पर स्वतः ही पत्ता तथा टहनी सबमे जल पहुँच जाइत अछि ओहि तरह कृष्णभावनाभावित भेला पर मनुष्य प्रत्येक प्राणीक अर्थात् अपन परिवार क, समाजक, मानवताक सर्वोच्च सेवाक सकत। यदि मनुष्यक कर्म सँ कृष्ण प्रसन्न भऽ जाइथ तो प्रत्येक व्यक्ति सन्तुष्ट भऽ जायत। गुरुक तुष्टि सँ भगवान् भी प्रसन्न होइत छथि। गुरु केँ बिना प्रसन्न केने कृष्णभावनामृतक स्तर तक पहुँच पायब कोनो सम्भावना नहि रहत।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥४३॥

याम् इमाम्– ये सब; **पुष्पिताम्**– दिखावटी; **वाचम्**– शब्द; **प्रवदन्ति**– कहै छथि; **अविपश्चितः**– अल्पज्ञ व्यक्ति; **वेद वाद रताः**– वेदक अनुयायी; **पार्थ**– हे पार्थ; **न** – कहियो नहि; **अन्यत्**– अन्य किछु; **अस्ति**– अछि; **इति**– एहि प्रकार; **वादिनः**– बोल वाला; **काम आत्मानः**– इन्द्रियतृप्तिक इच्छुक; **स्वर्गपराः**– स्वर्ग प्राप्तिक इच्छुक; **जन्मकर्म-फलप्रदाम**– उत्तम जन्म तथा अन्य सकाम कर्मफल प्रदान करएवाला; **क्रिया विशेष**– भड़कीला उत्सव; **बहुलाम्**– विविध; **भोग**– इन्द्रियतृप्ति; **ऐश्वर्य**– तथा ऐश्वर्य; **गतिम्**– प्रगति; **प्रति**– ओर।

अल्पज्ञानी मनुष्य वेदक ओहि अलंकारिक शब्दक प्रति अत्यधिक

आसक्त रहै छथि, जे स्वर्गक प्राप्ति, अच्छा जन्म शक्ति आदिक लेल विविध सकाम कर्म करक संस्तुति करै छथि। इन्द्रियतृप्ति तथा ऐश्वर्यमय जीवनक अभिलाषाक कारण ओ कहै छथि जे एहि सँ बढ़िक आओर किछु नहि अछि।

तात्पर्यः वेदमे कहल गेलै अछि कि जे स्वर्गक इच्छुक छथि हुनका ई यज्ञ सम्पन्न करक चाही। अल्पज्ञानी पुरुष सोचै छथि कि वैदिक ज्ञानक पूरा अभिप्राय एतबे अछि। एहि श्रेणीक लोगक लेल कृष्णभावनामृतक दृढ़ कर्ममे स्थित हैव अत्यन्त कठिन अछि। जाहि प्रकार मूर्ख लोग बिषैला वृक्षक फूलक प्रति बिना जानने कि एहि आकर्षणक फल की होएत, आसक्त रहै छथि, ओहि प्रकार अज्ञानी व्यक्ति स्वर्गिक ऐश्वर्य तथा तज्जनित इन्द्रिय भोगक प्रति आकृष्ट रहै छथि।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥४४॥

भोग– भौतिक भोग; **ऐश्वर्य**– ऐश्वर्यक प्रति; **प्रसक्तानाम्**– आसक्तक लेल; **तया**– एहन वस्तु सँ; **अपहृत चेतसाम्**– मोहग्रसित चित्तवाला; **व्यसाय आत्मिकाः**– दृढ़ निश्चय वाली; **बुद्धिः**– भगवानक भक्ति; **समाधौ**– नियन्त्रित मनमे; **न**– कहियो नहि; **विधीयते**– घटित होइत अछि।

जे व्यक्ति इन्द्रियभोग तथा भौतिक ऐश्वर्यक प्रति अत्यधिक आसक्त भेला सँ एहन वस्तु सँ मोहग्रस्त भऽ जाइत छथि, हुनका मनमे भगवानक प्रति भक्तिक दृढ़ निश्चय नहि होइत अछि।

तात्पर्यः जखन मन आत्मा केँ समझैमे स्थिर रहैत अछि त ओकरा समाधि कहल जाइत अछि। जे लोग इन्द्रिय भोगमे रुचि राखैत छथि अथवा जे एहन क्षणिक वस्तु सँ मोहग्रस्त छथि हुनका लेल समाधि कहियो भी सम्भव नहि अछि। मायाक चक्करमे पड़ि कऽ ओ न्यूनाधिक पतन केँ प्राप्त करैत छथि।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥४५॥

त्रैगुण्य– प्राकृतिक तीनू गुण सँ सम्बन्धित; **विषयाः**– विषयमे; **वेदाः**– वैदिक साहित्य; **निस्त्रैगुण्यः**– प्रकृतिक तीनू गुण सँ परे; **भव**– होओ;

अर्जुन– हे अर्जुन; **निर्द्वन्द्वः**– द्वैतभाव सँ मुक्त; **नित्य सत्व स्थः**– नित्य शुद्धसत्वमे स्थित; **निर्योग क्षेमः**– लाभ तथा रक्षाक भाव सँ मुक्त; **आत्मवान्**– आत्मामे स्थित।

वेदमे मुख्यतया प्रकृतिक तीनू गुणक वर्णन भेल अछि। हे अर्जुन! एहि तीनू गुण सँ ऊपर उठू। समस्त द्वैत आओर लाभ तथा सुरक्षाक सब चिन्ता सँ मुक्त भऽकऽ आत्मपरायण बनू।

तात्पर्यः जाधरि भौतिक शरीरक अस्तित्व अछि ताधरि भौतिक गुणक क्रिया-प्रतिक्रिया सब होइत रहत। मनुष्य केँ चाही कि सुख-दुःख या शीत-ग्रीष्म जेना द्वैतताक सहन कर सीखू आओर एहि प्रकार हानि-लाभक चिन्ता सँ मुक्त भऽ जाउ। जखन मनुष्य कृष्णक इच्छा पर पूर्णतया आश्रित रहैत अछि तऽ ओकरा दिव्य अवस्था प्राप्त होइत अछि।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।४६।।

यावान्– जते किछु; **अर्थः**– प्रयोजन होइत अछि; **उद-पाने**– नलकूपमे; **सर्वतः**– सब प्रकार सँ; **सम्प्लुत उदके**– विशाल जलाशयमे; **तावान्**– ओहि तरह; **सर्वेषु**– समस्त; **वेदेषु**– वेदमे; **ब्राह्मणस्य**– परब्रह्म केँ जानैवाला; **विजानतः**– पूर्ण ज्ञानीक।

एक छोट सँ कूपक सब कार्य एक विशाल जलाशय सँ तुरन्त पूरा भऽ जाइत अछि। एहि प्रकार वेद व आन्तरिक तात्पर्य जान वाला केँ ओकर सब प्रयोजन सिद्ध भऽ जाइत अछि।

तात्पर्यः– वेद अध्ययनक ध्येय जगतक आदि कारण भगवान् कृष्ण केँ जानब। अतः आत्मसाक्षात्कारक अर्थ अछि-कृष्ण केँ तथा हुनके संग अपन शाश्वत सम्बन्ध केँ समझब। जीवात्मा भगवानक अंश स्वरुप अछि। अतः प्रत्येक जीव द्वारा कृष्णभावनामृत केँ जागृत करब वैदिक ज्ञानक सर्वोच्च पूर्णावस्था अछि। वेदान्त दर्शनक प्रणेता तथा ज्ञाता भगवान् कृष्ण छथि। सबसँ पैघ वेदान्ती तऽ ओ महात्मा छथि जे भगवानक पवित्र नामक जप करमे आनन्द लैत छथि। हे प्रभो, अहाँक पवित्र नामक जाप कर वाला चाण्डाल जेना निम्न परिवारमे भलेही उत्पन्न भेल हो, किन्तु ओ आत्म साक्षात्कारक सर्वोच्च पद पर स्थित होइत छथि।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥४७॥

कर्मणि– कर्म करएमे; **एव**– निश्चय ही; **अधिकारः**– अधिकार; **ते**– अहाँक; **मा**– कहियो नहि; **कदाचन**– कदापि; **कर्मफल**– कर्मक फल; **हेतुः**– कारण; **भूः**– होओ; **मा**– कहियो नहि; **ते**– अहाँक; **संगः**– आसक्ति; **अस्तु**– हो; **अकर्मणि**– कर्म नै करएमे; **फलेषु**– कर्म फलमे।

अहाँ केँ अपन कर्म (कर्त्तव्य) करक अधिकार अछि, किन्तु कर्मक फलक अहाँ अधिकारी नहि होउ। अहाँ न त कहियो अपने आप केँ कर्मक फलक कारण मानू, न ही कर्म नहि करैमे कहियो आसक्त होओ।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण अर्जुन केँ उपदेश देलखिन कि ओ निष्क्रिय नहि हो, अपितु फलक प्रति बिना आसक्त हुए अपन कर्म करी। कर्म फलक प्रति आसक्त रह वाला भी कर्मक कारण अछि। एहि तरह ओ एहन कर्मफलक भोक्ता होइत छथि। अतएव भगवान् अर्जुन केँ फलासक्ति रहित भऽकऽ कर्मक रुपमे युद्ध करक आज्ञा देलथिन। अर्जुनक युद्ध विमुख भेनाई आसक्तिक दोसर पहलू अछि। एहन आसक्ति सँ कहियो मुक्ति पथक प्राप्ति नहि भऽ सकत। आसक्ति चाहे स्वीकारात्मक हो या निषेधात्मक, ओ बन्धनक कारण अछि। अकर्म पापमय अछि। अतः कर्त्तव्यक रुपमे युद्ध करब ही अर्जुनक लेल मुक्तिक एकमात्र कल्याणकारी मार्ग छल।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥४८॥

योगस्थः– समभाव भऽकऽ; **कुरु**– करु; **कर्माणि**– अपन कर्म; **संगम्**– आसक्ति केँ; **व्यक्त्वा**– त्याग कऽ; **धनंजयः**– हे अर्जुन; **सिद्धि-असिद्धियोः**– सफलता तथा विफलतामे; **समः**– समभाव; **भूत्वा**– भऽ क; **समत्वम्**– समता; **योगः**– योग; **उच्यते**– कहल गेलै अछि।

हे अर्जुन! जय अथवा पराजयक समस्त आसक्ति त्यागक समभाव सँ अपन कर्म करु। एहन समता योग कहावैत अछि।

तात्पर्यः कृष्ण अर्जुन सँ कहै छथिन कि ओ योगमे स्थित भऽकऽ

कर्म करथि। योगक अर्थ अछि सदैव चंचल रह वाली इन्द्रिय केँ वशमे राखैत परमतत्त्वमे मन केँ एकाग्र करी। भगवान् ही परमतत्त्व छथि आओर चूँकी ओ स्वयं अर्जुन केँ युद्धक लेल कहि रहल छथिन, अतः अर्जुन केँ युद्धक फल सँ कोनो सरोकार नहि छैन्ह। जय अथवा पराजय कृष्णक लेल विचारणीय अछि, अर्जुन केँ तो बस श्रीकृष्णक निर्देशानुसार कर्म करक चाही। कृष्णक निर्देशक पालन ही वास्तविक योग अछि आओर एकर अभ्यास कृष्णभावनामृत नामक विधि द्वारा कैल जाइत अछि।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥४९॥

दूरेण– दूर ही सँ त्याग दिअ; **हि**– निश्चय ही; **अवरम्**– गर्हित, निन्दनीय; **कर्म**– कर्म; **बुद्धियोगात्**– कृष्णभावनामृतक बल पर; **धनञ्जय**– हे सम्पति केँ जीत वाला; **बुद्धौ**– एहन चेतनामे; **शरणम्**– पूर्ण समर्पण, आश्रय; **अन्विच्छ**– प्रयत्न करी; **कृपणाः**– कंजूस व्यक्ति; **फल-हेतवः**– सकाम कर्मक अभिलाषा वाला।

हे धनंजय! भक्तिक द्वारा समस्त गर्हित कर्म सँ दूर रहू आओर ओही भाव सँ भगवानक शरण ग्रहण करु। जे व्यक्ति अपन सकाम कर्मफल केँ भोग चाहै छथि ओ कृपण छथि।

तात्पर्यः मनुष्य केँ अपन सब शक्ति कृष्णभावनामृत अर्जित करमे लगाब चाही। एहि सँ ओकर जीवन सफल भऽ जाएत। कृपणक भाँति अभागल व्यक्ति अपन मानवी शक्ति केँ भगवानक सेवामे नहि लगवैत अछि। हर व्यक्ति केँ भगवानक दास रुपमे अपन स्वरुप केँ समझि लेवा के चाही। जीवक लेल एहन भक्ति कर्मक उचित मार्ग अछि।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥५०॥

बुद्धि युक्तः– भक्तिमे लागल रहै वाला; **जहाति**– मुक्त भऽ सकैत अछि; **इह**– एहि जीवन मे; **उभे**– दूनू; **सुकृत दुस्कुते**– अच्छा तथा बुरा फल; **तस्मात्**– अतः; **योगाय**– भक्तिक लेल; **युज्यस्व**– एहि तरह लागि जाउ; **योगः**– कृष्णभावनामृत; **कर्मसु**– समस्त कार्यमे; **कौशलम्**– कुशलता, कला।

भक्तिमे संलग्न मनुष्य एहि जीवनमे ही अच्छा तथा बुरा कार्य सँ अपना केँ मुक्तक लैत छथि। अतः योगक लेल प्रयत्न करु किएक तऽ सब कार्य कौशल (कला) इहै अछि।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥५१॥

कर्मजम्– सकाम कर्मक कारण; **बुद्धि युक्ताः**– भक्तिमे लागल; **हि**– निश्चय ही; **फलम्**– फल; **व्यक्त्वा**– त्याग कऽ; **मनीषिणः**– पैघ-पैघ ऋषि- मुनि या भक्तगण; **जन्म बन्ध**– जन्म तथा मृत्युक बन्धन सँ; **विनिर्मुक्ताः**– मुक्त; **पदम्**– पद पर; **गच्छन्ति**– पहुँचैत अछि; **अनामयम्**– बिना कष्ट कऽ।

एहि तरह भगवद्भक्तिमे लागल रहिक पैघ-पैघ ऋषि, मुनि अथवा भक्तगण अपने आप केँ एहि भौतिक संसारमे कर्मक फल सँ मुक्तक लैत छथि। एहि प्रकार ओ जन्म-मृत्युक चक्र सँ छूटि जाइत छथि आओर भगवानक पास जाक ओहि अवस्था केँ प्राप्त करै छथि, जे समस्त दुःख सँ परे अछि।

तात्पर्यः जे मुकुन्द भगवानक चरण कमल रुपी नाव केँ ग्रहणक लेलक अछि हुनका लेल ई भवसागर गोखुरमे समायल जलक समान अछि। जे अपने आप केँ भगवानक सेवामे लगा दैत अछि ओ तुरन्त ही वैकुण्ठलोक जेवाक अधिकारी भऽ जाइत छथि। भगवानक सेवा कर्मयोग या बुद्धियोग कहलावैत अछि। जकरा स्पष्ट शब्दमे भगवत्भक्ति कहल जाइत अछि।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥५२॥

यदा– जखन; **ते**– अहाँक; **मोह**– मोहक; **कलिलं**– घना जंगल; **बुद्धि**– बुद्धिमय दिव्य सेवा; **व्यतितरिष्यति**– पार कऽ जाइत अछि; **तदा**– ओ समय; **गन्ता असि**– अहाँ जाएव; **निर्वेदम्**– विरक्ति; **श्रोतव्यस्य**– सुनै योग्यक प्रति; **श्रुतस्य** – सुनललक; **च**– भी।

जखन अहाँक बुद्धि मोह रुपी सघन वनक पार कऽ लेत तो अहाँ सुनल तथा सुनै योग्य सब हक प्रति अन्यमनस्क भऽ जाएव।

तात्पर्यः भगवत्भक्तक जीवनमे अनेक उदाहरण प्राप्त अछि, जिनका सब केँ भगवत्भक्तिक कारण वैदिक कर्मकाण्ड सँ विरक्त भऽ गेलैन। जखन मनुष्य श्रीकृष्ण केँ तथा हुनका संग अपन सम्बन्ध केँ वास्तविक रुपमे समझि लैत अछि, तो ओ सकाम कर्मक अनुष्ठानक प्रति पूर्णतया अन्यमनस्क भऽ जाइत छथि। भलेही ही ओ अनुभवी व्यक्ति किएक न हो? यदि क्यो परमेश्वर कृष्णक सेवाक ज्ञान प्राप्त करै छथि तो हुनका शास्त्रमे वर्णित विभिन्न प्रकारक तपस्या तथा यज्ञ करक आवश्यकता नहि रहि जाइत अछि। चैतन्य महाप्रभु कहै छथि– भले ही सब किछु नष्ट भऽ जाए, किन्तु भगवत्सम्बन्ध नहि टूटक चाही। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति शब्द ब्रह्मक सीमा या वेद तथा उपनिषदक परिधि केँ भी लाँघि जाइत अछि।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥५३॥

श्रुति– वैदिक ज्ञानक; **विप्रतिपन्ना**– कर्मफल सँ प्रभावित भेला बिना; **ते**– अहाँक; **यदा**– जखन; **स्थास्यति**– स्थिर भऽ जाइत; **निश्चला**– एक निष्ठ; **समाधौ**– दिव्य चेतना या कृष्णभावनामृतमे; **अचला**– स्थिर; **बुद्धिः**– बुद्धि; **तदा**– तखन; **योगम्**– आत्म साक्षात्कार; **अवाप्स्यसि**– अहाँ प्राप्त करब।

जखन अहाँक मन वेदक अलंकारमयी भाषा सँ विचलित न हो आओर ओ आत्म साक्षात्कारक समाधिमे स्थिर भऽ जाए, तखन अहाँ केँ दिव्य चेतना प्राप्त भऽ जाएत।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति या भगवानक एकनिष्ठ भक्त केँ न तो वेदक अलंकारमयी वाणी सँ विचलित हेबाक चाही, न ही स्वर्ग जेबाक उद्देश्य सँ सकाम कर्म क, परिणामस्वरुप निश्चयात्मक ज्ञानक प्राप्ति निश्चित अछि। ओकरा कृष्ण या हुनकर प्रतिनिधि गुरुक आज्ञाक पालन मात्र करबाक चाही।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥५४॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलखिन; **स्थित प्रज्ञस्य**– कृष्णभावनामृतमे स्थिर भेल व्यक्तिक; **का**– की; **भाषा**– भाषा; **समाधि स्थस्य**– समाधिमे स्थित व्यक्तिक; **केशव**– हे कृष्ण; **स्थित धीः**– कृष्णभावनामे स्थिर व्यक्ति; **किम्**– की; **प्रभाषेत**– बाजै अछि; **किम्**– केना; **आसीत**– रहैत अछि; **व्रजेत**– चलैत अछि; **किम्**– केना।

अर्जुन कहलखिन– हे कृष्ण! अध्यात्ममे लीन चेतनावला व्यक्ति (स्थितप्रज्ञ)क की लक्षण छियै? ओ कोना बाजै छथि तथा हुनकर भाषा की होइत छैन्ह? ओ कोना उठै छथि आ कोना चलै छथि।

तात्पर्यः जेना प्रत्येक व्यक्तिक ओकर विशिष्ट स्थितिक अनुसार किछु लक्षण होइत अछि ओहिना कृष्णभावनाभावित पुरुषक भी विशिष्ट स्वभाव होइत अछि। यथा हुनकर बाजब, चलब, सोचब आदि। कृष्णभावनाभावित व्यक्तिक सर्व प्रमुख लक्षण ई अछि कि केवल कृष्ण तथा हुनका सँ सम्बद्ध विषयक बारेमे चर्चा करैत छथि।

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥५५॥

श्रीभगवान् उवाच– श्री भगवान् कहलखिन; **प्रजहाति**– त्यागैत अछि; **यदा**– जखन; **कामान्**– इन्द्रियतृप्तिक इच्छा; **सर्वान्**– सब प्रकारक; **पार्थ**– हे पृथा पुत्र; **मनः गतान्**– मनोरथक; **आत्मनि**– आत्माक शुद्ध अवस्थामे; **एव**– निश्चय ही; **आत्मना**– विशुद्ध मन सँ; **तुष्टः**– संतुष्ट, प्रसन्न; **स्थितप्रज्ञः**– आध्यात्ममे स्थित; **तदा**– ओहि समय, तखन; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

श्रीभगवान् कहलखिन– हे पार्थ! जखन मनुष्य मनोधर्म सँ उत्पन्न हुअवला इन्द्रियतृप्तिक समस्त कामनाक परित्यागक दैत अछि आओर जखन एहि तरह सँ विशुद्ध भेल हुनकर मन आत्मामे संतोष प्राप्त करैत अछि तो ओ विशुद्ध दिव्य चेतनाक प्राप्त (स्थितप्रज्ञ) कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः श्रीमद् भागवतमे पुष्टि भेलै अछि कि जे मनुष्य भगवत्भक्त होइत छथि हुनकामे महर्षिक समस्त सद्गुण पाओल जाइत अछि किन्तु

जे व्यक्ति आध्यात्ममे स्थित नहि होइत छथि हुनकामे एकोटा योग्यता नहि होइत छैन्ह किएक तऽ ओ अपने मनोधर्म पर आश्रित रहैत छथि। तै व्यक्ति केँ मनोधर्म द्वारा कल्पित सब विषय-वासना केँ त्यागए पड़ै अछि। कृत्रिम साधन सँ एकरा रोकब सम्भव नहि अछि। तेँ मनुष्य केँ बिना झिझकक कृष्णभावनामृतमे लागक चाही किएक तऽ ई भक्ति हुनका दिव्य चेतना प्राप्त करमे सहायक हेतैन। आध्यात्मिक पुरुष हुनका पास भौतिकता सँ उत्पन्न एकोटा भी विषय वासना नहि फटक सकैत अछि। ओ सदैव अपना केँ भगवानक मानि सहज रुपमे प्रसन्न रहै छथि।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥५६॥

दुःखेषु- तीनू तापमे; **अनुद्विग्न मनाः**- मनमे विचलित हुए बिना; **सुखेषु**- सुख मे; **विगतस्पृहः**- रूचि रहित भेला पर; **वीत**- मुक्त; **राग**- आसक्ति; **भय**- भय; **क्रोध**- क्रोध सँ; **स्थितधीः**- स्थिर मनवाला; **मुनिः**- मुनि; **उच्यते**- कहलावैत अछि।

जे त्रय तापक भेला पर भी मनमे विचलित नहि होइत छथि अथवा सुखमे प्रसन्न नहि होइत छथि आओर जे आसक्ति, भय तथा क्रोध सँ मुक्त छथि, ओ स्थिर मनवाला मुनि कहलावैत छथि।

तात्पर्यः स्थितधीः मुनि सदैव कृष्णभावनाभावित रहैत छथि किएक तऽ ओ सब सृजनात्मक चिन्तन पूरा कऽ चुकल रहै छथि। ओ एहि निष्कर्ष पर पहुँच जाइत छथि कि भगवान् श्रीकृष्ण ही सब किछु छथि। ओ स्थिरचित्त मुनि कहलावैत छथि। ओ राग या विराग सँ प्रभावित नहि होइत छथि। रागक अर्थ होइत अछि- अपन इन्द्रियतृप्तिक लेल वस्तु केँ ग्रहण करब आओर विरागक अर्थ अछि- एहन इन्द्रिय आसक्तिक अभाव। किन्तु कृष्णभावनामृतमे स्थिर व्यक्तिमे न राग होइत अछि न विराग किएक तऽ हुनकर पूरा जीवन ही भगवत्सेवामे अर्पित रहैत अछि। फलतः सब प्रयास असफल भेला पर भी क्रुद्ध नहि होइत छथि। चाहे विजय हो या न हो। संकल्पक पक्का होइत छथि।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥५७॥

यः– जे; **सर्वत्र**– सब जगह; **अनभिस्नेहः**– स्नेहशून्य; **तत्**– ओहि; **प्राप्य**– प्राप्त करक; **शुभ**– अच्छा; **अशुभम्**– बुरा; **न** – कहियो नहि; **अभिनन्दति**– प्रशंसा करैत छथि; **न**– कहियो नहि; **द्वेष्टि**– द्वेष करैत छथि; **तस्य**– हुनका; **प्रज्ञा**– पूर्ण ज्ञान; **प्रतिष्ठिता**– अचल।

एहि भौतिक जगतमे जे व्यक्ति न तो शुभक प्राप्ति सँ हर्षित होइत छथि आओर न अशुभक प्राप्त भेला पर ओहि सँ घृणा करैत छथि, ओ पूर्ण ज्ञानमे स्थिर रहैत छथि।

तात्पर्यः जाधरि मनुष्य एहि भौतिक संसारमे रहै छथि ताधरि अच्छाई या बुराईक सम्भावना रहैत अछि किएक तऽ संसार द्वैत सँ पूर्ण अछि। किन्तु जखन कृष्णभावनामृतमे स्थिर भऽ जाइत छथि तखन ओ अच्छाई या बुराई सँ अछूता भऽ जाइत छथि किएक तऽ ओकर सरोकार कृष्ण सँ रहैत अछि जे सर्वमंगलमय छथि।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गनीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥५८॥

यदा– जखन; **संहरते**– समेट लैत अछि; **च**– भी; **कूर्मः**– कछुवा; **अंगानि**– अंग; **इव**– सदृश; **सर्वशः**– एक साथ; **इन्द्रियाणि** – इन्द्रियाँ; **इन्द्रिय-अर्थेभ्यः**– इन्द्रियविषय सँ; **तस्य**– ओकर; **प्रज्ञा**– चेतना; **प्रतिष्ठिता**– स्थिर।

जाहि प्रकार कछुवा अपन अंग केँ संकुचितक केँ खोलक भीतरक लैत अछि, ओहि तरह जे मनुष्य अपन इन्द्रिय केँ इन्द्रिय विषय सँ खीच लैत अछि, ओ पूर्ण चेतनामे दृढ़तापूर्वक स्थिर रहै छथि।

तात्पर्यः अर्जुन केँ उपदेश देल जा रहल अछि कि ओ अपन इन्द्रियक आत्मतुष्टिमे नहि करि कऽ भगवानक सेवामे लगावथि अपन इन्द्रिय केँ सदैव भगवानक सेवामे लगाक राखल जाए कछुवा द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्तक अनुरुप अछि जे अपन इन्द्रिय केँ समटिक राखैत अछि।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥५९॥

विषयाः– विषय भोगक वस्तु; **विनिवर्तन्ते**– दूर रहैक लेल अभ्यास; **निराहारस्य**– निषेधात्मक प्रतिबन्ध सँ; **देहिनः**– देहवान जीवक लेल;

रस-वर्जम्- स्वादक त्याग करब; **रसः**- भोगेच्छा; **अपि**- यद्यपि; **अस्य**- ओकर; **परम्**- अत्यन्त उत्कृष्ट वस्तु; **दृष्ट्वा**- अनुभव भेला पर; **विवर्तते**- ओ समाप्त भऽ जाइत अछि।

देहधारी जीव इन्द्रियभोग सँ भले ही निवृत्त भऽ जाए पर ओकरामे इन्द्रिय भोगक इच्छा बनल रहैत अछि। लेकिन उत्तम रसक अनुभव भेला सँ एहन कार्य बन्द केला पर ओ भक्तिमे स्थिर भऽ जाइत छथि।

तात्पर्यः जाधरि क्यो आध्यात्म केँ प्राप्त न हो ताधरि इन्द्रिय भोग सँ विरत भेनाइ असम्भव अछि। जे व्यक्ति कृष्णभावनामृतक पथ पर प्रगतिक क्रममे परमेश्वर कृष्णक सौन्दर्यक रसास्वादनक लेलक अछि, ओकरा जड़ भौतिक वस्तुमे कोनो रुचि नहि रहि जाइत अछि।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥६०॥

यततः- प्रयत्न करैत; **हि**- निश्चय ही; **अपि**- भी, बाबजूद; **कौन्तेय**- हे कुन्तीपुत्र; **पुरुषस्य**- पुरुषक; **विपश्चितः**- विवेक सँ युक्त; **इन्द्रियाणि**- इन्द्रिय सब; **प्रमाथीनि**- उत्तेजित; **हरन्ति**- फेंकैत अछि; **प्रसभम्**- बल सँ; **मनः**- मन केँ।

हे अर्जुन! इन्द्रिय एतेक प्रबल तथा वेगवान अछि कि ओ ओहि विवेकी पुरुषक मन केँ भी बलपूर्वक हरणक लैत छैक, जे ओकरा वशमे करक प्रयास करैत अछि।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥६१॥

तानि- ओहि इन्द्रिय केँ; **सर्वाणि**- समस्त; **संयम्य**- वशमे कऽ; **युक्तः**- लागल; **आसीत**- स्थित हैब; **मत् परः**- हमरामे; **वशे**- पूर्णतया वशमे; **हि**- निश्चय ही; **यस्य**- जकर; **इन्द्रियाणि**- इन्द्रिय; **तस्य**- ओकर; **प्रज्ञा**- चेतना; **प्रतिष्ठिता**- स्थिर।

जे इन्द्रिय केँ पूर्णतया वशमे राखैत इन्द्रिय संयमन करैत छथि आओर अपन चेतना केँ हमरामे स्थिरक दैत छथि, ओ मनुष्य

स्थिरबुद्धि कहबैत छथि।

तात्पर्यः दुर्वासा मुनिक झगड़ा महाराज अम्बरीश सँ भेलनि, किएक तऽ ओ गर्ववश महाराज अम्बरीश पर क्रुद्ध भऽ गेलथि, जाहि सँ अपन इन्द्रिय पर काबू नहि राखि सकताह। दोसर तरफ यद्यपि राजा मुनिक समान योगी नहि छलाह किन्तु ओ कृष्ण भक्त छलाह आओर मुनिक सब अन्याय सहि लेलथि कारण स्थिरबुद्धि छलाह। राजा अपन इन्द्रिय केँ वशमेक सकलाह, जाहि सँ ओ विजयी भेलाह।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥६२॥

ध्यायतः- चिन्तन करैत; **विषयान्**- इन्द्रिय विषय केँ; **पुंसः**- मनुष्यक; **सङ्ग**- आसक्ति; **तेषु**- ओहि इन्द्रियक विषय मे; **उपजायते**- विकसित होइत अछि; **सङ्गात्**- आसक्ति सँ; **संजायते**- विकसित होइत अछि; **कामः**- इच्छा; **कामात्**- इच्छा सँ; **क्रोधः**- क्रोध; **अभिजायते**- प्रकट होइत अछि।

इन्द्रियक चिन्तन करैत मनुष्य केँ ओहिमे आसक्ति भऽ जाइत अछि आओर एहन आसक्ति सँ काम उत्पन्न होइत अछि आओर फेर काम सँ क्रोध प्रकट होइत अछि।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥६३॥

क्रोधात्- क्रोध सँ; **भवति**- होइत अछि; **सम्मोहः**- पूर्णमोह; **सम्मोहात्**- मोह सँ; **स्मृति**- स्मरणशक्ति क; **विभ्रम**- मोह; **स्मृति भ्रंशात्**- स्मृतिक मोह सँ; **बुद्धि नाशः**- बुद्धिक विनाश; **बुद्धि नाशात्**- तथा बुद्धिनाश सँ; **प्रणश्यति**- अधः पतन होइत अछि।

क्रोध सँ पूर्ण मोह उत्पन्न होइत अछि आओर मोह सँ स्मरणशक्तिक विभ्रम भऽ जाइत अछि। जखन स्मरणशक्ति भ्रमित होइत अछि, तो बुद्धि नष्ट भऽ जाइत अछि आओर बद्धि नष्ट भेला पर मनुष्य भव कूपमे पुनः गिर जाइत अछि।

रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥६४॥

राग– आसक्ति; **द्वेष**– तथा वैराग्य सँ; **विमुक्तैः**– मुक्ति कर वाला सँ; **तु**– लेकिन; **विषयान्**– इन्द्रिय विषय क; **इन्द्रियैः**– इन्द्रिय द्वारा; **चरन्**– भोगैत; **आत्मवश्यैः**– अपन वश मे; **विधेय्आत्मा**– नियमित स्वाधीनता पालक; **प्रसादम्**– भगवत्कृपा केँ; **अधिगच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

किन्तु समस्त राग तथा द्वेष सँ मुक्त एवं अपन इन्द्रिय केँ संयम द्वारा वश करमे समर्थ व्यक्ति भगवानक पूर्ण कृपा प्राप्तक सकैत अछि।

तात्पर्यः भक्त कृष्णभावनामृतमे रहिक प्रसाद ग्रहण करैत अछि, जबकि अभक्त एकरा पदार्थक रुपमे तिरस्कारक दैत अछि। अतः निर्विशेषवादी अपन कृत्रिम त्यागक कारण जीवन केँ भोग नहि पावैत अछि आओर इहै कारण अछि कि मनक थोड़े सँ विचलन भेला सँ ओ भव कूपमे पुनः गिरि जाइत अछि। कहल गेलै अछि कि मुक्तिक स्तर पर पहुँच गेला पर भी एहन जीव नीचा गिर जाइत अछि।

कृष्णभावनाभावित व्यक्ति विषय–कर्ममे आसक्त नहि होइत छथि। हुनकर एक मात्र उद्देश्य तो कृष्ण केँ प्रसन्न करनाई रहैत अछि। अतः ओ समस्त आसक्ति तथा विरक्ति सँ मुक्त रहैत छथि। कर्म करब या नहि करब हुनका वशमे रहैत अछि परन्तु ओ केवल कृष्णक आदेशक अनुसार ही कार्य करै छथि। इहै चेतना भगवानक अहैतुकी कृपा अछि जकर प्राप्ति भक्तक इन्द्रियमे आसक्त रहितो भी भऽ सकैत अछि।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥६५॥

प्रसादे– भगवानक अहैतुकी कृपा प्राप्त भेला पर; **सर्व**– सब; **दुःखानाम्**– भौतिक दुःखक; **हानिः**– क्षय, नाश; **अस्य**– हुनके; **उपजायते**– होइत अछि; **प्रसन्न चेतसः**– प्रसन्नचित्त वालाक; **हि**– निश्चय ही; **आशु**– शीघ्र; **बुद्धिः**– बुद्धि; **परि**– पर्याप्त; **अवतिष्ठते**– स्थिर होइत अछि।

एहि प्रकार सँ कृष्णभावनामृतमे तुष्ट व्यक्तिक लेल संसारक तीनू ताप नष्ट भऽ जाइत अछि आओर एहन तुष्ट चेतना भेला पर हुनकर बुद्धि शीघ्र ही स्थिर भऽ जाइत अछि।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥६६॥

न अस्ति– नहि भऽ सकत; **बुद्धि**– दिव्य बुद्धि; **अयुक्तस्य**– कृष्णभावना सँ सम्बन्धित न रहएवाला; **न**– नहि; **च**– तथा; **अयुक्तस्य**– कृष्णभावना सँ शून्य पुरुषक; **भावना**– स्थिर चित्त; **न**– नहि; **च**– तथा; **अभावयतः**– जे स्थिर नहि अछि; **शान्तिः**– शान्ति; **अशान्तस्य**– अशान्तक; **कुतः**– कतए अछि; **सुखम्**– सुख।

जे कृष्णभावनामृतमे परमेश्वर सँ सम्बन्धित नहि छथि, हुनका न तो दिव्य बुद्धि होइत अछि आओर न ही मन स्थिर होइत अछि जकरा बिना शान्तिक कोनो सम्भावना नहि अछि। शान्तिक बिना सुख हो भी कोना सकत।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥६७॥

इन्द्रियाणाम्– इन्द्रियक; **हि**– निश्चय ही; **चरताम्**– विचरण करैत; **यत्**– जकरा संग; **मनः**– मन; **अनुविधीयते**– निरन्तर लागल रहव; **तत्**– ओ; **अस्य**– एकर; **हरति**– हर लैत अछि; **प्रज्ञाम्**– बुद्धि केँ; **वायुः**– वायु; **नावम्**– नाव केँ; **इव**– जेना; **अम्भसि**– जलमे।

जाहि प्रकार जलमे तैरैत नाव केँ प्रचण्ड वायु दूर बहा लऽ जाइत अछि ओहि प्रकार विचरणशील इन्द्रियमे सँ कोनो एक जाहि पर मन निरन्तर लागल रहैत अछि, मनुष्यक बुद्धि केँ हर लैत अछि।

तात्पर्यः यदि समस्त इन्द्रिय भगवानक सेवामे नहि लागल रहत आओर एकरामे सँ एक भी अपन तृप्तिमे लागल रहत, तो ओ भक्त केँ दिव्य प्रगति पथ सँ विपथ कऽ सकैत अछि।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥६८॥

तस्मात्– अतः; **यस्य**– जकर; **महावाहो**– हे भगवाहु; **निगृहीतानि**– एहि प्रकार वशीभूत; **सर्वशः**– सब प्रकार सँ; **इन्द्रियाणि**– इन्द्रिय; **इन्द्रिय अर्थेभ्यः**– इन्द्रिय विषय सँ; **तस्य**– ओकर; **प्रज्ञा**– बुद्धि; **प्रतिष्ठिता**–

स्थिर।

अतः हे महावाहु! जाहि पुरुषक इन्द्रिय अपन-अपन विषय सँ सब प्रकार सँ विरत भऽकऽ ओकर वशमे अछि, ओकर बुद्धि निस्संदेह स्थिर अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति इन्द्रियक दमनक हृदयंगम कऽ लैत छथि, हुनकर बुद्धि स्थिर भऽ जाइत अछि। एहन साधक मोक्षक अधिकारी कहलाबैत छथि।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥६९॥

या- जे; **निशा**- रात्रि; **सर्व**- समस्त; **भूतानाम्**- जीवक; **तस्याम्**- ओकरामे; **जागर्ति**- जागैत रहैत अछि; **संयमी**- आत्मसंयमी व्यक्ति; **यस्याम्**- जाहि मे; **जाग्रति**- जागैत अछि; **भूतानि**- सब प्राणी; **सा**- ओ; **निशा**- रात्रि; **पश्यतः**- आत्मनिरीक्षण करएवाला; **मुनेः**- मुनिक लेल।

जे सब जीवक लेल रात्रि अछि, ओ आत्मसंयमीक जागैत समय अछि आओर जे समस्त जीवक जागैक समय अछि ओ आत्मनिरीक्षक मुनिक लेल रात्रि होइत अछि।

तात्पर्यः भौतिकतावादी कार्यमे लागल व्यक्ति, आत्म साक्षात्कारक प्रति सुतल रहिक अनेक प्रकारक इन्द्रियसुखक स्वप्न देखैत अछि आओर ओही सुप्तावस्थामे कौखन सुख तो कौखन दुःखक अनुभव करैत अछि। आत्मनिरीक्षक मनुष्य भौतिक सुख तथा दुःखक प्रति अन्यमनस्क रहैत छथि। ओ भौतिक घात सँ अविचलित रहिक आत्म साक्षात्कारक कार्यमे लागल रहैत छथि।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं-
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥७०॥

आपूर्यमाणम्- नित्य परिपूर्ण; **अचल-प्रतिष्ठम्**- दुढ़तापूर्वक स्थित; **समुद्रम्**- समुद्रमे; **आपः**- नदी, जल; **प्रविशन्ति**- प्रवेश करैत अछि; **यद्वत्**- जाहि प्रकार; **तद्वत्**- ओहि प्रकार; **कामाः**- इच्छा सब; **यम्**-

जाहिमे; **प्रविशन्ति**– प्रवेश करैत अछि; **सर्वे**– सब; **सः**– ओ; **शन्तिम्**– शान्ति; **आप्नोति**– प्राप्त करैत अछि; **न**– नहि; **कामकामी**– इच्छा पूरा करैक इच्छुक।

जे पुरुष समुद्रमे निरंतर प्रवेश करैवाली नदीक समान इच्छा केँ निरंतर प्रवाह सँ विचलित नहि होइत अछि आओर जे सदैव स्थिर रहैत अछि, वैह शान्ति प्राप्त कऽ सकैत अछि, ओ नहि, जे एहन इच्छा सब केँ तुष्ट करक चेष्टा करैत होय।

तात्पर्यः यद्यपि विशाल समुद्रमे सदैव जल रहैत अछि, किन्तु वर्षा ऋतुमे विशेषतया अधिकाधिक जलसँ भरैत जाइत अछि तो भी सागर ओतबे पर ही स्थिर रहैत अछि। न तो ओ विक्षुब्ध होइत अछि आओर न तटक सीमाक उल्लंघन करैत अछि। एहने स्थित कृष्णभावनाभावित व्यक्तिक होइत अछि। जाधरि शरीर अछि, ताधरि इन्द्रियतृप्तिक लेल शरीरक माँग बनल रहत। किन्तु भक्त अपन पूर्णताक कारण एहि तरहक इच्छा सँ विचलित नहि होइत छथि। ओ भगवत्सेवामे सुखी रहैत छथि आओर हुनकर कोनो इच्छा नहि होइत अछि। वस्तुतः ओ तो तथाकथित भवबन्धन सँ मोक्षक भी कामना नहि करैत छथि। कृष्णक भक्तक कोनो भौतिक इच्छा नहि रहैत अछि, अतः ओ पूर्ण शान्त रहैत छथि।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥७१॥

विहाय– छोड़ि कऽ; **कामान्**– इन्द्रिय तृप्तिक, भौतिक इच्छा; **यः**– जे; **सर्वान्**– समस्त; **पुमान्**– पुरुष; **चरति**– रहैत अछि; **निः-स्पृहः**– इच्छा रहित; **निर्ममः**– ममता रहित; **निरहंकारः**– अहंकार शून्य; **सः**– ओ; **शान्तिम्**– पूर्ण शान्तिक; **अधिगच्छति**– प्राप्त होइत अछि।

जे व्यक्ति इन्द्रिय तृप्तिक समस्त इच्छाक परित्यागक देलनि अछि, जे इच्छा सब सँ रहित रहैत छथि आओर जे सब ममता त्याग देलनि अछि तथा अहंकार सँ रहित छथि, ओहे वास्तविक शान्ति केँ प्राप्तक सकैत छथि।

तात्पर्यः भौतिक दृष्टि सँ इच्छाशून्य व्यक्ति जानैत छथि कि प्रत्येक जीव श्रीकृष्णक अंश-स्वरुप अछि आओर जीवक शाश्वत स्थिति कहियो

न तो कृष्णक तुल्य होइत अछि आओर न हुनका सँ बढ़ि कऽ। एहि प्रकार कृष्णभावनामृतक ई ज्ञान ही वास्तविक शान्तिक मूल सिद्धान्त अछि। श्रीकृष्ण ही प्रत्येक वस्तुक स्वामी छथि।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।७२।।

एषा– ई; **ब्राह्मी**– आध्यात्मिक; **स्थितः**– स्थित; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **न**– कहियो नहि; **एनाम्**– एकर; **प्राप्य**– प्राप्त करि कऽ; **विमुह्यति**– मोहित होइत अछि; **स्थित्वा**– स्थित भऽकऽ; **अस्याम्**– एहिमे; **अन्तकाले**– जीवनक अन्त समयमे; **अपि**– भी; **ब्रह्म निर्वाणम्**– भगवद्धाम केँ; **ऋच्छति**– प्राप्त होइत अछि।

ई आध्यात्मिक तथा ईश्वरीय जीवनक पथ अछि, जकरा प्राप्तक मनुष्य मोहित नहि होइत अछि। यदि क्यो जीवनक अन्तिम समयमे भी एहि तरह स्थित हो, तो भी ओ भगवद्धाममे प्रवेशक सकैत अछि।

तात्पर्यः भौतिक जगतमे इन्द्रियतृप्ति विषयक कार्य होइत अछि आओर आध्यात्मिक जगतमे कृष्णभावनामृत विषयक। ब्रह्म आओर भौतिक पदार्थ एक दोसर सँ सर्वथा विपरीत अछि। अतः ब्राह्मी स्थितिक अर्थ अछि भौतिक बन्धन सँ मुक्त। भगवद्गीतामे भगवत्भक्ति केँ मुक्त अवस्था मानल गेलै अछि। भगवद्धाम तथा भगवत्भक्तिक बीच कोनो अन्तर नहि अछि चूँकी दूनू चरम पद अछि। अतः भगवानक दिव्य प्रेमाशक्तिमे व्यस्त रहबाक अर्थ अछि–भगवद्धाम केँ प्राप्त करब। भगवद्गीताक प्रतिपाद्य अछि–कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग। एहि द्वितीय अध्यायमे कर्मयोग तथा ज्ञानयोगक स्पष्ट व्याख्या भेल अछि एवं भक्तियोगक झाँकी देल गेल अछि। मनुष्य दिव्य जीवन केँ एक क्षणमे प्राप्तक सकैत अछि आओर भऽ सकैत अछि कि ओकरा लाखों जन्मक बाद भी प्राप्त न हो। ई सत्य केँ समझनाई अथवा स्वीकार करक बात अछि। खट्वांग महाराज अपन मृत्युक किछु क्षण पूर्व कृष्णक शराणागत भऽकऽ निर्वाण प्राप्तक लेलथि।

गीतासारक संक्षिप्त विवरण

संजय कहलखिन हे धृतराष्ट्र! तखन श्रीकृष्ण दया सँ युक्त नेत्रमे आँसू भरल व्याकुल चित्त अर्जुन सँ कहलथिन–हे अर्जुन! अनार्यक सेवन करै योग्य अपयश कारक नरकमे गिराबै वाला मोह एहि समय अहाँक मनमे कहाँ सँ आएल? अहाँ कायर नहि बनू। ई शोभा नहि दैत अछि, अहाँ हृदयक दुर्बलता केँ त्याग कऽ युद्धक निमित्त खड़ा भऽ जाउ। अर्जुन कहलखिन–हे मधुसूदन! हम रणमे पूज्य भीष्म आओर द्रोणाचार्यक ऊपर वाण प्रहार कोना करु? एहि लोकमे महात्मा गुरुजन केँ मारला सँ भीख माँगि कऽ भोजन करब उत्तम अछि। हम नहि जानैत छी कि संग्राममे हमरा दूनूमे सँ के जीतत, जँ हम जीत भी ली, तऽ हुनका सब केँ मारि कऽ हम जीवित नहि रहए चाहैत छी। ओतहि धृतराष्ट्रक पुत्र हमरा समान अछि। दीनता सँ हमर स्वभाविक वृत्ति नष्ट भऽ गेल आओर धर्मक विषयमे हमर चित्त मोहित भऽ गेल अछि। हम अहाँ सँ पूछैत छी जाहि सँ निश्चय हमर भला हो, ओ हमरा समझा कऽ कहू, किएक तऽ हम अहाँक शिष्य छी आओर अहाँक शरणमे छी, हमरा शिक्षा देल जाए। हमरा पृथ्वीक निष्कंटक राज्य मिलि जाए आओर देवताक भी आधिपत्य भेट जाए तखनो एहन कोनो उपाय नहि देखाइत अछि जे हमर इन्द्रिय केँ दुखाबै वाला शोक दूर करे। हे गोविन्द! हम युद्ध नहि करब, ई कहि कऽ अर्जुन चुप भऽ गेलाह।

संजय कहलखिन–हे राजन्! दूनू सेनाक मध्यमे भिन्न भऽ बैसल अर्जुन सँ भगवान् कृष्ण– ई वचन कहलखिन अछि–हे अर्जुन जकरा लेल शोक नहि करक चाही, अहाँ ओकरे लेल शोक करैत छी आओर पंडित सनक वचन करैत छी, परन्तु पंडित सब न मरलाक शोक करैत छथि आ न जीवितक। ई बात असम्भव अछि। हम पहिने नहि छलहुँ आओर ई राजा भी नहि छलाह आओर बादमे नहि रहताह। देहधारीक देहक लड़कपन, जवानी, बुढ़ापा ई अवस्था होइत अछि ओहिना मृत्युक बाद दोसर देह सेहो होइत अछि। अतः पंडित लोग मोह केँ प्राप्त नहि होइत छथि। इन्द्रियक शब्दादि विषय सँ संयोग जाड़, गर्मी आदि सुख–दुःखक दिअ वाला छथि, आबै–जाएवाला आओर नाशवान जानिक सहन करु। हे नर श्रेष्ठ! सुख केँ समान मानै वाला जाहि वीर पुरुष केँ

ई बाह्य पदार्थ क्लेश नहि दैत अछि, ओ मोक्ष पावैक अधिकारी छथि। असत् वस्तुक तो अस्तित्व नहि अछि आओर सत्क अभाव नहि अछि, एहि प्रकार एहि दूनू केँ ही तत्त्व ज्ञानी पुरुष देखलनि अछि, जाहि सँ ई समस्त संसार व्याप्त अछि हुनका अविनाशी जानू किएक तऽ एहि नाश रहित आत्माक विनाश करमे क्यो समर्थ नहि छथि। अतः हे भरतवंशी अहाँ युद्ध करु। जे पुरुष एहि आत्माक मारबवला तथा जे मरैवाला मानैत छथि, ओ दूनू अज्ञानी छथि–किएक तऽ आत्मा न मरैत अछि, न मारैत अछि, आत्मा न कहियो जन्मैत अछि न मृत्युक प्राप्त होइत अछि, न कहियो जन्मल न कहियो मरत। नष्ट भेला पर भी ओ नाश केँ नहि प्राप्त होइत अछि। जे पुरुष एहि आत्मा केँ नित्य अविनाशी, निर्विकार आओर अजन्मा जानैत छथि ओ ककरा घात करायत आओर ककरा मारत? जाहि प्रकार मनुष्य पुरान वस्त्र केँ फेंकक नव वस्त्र ग्रहण करैत अछि, ओहि प्रकार आत्मा पुरान देह केँ छोड़िक नव देह धारण करैत अछि। आत्मा केँ शस्त्र नहि काटि सकैत अछि। अग्नि ओकरा नहि जला सकैत अछि, जल भिंगा नहि सकैत अछि। ई न जलि सकैत अछि, न भींग या गलि सकैत अछि आओर न सूखि सकैत अछि। ई अविनाशी, सर्वव्यापी स्थिर या सनातन अछि। ई इन्द्रिय सँ ज्ञात नहि कैल जा सकैत अछि, कल्पना सँ परे अछि। अतः ई जानितो अहाँ केँ शोक करब उचित नहि अछि। हे महावाहो! अहाँ एहि आत्मा केँ नित्य जन्म लिअवाला आओर नित्य मरै वाला मानैत छी तो भी अहाँ केँ शोक नहि करक चाही किएक तऽ जे जन्मल ओकर मृत्यु आओर जकर मृत्यु भेलै ओकर जन्म निश्चय अछि। अतएव जे बात अनिवार्य अछि ओकरा लेल सोच करब व्यर्थ अछि। जन्म लेला सँ पहिले की छलहुँ, ककरो मालूम नहि, मध्यमे किछु प्रकट होइत अछि पुनः मरलाक बाद की हेतै क्यो नहि जानैत अछि। एहि अवस्थामे कोन बातक सोच केनाई अहाँ केँ उचित लागैत अछि, क्यो व्यक्ति तो एहि आत्मा केँ आश्चर्य सँ देखैत अछि, आश्चर्यवत् वर्णन करैत अछि, क्यो आश्चर्यवत् मानि कऽ सुनैत अछि, परन्तु क्यो देख कऽ कहि कऽ, सुनि कऽ भी ठीक तरह सँ नहि जानैत छथि। सबहक शरीरमे ओ आत्मा नित्य अविनाशी अछि। एहि कारण सब प्राणीक विषयमे अहाँ केँ सोच करब उचित नहि, किएक तऽ क्षत्रिय केँ धर्मपूर्वक युद्ध सँ आओर किछु भला करएवाला

नहि अछि। हे पार्थ! बिना इच्छा केने स्वर्गक रुप ई अहाँ केँ प्राप्त भेल अछि, एहन सुअवसर भाग्यवान क्षत्रिय केँ मिलैत अछि। यदि अहाँ अपन धर्मक अनुसार ई संग्राम नहि करब तो अपन धर्म आओर बड़प्पन खो बैठब आओर पापक भागी हैब। सब क्यो अहाँक हँसी उड़ायत आओर प्रतिष्ठा करएबाला पुरुषक लेल अपयश मृत्यु सँ बढ़िक होइत अछि। ई महारथी सब समझत कि अर्जुन डरिक संग्राम सँ हटि गेला आओर एखन धरि जे सब अहाँक मर्यादा राखैत छल ओ सब अपयश देमए लागत। शत्रु सब अहाँक पराक्रमक निन्दा करैत अनेक प्रकारक दुर्वचन कहत। एहि सँ बढ़िक दुःख आओर की हैत? यदि अहाँक युद्धमे वीरगति हैत तो स्वर्गक भागी हैव आओर जीतला पर पृथ्वी पर राज्य करब। अतः युद्धक निमित्त दृढ़ प्रतिज्ञ भऽकऽ खड़ा हो जाउ। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय एकरा समान समझि कऽ युद्धक लेल तैयार हो, एना केला सँ अहाँ पाप केँ प्राप्ति नहि करब। ई ज्ञान उपदेश ज्ञानयोगक विषयमे अहाँ केँ कहल गेल अछि। आब निष्काम कर्मयोगक विषयमे सूनू, जाहि ज्ञान केँ पाबिक कर्म बन्धन सँ अहाँक मुक्ति हैत। कर्मयोग मार्ग एकबेर आरम्भ केने बिना कर्मक नाश नहि होइत अछि आओर विघ्न पड़ला पर भी शुभ फल होइत अछि। एहि कर्मक केवल प्रारम्भ ही संसारक भय सँ छुड़ाक पूर्ण ब्रह्म एहि निष्काम कर्ममे एक ही अछि आओर कामना करला सँ पुरुषक बुद्धि एकाग्र नहि रहैत अछि, ओकर शाखा-प्रशाखा होइत अछि। एहन अवस्थामे मनुष्य संदेहमे रहि जाइत अछि।

हे अर्जुन! अज्ञानी ओहि पुष्पिता वाणी केँ ही स्वर्ग सुख सँ बढ़ि कऽ किछु नहि समझैत अछि ओकरा स्वर्ग सुख केँ ही उत्तम पुरुषार्थ समझैत अछि। कामना सँ चित्त व्याकुल भेलाक कारण निश्चयात्मक बुद्धि मोक्ष साधनक नहि उत्पन्न होइत अछि, कारण कि हुनकर चित्त भोगादिमे सदैव निमग्न रहैत अछि। जाहि व्यक्तिक चित्त एहि प्रकार मोहमे अछि आओर जिनकर आसक्ति भोग, विलास, ऐश्वर्यमे अछि, एहन व्यक्तिक अन्तःकरणमे निश्चयात्मक बुद्धि नहि होइत अछि। हे अर्जुन! अहाँ निष्काम भऽ जाउ, सुख-दुःख केँ सकाम (त्रिगुणात्मक) जानि कऽ नित्य योग क्षेत्र आदि स्वार्थमे नहि पड़ि कऽ धीरजवान आत्मनिष्ठ भऽ जाउ। वेदमे कहल गेलै अछि काम कर्मक फल ब्रह्ममे भक्ति राखए वाला मनुष्य केँ सहजमे प्राप्त भऽ जाइत अछि। अहाँ केँ केवल कर्म करक चाही,

फल अहाँक अधिकारमे नहि अछि। अहाँ न तो फलक अभिलाषा सँ काज करु आओरे नै तऽ निष्काम रहू। फलक आशा त्याग कऽ कार्य कऽ सफलता केँ समान मानि कऽ अहाँ योगस्थ भऽकऽ कर्म करु। इहे कर्म ज्ञानयोग अछि। एहि योगक आश्रय ग्रहण करु। फलक इच्छा राखै वाला निकृष्ट होइत अछि, निष्काम कर्म करएवाला पुरुष ईश्वरक कृपा सँ एहि संसारमे सुकृत तथा दृष्कृत एहि दूनूक ही त्याग दैत अछि। अत: अहाँ निष्काम कर्ममे प्रवृत हो, जे सब कर्म सँ कल्याण कारक अछि। कर्म फल केँ त्यागक ही बुद्धियुक्त ज्ञानी पुरुष जन्म बन्धन सँ हटि कऽ मोक्ष केँ प्राप्त होइत छथि। जखन अहाँक बुद्धि मोह वनक बाहर निकल जाएत तखन अहाँक आगाँ सुनए वाला तथा भेल बात सँ विरक्त भऽ जाएत। जाहि समय ओ निश्चल बुद्धिवाला किनका कहल गेलैन अछि? हुनकर लक्षण की अछि आओर ओ केना बाजैत छथि? कोना उठै छथि? केना चलै छथि? श्रीकृष्ण कहलखिन हे अर्जुन! जे महापुरुष सब कामना केँ त्यागि दैत अछि आओर अपने आपमे प्रसन्न रहैत अछि, ओकरा निश्चल बुद्धि कहैत अछि। दु:खमे न खेद, सुखमे न आसक्ति आओर प्रीति, भ्रम क्रोध जाइत रहैत छैन्ह ओ महात्मा स्थिर बुद्धिवाला कहावैत छथि। जे सर्वत्र स्नेह करैत छथि, जे शुभ पदार्थ भेला पर हर्ष नहि करैत छथि, अशुभ सँ अप्रसन्न नहि होइत छथि, ओकरे स्थिर बुद्धि जानबाक चाहि आओर कछुवा जेना अपन अंग सिकोड़ि लैत अछि ओहि तरह जे पुरुष अपन इन्द्रिय केँ विषय सँ हटेने छथि, हुनकर बुद्धि स्थिर जानबाक चाही। निराहार पुरुषक विषय घटि जाइत अछि परन्तु विषयमे हुनकर चाह बनल रहैत अछि। हे अर्जुन! मोक्ष प्राप्त करएवाला विद्वान व्यक्ति केँ भी प्रबल इन्द्रिय बलात्कार सँ ओकर मन केँ जीत लैत अछि। अत: जे सब इन्द्रिय केँ वश कऽ लेलक अछि ओकरे बुद्धि निश्चल अछि। जे पुरुष विषयक ध्यानमे रहैत अछि ओकरा प्रीति भऽ जाइत अछि। प्रीति भेला सँ क्रोधक उत्पन्न होइत अछि। क्रोध सँ अविवेक होइत अछि, अविवेक सँ स्मरण शक्ति नष्ट होइत अछि। स्मरण शक्तिक नाश भेला सँ बुद्धिक क्षय होइत अछि, जकर बुद्धिक नाश होइत अछि, ओ विनाश केँ प्राप्त होइत अछि। जे पुरुष राग-द्वेष सँ रहित हो इन्द्रिय सँ विषय सुखक अनुभव करैत छथि आओर अपन मन केँ वशमे राखैत छथि, ओ शान्ति केँ प्राप्त करैत छथि। शान्ति मिलला

पर सब दु:खक नाश भऽ जाइत अछि। प्रसन्नचित्त वाला केँ बुद्धि तुरन्त निश्चल भऽ जाइत अछि, जे पुरुष योगयुक्त नहि छथि हुनका निश्चल बुद्धि उत्पन्न नहि होइत अछि, ईश्वरमे भावना नहि होइत छैन्ह। भावनाक नै भेला सँ शान्ति नहि होइत छैन्ह। अशान्त केँ सुख कोना प्राप्त हैत? इन्द्रिय विषय मनुष्यक बुद्धिक नाश कऽ दैत अछि। हुनकर मन विषय शक्ति सँ इन्द्रियक पाछाँ लागि जाइत अछि। एहि कारण हे महाबाहो! जकर इन्द्रिय विषय सँ सर्वथा रोकि लेल गेलै अछि, ओकर बुद्धि स्थिर होइत अछि। जे सब प्राणीक रात्रि अछि ओहि समयमे संयमी जागैत छथि आओर प्राणी मात्र जाहि समय जागैत अछि, मुनिजन केँ ओ रात्रि होइत अछि। जल सँ भरल पूर्ण समुद्रमे आओर नदीक जल भरला पर भी ओ अपन मर्यादामे रहैत अछि, ओहि प्रकार जाहि पुरुषमे इच्छाक रहलो पर भी सब विषय योग प्रवेश करैत अछि, हुनके शान्ति भेटैत अछि। विषयक इच्छा करएबला केँ शान्ति नै मिलैत अछि। ब्राह्मी स्थिति भौतिक बंधन सँ मुक्त अछि।

एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक दोसर अध्याय **''गीताक सार''** पूर्ण भेल।



सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्याऽभ्यासेन रक्ष्यते।
मृज्यया रक्ष्यते रुपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते।।

धर्मक रक्षा सत्य सँ होइत अछि, विद्याक रक्षा अभ्यास सँ होइत अछि, रूपक रक्षा स्वच्छता सँ आओर कुलक रक्षा सदाचार सँ होइत अछि।

अध्याय-तीन



कर्मयोग

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥१॥

अर्जुन उवाच– अर्जुन कहलखिन; **ज्यायसी**– श्रेष्ठ; **चेत्**– यदि; **कर्मणः**– सकाम कर्मक अपेक्षा; **ते**– अहाँ द्वारा; **मता**– मानल जाइत; **बुद्धिः**– बुद्धि; **जनार्दन**– हे कष्ण; **तत्**– अतः; **किम्**– किएक, फिर; **कर्मणि**– कर्ममे; **घोरे**– भयंकर, हिंसात्मक; **माम्**– हमरा; **नियोजयसि**– नियुक्त करैत छी; **केशव**– हे कृष्ण।

अर्जुन कहलखिन–हे जनार्दन! हे केशव! यदि अहाँ बुद्धि केँ सकाम कर्म सँ श्रेष्ठ समझैत छियै तो फेर अहाँ हमरा एहि घोर युद्धमे किएक लगब चाहैत छी।

तात्पर्यः भगवान् श्रीकृष्ण पछिला अध्यायमे अपन घनिष्ट मित्र अर्जुन केँ संसारक शोक सागर सँ उबारैक उद्देश्य सँ आत्माक स्वरुपक विशद् वर्णन केलथिन अछि आओर आत्मसाक्षात्कारक जाहि मार्गक संस्तुति केलथिन अछि ओ अछि– बुद्धियोग या कष्णभावनामृत। अर्जुन केँ बुद्धियोग एना लागलनि मानू ओ सक्रिय जीवन सँ संयास लऽकऽ एकान्त अवस्थामे तपस्याक अभ्यास हो। दोसर शब्दमे, जे बुद्धियोगक

बहाना बना कऽ चातुरीपूर्वक युद्ध सँ जी छुड़ाब चाहैत छथि। किन्तु एक निष्ठ शिष्य भेलाक कारण ओ बात अपन गुरुक समक्ष राखलथि आओर कृष्ण सँ सर्वोत्तम कार्य विधिक विषयमे प्रश्न कैलथि। उत्तरमे भगवान् तृतीय अध्यायमे कर्मयोगक विस्तृत व्याख्या केलथिन अछि।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥२॥

व्यामिश्रेण– अनेकार्थक; **इव**– मानू; **वाक्येन**– शब्द सँ; **बुद्धिम्**– बुद्धि; **मोहयति**– मोह रहैत अछि; **इव**– मानू; **मे**– हमर; **तत्**– अतः; **एकम्**– एक मात्र; **वद**– कहियो; **निश्चित्य**– निश्चय करक; **येन**– जाहि सँ; **श्रेयः**– वास्तविक लाभ; **अहं**– हम; **आप्नुयाम्**– पाबि सकी।

अहाँक अनेकार्थक (व्यामिश्रित) उपदेश सँ हमर बुद्धि मोहित भऽ गेल अछि। अतः कृपाक निश्चयपूर्वक हमरा बतायल जाय कि एहिमे सँ हमरा लेल सर्वाधिक श्रेयस्कर की होएत?

तात्पर्यः अर्जुन ई नहि समझि सकलाह कि कृष्णभावनामृत की अछि–जड़ता अछि या कि सक्रिय सेवा। अपन जिज्ञासा सँ ओ ओहि समस्त शिष्य (जिज्ञासु)क लेल जे भगवद्गीताक रहस्य केँ समझ चाहैत छथि, बुद्धियोगक मार्ग प्रशस्त कऽ रहला अछि।

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥३॥

श्री भगवानुवाच– श्री भगवान् कहलखिन; **लोके**– संसार मे; **अस्मिन्**– एहि; **द्विविधा**– दू प्रकारक; **निष्ठा**– श्रद्धा; **पुरा**– पहिने; **प्रोक्ता**– कहल गेल; **मया**– हमरा द्वारा; **अनघ**– हे निष्पाप; **ज्ञान योगेन**– ज्ञानयोगक द्वारा; **सांख्यानाम्**– ज्ञानी सबहक; **कर्मयोगेन**– भक्ति योगक द्वारा; **योगिनाम्**– भक्तक।

श्रीभगवान् कहलखिन– हे निष्पाप अर्जुन! हम पहिनहुँ बता चुकल छी कि आत्मसाक्षात्कारक प्रयत्न करएवाला दू प्रकारक पुरुष होइत छथि। किछु एहि ज्ञानयोग द्वारा समझैक प्रयत्न करैत अछि, तो किछु भक्तिमय सेवाक द्वारा।

तात्पर्यः सांख्ययोग अथवा आत्मा तथा पदार्थक प्रकृतिक वैश्लेषिक अध्ययन ओहि लोगक लेल अछि जे व्यावहारिक ज्ञान तथा दर्शन द्वारा वस्तुक चिन्तन एवं मनन कर चाहैत छथि। दोसर प्रकारक लोग बृद्धियोगमे कार्य करैत छथि। बुद्धियोगक सिद्धान्त पर चलैवाला पुरुष कर्मक बन्धन सँ छुटि सकैत छथि तथा एहि पद्धतिमे कोनो दोष नहि अछि। बुद्धियोग स्वयं ही शुद्ध करवालेल प्रक्रिया अछि आओर भक्तिक प्रत्यक्ष विधि सरल एवं दिव्य होइत अछि।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।४।।

न– नहि; **कर्मणाम्**– नियत कर्मक; **अनारम्भारत्**– नहि करला सँ; **नैष्कर्म्यम्**– कर्मबन्धन सँ मुक्ति; **पुरुषः**– मनुष्य; **अश्नुते**– प्राप्त करैत अछि; **न**– नहि; **च**– भी; **सन्न्यसनात्**– त्याग सँ; **एव**– केवल; **सिद्धिम्**– सफलता; **समधिगच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

न तो कर्म सँ विमुख भऽकऽ क्यो कर्मफल सँ छुटकारा पावि सकैत अछि आओर न केवल संयास सँ सिद्धि प्राप्त कैल जा सकैत अछि।

तात्पर्यः भौतिकवादी मनुष्यक हृदय केँ विमल कर लेल जाहि कर्मक विधान कैल गेल अछि, हुनके द्वारा शुद्ध भेल मनुष्य ही सन्यास ग्रहणक सकैत छथि। शुद्धिक बिना अनायास सन्यास ग्रहण केला सँ सफलता नहि मिलैत अछि।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।५।।

न– नहि; **हि**– निश्यच ही; **कश्चित्**– क्यो; **क्षणम्**– क्षणमात्र; **अपि**– भी; **जातु**– कोनो कालमे; **तिष्ठिति**– रहैत अछि; **अकर्म कृत**– बिना किछु किए; **कार्यते**– कर लेल बाध्य होइत अछि; **हि**– निश्चय ही; **अवशः**– विवश भऽकऽ; **कर्म**– कर्म; **सर्वः**– समस्त; **प्रकृति जैः**– प्रकृतिक गुण सँ उत्पन्न; **गुणैः**– गुणक द्वारा।

प्रत्येक व्यक्ति केँ प्रकृति सँ अर्जित गुणक अनुसार विवश भऽकऽ कर्म कर पड़ैत अछि, अतः क्यो भी एक क्षण भरिक लेल भी

बिना कर्म किये नहि रहि सकैत अछि।

तात्पर्य: आत्माक ई स्वभाव अछि कि ओ सदैव सक्रिय रहैत अछि। आत्माक अनुपस्थितिमे भौतिक शरीर हिल भी नहि सकत। ई शरीर मृत वाहनक समान अछि जे आत्मा द्वारा चालित होइत अछि किएक तऽ आत्मा सदैव गतिशील रहैत अछि। अतः आत्मा केँ बुद्धि योगक सत्कर्ममे प्रवृत्त राखक चाही।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥६॥

कर्म-इन्द्रियाणि- पाँचों कर्मेन्द्रिय केँ; **संयम्य**- वशम करि कऽ; **यः**- जे; **आस्ते**- रहैत अछि; **मनसा**- मन सँ; **स्मरन्**- सोचैत; **इन्द्रिय अर्थान्**- इन्द्रिय विषयक; **विमूढ़**- मूर्ख; **आत्मा**- जीव; **मिथ्या आचारः**- दम्भी; **स**- ओ; **उच्यते**- कहलाबैत अछि।

जे कर्मेन्द्रिय केँ वश तो करैत अछि, किन्तु जकर मन इन्द्रिय विषयक चिन्तन करैत अछि, ओ निश्चित रुप सँ स्वयं केँ धोखा दैत अछि आओर मिथ्याचारी कहाबैत अछि।

तात्पर्य: जे अपना केँ योगी बतवैत इन्द्रियतृप्तिक विषयक खोजमे लागल रहैत अछि, ओ सब सँ पैघ धूर्त अछि, भले ही ओ कहियो-कहियो दर्शनक उपदेश किएक न दिअ। ओकर ज्ञान व्यर्थ अछि किएक तऽ एहन पापी पुरुषक ज्ञानक सब फल भगवानक माया द्वारा हर लेल जाइत अछि। ओकर चित्त सदैव अशुद्ध रहैत अछि।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥७॥

यः- जे; **तु**- लेकिन; **इन्द्रियाणि**- इन्द्रिय केँ; **मनसा**- मनक द्वारा; **नियम्य**- वशमे करि कऽ; **आरभते**- प्रारम्भ करैत अछि; **अर्जुन**- हे अर्जुन; **कर्म इन्द्रियैः**- कर्मेन्द्रिय सँ; **कर्मयोगम्**- भक्ति; **असक्तः**- अनासक्त; **सः**- ओ; **विशिष्यते**- श्रेष्ठ अछि।

दोसर ओर यदि क्यो निष्ठावान व्यक्ति अपन मनक द्वारा कर्मेन्द्रिय केँ वशमे करैक प्रयत्न करैत अछि आओर बिना कोनो आसक्तिक कर्मयोग (कृष्णभावनामृतमे) प्रारम्भ करैत अछि तो ओ अति

उत्कृष्ट अछि।

तात्पर्यः लम्पट जीवन आओर इन्द्रिय सुखक लेल योगीक मिथ्या वेष धारण करक अपेक्षा अपन कर्ममे लागल रहिक जीवन लक्ष्य केँ जे भवबन्धन सँ मुक्त भऽ भगवद्धाम केँ जेवाक अछि, प्राप्त करैक लेल कर्म करैत रहब अधिक श्रेयस्कर अछि।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥८॥

नियतम्– नियत; **कुरु**– करू; **कर्म**– कर्तव्य ; **त्वम्**– अहाँ; **कर्म**– कर्म करब; **ज्यायः**– श्रेष्ठ; **हि**– निश्चय ही; **अकर्मणः**– काम नहि करब; **शरीर**– शरीरक; **यात्रा**– पालन, निर्वाह; **अपि**– भी; **च**– भी; **ते**– अहाँ; **न**– कहियो नहि; **प्रसिद्ध्येत्**– सिद्ध हैत; **अकर्मणः**– बिना काम केँ।

अपन नियत कर्म करु, किएक तऽ कर्म नहि करब एकर अपेक्षा कर्म करब श्रेष्ठ अछि। कर्मक बिना तो शरीर निर्वाह भी नहि भऽ सकत।

तात्पर्यः भगवान् श्रीकृष्ण ई नहि चाहैत छलाह कि अर्जुन मिथ्याचारी बनथि, अपितु ओ चाहैत छलाह कि अर्जुन क्षत्रियक लेल निर्दिष्ट धर्मक पालन करथि। एहन कार्य सँ संसारी मनुष्यक हृदय क्रमशः विमल भऽ जाइत अछि आओर ओ भौतिक कल्मष सँ मुक्त भऽ जाइत अछि।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥९॥

यज्ञ-अर्थात्– एकमात्र यज्ञ; **कर्मणः**– कर्मक अपेक्षा; **अन्यत्र**– अन्यथा; **लोकः**– संसार; **अयम्**– ई; **कर्मबन्धनः**– कर्मक कारण बन्धन; **तत्**– ओहि; **अर्थम्**– क लेल; **कर्म**– कर्म; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **मुक्त संगः**– फलाकांक्षा सँ मुक्त; **समाचर**– भलीभाँति आचरण करु।

श्री विष्णुक लेल यज्ञ रुपमे काज करबाक चाही, अन्यथा कर्मक द्वारा एहि भौतिक जगतमे बन्धन उत्पन्न होइत अछि। अतः हे कुन्तीपुत्र! हुनकर प्रसन्नताक लेल अपन नियत कर्म करु। एहि तरह अहाँ बन्धन सँ सदैव मुक्त रहब।

तात्पर्यः मनुष्य केँ शरीरक निर्वाहक लेल कर्म कर पड़ैत अछि। यज्ञक अर्थ भगवान् विष्णु अछि। सब यज्ञ भगवान् विष्णुक प्रसन्नताक लेल अछि। वेदक आदेश अछि–यज्ञो वै विष्णुः। कोनो निर्दिष्ट यज्ञ सम्पन्न करब मतलब भगवान् विष्णुक सेवा करब। अतः भगवान् विष्णुक प्रसन्नताक लेल कर्म करक चाही। एहि जगतमे कैल गेल अन्य कोनो कर्म बन्धनक कारण अच्छा तथा बुरा कर्मक फल होइत अछि आओर कोनो भी फल कर्म कर वाला केँ बाँधि दैत अछि। अतः कृष्ण (विष्णु) केँ प्रसन्न कर लेल कृष्णभावनाभावित हुअ पड़त आओर क्यो एहन कार्य (कर्म) करत तो ओ मुक्त दशा केँ प्राप्त रहता। इहै महान कर्म कौशल अछि, जे भगवद्धाम केँ लऽ जेवावला अछि।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥१०॥

सह– साथ; **यज्ञाः**– यज्ञ सब; **प्रजा**– सन्ततियो; **सृष्ट्वा**– रचि कऽ; **पुरा**– प्राचीन कालमे; **उवाच**– कहलथिन; **प्रजापतिः**– जीवक स्वामी; **अनेन**– एहि सँ; **प्रसविष्यध्वम्**– अधिकाधिक समृद्ध हो ओ; **एषः**– ई; **वः**– अहाँक; **अस्तु**– होए; **इष्ट**– समस्त वांछित वस्त्रुक; **कामधुक्**– प्रदाता।

सुष्टिक आरम्भमे समस्त प्राणीक स्वामी–प्रजापति भगवान् विष्णुक लेल यज्ञ सहित मनुष्य तथा देवताक सन्तति केँ रचलथि आओर हुनका सँ कहलखिन–अहाँ सब एहि यज्ञ सँ सुखी रहू किएक तऽ ई कएला सँ अहाँ सब केँ सुखपूर्वक रहबाक तथा मुक्ति प्राप्त कर लेल समस्त वांछित वस्तु प्राप्त भऽ सकत।

तात्पर्यः प्रजापति तो भगवान् विष्णु छथि आओर ओ समस्त प्राणीक तथा सुन्दरताक स्वामी छथि। ओ हर एक प्राणीक त्राता छथि। भगवान् एहि भौतिक जगत केँ इसलिए रचलथि कि वद्धजीव ई सीख सकेँ कि ओ विष्णु केँ प्रसन्न करबा लेल कोन प्रकार यज्ञ करथि जाहि सँ ओ एहि जगतमे चिन्ता रहित भऽकऽ सुखपूर्वक रहि सकैत तथा एहि भौतिक देहक अन्त भेला पर भगवद्धाम जा सकत। वद्धजीवक लेल ई सम्पूर्ण कार्यक्रम अछि। यज्ञ केला सँ वद्धजीव कृष्णभावनाभावित होइत सब प्रकार सँ देवतुल्य बनैत छथि।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥११॥

देवान्– देवता केँ; **भावयता**– प्रसन्न करि कऽ; **अनेन**– एहियज्ञ सँ; **ते**– ओ; **देवाः**– देवता; **भावयन्तु**– प्रसन्न करता; **वः**– अहाँक; **परस्परम्**– आपसमे; **भावयन्तः**– एक दोसर केँ प्रसन्न करैत; **श्रेयः**– वर, मंगल; **परम्**– परम; **अवाप्स्यथ**– अहाँ प्राप्त करव।

यज्ञक द्वारा प्रसन्न भऽकऽ देवता अहाँ केँ भी प्रसन्न करता आओर एहि तरह मनुष्य तथा देवता मध्य सहयोग सँ सब केँ सम्पन्नता प्राप्त होइत।

तात्पर्यः देवतागण सांसारिक कार्यक लेल अधिकार प्राप्त प्रशासक छथि। प्रत्येक जीव द्वारा शरीर धारण कर लेल आवश्यक वायु, प्रकाश, जल तथा अन्य सब मंगल (वर) ओहि देवता गणक अधिकारमे अछि। जे भगवानक शरीर केँ विभिन्न भागमे असंख्य सहायकक रुपमे स्थित अछि। हुनकर प्रसन्नता तथा अप्रसन्नता मनुष्यक द्वारा यज्ञक सम्पन्नता पर निर्भर अछि। भगवान् श्री कृष्ण स्वयं सब प्रकारक यज्ञक भोक्ता छथि– **''भोक्तारं यज्ञतपसाम्''** यज्ञ सम्पन्न केला सँ अन्य लाभ भी प्राप्त होइत अछि। यज्ञ सँ सब कर्म पवित्र भऽ जाइत अछि। अन्ततः भव बन्धन सँ मुक्ति मिल जाइत अछि।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः॥१२॥

इष्टान्– वांछित; **भोगान्**– जीवनक आवश्यकता; **हि**– निश्चय ही; **वः**– अहाँ केँ; **देवाः**– देवतागण; **दास्यते**– प्रदान करता; **यज्ञ भाविताः**– यज्ञ सम्पन्न कर सँ, प्रसन्न भऽ क; **तैः**– हुनका द्वारा; **दत्तान्**– प्रदत्त वस्तु; **अप्रदाय**– बिना भेंट केने; **एभ्यः**– एहि देवगण केँ; **यः**– जे; **भुङ्क्ते**– भोग करैत; **स्तेनः**– चोर; **एव**– निश्चय ही; **सः**– ओ।

जीवनक विभिन्न आवश्यकताक पूर्ति कर वाला विभिन्न देवता यज्ञ सम्पन्न भेला पर प्रसन्न भऽकऽ अहाँक सब आवश्यकताक पूर्ति करता। किन्तु जे एहि उपहार केँ देवता केँ अर्पित केने बिना भोगैत छथि, ओ निश्चित रुप सँ चोर छथि।

तात्पर्यः देवतागण भगवान् विष्णु द्वारा भोग सामग्री प्रदान कर लेल अधिकृत कैल गेला छथि। अतः नियत यज्ञक द्वारा हुनका अवश्य संतुष्ट करक चाही। किन्तु ओ सब अन्ततः भगवान् केँ ही अर्पित कैल जाइत अछि। समस्त यज्ञक ध्येय उत्तरोत्तर दिव्य पद प्राप्त करब अछि। चैतन्य महाप्रभु यज्ञ सम्पन्न करक सरलतम विधिक प्रवर्तन कैलनि अछि। ई अछि–संकीर्तन यज्ञ जे संसारक कोनो भी व्यक्ति द्वारा जे बुद्धियोगक सिद्धान्त केँ अंगीकार करैत अछि, सम्पन्न कैल जा सकैत अछि।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥१३॥

यज्ञ शिष्ट– यज्ञ सम्पन्न करला बाद ग्रहण कैल भोजन; **अशिनः**– खायवाला; **सन्तः**– भक्तगण; **मुच्यन्ते**– छुटकारा पावैत; **सर्व**– सब तरहक; **किल्बिषैः**– पाप सँ; **भुञ्जते**– भोगैत अछि; **ते**– ओ; **तु**– लेकिन; **अघम्**– घोर पाप; **पापाः**– पापीजन; **ये**– जे; **पचन्ति**– भोजन बनवैत छथि; **आत्मकारणात्**– इन्द्रियसुख लेल।

भगवानक भक्त सब प्रकारक पाप सँ मुक्त भऽ जाइत अछि, किएक तऽ ओ यज्ञमे अर्पित कैल भोजन (प्रसाद) खाइत अछि। अन्य लोग, जे इन्द्रिय सुखक लेल भोजन बनवैत छथि, ओ निश्चित रुप सँ पाप खाइत छथि।

तात्पर्यः भगवत्भक्त केँ सन्त कहल गेलैन अछि। ओ सदैव भगवत्प्रेममे निमग्न रहैत छथि। भक्त पृथक–पृथक भक्ति साधन द्वारा यथा श्रवण, स्मरण, अर्चन आदि द्वारा यज्ञ करैत रहैत छथि। जाहि सँ संसारक सम्पूर्ण पापमयी संगतिक कल्मष सँ दूर रहैत छथि। अन्य लोग, जे अपना लेल या इन्द्रियतृप्तिक लेल भोजन बनावैत छथि ओ न केवल चोर छथि, अपितु सब प्रकारक पाप केँ खायवाला छथि।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥१४॥

अन्नात्– अन्न सँ; **भवन्ति**– उत्पन्न होइत अछि; **भूतानि**– भौतिक शरीर; **पर्जन्यात्**– वर्षा सँ; **अन्न**– अन्नक; **सम्भवः**– उत्पादन; **यज्ञात्**– यज्ञ सम्पन्न केला सँ; **भवति**– सम्भव होइत अछि; **पर्यन्यः**– वर्षा; **यज्ञः**–

यज्ञक सम्पन्न हैव; **कर्म**– नियत कर्तव्य सँ; **समुद्भवः**– उत्पन्न होइत अछि।

सब प्राणी अन्न पर आश्रित अछि, जे वर्षा सँ उत्पन्न होइत अछि। वर्षा यज्ञ सम्पन्न केला सँ होइत अछि आओर यज्ञ नियत कर्म सँ उत्पन्न होइत अछि।

तात्पर्यः जमीनक उत्पादन आकाश सँ हुअवाला प्रचुर वर्षा पर निर्भर करैत अछि। एहन वर्षा इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि देवताक द्वारा नियन्त्रित अछि। ई देवगण भगवानक दास छथि। भगवान् केँ यज्ञ द्वारा संतुष्ट राखल जा सकैत अछि। अतः जे एहि यज्ञ सम्पन्न नहि करैत छथि हुनका अभावक सामना कर पड़ैत अछि– इहै प्रकृतिक नियम अछि। अतः भोजनक अभाव सँ बचैक लेल यज्ञ विशेष रुप सँ संकीर्तन यज्ञ सम्पन्न करक चाही।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥१५॥

कर्म– कर्म; **ब्रह्म**– वेद सँ; **उद्भवम्**– उत्पन्न; **विद्धि**– जानू; **ब्रह्म**– वेद; **अक्षर**– परब्रह्म सँ; **समुद्भवम्**– साक्षात् प्रकट भेल; **तस्मात्**– अतः; **सर्व-गतम्**– सर्वव्यापी; **ब्रह्म**– ब्रह्म; **नित्यम्**– शाश्वत रुप सँ; **यज्ञे**– यज्ञमे; **प्रतिष्ठितम्**– स्थित।

वेदमे नियमित कर्म सबहक विधान अछि आओर ई वेद साक्षात् श्रीभगवान् (परब्रह्म) सँ प्रकट भेल अछि। फलतः सर्वव्यापी ब्रह्म यज्ञकर्ममे सदा स्थित रहैत अछि।

तात्पर्यः चारू वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद–भगवानक श्वास सँ उद्भूत अछि–ई कहल गेलै अछि। ब्रह्मसंहिता सँ प्रमाणित होइत अछि कि सर्वशक्तिमान भेलाक कारण भगवान् अपन श्वासक द्वारा बाजि सकैत छथि आओर ओ अपन नेत्र सँ गर्भाधान करि सकैत छथि। वस्तुतः ई कहल जाइत अछि कि भगवान् प्रकृति पर दृष्टिपात केलथिन आओर समस्त जीव केँ गर्भस्थ केलथिन। एहि तरह प्रकृतिक गर्भमे बद्धजीव केँ प्रविष्ट केलाक पश्चात् ओ हुनका सब केँ वैदिक ज्ञानक रुपमे आदेश देलथिन, जाहि सँ ओ भगवद्धाम वापस जा सकथि।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥१६॥

एवम्– एहि प्रकार; **प्रवर्तितम्**– वेद द्वारा स्थापित; **चक्रम्**– चक्र; **न**– नहि; **यः**– जे; **अनुवर्तयति**– ग्रहण करब; **इह**– एहि जीवनमे; **अघ आयुः**– पापपूर्ण जीवन अछि जकर; **इन्द्रिय आरामः**– इन्द्रियासक्त; **मोघम**– वृथा; **पार्थ**– हे पृथापुत्र (अर्जुन); **सः**– ओ; **जीवति**– जीवित रहैत।

हे प्रिय अर्जुन! जे मानव जीवनमे एहि प्रकार वेद द्वारा स्थापित यज्ञ-चक्रक पालन नहि करता ओ निश्चय ही पापमय जीवन व्यतीत करैत अछि। एहन व्यक्ति केवल इन्द्रियक तुष्टिक लेल व्यर्थ ही जीवित रहैत अछि।

तात्पर्यः योगीक लेल यज्ञ सम्पन्न करैक कोनो आवश्यकता नहि अछि किएक तऽ ओ पाप-पुण्य सँ परे होइत छथि, किन्तु जे लोग इन्द्रियतृप्तिमे जुटल रहैत छथि हुनका पूर्वोक्त यज्ञ-चक्रक द्वारा शुद्धिकरणक आवश्यकता रहैत अछि। अतः हुनका पुण्यकर्मक आवश्यकता होइत अछि अन्यथा हुनकर जीवन अत्यन्त संकटपूर्ण रहैत अछि।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥१७॥

यः– जे; **तु**– लेकिन; **आत्मरतिः**– आत्मामे ही आनन्द लैत; **एव**– निश्चय ही; **स्यात्**– रहैत अछि; **आत्मतृप्तः**– स्वयं प्रकाशित; **च**– तथा; **मानवः**– मनुष्य; **आत्मनि**– अपनामे; **एव**– केवल; **च**– तथा; **सन्तुष्टः**– पूर्णतया संतुष्ट; **तस्य**– ओकर; **कार्यम्**– कर्तव्य; **न**– नहि; **विद्यते**– रहैत अछि।

किन्तु जे व्यक्ति आत्मामे ही आनन्द लैत अछि तथा जकर जीवन आत्म साक्षात्कार युक्त अछि आओर जे अपनेमे ही पूर्णतया संतुष्ट रहैत अछि, हुनका लेल किछु कर्तव्य नहि होइत अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति कृष्णभावनाभावित (भगवत्भक्त) अछि आओर अपने कृष्णभावनामृत (बुद्धियोग)क कार्यमे पूर्णतया संतुष्ट रहैत अछि हुनका किछु भी नियत कर्म नहि करए पड़ैत अछि। भगवत्भक्त भेलाक कारण हुनकर हृदयक सब मैल तुरन्त धुलि जाइत अछि, जे हजारो-हजार

यज्ञ केँ सम्पन्न कैलो पर सम्भव नहि हो पावैत अछि।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥१८॥

न– कहियो नहि; **एव**– निश्चय ही; **तस्य**– हुनकर; **कृतेन**– कार्यसम्पादन सँ; **अर्थ**– प्रयोजन; **न**– न तो; **अकृतेन**– कार्य नहि केला सँ; **इह**– एहि संसारमे; **कश्चन**– जे किछु भी; **न**– कहियो नहि; **च**– तथा; **अस्य**– हुनका; **सर्वभूतेषु**– समस्त जीवमे; **कश्चित्**– क्यो; **अर्थ**– प्रयोजन; **व्यपाश्रयः**– शरणागत।

स्वरुपसिद्ध व्यक्तिक लेल न तो अपन नियत कर्म करक आवश्यकता रहि जाइत अछि, न एहन कर्म नहि करक कोनो कारण ही रहैत अछि। हुनका कोनो अन्य जीव पर निर्भर रहैक आवश्यकता भी नहि रहि जाइत अछि।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥१९॥

तस्मात्– अतः; **असक्तः**– आसक्ति रहित; **सततम्**– निरन्तर; **कार्यम्**– कर्तव्यक रुपमे; **कर्म**– कार्य; **समाचर**– करु; **असक्तः**– अनासक्त; **हि**– निश्चय ही; **आचरन्**– करैत; **कर्म**– कार्य; **परम्**– परब्रह्म केँ; **आप्नोति**– प्राप्त करैत अछि; **पूरुषः**– मनुष्य; पुरुष।

अतः कर्मफलमे आसक्त हुए बिना मनुष्य केँ अपन कर्तव्य समझि कऽ निरन्तर कर्म करैत रहबाक चाही किएक तऽ अनासक्त भऽकऽ कर्म केला सँ हुनका परब्रह्म (परम्)क प्राप्ति होइत अछि।

तात्पर्यः– भक्तक लेल श्रीभगवान् परम अछि आओर निर्विशेषवादीक लेल मुक्ति परम अछि। अतः जे व्यक्ति समुचित पथप्रदर्शन पाबि कऽ आओर कर्मफल सँ अनासक्त भऽकऽ भगवान् कृष्णक लेल कार्य करैत अछि, ओ निश्चित रुप सँ जीवन लक्ष्यक ओर प्रगति करैत अछि। कर्मफलक आसक्ति सँ रहित भऽकऽ कार्य करब परमात्माक लेल कार्य करब अछि। ई उच्चतम कोटिक पूर्ण कर्म अछि जकर संस्तुति भगवान् कृष्ण कैलनि अछि। बुद्धियोगमे जे कर्म कैल जाइत अछि ओ अच्छा या बुरा कर्मक फल सँ परे अछि।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥२०॥

कर्मणा– कर्म सँ; **एव**– ही; **हि**– निश्चय ही; **संसिद्धिम्**– पूर्णतामे; **आस्थिताः**– स्थित; **जनक-आदयः**– जनक तथा अन्य राजा; **लोक-सङ्ग्रहम्**– सामान्य लोग; **एव अपि**– भी; **सम्पश्यन्**– विचार करैत; **कर्तुम्**– करक लेल; **अर्हसि**– योग्य हो।

जनक सनक राजा केवल नियत कर्म केँ कएला सँ ही सिद्ध प्राप्त कैलनि। अतः सामान्य जन केँ शिक्षित करक दृष्टि सँ अहाँ केँ कर्म करक चाही।

तात्पर्यः जनक राजा स्वरुपसिद्ध व्यक्ति छलाह–अतः ओ वेदानुमोहित कर्म कर लेल बाध्य नहि छलाह। तो भी ओ लोग सामान्यजनक समक्ष आदर्श प्रस्तुत करक उद्देश्य सँ सब नियत कर्म करैत छलाह। राजा जनक जगत् जननी माता सीताजीक पिता तथा भगवान् रामक ससुर छलाह। भगवानक महान भक्त भेलाक कारण हुनकर स्थिति दिव्य छल, किन्तु ओ माता जानकीक अवतार स्थली मिथिलाक राजा छलाह, अतः हुनका अपन प्रजा केँ शिक्षा देवाक छलनि कि कर्तव्यपालन कोन प्रकार कैल जाय। भगवान् कृष्ण तथा हुनकर शाश्वत सखा अर्जुन केँ कुरुक्षेत्रक युद्धमे लड़क कोनो आवश्यकता नहि छल, किन्तु ओ प्रजा केँ सिखब लेल युद्ध कैलनि।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥२१॥

यत् यत्– जे-जे; **आचरति**– कैरत अछि; **श्रेष्ठः**– आदरणीय नेता; **तत्**– ओ; **तत्**– तथा केवल ओहे; **एव**– निश्चय ही; **इतरः**– सामान्य; **जनः**– व्यक्ति; **सः**– ओ; **यत्**– जे किछु; **प्रमाणम्**– उदाहरण, आदर्श; **कुरुते**– करैत अछि; **लोकः**– सारा संसार; **तत्**– ओकर; **अनुवर्तते**– पद चिन्हक अनुशरण करैत अछि।

महापुरुष जे जे आचरण करैत छथि, सामान्य व्यक्ति ओकरे अनुशरण करैत अछि। ओ अपन अनुशरणीय कार्य सँ जे आदर्श प्रस्तुत करैत छथि, सम्पूर्ण विश्व ओकर अनुशरण करैत अछि।

तात्पर्यः श्रीमद्भागवत भी एकर पुष्टि करैत अछि कि मनुष्य केँ महान भक्तक पदचिन्हक अनुशरण करक चाही आओर आध्यात्मिक बोधक पथमे प्रगतिक इहे साधन अछि, चाहे राजा हो, चाहे पिता हो या शिक्षक। ई सब अबोध प्रजाक स्वभाविक नेता मानल जाइत छथि। अतः हिनका सबकेँ नैतिक तथा आध्यात्मिक संहिता सम्बन्धी आदर्श ग्रंथ सँ सुपरिचित हेवाक चाही। चैतन्य महाप्रभुक उक्ति अछि जे शिक्षा देम सँ पूर्व शिक्षक केँ ठीक-ठीक आचरण करक चाही। ओ आदर्श शिक्षक कहलाबैत छथि।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥२२॥

न- नहि; **मे**- हमरा; **पार्थ**- हे पृथापुत्र; **अस्ति**- अछि; **कर्तव्यम्**- नियत कार्य; **त्रिषु**- तीनू; **लोकेषु**- लोकमे; **किञ्जन**- क्यो; **न**- किछु नहि; **अनवाप्तम्**- इच्छित; **अवाप्तव्यम्**- पेबाक लेल; **वर्ते**- लागल रहैत अछि। एव- निश्चय ही; **च**- भी; **कर्मणि**- नियत कर्ममे।

हे पृथापुत्र! तीनू लोकमे हमरा लेल कोनो भी कर्म नियत नहि अछि आओर न हमरा कोनो वस्तुक अभाव अछि आओर न आवश्यकता ही अछि। तो भी हम नियतकर्म करमे तत्पर रहैत छी।

तात्पर्यः चूँकि भगवानमे प्रत्येक वस्तु ऐश्वर्य सँ परिपूर्ण रहैत अछि आओर पूर्ण सत्य सँ ओत-प्रोत रहैत अछि, अतः हुनका लेल कोनो कर्तव्य करक आवश्यकता नहि रहैत अछि। जिनका अपन कर्मक फल पेबाक अछि, हुनका लेल किछु न किछु कर्म नियत रहैत अछि, परन्तु जे तीनू लोकमे किछु भी प्राप्त करक इच्छा नहि रखता हुनका लेल निश्चय ही कोनो कर्तव्य नहि रहैत अछि। भगवान् परम छथि। हुनकर सब इन्द्रिय दिव्य अछि। हुनकर शक्ति बहुरुपिणी अछि, फलतः हुनकर सब कार्य प्राकृतिक अनुक्रमक अनुसार सम्पन्न भऽ जाइत अछि।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥२३॥

यदि- यदि; **हि**- निश्चय ही; **अहम्**- हम; **न**- नहि; **वर्तेयम्**- एहि प्रकार व्यस्त रही; **जातु**- कौखन; **कर्मणि**- नियत कर्मक सम्पादनमे; **अतन्द्रित**-

सावधानीक साथ; **मम**– हमर; **वर्त्म**– पथ; **अनुवर्तन्ते**– अनुगमन करता; **मनुष्याः**– सब मनुष्य; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **सर्वशः**– सब प्रकार सँ।

किएक तऽ यदि हम नियत कर्मक सावधानीपूर्वक नहि करुँ तो हे पार्थ! ई निश्चित अछि कि सब मनुष्य हमरे पथक ही अनुगमन करता।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥२४॥

उत्सीदेयुः– नष्ट भऽ जाए; **इमे**– ई सब; **लोकाः**– लोक; **न**– नहि; **कुर्याम्**– करुँ; **कर्म**– नियत कार्य; **चेत्**– यदि; **अहम्**– हम; **संकरस्य**– अवांछित संतति क; **च**– तथा; **कर्ता**– स्त्रष्टा; **स्याम्**– हैब; **उपहन्याम्**– विनष्ट करत; **इमाः**– ई सब; **प्रजाः**– जीवक।

यदि हम नियतकर्म न करुँ तो ई सब लोग नष्ट भऽ जाएत। तखन हम अवांछित वर्णसकर केँ उत्पन्न करक कारण भऽ जाएव आओर एहि तरह सम्पूर्ण प्राणीक विनाशक बनब।

तात्पर्यः भगवान् समस्त जीवक पिता छथि आओर यदि ई जीव पथभ्रष्ट भऽ जाएत तो अप्रत्यक्ष रुपमे उत्तरदायित्व हुनके हेतैन्ह। अतः जखन भी विधि विधानक अनादर होइत अछि तो भगवान् स्वयं समाज केँ सुधारै लेल अवतरित होइत छथि। मानव जाति केँ हुनकर उपदेशक पालन करक चाही।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥२५॥

सक्ताः– आसक्त; **कर्मणि**– नियत कर्मक; **अविद्वांसः**– अज्ञानी; **यथा**– जाहि तरह; **कुर्वन्ति**– करैत अछि; **भारत**– हे भरतवंशी; **कुर्यात्**– कर चाही; **विद्वान्**– विद्वान; **तथा**– ओहि तरह; **असक्तः**– अनासक्त; **चिकीर्षु**– चाहैत हुए भी, इच्छुक; **लोक संगहम्**– सामान्य जन;

जाहि प्रकार अज्ञानी जन फलक आसक्ति सँ कार्य करैत अछि, ओहि तरह विद्वान जन केँ चाही कि ओ लोग केँ उचित पथ पर लऽ जेबाक लेल अनासक्त रहिकऽ काज करथि।

तात्पर्यः एक कृष्णभावनाभावित (भक्त) मनुष्य तथा एक कृष्णभावनाहीन व्यक्तिमे केवल इच्छाक अन्तर होइत अछि। भक्त जन कहियो एहन कोनो कार्य नहि करता जे बुद्धियोगक विकासमे सहायक नहि हो। जे भौतिक कार्यमे अत्यधिक आसक्त रहैत छथि ओ अज्ञानी पुरुष जकाँ कर्मक सकैत छथि।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥२६॥

न– नहि; **बुद्धिभेदम्**– बुद्धिक विचलन; **जनयेत्**– उत्पन्न करु; **अज्ञानाम्**– मूर्खक; **कर्मसंगिनाम्**– सकाम कर्ममे आसक्त; **जोषयेत्**– नियोजित करी; **सर्व**– सारा; **कर्माणि**– कर्म; **विद्वान**– विद्वान व्यक्ति; **युक्तः**– लागल, तत्पर; **समाचरन्**– अभ्यास करैत।

विद्वान व्यक्ति केँ चाही कि ओ सकाम कर्ममे आसक्त अज्ञानी पुरुष केँ कर्म कर सँ रोकथि नहि ताकि हुनकर मन विचलित न हो। अपितु भक्तिभाव सँ कर्म करैत ओ हुनका सब प्रकारक कार्यमे लगावथि-जाहि सँ कृष्णभावनामृत (बुद्धियोग)क क्रमिक विकास हो।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित (भगवत्भक्ति) व्यक्ति एहि तरहक कार्य कऽ सकैत छथि कि इन्द्रियतृप्ति कर्म करएवाला अज्ञानी पुरुष ई सीख लिअ कि कोन तरहक कार्य करक चाही आओर आचरण करक चाही। यद्यपि अज्ञानी पुरुष केँ हुनकर कार्यमे छेड़ब ठीक नहि होइत, परन्तु यदि ओ रंचभरि भी कृष्णभावनाभावित हेता तऽ ओ वैदिक विधिक परवाह नहि करैत सीधे भगवानक सेवामे लागि सकैत छथि। एहन भाग्यशाली व्यक्ति केँ वैदिक अनुष्ठान करबाक आवश्यकता नहि होइत अछि, किएक तऽ कृष्णभावनामृत द्वारा हुनका ओ सारा फल प्राप्त भऽ जाइत अछि, जे हुनका अपन कर्तव्यक पालन सँ प्राप्त होइत।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥२७॥

प्रकृतेः– प्रकृतिक; **क्रियमाणानि**– कएल जा कऽ; **गुणैः**– गुणक द्वारा; **कर्माणि**– कर्म; **सर्वशः**– सब प्रकारक; **अहंकार विमूढ़**– अहंकार सँ

मोहित; **आत्मा**– आत्मा; **अहम्**– हम; **इति**– एहि प्रकार; **मन्यते**– सोचैत अछि।

जीवात्मा अहंकारक प्रभाव सँ मोह ग्रस्त भऽ अपने आप केँ समस्त कर्मक कर्ता मानि बैठैत अछि, जखन कि वास्तवमे ओ प्रकृतिक तीनू गुणक द्वारा सम्पन्न कैल जाइत अछि।

तात्पर्य: अज्ञानी व्यक्ति ई भूलि जाइत छथि कि भगवान् हृषीकेश कहलाबैत छथि, अर्थात् ओ शरीरक इन्द्रियक स्वामी छथि। इन्द्रियतृप्ति लेल इन्द्रियक निरन्तर उपयोग करैत रहला सँ ओ अहंकारक कारण वस्तुतः मोहग्रस्त रहैत छथि, जाहि सँ ओ कृष्णक साथ अपन शाश्वत सम्बन्ध केँ बिसरि जाइत छथि।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥२८॥

तत्ववित्– परम सत्य केँ जानैवाला; **तु**– लेकिन; **महाबाहो**– हे विशाल भुजावाला; **गुणकर्म**– भौतिक प्रभावक अन्तर्गत कर्मक; **विभागयो**– भेदक; **गुणाः**– इन्द्रिय सब; **गुणेषु**– इन्द्रियतृप्तिमे; **वर्तन्ते**– तत्पर रहैत अछि; **इति**– एहि प्रकार; **मत्वा**– मानिक; **न**– कहियो नहि; **सज्जते**– आसक्त होइत अछि।

हे महाबाहो! भक्तिभावमय कर्म तथा सकामक भेद केँ ठीक-ठीक जानैत जे परम सत्य केँ जानएवाला छथि, ओ कहियो भी अपने आप केँ इन्द्रियमे तथा इन्द्रियतृप्तिमे नहि लगबैत छथि।

तात्पर्य: परम सत्य केँ जान वाला भौतिक संगतिमे अपन विषम स्थिति केँ जानैत छथि। ओ जानैत छथि कि ओ भगवानक अंश छथि आओर हुनकर स्थान एहि भौतिक सृष्टिमे नहि हेवाक चाही। अतः ओ अपने आप केँ कृष्णभावनामृतक कार्यमे लगबैत छथि आओर भौतिक इन्द्रिय कार्यक प्रति स्वभावतः आनासक्त भऽ जाइत छथि, किएक तऽ ई परिस्थितिजन्य तथा अस्थायी अछि। श्रीमद्भागवतक अनुसार जे व्यक्ति परम सत्य केँ ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् एहि तीनू रुपमे जानैत छथि ओ तत्त्ववित् कहलाबैत छथि।

प्रकृतेर्गुणसम्मूढ़ाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।

तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥२९॥

प्रकृतेः– प्रकृतिक; **गुण**– गुण सँ; **सम्मूढ़ाः**– भौतिक पहचान सँ मूर्ख बनल; **सञ्जन्ते**– लागि जाति अछि; **गुण कर्मसु**– भौतिक कर्ममे; **तान्**– हुनका; **अकृत्स्त्रविदः**– अल्पज्ञानी पुरुष; **मन्दान्**– आत्म साक्षात्कार समझैमे आलसी केँ; **कृत्स्त्र बित्**– ज्ञानी; **न**– नहि; **विचालयेत्**– विचलित करैक प्रयास कर चाही।

मायाक गुण सँ मोहग्रस्त भेला पर अज्ञानी पुरुष पूर्णतया भौतिक कार्यमे, संलग्न रहि कऽ ओहिमे आसक्त भऽ जाइत अछि। यद्यपि हुनकर ई कार्य हुनकामे ज्ञानाभावक कारण अधम होइत अछि, किन्तु ज्ञानी केँ चाही कि हुनका विचलित नहि करथि।

तात्पर्यः जे लोग अज्ञानी अछि ओ बुद्धियोगक कार्य केँ समझि नहि पाबैत अछि, अतः भगवान् कृष्ण हमरा सब केँ उपदेश दैत छथि कि एहन व्यक्ति सबकेँ विचलित नहि कैल जाए आओर व्यर्थ ही मूल्यवान समय नष्ट कैल जाए। किन्तु भगवत्भक्त भगवान् सँ भी दयालु होइत छथि किएक तऽ ओ भगवानक अभिप्राय समझैत छथि। फलतः ओ अज्ञानी पुरुषक पास जा कऽ हुनका बुद्धियोगक कार्यमे प्रवृत्त करैक प्रयास करैत छथि, जे मानवक लेल परमावश्यक अछि।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥३०॥

मयि– हमरा मे; **सर्वाणि**– सब तरहक; **कर्माणि**– कर्मक; **संन्यस्य**– पूर्णतया त्याग करि कऽ; **अध्यात्म**– पूर्ण आत्मज्ञान सँ युक्त; **चेतसा**– चेतना सँ; **निराशीः**– लाभक आशा सँ रहित, निष्काम; **निर्ममः**– स्वामित्वक भावना सँ रहित, ममतात्यागी; **भूत्वा**– भऽकऽ; **युध्यस्व**– लड़ू; **विगत ज्वरः**– आलस्य रहित।

अतः हे अर्जुन! अपन सब कार्य केँ हमरामे समर्पितक हमर पूर्ण ज्ञान सँ युक्त भऽकऽ लाभक आकांक्षा सँ रहित, स्वामित्वक कोनो दावाक बिना तथा आलस्य सँ रहित भऽकऽ युद्ध करु।

तात्पर्यः मनुष्य केँ ई समझक चाही कि एहि संसारमे कोनो व्यक्तिक किछु भी नहि अछि, सब वस्तु परमेश्वरक अछि। जखन मनुष्य एहि

प्रकार सँ बुद्धियोगमे कार्य करैत अछि तो ओ कोनो वस्तु पर अपन स्वामित्वक दावा नहि करैत अछि। ई भावनामृत निर्मम अर्थात् हमर किछु नहि अछि, कहलाबैत अछि। अपन गुण तथा स्थितिक अनुसार प्रत्येक व्यक्ति केँ विशेष प्रकारक कार्य करक होइत अछि आओर एहन कर्तव्यक पालन कृष्णभावनाभावित भऽकऽ कैल जा सकैत अछि। एहि सँ मुक्तिक मार्ग प्रशस्त होइत अछि।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽति कर्मभिः॥३१॥

ये- जे; **मे**- हमर; **मतम्**- ओदेश केँ; **इदम्**- एहि; **नित्यम्**- नित्य कार्यक रुपमे; **अनुतिष्ठन्ति**- नियमित रुप सँ पालन करैत अछि; **मानवाः**- मनुष्य प्राणी; **श्रद्धावन्तः**- श्रद्धा तथा भक्ति; **अनुसूयन्तः**- बिना ईर्ष्याक; **मुच्यन्ते**- मुक्त भऽ जाइत अछि; **ते**- ओ; **अपि**- भी; **कर्मभिः**- सकाम कर्मक नियमरुपी बन्धन सँ।

जे व्यक्ति हमर आदेशक अनुसार कर्तव्य करैत रहैत छथि आओर ईर्ष्या रहित भऽकऽ एहि उपदेशक श्रद्धापूर्वक पालन करैत छथि, ओ सकाम कर्मक बन्धन सँ मुक्त भऽ जाइत छथि।

तात्पर्यः जाहि प्रकार वेद शाश्वत अछि ओहि प्रकार कृष्णभावनामृतक ई सत्य भी शाश्वत अछि। मनुष्य केँ चाही कि भगवान् सँ ईर्ष्या किये बिना एहि आदेशमे दृढ़ विश्वास राखथि।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥३२॥

ये- जे; **तु**- किन्तु; **एतत्**- एहि; **अभ्यसूयन्तः**- ईर्ष्यावश; **न**- नहि; **अनुतिष्ठन्ति**- नियमित रुप सँ सम्पन्न करब; **मे**- हमर; **मतम्**- आदेश; **सर्वज्ञान**- सब प्रकारक ज्ञानमे; **विमूढ़ान्**- पूर्णतया दिग्भ्रमित; **तान्**- हुनका; **विद्धि**- ठीक सँ जानू; **नष्टान्**- नष्ट भेल; **अचेतसः**- कृष्णभावनामृत रहित।

किन्तु जे ईर्ष्यावश एहि उपदेशक उपेक्षा करैत अछि आओर हुनकर पालन नहि करैत अछि हुनका समस्त ज्ञान सँ रहित, दिग्भ्रमित तथा सिद्धिक प्रयासमे नष्ट-भ्रष्ट समझव चाही।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥३३॥

सदृशम्- अनुसार; **चेष्टते**- चेष्टा करैत अछि; **स्वस्याः**- अपन; **प्रकृते**- गुण सँ; **ज्ञान-वान्**- विद्वान; **अपि**- भी; **प्रकृतिम्**- प्रकृति केँ; **यान्ति**- प्राप्त होइत अछि; **भूतानि**- सब प्राणी; **निग्रहः**- दमन; **किम्**- की; करिष्यति-क सकैत अछि।

ज्ञानी पुरुष भी अपन प्रकृतिक अनुसार कार्य करैत छथि, किएक तऽ सब प्राणी तीनू गुण सँ प्राप्त अपन प्रकृतिक ही अनुसरण करैत छथि। भला दमन सँ की भऽ सकैत अछि?

तात्पर्यः ज्ञानक दृष्टि सँ क्यो कतबो ही विद्वान किएक न हो, किन्तु भौतिक प्रकृतिक दीर्घकालीन संगतिक कारण ओ बन्धनमे रहैत छथि। बुद्धियोग हुनका भौतिक बन्धन सँ छूटैमे सहायक होइत अछि, भले ही क्यो अपन नियम कर्म करएमे संलग्न किएक न रहए। अतः पूर्णतया कृष्णभावनाभावित बिना अपन नियतकर्म परित्याग नहि करक चाही। कृष्णभावनामृत (बुद्धियोग)क दिव्य पद पर स्थित हुए बिना प्रकृतिक गुणक प्रभाव सँ मुक्त नहि भेल जा सकैत अछि।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥३४॥

इन्द्रियस्य- इन्द्रियक; **इन्द्रियस्य अर्थे**- इन्द्रिय विषयमे; **राग**- आसक्ति; **द्वेषौ**- तथा विरक्ति; **व्यस्थितौ**- नियमक अधीन स्थित; **तयोः**- हुनक; **न**- नहि; **वशम्**- नियन्त्रणमे; **आगच्छेत्**- आब चाही; **तौ**- ओ दूनू; **हि**- निश्चय ही; **अस्य**- ओकर; **परिपन्थिनौ**- अवरोधक।

प्रत्येक इन्द्रिय तथा ओकर विषय सँ सम्बन्धित राग द्वेष केँ व्यस्थित करक नियम होइत अछि। मनुष्य केँ एहन राग-द्वेषक वशीभूत नहि हेबाक चाही किएक तऽ ई आत्म-साक्षात्कारक मार्गमे अवरोधक अछि।

तात्पर्यः जे लोग कृष्णभावनाभावित (भगवत्भक्ति) छथि, ओ स्वभाव सँ भौतिक इन्द्रियतृप्तिमे रत भेलामे झिझकैत छथि। किन्तु जाहि लोगक एहन भावना नहि हो, हुनका शास्त्रक यम-नियमक पालन करक चाही।

मनुष्य केँ चाही कि ओ कोनो भी अवस्थामे कृष्णभावनामृत (बुद्धियोग) सँ विरक्ति हेबाक चेष्टा नहि करथि। समस्त प्रकारक इन्द्रिय आसक्तिमे विरक्तिक उद्देश्य अन्ततः कृष्णभावनामृतक पद पर आसीन होयब अछि।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥३५॥

श्रेयान्– अधिक श्रेयस्कर**;** **स्वधर्मः**– अपन नियत कर्म**;** **विगुणः**– दोषयुक्त भी**;** **पर धर्मात्**– अन्यक लेल उल्लिखित कार्यक अपेक्षा**;** **सु अनुष्ठितात्**– भली भाँति सम्पन्न**;** **स्वधर्मे**– अपन नियत कार्यमे**;** **निधनन्**– विनाश, मृत्यु**;** **श्रेयः**– श्रेष्ठतर**;** **पर धर्मः**– अन्यक लेल नियतकर्म**;** **भय आवहः**– खतरनाक; डरावना।

अपन नियत कर्मक दोषपूर्ण ढंग सँ सम्पन्न करब भी अन्यक कर्म केँ ठीक-ठीक करब सँ श्रेष्ठकर अछि। अपन कर्म करैत मरब पराया कर्ममे प्रवृत्त भेलाक अपेक्षा श्रेष्ठतर अछि, किएक तऽ अन्य ककरो मार्गक अनुसरण भयावह होइत अछि।

तात्पर्यः जखन मनुष्य प्रकृतिक गुणक वशीभूत हो तो ओकरा ओहि विशेष अवस्था लेल नियमक पालन करबाक चाही हुनका अन्यक अनुकरण नहि करबाक चाही। कारण आध्यात्मिक तथा भौतिक स्तर पर कर्म भिन्न-भिन्न भऽ सकैत अछि, किन्तु कर्ताक लेल कोनो प्रमाणिक निर्देशनक पालनक सिद्धान्त उत्तम होयत।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥३६॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलखिन**;** **अथ**– तखन**;** **केन**– ककरा द्वारा**;** **प्रयुक्तः**– प्रेरित**;** **अयम्**– ई**;** **पापम्**– पाप**;** **चरति**– करैत अछि**;** **पूरुषः**– व्यक्ति**;** **अनिच्छन्**– नहि चाहैत भी**;** **अपि**– यद्यपि**;** **वार्ष्णेय**– हे वृष्णिवंशी**;** **बलात्**– बलपूर्वक**;** **इव**– मानू**;** **नियोजितः**– लगाएल गेल।

अर्जुन कहलखिन-हे वृष्णिवंशी! मनुष्य नहि चाहैत भी पापकर्मक लेल प्रेरित किएक होइत अछि? एना लागैत अछि कि हुनका बलपूर्वक ओहिमे लगाएल जा रहल अछि।

तात्पर्य: जीवात्मा परमेश्वरक अंश भेलाक कारण मूलत: आध्यात्मिक शुद्ध एवं समस्त भौतिक कल्मष सँ मुक्त रहैत अछि। फलत: स्वभाव सँ ओ भौतिक जगतक पापमे प्रवृत्त नहि होइत अछि। कहियो-कहियो जीव कोनो पाप नहि कर चाहैत अछि, किन्तु ओकरा एना करबाक लेल बाध्य हुअ पड़ैत अछि। किन्तु ई पापकर्म अन्तर्यामी परमेश्वर द्वारा प्रेरित नहि होइत अछि किन्तु अन्य कारण सँ होइत अछि।

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥३७॥

श्रीभगवान् उवाच- श्रीभगवान् कहलखिन; **कामः**- विषयवासना; **एषः**- ई; **क्रोधः**- क्रोध; **एषः**- ई; **रजोगुण**- रजोगुण सँ; **समुद्भवः**- उत्पन्न; **महा अशनः**- सर्वभक्षी; **महा पाप्मा**- महान पापी; **विद्धि**- जानू; **एनम्**- एकरा; **इह**- एहि संसारमे; **वैरिणम्**- महान शत्रु।

श्रीभगवान् कहलखिन-हे अर्जुन! एकर कारण रजो गुणक सम्पर्क सँ उत्पन्न काम अछि जे बादमे क्रोधक रुप धारण करैत अछि आओर एहि संसारक सर्वभक्षी पापी शत्रु अछि।

तात्पर्य: श्रीमद्भागवतमे कहल गेलै अछि- सब वस्तुक उद्गम परब्रह्म अछि। अत: काम उद्गम भी परब्रह्म सँ भेल अछि। अत: काम भगवत्प्रेममे या कृष्णभावनामे परिणतक देल जाए तो काम, क्रोध दूनू आध्यात्मिक बन जाएत। भगवान् श्रीरामक अनन्य सेवक हनुमान रावणक स्वर्णपुरी केँ जलाक अपन क्रोध प्रकट केलाह, परन्तु एहन करला सँ ओ भगवानक सबसँ पैघ भक्त बनि गेलाह। एतहु श्रीकृष्ण अर्जुन केँ प्रेरित करैत छथिन कि ओ शत्रु पर अपन क्रोध भगवान् केँ प्रसन्न करबाक लेल देखावथि। अत: काम तथा क्रोध कृष्णभावनामृतमे प्रयुक्त भेला पर हमर शत्रु नहि रहिक मित्र भऽ जाइत अछि।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥३८॥

धूमेन- धूआँ सँ; **आव्रियते**- ढ़कि जाइत अछि; **वह्निः**- अग्नि; **यथा**- जाहि प्रकार; **आदर्शः**- शीशा, दर्पण; **मलेन**- धूल सँ; **च**- भी; **यथा**-

जाहि प्रकार; **उल्बेन**– गर्भाशय द्वारा; **आवृतः**– दकल रहैत अछि; **गर्भः**– भ्रूण, गर्भ; **तथा**– ओहि प्रकार; **तेन**– काम सँ; **इदम्**– ई; **आवृतम्**– ढ़कल अछि।

जाहि प्रकार अग्नि धुआँ सँ, दर्पण धूल सँ अथवा भ्रूण गर्भाशय सँ आवृत अछि, ओहि प्रकार जीवात्मा एहि कामक विभिन्न मात्रा सँ आवृत रहैत अछि।

तात्पर्यः जीवात्माक आवरणक तीन कोटि अछि जाहिमे ओकर शुद्ध चेतना धूमिल होइत अछि। ई आवरण काम ही अछि जे विभिन्न स्वरुपमे होइत अछि यथा अग्निमे धूआँ, दर्पण पर धूल तथा भ्रूण पर गर्भाशय। अतः आध्यात्मिक जीवनक अग्नि मनुष्य जीवनमे प्रज्वलित भऽ सकैत अछि, यदि अग्निक धूआँ केँ ठीक सँ नियन्त्रित कैल जाए तो अग्नि जल सकैत अछि। मनुष्य जीवन जीवात्माक लेल सुअवसर अछि जाहि सँ ओ संसारक बन्धन सँ छूटि सकैत अछि। धूमिल दर्पण पशुपक्षीक समान अछि। ध्रुम्र सँ आवृत अग्नि मनुष्यक समान, गर्भाशय द्वारा आवृत भ्रूण वृक्षक समान अछि चेतना शून्य।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥३९॥

आवृतम्– ढ़कल; **ज्ञानम्**– शुद्ध चेतना; **एतेन**– एहि सँ; **ज्ञानिनः**– ज्ञाताक; **नित्य वैरिणा**– नित्य शत्रु द्वारा; **कामरुपेण**– कामक रुपमे; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **दुष्पूरेण**– कहियो भी तुष्ट नहि हुअवाला; **अनलेन**– अग्नि द्वारा; **च**– भी।

एहि प्रकार ज्ञानमय जीवात्माक शुद्ध चेतना हुनकर काम रुपी नित्य शत्रु सँ ढ़कल रहैत अछि जे कौखन भी तुष्ट नहि होइत अछि आओर अग्निक समान जलैत रहैत अछि।

तात्पर्यः मनुस्मृतिमे कहल गेलै अछि कि कतेको भी विषय भोग किएक नहि कएल जाय कामक तृप्ति नहि होइत अछि। जेना कि निरंतर ईधन डालला सँ अग्नि कहियो नहि बुझाइत अछि। इन्द्रियतृप्तिक भोग करैत समय भऽ सकैत अछि कि किछु प्रसन्नताक अनुभूति हो, किन्तु ओ प्रसन्नताक अनुभूति ही इन्द्रिय भोक्ताक परम शत्रु अछि।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥४०॥

इन्द्रियाणि– इन्द्रिय; **मनः**– मन; **बुद्धि**– बुद्धि; **अस्य**– एहि कामक; **अधिष्ठानम्**– निवास्थान; **उच्यते**– कहल जाइत अछि; **एतैः**– एहि सबमे; **विमोहयति**– मोहग्रस्त करैत अछि; **एषः**– ई काम; **ज्ञानम्**– ज्ञान केँ; **आवृत्य**– ढ़कि कऽ; **देहिनम्**– शरीरधारी केँ।

इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि कामक निवासस्थान अछि। एहि द्वारा ओ काम जीवात्माक वास्तविक ज्ञान केँ ढ़कि कऽ ओकरा मोहितक लैत अछि।

तात्पर्यः मन समस्त इन्द्रियक कार्यकलापक केन्द्रबिन्दु अछि। अतः जखन हम इन्द्रिय विषयक सम्बन्धमे सुनैत छी तो मन तथा इन्द्रिय कामक शरणस्थली बनि जाइत अछि। एकर बाद बुद्धि एहन कामपूर्ण रुचिक राजधानी बन जाइत अछि। काममय बुद्धि सँ आत्मा प्रभावित होइत अछि, जाहि सँ ओकरामे अहंकार उत्पन्न होइत अछि आओर ओ एहि प्रकार मन आओर इन्द्रिय सँ अपन तादात्म्यक लैत अछि।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥४१॥

तस्मात्– अतः; **त्वम्**– अहाँ; **इन्द्रियाणि**– इन्द्रिय केँ; **आदौ**– प्रारम्भमे; **नियम्य**– नियमित करिक; **भरत ऋषभ**– हे भरतवंशीमे श्रेष्ठ; **पाप्मानम्**– पापक महान प्रतीक केँ; **प्रजहि**– दमन करु; **हि**– निश्चय ही; **एनम्**– एहि; **ज्ञान**– ज्ञान; **विज्ञान**– शुद्ध आत्माक वैज्ञानिक ज्ञानक; **नाशनम्**– संहर्ता; विनाश करएवाला।

इसलिए हे भरतवंशीमे श्रेष्ठ अर्जुन! प्रारम्भमे ही इन्द्रिय केँ वशमे करिक एहि पापक महान प्रतीक (काम)क दमन करुँ आओर ज्ञान तथा आत्म साक्षात्कारक एहि विनाश कर्ताक वध करु।

तात्पर्यः काम ईश्वर प्रेमक विकृत प्रतिविम्ब अछि आओर प्रत्येक जीवक लेल स्वाभाविक अछि। किन्तु यदि ककरो प्रारम्भ सँ ही कृष्णभावनामृत (भगवत्भक्ति)क शिक्षा देल जाए तो प्राकृतिक ईश्वर प्रेम कामक रुपमे विकृत नहि होइत अछि। जीव भगवानक सेवाक लेल

बनल अछि। ई चेतना कृष्णभावनामृत कहलाबैत अछि।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥४२॥

इन्द्रियाणि– इन्द्रिय केँ; **पराणि**– श्रेष्ठ; **आहुः**– कहल जाइत अछि; **इन्द्रियेभ्यः**– इन्द्रिय सँ बढ़ि कऽ; **परम्**– श्रेष्ठ; **मनः**– मन; **मनसः**– मनक अपेक्षा; **तु**– भी; **परा**– श्रेष्ठ; **बुद्धिः**– बुद्धि; **यः**– जे; **बुद्धः**– बुद्धि सँ भी; **परतः**– श्रेष्ठ; **तु**– किन्तु; **सः**– ओ।

कर्मेन्द्रिय जड़ पदार्थक अपेक्षा श्रेष्ठ अछि, मन इन्द्रिय सँ बढ़ि कऽ अछि, बुद्धि मन सँ भी उच्च अछि आओर ओ (आत्मा) बुद्धि सँ भी बढ़कर अछि।

तात्पर्यः कठोपनिषदमे आत्मा केँ महान कहल गेलै अछि। अतः आत्मा इन्द्रिय विषय, इन्द्रिय मन तथा बुद्धि–एहि सब सँ ऊपर अछि। अतः सब समस्याक हल अछि कि आत्माक स्वरुप केँ प्रत्यक्ष समझल जाय। यदि क्यो बुद्धिपूर्वक अपन मन केँ भगवानक शरणागत भऽकऽ कृष्णभावनामृतमे लगबैत अछि, तऽ मन स्वतः सशक्त भऽ जाइत अछि आओर यद्यपि इन्द्रिय सर्पक समान अत्यन्त बलिष्ठ होइत अछि, किन्तु एना कएला सँ ओ दन्तविहीन साँपक समान अशक्त भऽ जाएत। यद्यपि आत्मा बुद्धि, मन तथा इन्द्रियक स्वामी अछि तखनो जाधरि एकरा भगवत्भक्तिमे सुदृढ़ नहिक कएल जाए ताधरि पलायमान मनक कारणेँ नीचा गिरैक पूर्ण सम्भावना बनल रहैत अछि।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥४३॥

एवम्– एहि प्रकार; **बुद्धेः**– बुद्धि सँ; **परम्**– श्रेष्ठ; **बुद्ध्वा**– जानिक; **संस्तभ्य**– स्थिर करिक; **आत्मानम्**– मन केँ; **आत्मना**– सुविचारित बुद्धि द्वारा; **जहि**– जीतू; **शत्रुम्**– शत्रु केँ; **महाबाहो**– हे महाबाहु; **कामरुपम्**– कामक रुपमे; **दुरासदम्**– दुर्जेय।

एहि प्रकार हे महाबाहु अर्जुन! अपने आप केँ भौतिक इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि सँ परे जानिक आओर मन केँ सावधान आध्यात्मिक बुद्धि (कृष्णभावनामृत) सँ स्थिर करिक आध्यात्मिक शक्ति द्वारा

एहि काम रुपी दुर्जेय शत्रु केँ जीतू।

तात्पर्य: भौतिक जीवनमे मनुष्य काम तथा प्रकृति पर प्रभुत्व पाबैक इच्छा सँ प्रभावित होइत अछि। प्रभुत्व तथा इन्द्रियतृप्तिक इच्छा, मन तथा बुद्धि पर नियन्त्रण राखि सकैत अछि। एहि लेल मनुष्य केँ सहसा अपन नियत कर्म बन्द करक आवश्यकता नहि अछि, अपितु धीरे–धीरे कृष्णभावनामृत विकसितक भौतिक इन्द्रिय तथा मन सँ प्रभावित हुए बिना अपन शुद्ध स्वरुपक प्रति लक्षित स्थिर बुद्धि सँ दिव्य स्थिति केँ प्राप्त भेल मानल जा सकैत अछि। भगवद्गीताक तृतीय अध्याय निष्कर्षत: मनुष्य केँ निर्देश दैत अछि अपने आप केँ भगवानक शाश्वत सेवक समझैत कृष्णभावनामृतमे प्रवृत्त रहथि।

कर्मयोगक संक्षिप्त विवरण

अर्जुन पूछलखिन– हे जनार्दन! यदि अहाँक तप सँ, कर्म सँ, बुद्धि श्रेष्ठ अछि तऽ हे केशव! हमरा एहि घोर कर्ममे किएक लगबै छी? अहाँक अनेकार्थक उपदेश हमर बुद्धि केँ भ्रममे डालि रहल अछि। निश्चय कऽ हमरा बताउ जाहिमे हम कल्याण प्राप्त कऽ सकी। भगवान् श्रीकृष्ण कहलखिन– हे निष्पाप अर्जुन! हम पहिने कहि चुकल छी कि एहि लोकमे दू प्रकारक निष्ठा कहल गेलै अछि– एक तऽ सांख्यवालाक ज्ञानयोग दोसर योगीक कर्म योग। कर्मक प्रारम्भ नहि कएला सँ क्यो भी निष्कर्म नहि कहाबैत अछि आओर कर्मक त्याग करि कऽ सन्यास कएला सँ ही ककरो सिद्धि नहि मिलि जाइत अछि। प्रकृतिक गुण ही सब मनुष्यक किछु न किछु कर्म करएमे लगबैत रहैत अछि जे अज्ञानी कर्मेन्द्रिय केँ रोकि कऽ आत्म चिन्तनक बहाने विषयक चिन्ता करैत अछि ओ पाखंडी मिथ्याचारी कहाबैत अछि। हे अर्जुन! जे इन्द्रिय केँ हठ सँ दमनक आओर विषयमे प्रवृत्त नहि हुअ दऽकऽ ओकरा सँ कार्य लैत अछि ओ कर्मयोगक अभ्यासी कहबैत अछि आओर श्रेष्ठ मानल जाइत अछि। अपन धर्मक अनुसार नियमित कर्म करु, किएक तऽ कर्म नहि कएला सँ कर्म करब नीक अछि। बिना कर्म कएला सँ अहाँक शरीर केँ निर्वाह नहि भऽ सकैत अछि। हे कौन्तेय! यज्ञक निमित्त कएल जाएवाला कर्म केँ छोड़ि जतेक कर्म अछि ओकरा कएला सँ मनुष्यक बन्धन होइत अछि। अतएव अहाँ फलक इच्छा त्यागक यज्ञक लेल ही

कर्म करु। सृष्टिक आरम्भ कालमे ब्रह्मा जी यज्ञ सहित प्रजा केँ उत्पन्न कऽ प्रजा सँ कहने छलथिन कि यज्ञादि कर्म केला पर बुद्धिक प्राप्त हैत। इहै सब कर्म अहाँक लेल निमित्त कामधेनु होएत। एहि यज्ञमे अहाँ देवगण केँ संतुष्ट करैत रहू आओर यज्ञादि कर्म सँ प्रसन्न भऽकऽ देवगण अहाँ केँ इच्छित सुखक सामग्री देताह परन्तु हुनका द्वारा देल गेल दान जे बिना हुनका भोग लगेने ग्रहण करैत अछि ओ चोर अछि। पंच महायज्ञ करि कऽ जे शेष बचल भोग करैत छथि ओ सब पाप सँ मुक्त भऽ जाइत छथि। जे व्यक्ति अपने निमित्त ही अन्न पकबैत अछि ओ पापी पुरुष पापक भक्षण करैत अछि। अन्न मेघ सँ, मेघ यज्ञ सँ, यज्ञ कर्म सँ उत्पन्न होइत अछि, कर्मक उत्पत्ति ब्रह्मा सँ आओर ब्रह्म अक्षर परमात्मा सँ भेल अछि। अतः सब पदार्थमे रहएवाला जे ब्रह्म अछि ओ सब यज्ञमे प्रस्तुत अछि। हे पार्थ! एहि प्रकार सब केँ चक्रक अनुसार चलक चाही। जे पुरुष आत्मामे रत रहैत अछि आओर आत्मानन्द अनुभव सँ तृप्त रहैत अछि, हुनका कोनो कार्य शेष नहि रहैत अछि। ओ कर्म करथि या नहि करथि हुनका कोनो प्रयोजन नहि अछि। अहाँ भी फलक प्राप्तिक इच्छा त्यागि कर्तव्य पालन करु किएक तऽ फलक इच्छा त्यागि कऽ कर्म करएवाला पुरुष मोक्ष प्राप्त करैत छथि। राजा जनक भी कर्म सिद्धि प्राप्त केने छलाह। श्रेष्ठ पुरुष जाहि कर्मक आचरण करैत छथि, मनुष्य ओकरे अनुशरण करैत अछि। हे पार्थ! हमरा तीनूलोकमे कोनो कर्म शेष नहि अछि आने कोनो अप्राप्त वस्तु करक अछि तथापि हम कर्म करैत रहैत छी। यदि हम ही आलस्य रहित भऽकऽ कर्म नहि करब तो मनुष्य हर प्रकार सँ हमरे पथक अनुकरण करत। जँ हम ही कर्म नहि करु तो सब लोक भी नहि केला सँ नष्ट भऽ जाएत। एहि सँ हम ही वर्णसंकरी सँ उत्पन्न करक कारण बनिक प्रजाक नष्ट कर वाला समझल जाएव। जाहि प्रकार अज्ञानी फलक इच्छा करिक कर्म करैत अछि, ओना ही फलक इच्छा नहि करैत ज्ञानी केँ लोक शिक्षाक इच्छा करैत कर्म करब उचित अछि। कर्ममे आसक्त अज्ञानीक बुद्धि सँ ज्ञानी भेदभाव उत्पन्न नहि करथि, परन्तु अपने स्वयं कर्म करैत ओकरो भी प्रसन्नतापूर्वक कर्म कराबथि। हे अर्जुन! सब कर्म प्रकृतिक गुण करि कऽ ही उत्पन्न होइत अछि परन्तु जकर बुद्धि अहंकार सँ भ्रष्ट अछि, एहन मूर्ख लोग समझैत अछि कि हम कर्ता छी, परन्तु जे गुण आओर कर्मक विभागक

सच्चा सत्त्व जानैत अछि ओ ज्ञानी पुरुष ई समझि कऽ एहिमे आसक्त नहि होइत छथि कि गुणक खेल आपसमे भऽ रहल अछि। प्रकृतिक गुण करि कऽ भूलल मनुष्य गुण आओर कर्ममे आसक्त होइत अछि। हे अर्जुन! अध्यात्म बुद्धि सँ सब कर्म केँ एतए हमरामे अर्पणक कर्म फलक आशा, ममता सब छोड़ि कऽ संग्राम करु।

जे पुरुष श्रद्धापूर्वक हमर वचन पर दोष दृष्टि नहि कऽ हमर एहि मतक अनुसार आचरण करैत अछि, ओ लोग कर्म बन्धन सँ निश्चय मुक्त भऽ जाइत छथि आओर जे अज्ञानी एहि मत पर दोष दृष्टि करैत एकरा ग्रहण नहि करैत अछि ओ सम्पूर्ण ज्ञान सँ रहित छथि। ज्ञानी पुरुष भी अपन प्रकृतिक अनुसार आचरण करैत छथि। ओतय हठ केला सँ की हैत? इन्द्रिय आओर इन्द्रिय विषयमे प्रीति आओर दोष दूनू व्यवस्थित अछि। एहि राग द्वेषक वश नहि हेवाक चाही किएक तऽ ई मनुष्यक शत्रु अछि। अपन कठिन धर्म भी दोसरक सहज धर्म सँ हितक होइत अछि। स्वधर्ममे मरब भी कल्याणकारी अछि। परन्तु अन्य धर्म भयानक अछि। अर्जुन पूछलखिन– हे श्रीकृष्ण! पुरुष केँ पाप करैक इच्छा नहि होइत भी कोन ओकरा बलात्कार पापक मार्गमे प्रवृत्त करैत अछि। श्री कृष्ण कहलखिन– हे अर्जुन! रजोगुण सँ उत्पन्न हुअवाला काम आओर क्रोध मनुष्य केँ पाप मार्गमे लऽ जाइत अछि। एहि सँ उत्पन्न इच्छा कहियो तृप्त नहि होइत अछि। ई महापापी तथा घोर शत्रु अछि। जेना धुआँ सँ अग्नि, धूल सँ दर्पण आओर छिल्ली सँ गर्भक बालक ढ़कल रहैत अछि ओहिना इच्छा सँ आत्मज्ञान ढ़कल अछि। हे कुन्तीपुत्र! एहि शत्रु काम करि कऽ ज्ञानियोंक ज्ञान भी आच्छादित भेल आओर सदा अग्निक तरह तृप्त नहि होइत अछि। इन्द्रिय मन आओर बुद्धि एहि कामक आश्रय स्थान अछि। एकर सहारे विषयेच्छा ज्ञानक आच्छादित करिक जीव केँ मोहितक लैत अछि। अतः अहाँ सर्वप्रथम इन्द्रिय केँ वशमे करि कऽ ज्ञान आओर विज्ञान केँ नष्ट करैवाला एहि काम केँ जीतू। कहल गेलै अछि कि इन्द्रिय प्रवल अछि आओर इन्द्रिय सँ भी प्रवल मन अछि। एहि प्रकार जे बुद्धि सँ परे अछि ओहि आत्मा केँ जानिक निश्चयात्मक बुद्धि द्वारा मन केँ निश्चय कऽ हे महाबाहो! अहाँ ओहि दुर्जेय शत्रु काम केँ जीत लिअ। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक तेसर अध्याय ''**कर्मयोग**'' पूर्ण भेल। ■

अध्याय-चारि



दिव्य ज्ञान

श्री भगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥१॥

श्री भगवान् उवाच– श्रीभगवान् कहलखिन; **इमम्**– एहि; **विवस्वते**– सूर्यदेव केँ; **योगम्**– परमेश्वरक साथ अपन सम्बन्धक विद्या केँ; **प्रोक्तवान्**– उपदेश देलखिन; **अहम्**– हम; **अव्ययम्**– अमर; **विवस्वान्**– विवस्वान् (सूर्यदेवक नाम); **मनवे**– मनुष्यक पिता (वैवस्वत) सँ; **प्राह**– कहलनि; **मनुः**– मनुष्यक पिता; **इक्ष्वाकवे**– राजा इक्ष्वाकु सँ; **अब्रवीत**– कहलखिन।

भगवान् कृष्ण कहलखिन– हम एहि अमर योग विद्याक उपदेश सूर्यदेव विवस्वान् केँ देलियैन आओर विवस्वान् मनुष्यक पिता मनु केँ उपदेश देलथिन आओर मनु एकर उपदेश राजा इक्ष्वाकु केँ देलथिन।

तात्पर्यः ब्रह्मा जी कहलखिन–हम ओहि गोविन्दक पूजा करैत छी जे आदि पुरुष छथि आओर जिनकर आदेश सँ समस्त लोकक राजा सूर्य प्रभूत शक्ति तथा उष्मा धारण करैत छथि। ई सूर्य भगवानक नेत्र तुल्य अछि आओर ओ हुनकर आज्ञानुसार अपन कक्षा केँ तय करैत छथि।

सब लोकक राजा सूर्यदेव (विवस्वान्) सूर्य ग्रह पर शासन करैत छथि। जे उष्मा तथा प्रकाश प्रदानक अन्य समस्त लोक केँ अपन नियन्त्रणमे राखैत छथि। सूर्य कृष्णक आदेश पर घूमैत छथि आओर भगवान् कृष्ण विवस्वान् केँ भगवद्गीताक विद्या समझाब लेल अपन पहिल शिष्य चुनलखिन। अतः गीता कोनो काल्पनिक ग्रंथ नहि अछि, अपितु ज्ञानक मानक ग्रंथ अछि, जे अनन्त काल सँ चलल आ रहल अछि। त्रेतायुगक आदिमे विवस्वान् परमेश्वर सम्बन्धी एहि विज्ञानक उपदेश राजा मनु केँ देलथिन आओर मनुष्यक जनक मनु एकरा अपन पुत्र इक्ष्वाकु केँ देलथिन। इक्ष्वाकु एहि पृथ्वीक राजा आओर रघुकुलक पूर्वज छलाह। रघुकुलमे भगवान् श्रीराम अवतार लेलथि। एहि सँ प्रमाणित होइत अछि कि गीताक इतिहास मानव समाजमे महाराज इक्ष्वाकु काल सँ ही विद्यमान अछि। भगवद्गीता वेदक समान ही अछि किएक तऽ एकरा भगवान् कृष्ण स्वयं कहलनि अछि। अतः ई ज्ञान अपौरुषेय अछि। गीता केँ कोनो सांसारिक विवचेना के बिना स्वीकार करक चाही। भगवद्गीता केँ गुरु-परम्परा सँ यथारुपमे ग्रहण कर चाही।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥२॥

एवम्- एहि प्रकार; **परम्परा**- गुरु परम्परा सँ; **प्राप्तम्**- प्राप्त; **इमम्**- एहि विज्ञान केँ; **राज ऋषियः**- साधुराजा; **विदुः**- जानलनि; **सः**- ओ ज्ञान; **कालेन**- कालक्रममे; **इह**- एहि संसारमे; **महता**- महान; **योगः**- परमेश्वरक संग अपन सम्बन्धक विज्ञान, योगविद्या; **नष्टः**- छिन्न- भिन्न भऽ गेल; **परन्तप**- हे शत्रु केँ दमन करएवाला, अर्जुन।

एहि प्रकार ई परम विज्ञान गुरु-परम्परा द्वारा प्राप्त कैल गेल अछि आओर राजर्षि सब एहि विधि सँ समझलनि। किन्तु कालक्रममे ई परम्परा छिन्न-भिन्न भऽ गेल, अतः ई विज्ञान यथारुपमे लुप्त भऽ गेल।

तात्पर्यः एतय स्पष्ट कहल गेल अछि कि गीता विशेष रूप सँ राजर्षिक लेल छल किएक तऽ ओकर उपयोग प्रजाक ऊपर शासन करएमे कैल जाइत छल। भगवद्गीता यथारुप मानवताक लेल महान वरदान अछि।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥३॥

सः– ओही (वही); **एव**– निश्चय ही; **अयम्**– ई; **मया**– हमरा द्वारा; **ते**– अहाँ सँ; **अद्यः**– आइ (आज); **योगः**– योग विद्या; **प्रोक्तः**– कहल गेलै अछि; **पुरातनः**– प्राचीन; **भक्तः**– भक्त; **असि**– हो; **मे**– हमर; **सखा**– मित्र; **च**– भी; **इति**– अतः; **रहस्यम्**– रहस्य; **हि**– निश्चय ही; **एतत्**– ई; **उत्तम्**– दिव्य।

आइ हमरा द्वारा ओहे ई प्राचीन योग यानी परमेश्वरक संग अपन सम्बन्धक विज्ञान, अहाँ सँ कहए जा रहल छी किएक तऽ अहाँ हमर भक्त तथा मित्र छी। अतः अहाँ एहि दिव्य ज्ञानक रहस्य समझि सकैत छी।

तात्पर्यः मनुष्यक दू श्रेणी अछि–भक्त आओर असुर। भगवान् कृष्ण अर्जुन केँ एहि विद्याक पात्र एहि लेल चुनलखिन किएक तऽ ओ हुनकर भक्त, सखा छलथिन। असुरक लेल ई परम गुरुविद्या केँ समझब सम्भव नहि अछि। मनुष्य केँ चाही कि अर्जुनक परम्पराक अनुसरण करे आओर भगवद्गीताक एहि परम विज्ञान सँ लाभान्वित हो।

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥४॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलखिन; **अपरम्**– अर्वाचीन, कनिष्ठ; **भवतः**– अहाँक; **जन्म**– जन्म; **परम्**– श्रेष्ठ; **विवस्वतः**– सूर्य देवक; **कथम्**– केना; **एतत्**– ई; **विजानीयाम्**– हम समझूँ; **त्वम्**– अहाँ; **आदौ**– प्रारम्भमे; **प्रोक्तवान्**– उपदेश देलखिन; **इति**– एहि प्रकार।

अर्जुन कहलखिन– सूर्यदेव विवस्वान अहाँ सँ पहिने भऽ चुकला अछि, तो फिर हम कोना समझूँ कि प्रारम्भमे भी अहाँ हुनका एहि विद्याक उपदेश देने छलियैन।

तात्पर्यः जखन अर्जुन भगवानक ज्ञात भक्त छथि तो फेर हुनका कृष्णक वचन पर विश्वास किएक नहि भेलनि। तथ्य ई अछि कि अर्जुन

जिज्ञासा अपना लेल नहिक रहला अछि अपितु ई जिज्ञासा हुनका सबहक लेल अछि जे भगवानमे विश्वास नहि करैत छथि। अर्जुन कोटिक श्रीकृष्ण भक्त केँ कौखन श्रीकृष्णक दिव्य स्वरुपक विषयमे कोनो भ्रम नहि भऽ सकैत अछि। अर्जुन द्वारा भगवानक समक्ष एहन प्रश्न उपस्थित करक उद्‌देश्य अछि–ओहि व्यक्तिक नास्तिकवादी प्रवृत्ति केँ चुनौती देव, जे क्यो कृष्ण केँ भौतिक प्रकृतिक गुणक अधीन सामान्य व्यक्ति मानैत अछि।

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥५॥

श्रीभगवान् उवाच– श्री भगवान् कहलखिन; **बहूनि**– अनेक; **मे**– हमर; **व्यतीतानि**– बीत गेल; **जन्मानि**– जन्म; **तव**– अहाँक; **च**– भी; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **तानि**– ओहि; **अहम्**– हम; **वेद**– जानैत छी; **सर्वाणि**– सब केँ; **न**– नहि; **त्वम्**– अहाँ; **वेत्थ**– जानैत छी; **परन्तप**– हे शत्रुक दमनकारी।

श्रीभगवान् कहलखिन– अहाँक तथा हमर अनेकानेक जन्म भऽ चुकल अछि। हमरा तो ओहि सबहक स्मरण अछि, किन्तु हे परंतप–अर्जुन! अहाँ केँ ई स्मरण नहि रहि सकत।

तात्पर्यः अर्जुन सनक भक्त कृष्णक नित्य सखा छथि आओर जहिया भी भगवान् अवतरित होइत छथि तो हुनकर पार्षद भक्त भी विभिन्न रुपमे हुनकर सेवाक लेल हुनकर संग संग अवतार लैत छथि। अर्जुन एहने भक्त छथि। किन्तु भगवान् तथा अर्जुनमे ई अन्तर अछि कि भगवान् सब घटना याद राखैत छथि, किन्तु पार्षद भक्त अर्जुन याद नहि राखि सकलाह। अंशरुप जीवात्मा तथा परमेश्वरमे इहै अन्तर अछि। अतः भौतिक दृष्टि सँ जीव चाहे कतबो ही बड़ा किएक नहि हो, ओ कहियो परमेश्वरक समता नहि कऽ सकता। शरीर परिवर्तनक संग जीवात्मा सब किछु भूल जाइत अछि, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण सब स्मरण राखैत छथि, किएक तऽ ओ अपन सच्चिदानन्द शरीर नहि बदलैत छथि। ओ अद्वैत छथि जकर अर्थ अछि कि हुनकर शरीर तथा हुनकर आत्मामे कोनो अन्तर नहि अछि।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।६।।

अजः– अजन्मा; **अपि**– तथापि; **सन्**– होइत; **अव्यय**– अनिवाशी; **आत्मा**– शरीर; **भूतानाम्**– जन्म लिअबाला केँ; **ईश्वरः**– परमेश्वर; **अपि**– भी; **प्रकृतिम्**– दिव्य रुपमे; **स्वाम्**– अपन; **अधिष्ठाय**– एहि तरह स्थित; **सम्भवामि**– हम अवतार लैत छी; **आत्म मायया**– अपन अन्तरंगा शक्ति सँ।

यद्यपि हम अजन्मा तथा अविनाशी छी आओर यद्यपि हम सब जीवक स्वामी छी, तो भी प्रत्येक युगमे हम अपन आदि रुपमे प्रकट होइत छी।

तात्पर्यः भौतिक जगतमे जीवक कोनो स्थायी शरीर नहि अछि, अपितु ओ एक शरीर सँ दोसरमे देहान्तरण करैत रहैत अछि। किन्तु भगवान् अपन ही शरीरमे प्रकट होइत छथि। ओ सामान्य जीवक भाँति शरीर परिवर्तन नहि करैत छथि। जखन ओ प्रकट होइत छथि तो अपन अन्तरंगा शक्ति सँ ओ अपने ओहि आद्य शरीरमे प्रकट होइत छथि यानी अपन आदि शाश्वत रुपमे, यद्यपि ओ अपन ओहि दिव्य शरीरमे प्रकट होइत छथि आओर ब्रह्माण्डक स्वामी होइत छथि तो भी एना लागैत अछि कि ओ सामान्य जीवक भाँति प्रकट होइत छथि। यद्यपि हुनकर शरीर भौतिक शरीरक भाँति क्षीण नहि होइत अछि फेर भी एहन प्रतीत होइत अछि कि भगवान् कृष्ण बालपन सँ कुमारावस्था तथा तरुणावस्था प्राप्त करैत छथि, किन्तु युवावस्था सँ आगाँ नहि बढ़ैत छथि, किन्तु भौतिक गणनाक अनुसार काफी वृद्ध छलाह। अतः भगवान निरन्तर वही परम सत्य रुप छथि आओर हुनकर स्वरुप तथा तथा आत्मामे अथवा हुनकर गुण तथा शरीरमे कोनो अन्तर नहि होइत अछि।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।७।।

यदा यदा– जखन आओर जतए भी; **हि**– निश्चय ही; **धर्मस्य**– धर्मक; **ग्लानि**– हानि, पतन; **भवति**– होइत अछि; **भारत**– हे भरतवंशी; **अभ्युत्थानम्**– प्रधानता; **अधर्मस्य**– अधर्मक; **तदा**– ओहि समय;

आत्मानम्- अपने केँ; **सृजामि**- प्रकट करैत छी; **अहम्**- हम।

हे भरतवंशी! जखन भी आओर जतए भी धर्मक पतन होइत अछि आओर अधर्मक प्रधानता हुअ लागैत अछि, तखन-तखन हम अवतार लैत छी।

तात्पर्यः एतै सृजामि शब्द महत्त्वपूर्ण अछि। सृजामिक अर्थ अछि कि भगवान् स्वयं यथारुपमे प्रकट होइत छथि। यद्यपि भगवान् कार्यक्रमानुसार प्रकट होइत छथि, किन्तु ओ नियमक पालन कर लेल बाध्य नहि छथि किएक तऽ ओ स्वेच्छा सँ कर्म कर लेल स्वतंत्र छथि। अतः जखन अधर्मक प्रधानता तथा धर्मक लोप होम लागैत अछि, तो ओ स्वेच्छा सँ प्रकट होइत छथि। धर्मक नियमक पालनमे कोनो त्रुटि आबैत अछि तो मनुष्य अधार्मिक भऽ जाइत अछि। धर्मक नियम, भगवानक नियम अछि। केवल भगवान् ही कोनो धर्मक व्यवस्थाक सकैत छथि। धर्मक नियम भगवानक प्रत्यक्ष आदेश अछि। अवतारक एकमात्र उद्देश्य कृष्णभावनामृतक उद्बोधित करब अछि।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥८॥

परित्राणाय- उद्धारक लेल; **साधूनाम्**- भक्तक; **विनाशाय**- संहारक लेल; **च**- तथा; **दुष्कृताम्**- दुष्टक; **धर्म**- धर्मक; **स्थापन अर्थाय**- पुनः स्थापित करए लेल; **सम्भवामि**- प्रकट होइत छी; **युगे-युगे**- युग-युगमे।

भक्तक उद्धार करबा लेल, दुष्टक विनाश करबा लेल तथा धर्मक फेर सँ स्थापना करक लेल हम हर युगमे प्रकट होइत छी।

तात्पर्यः भगवद्गीताक अनुसार साधु (पवित्र पुरुष) कृष्णभावनाभावित व्यक्ति छथि। दुष्कृताम् ओ व्यक्तिक लेल आएल अछि जे कृष्णभावनामृतक परबाह नहि करैत अछि। एहन उपद्रवी, मूर्ख तथा अधर्म व्यक्ति कहलाबैत अछि। भलेही ओ सांसारिक शिक्षा सँ विभूषित किएक न हो। भगवानक एहन अनेक अनुचर अछि जे असुरक संहार करमे सक्षम अछि। किन्तु भगवान् तो अपन ओहि निष्काम भक्तक तुष्ट कर लेल विशेष रुपमे अवतार लैत छथि जे असुर द्वारा निरंतर तंग कैल जैत अछि। असुर भक्त केँ तंग करैत अछि, भेलही ओ ओकर सगा-सम्बन्धी क्यो न

हो। यद्यपि प्रह्लाद महाराज हिरण्यकशिपुक पुत्र छलाह, किन्तु तो भी ओ अपन पिता द्वारा उत्पीड़ित छलाह। एहि प्रकार कृष्णक माता देवकी कंसक बहिन छलखिन, किन्तु हुनका तथा हुनक पति वसुदेव केँ दण्डित कैल गेल छल किएक तऽ हुनका सँ कृष्ण केँ जन्म लेवाक छलनि। कहल जाइत अछि कि भगवान् भक्तक उद्धार कर तथा दुष्ट असुरक संहारक लेल विभिन्न अवतार लैत अछि। अवतार कई तरह होइत अछि, यथा–पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार, शक्यावेश अवतार, मन्वन्तर अवतार तथा युगावतार, एहि सबहक ब्रह्माण्डमे क्रमानुसार अवतार होइत अछि। भगवान् कृष्ण शुद्ध भक्तक चिन्ताक दूर कर लेल विशिष्ट प्रयोजन सँ अवतार लैत छथि। अतः कृष्ण अवतारक मूल उद्देश्य निष्काम भक्त केँ प्रसन्न करब अछि। भगवद्धाममे स्थित ईश्वर जखन ओ भौतिक सृष्टिमे उतरैत छथि तखन अवतार कहल जाइत अछि।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥९॥

जन्म– जन्म; **कर्म**– कर्म; **च**– भी; **मे**– हमर; **दिव्यम्**– दिव्य; **एवम्**– एहि प्रकार; **यः**– जे कोई; **वेत्ति**– जानैत अछि; **तत्त्वतः**– वास्तविकतामे; **त्यक्त्वा**– छोड़ि कऽ ; **देहम्**– शरीर केँ; **पुनः**– फिर; **जन्म**– जन्म; **न**– नहि; **एति**– प्राप्त करैत अछि; **सः**– ओ; **अर्जुन**– हे अर्जुन।

हे अर्जुन! जे हमर आविर्भाव तथा कर्मक दिव्य प्रकृति केँ जानैत छथि, ओ एहि शरीर केँ छोड़ला पर एहि भौतिक संसारमे पुनः जन्म नहि लैत छथि, अपितु हमर सनातन धाम केँ प्राप्त करैत छथि।

तात्पर्यः जे मनुष्य भगवानक आविर्भावक सत्य समझि जाइत अछि, ओ एहि भवबन्धन सँ मुक्त भऽ जाइत अछि आओर एहि शरीर केँ छोड़िते ही तुरन्त भगवानक धाम लौट जाइत अछि। हुनका पुनः एहि संसारमे लौट एवाक भय नहि रहि जाइत अछि। मनुष्य केँ चाही कि श्रद्धा तथा ज्ञानक संग कृष्णभावनामृतक अनुशीलन करथि आओर सिद्धि प्राप्त करक इहै उपाय अछि।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥१०॥

वीत– मुक्त; **राग**– आसक्ति; **भय**– भय; **क्रोधाः**– क्रोध सँ; **मत् मया**– पूर्णतया हमरामे; **माम्**– हमरामे; **उपाश्रिताः**– पूर्णतया स्थित; **बहवः**– अनेक; **ज्ञान**– ज्ञानक; **तपसा**– तपस्या सँ; **पूताः**– पवित्र भेल; **मत् भावम्**– हमरा प्रति दिव्य प्रेम केँ; **आगताः**– प्राप्त।

आसक्ति, भय तथा क्रोध सँ मुक्त भऽकऽ हमरामे पूर्णतया तन्मय भऽकऽ आओर हमर शरणमे आविक बहुत व्यक्ति भूतकालमे हमर ज्ञान सँ पवित्र भऽ चुकल अछि। एहि प्रकार सँ ओ सब हमरा प्रति द्विव्य प्रेम केँ प्राप्त कैलनि अछि।

तात्पर्यः ईश्वरक प्रति प्रेम ही जीवनक सार्थकता अछि। प्रेम अवस्थामे भक्त भगवानक दिव्य प्रेमाभक्तिमे निरन्तर लीन रहैत छथि। अतः भक्तिक मन्द विधि सँ प्रमाणिक गुरुक निर्देशमे सवेच्चि अवस्था प्राप्त कैल जा सकैत अछि आओर समस्त भौतिक आसक्ति, व्यक्तिगत आध्यात्मिक स्वरुपक भय तथा शून्यवाद सँ उत्पन्न हताशा सँ मुक्त हुअ जा सकैत अछि। तखने मनुष्य केँ अन्तमे भगवद्धामक प्राप्ति भऽ सकैत अछि।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।११।।

ये– जे; **यथा**– जाहि तरह; **माम्**– हमर; **प्रपद्यन्ते**– शरणमे जाइत अछि; **तान्**– ओकर; **तथा**– ओहि तरह; **एव**– निश्चय ही; **भजामि**– फल दैत छी; **अहम्**– हम; **मम**– हमर; **वर्त्म**– पथक; **अनुवर्तन्ते**– अनुगमन करैत अछि; **मनुष्याः**– सब मनुष्य; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **सर्वशः**– सब प्रकार सँ।

जाहि भाव सँ सब लोग हमर शरण ग्रहण करैत अछि, ओकरे अनुरुपमे ओकरा हम फल दैत छियै। हे पार्थ! प्रत्येक व्यक्ति सब प्रकार सँ हमर पथक अनुगमन करैत अछि।

तात्पर्यः दिव्य जगतमे भी कृष्ण अपन शुद्ध भक्तक संग दिव्य भाव सँ विनिमय करैत छथि। जाहि तरह कि भक्त हुनका चाहैत अछि। कृष्ण सब भक्त केँ समान रुप सँ हुनकर प्रेमक प्रगाढ़ताक अनुसार फल दैत छथिन। भौतिक जगतमे भी एहने विनिमयक अनुभूति होइत अछि आओर ओ विभिन्न प्रकारक भक्तक अनुसार भगवान् द्वारा समभाव सँ विनिमय कैल जाइत अछि। शुद्ध भक्त एतए आओर दिव्यधाममे भी कृष्णक

सान्निध्य प्राप्त करैत छथि आओर भगवानक साकार सेवाक सकैत छथि। मनुष्य चाहे निष्काम हो या फलक इच्छुक ही किएक नहि हो, हुनका पूरा सामर्थ सँ भगवानक सेवा कर चाही।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥१२॥

काङ्क्षन्तः– चाहैत; **कर्मणाम्**– सकाम कर्मक; **सिद्धिम्**– सिद्धि; **यजन्ते**– यज्ञ द्वारा पूजा; **इह**– एहि भौतिक जगत; **देवताः**– देवगण; **क्षिप्रम्**– तुरन्त; **हि**– निश्चय ही; **मानुषे**– मानव समाजमे; **लोके**– एहि संसारमे; **भवति**– होइत अछि; **कर्मजा**– सकाम कर्म सँ।

एहि संसारमे मनुष्य सकाम कर्ममे सिद्धि चाहैत अछि फलस्वरुप ओ देवताक पूजा करैत अछि। निःसन्देह एहि संसारमे सकाम कर्मक फल शीघ्र प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः ईश्वर एक छथि, किन्तु अंश अनेक अछि। वेदमे कहल गेलै अछि **''नित्यो नित्यानाम्, ईश्वरः परम कृष्ण''**। ईश्वर एक अछि आओर कृष्ण ही एकमात्र परमेश्वर छथि आओर सब देवता केँ एहि भौतिक जगतक प्रबन्ध कर लेल शक्ति प्राप्त अछि। ओ कहियो परमेश्वर नारायण विष्णुक तुल्य नहि भऽ सकैत छथि। सब लोग इन्द्रिय भोगक पाछाँ पड़ल छथि आओर थोड़े सँ इन्द्रिय सुखक लेल शक्ति प्रदत्त जीवक पूजा करैत छथि जिनका देवता कहैत छथि। अधिकांश लोग भौतिक भोगमे रुचि लैत छथि, फलस्वरुप ओ कोनो न कोनो शक्तिशाली व्यक्तिक पूजा करैत अछि। बिरले लोग ही कृष्णभावनामृतमे रुचि लैत छथि।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥१३॥

चातुः-वर्ण्यम्– मानव समाजक चारि विभाग; **मया**– हमरा द्वारा; **सृष्टम्**– उत्पन्न कैल; **गुण**– गुण; **कर्म**– तथा कर्मक; **विभागशः**– विभाजनक अनुसार; **तस्य**– ओकर; **कर्तारम्**– जनक; **अपि**– यद्यपि; **माम्**– हमरा; **विद्धि**– जानू; **अकर्तारम्**– नहि करएवालाक रुपमे; **अव्ययम्**– अपरिवर्तनीय।

प्रकृतिक तीनू गुण आओर ओहि सँ सम्बद्ध कर्मक अनुसार हमरा

द्वारा मानव समाजक चारि भाग रचल गेल। यद्यपि हम एहि व्यवस्थाक स्त्रष्टा छी, किन्तु अहाँ जानि लिअ कि हम एहि पर भी अपरिवर्तनीय अकर्ता छी।

तात्पर्यः भगवान् प्रत्येक वस्तुक स्त्रष्टा छथि। प्रत्येक वस्तु हुनके सँ उत्पन्न भेलै अछि, हुनके द्वारा पालित अछि आओर प्रलयक बाद प्रत्येक वस्तु हुनकेमे समा जाति अछि। अतः ओहे वर्णाश्रम व्यवस्थाक स्त्रष्टा छथि। सर्वप्रथम बुद्धिमान मनुष्यक वर्ग आबैत अछि जे सतोगुणी भेलाक कारण ब्राह्मण कहबैत छथि। द्वितीय वर्ग प्रशासक वर्ग अछि जिनका रजोगुणी भेलाक कारण क्षत्रीय कहल गेलैन अछि। वणिक वर्ग या वैश्य कहलावै वाला लोग रजो तथा तमो गुण्क मिश्रण सँ युक्त होइत अछि आओर शूद्र या श्रमित वर्गक लोग तमोगुणी होइत छथि। मानव समाजक एहि चारि विभागक सृष्टि केला पर भी भगवान् कृष्ण एहिमे सँ कोनो वर्गमे नहि आबैत छथि किएक तऽ ओ ओहि बद्धजीवमे सँ नहि छथि जिनकर एक अंश मानव समाजक रुपमे अछि। मानव समाज भी कोनो अन्य पशु समाजक तुल्य अछि, किन्तु मनुष्य केँ पशु स्तर सँ ऊपर उठेबाक लेल उपयुक्त वर्णाश्रमक रचना कैल गेल अछि।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥१४॥

न– कहियो नहि**; माम्**– हमरा; **कर्माणि**– सब प्रकारक कर्म; **लिम्पन्ति**– प्रभावित करैत अछि। न– नहि**; मे**– हमर**; कर्मफले**– सकाम कर्ममे**; स्पृहा**– महत्वाकांक्षी**; इति**– एहि प्रकार**; माम्**– हमरा; **यः**– जे; **अभिजानाति**– जानैत अछि**; कर्मभिः**– एहन कर्मक फल सँ**; सः**– ओ; **बध्यते**– बँधि पाबैत अछि।

हमरा पर कोनो कर्मक प्रभाव नहि पड़ैत अछि, न ही हम कर्म फलक कामना करैत छी। जे हमरा सम्बन्धमे एहि सत्य केँ जानैत अछि, ओ भी कर्मक फलक पाशमे नहि बँधता।

तात्पर्यः भौतिक दृष्टिक लेल भगवान् ही परम कारण छथि। प्रकृति तो केवल निमित्त कारण अछि, जाहि सँ विराट जगत् दृष्टिगोचर होइत अछि। जे व्यक्ति भगवानक दिव्य स्वभाव केँ नहि जानैत अछि आओर सोचैत

अछि कि भगवानक कार्यकलाप सामान्य व्यक्तिक तरह कर्मफलक लेल होइत अछि, ओ निश्‍चित रुप सँ कर्मफलमे बँध जाइत छथि। किन्तु जे परम सत्य केँ जानैत छथि, ओ कृष्णभावनामृतमे स्थिर मुक्त जीव अछि।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥१५॥

एवम्- एहि प्रकार; **ज्ञात्वा**- भलीभाँति जानि कऽ; **कृतम्**- कैलगेल; **कर्म**- कर्म; **पूर्वैः**- पूर्ववर्ती; **अपि**- निस्संदेह; **मुमुक्षुभिः**- मोक्ष प्राप्त व्यक्ति द्वारा; **कुरु**- करु; **कर्म**- स्वधर्म, नियत कार्य; **एव**- निश्‍चय ही; **तस्मात्**- अतएव; **त्वम्**- अहाँ; **पूर्वः**- पूर्ववर्ति द्वारा; **पूर्वतरम्**- प्राचीन कालमे; **कृतम्**- सम्पन्न कैल गेल।

प्राचीन कालमे समस्त मुक्तात्मा हमरे दिव्य प्रकृति केँ जानि कऽ ही कर्म कैलनि, अतः अहाँ केँ चाही कि हुनकर पदचिन्हक अनुसरण करैत अपन कर्तव्यक पालन करी।

तात्पर्यः एत अर्जुन केँ सलाह देल जाइत अछि ओ भगवानक अन्य पूर्व शिष्य तथा सूर्यदेव-विवस्वान केँ पदचिन्हक अनुसरण करैत कृष्णभावनामृतमे काज करथि। अतः ओ ओहि सूर्यदेवक कार्य केँ सम्पन्न कर लेल आदेश दैत छथिन जकरा सूर्यदेव हुनका सँ लाखों वर्ष पूर्व सीखने छलाह। एतै भगवान् कृष्णक सब शिष्यक अल्लेख पूर्ववर्ती मुक्त पुरुषक रुपमे भेल अछि, जे कृष्ण द्वारा नियत कर्म केँ सम्पन्न करमे लागल छलाह।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥१६॥

किम्- की अछि; **कर्म**- कर्म; **अकर्म**- निष्क्रियता; **इति**- एहि प्रकार; **कवयः**- बुद्धिमान; **अपि**- भी; **अत्र**- एहि विषयमे; **मोहिताः**- मोहग्रस्त रहैत अछि; **तत्**- ओ; **ते**- अहाँ केँ; **कर्म**- कर्म; **प्रवक्ष्यामि**- कहब; **यत्**- जकरा; **ज्ञात्वा**- जानिक; **मोक्षसे**- अहाँक उद्धार होएत; **अशुभात्**- अकल्याण सँ, अशुभ सँ।

कर्म की अछि आओर अकर्म की अछि, एकरा निश्‍चित करमे बुद्धिमान व्यक्ति भी मोहग्रस्त भऽ जाइत छथि। अतएव हम अहाँ

केँ बताएव कि कर्म की अछि, जकरा जानिक अहाँ सब अशुभ सँ मुक्त भऽ सकब।

तात्पर्यः कृष्णभावनामृतमे जे कर्म कैल जाइत अछि ओ पूर्ववर्ती भक्तक आदर्शक अनुसार होमक चाही। कथन अछि कि अपूर्ण प्रायोगिक ज्ञानक द्वारा धर्म–पथक निर्णय नहि कैल जा सकैत अछि। वस्तुतः धर्म केँ केवल भगवान् ही निश्चित कऽ सकैत छथि। अतः मनुष्य केँ चाही कि ब्रह्मा, शिव, नारद, मनु, चारू कुमार, कपिल, प्रह्लाद, भीष्म, शुकदेव, यमराज, जनक तथा बलि महाराज सनक महान अधिकारीक पदचिन्हक अनुसरण करथि। भगवान् अपन भक्त पर अहैतुकी कृपावश स्वयं ही अर्जुन केँ बता रहल छथिन कि कर्म की अछि, अकर्म की अछि। केवल कृष्णभावनामृतमे कैल कर्म ही मनुष्य केँ भवबन्धन सँ उबारि सकैत अछि।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥१७॥

कर्मणः– कर्मक; **हि**– निश्चय ही; **अपि**– भी; **बोद्धव्यम्**– समझ चाही; **च**– भी; **विकर्मणः**– वर्जित कर्मक; **अकर्मणः**– अकर्मक; **च**– भी; **बोद्धव्यम्**– समझक चाही; **गहना**– अत्यन्त कठिन, दुर्गम; **कर्मणः**– कर्मक; **गतिः**– प्रवेश, गति।

कर्मक बारीकि समझब अत्यन्त कठिन (दुर्गम) अछि। अतः मनुष्य केँ चाही कि ओ ठीक सँ जानि लेथि कि कर्म की अछि, विकर्म की अछि आओर अकर्म की अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति ई भलीभाँति समझि लेलक अछि, ओ जानैत अछि कि जीवात्मा भगवानक नित्य दास अछि आओर फलस्वरुप ओकरा कृष्णभावनामृतमे काज करक अछि। एहि भावनामृतक विरुद्ध सब निष्कर्ष एवं परिणाम विकर्म या निषिद्ध कर्म अछि।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥१८॥

कर्मणि– कर्ममे; **अकर्म**– अकर्म; **यः**– जे; **पश्येत्**– देखैत अछि; **अकर्मणि**– अकर्ममे; **च**– भी; **कर्म**– सकाम; **सः**– ओ; **बुद्धिमान**–

बुद्धिमान अछि; **मनुष्येषु**– मानव समाजमे; **सः**– ओ; **युक्तः**– दिव्य स्थिति केँ प्राप्त; **कृत्स्न कर्मकृत्**– सब कर्ममे लागल रहि कऽ भी।

जे मनुष्य कर्ममे अकर्म आओर अकर्ममे कर्म देखैत अछि, ओ सब मनुष्यमे बुद्धिमान छथि, सब प्रकारक कर्ममे प्रवृत्त रहिक भी दिव्य स्थितिमे रहैत छथि।

तात्पर्यः– कृष्णभावनामृतमे कार्य कर वाला व्यक्ति स्वभावतः कर्म बन्धन सँ मुक्त होइत छथि। हुनकर सब कर्म कृष्णक लेल होइत अछि, अतः कर्मक फल सँ हुनका कोनो लाभ या हानि नहि होइत अछि। फलस्वरुप ओ मानव समाजमे बुद्धिमान होइत छथि। भगवानक सेवा करमे हुनका दिव्य सुख प्राप्त होइत अछि। कृष्णक प्रति हुनकर नित्य दास्यभाव हुनकर सब प्रकारक कर्मफल सँ मुक्तक दैत अछि।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः॥१९॥

यस्य– जिनकर; **सर्व**– सब प्रकारक; **समारम्भाः**– प्रयत्न, उद्यम; **काम**– इन्द्रियतृप्तिक लेल इच्छा पर आधारित; **संकल्प**– निश्चय; **वर्जिताः**– सँ रहित अछि; **ज्ञान**– पूर्ण ज्ञानक; **अग्नि**– अग्नि द्वारा; **दग्धः**– भस्म भेल; **कर्माणम्**– जकर कर्म; **तम्**– ओकरा; **आहुः**– कहैत अछि; **पण्डितम्**– बुद्धिमान; **बुधाः**– ज्ञानी।

जाहि व्यक्तिक प्रत्येक प्रयास (उद्यम) इन्द्रियतृप्तिक कामना सँ रहित होइत अछि, हुनका पूर्ण ज्ञानी समझल जाइत अछि। हुनके ही साधु पुरुष एहन कर्ता कहैत छथि, जे पूर्ण ज्ञानक अग्नि सँ कर्मफल केँ भस्मसात्क देलनि अछि।

तात्पर्यः केवल पूर्णज्ञानी ही कृष्णभावनाभावित (भगवत्भक्ति) व्यक्तिक कार्यकलाप केँ समझ सकैत छथि। एहन व्यक्तिमे इन्द्रियतृप्तिक प्रवृत्तिक अभाव रहैत अछि, एहि सँ समझल जाइत अछि कि भगवानक नित्य दासक रुपमे हुनका अपन स्वभाविक स्वरुपक पूर्णज्ञान अछि, जाहि द्वारा ओ अपन कर्मफल केँ भस्मक देलनि अछि। भगवानक नित्य दासताक विकासक तुलना अग्नि सँ कैल गेल अछि। एहन अग्नि एक बार प्रज्वलित भेला पर कर्मक सब फल केँ भस्मक सकैत अछि।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः॥२०॥

त्यक्त्वा– त्यागक; **कर्मफल आसंगम्**– कर्मफलक आसक्ति; **नित्य**– सदा; **तृप्तः**– तृप्त; **निराश्रयः**– आश्रयरहित; **कर्मणि**– कर्ममे; **अभिप्रवृत्तः**– पूर्ण तत्पर रहिक; **अपि**– भी; **न**– नहि; **एव**– निश्चय ही; **किञ्चित्**– किछु भी; **करोति**– करैत अछि; **सः**– ओ।

अपन कर्मफलक सब आसक्ति केँ त्यागक सदैव संतुष्ट तथा स्वतंत्र रहिक ओ सब प्रकारक कार्यमे व्यस्त रहिक भी कोनो सकाम कर्म नहि करैत छथि।

तात्पर्यः कर्मक बन्धन सँ एहि प्रकारक मुक्ति तखन सम्भव अछि, जखन मनुष्य कृष्णभावनाभावित भऽकऽ हर कार्य भगवान् कृष्णक लेल करे। भगवत्भक्त भगवानक शुद्ध प्रेम वश ही कर्म करैत अछि, फलस्वरुप हुनका कर्मफलक प्रति कोनो आकर्षण नहि रहैत अछि। एतय तक कि हुनका अपन शरीर निर्वाहक प्रति भी कोनो आकर्षण नहि रहैत अछि। अनासक्त व्यक्ति शुभ–अशुभ कर्मफल सँ मुक्त रहैत अछि, मानू ओ किछु भी नहि कऽ रहल छथि। ई अकर्म अर्थात् निष्काम कर्मक लक्षण अछि। अतः कृष्णभावनामृत सँ रहित कोनो भी कार्यकर्ता पर बन्धनस्वरुप होइत अछि आओर विकर्मक इहै असली रुप अछि।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥२१॥

निराशीः– फलक अकांक्षा सँ रहित, निष्काम; **यत**– संयमित; **चित्त आत्मा**– मन तथा बुद्धि; **त्यक्त**– छोड़ल; **सर्व**– समस्त; **परिग्रहः**– स्वामित्व; **शारीरम्**– प्राण रक्षा; **केवलम्**– मात्र; **कर्म**– कर्म; **कुर्वन्**– करैत; **न**– कहियो नहि; **आप्नोति**– प्राप्त करैत अछि; **किल्बिषम्**– पाप पूर्ण फल।

एहन ज्ञानी पुरुष पूर्णरुप सँ संयमित मन तथा बुद्धि सँ कार्य करैत अछि, अपन सम्पत्तिक सब स्वामित्व केँ त्याग दैत अछि आओर केवल शरीर निर्वाहक लेल कर्म करैत अछि। एहि तरह कार्य करैत ओ पाप रुपी फल सँ प्रभावित नहि होइत छथि।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति (भगवत्भक्त) भगवद्इच्छाक अनुगामी होइत छथि किएक तऽ हुनकर निजी इन्द्रियतृप्तिक कोनो कामना नहि होइत अछि। ओ यन्त्रक एक पूर्जाक भाँति हिलैत-डोलैत अछि। अपन जीवन निर्वाहक लेल हुनका अनुचित साधन द्वारा धन संग्रह करक आवश्यकता नहि रहैत अछि। अतः ओ एहन भौतिक पाप सँ कल्मषग्रस्त नहि होइत छथि, ओ अपन समस्त कर्मफल सँ मुक्त रहैत अछि।

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥२२॥

यदृच्छा- स्वतः; **लाभ**- लाभ सँ; **संतुष्टः**- सतुष्ट; **द्वन्द्व**- द्वन्द्व सँ; **अतीतः**- परे; **विमत्सरः**- ईर्ष्यारहित; **समः**- स्थिरचित्त; **सिद्धौ**- सफलता; **असिद्धौ**- असफलता; **कृत्वा**- करि कऽ; **अपि**- भी; **न**- कहियो नहि; **निबध्यते**- बंधति अछि; प्रभावित।

जे स्वतः हुअ वाला लाभ सँ संतुष्ट रहैत अछि, जे द्वन्द्व सँ मुक्त अछि आओर ईर्ष्या नहि करैत अछि, जे सफलता तथा असफलता दूनूमे स्थिर रहैत अछि, ओ कर्म करैत भी कहिओ बँधैत नहि अछि।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अपन शरीर निर्वाहक लेल अधिक प्रयास नहि करैत छथि ओ अपने आप हुअवाला लाभ सँ संतुष्ट रहैत छथि। ओ न तो माँगैत छथि न उधार लैत छथि, किन्तु यथासामर्थ्य ओ सच्चाई सँ कर्म करैत रहैत छथि आओर अपन श्रम सँ जे किछु प्राप्त करैत छथि, ओहि सँ संतुष्ट रहैत छथि। भगवत्भक्त द्वैतता सँ परे रहैत छथि किएक तऽ कृष्ण केँ प्रसन्न करए लेल ओ कोनो भी कर्म करएमे झिझक नहि करैत छथि। अतः ओ सफलता तथा असफलता दूनूमे ही समभाव रहैत छथि।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥२३॥

गत-सङ्गस्यः-प्रकृतिक गुणक प्रति अनासक्ति; **मुक्तस्य**- मुक्त पुरुषक; **ज्ञान अवस्थित**- ब्रह्मे स्थित; **चेतसः**- जकर ज्ञान; **यज्ञाय**- यज्ञक लेल; **आचरतः**- करैत; **कर्म**- कर्म; **समग्रम्**- सम्पूर्ण; **प्रविलीयते**- पूर्ण रुप सँ विलीन।

जे पुरुष प्रकृतिक गुणक प्रति अनासक्त अछि आओर दिव्य ज्ञानमे पूर्णतया स्थित अछि, हुनकर सब कर्म ब्रह्ममे लीन भऽ जाइत अछि।

तात्पर्यः भगवत्भक्ति भेला पर मनुष्य समस्त द्वन्द्व सँ मुक्त भऽ जाइत अछि आओर एहि तरह भौतिक गुणक कल्मष सँ भी मुक्त भऽ जाइत अछि। ओ एहि लेल मुक्त भऽ जाइत छथि किएक तऽ ओ कृष्णक संग अपन सम्बन्धक स्वाभाविक स्थित केँ जानैत छथि, फलस्वरुप हुनकर चित्त कृष्णभावनामृत सँ विचलित नहि होइत अछि।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्रौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥२४॥

ब्रह्म– आध्यात्मिक; **अर्पणम्**– अर्पण; **हविः**– घृत; **अग्नौ**– हवन रुपी अग्निमे; **ब्रह्मणा**– आत्मा द्वारा; **हुतम्**– अर्पित; **ब्रह्म**– परमधाम; **एव**– निश्चय ही; **तेन**– हुनके द्वारा; **गन्तव्यम्**– पहुँच योग्य; **कर्म**– कर्ममे; **समाधिना**– पूर्ण एकाग्रताक द्वारा।

जे व्यक्ति कृष्णभावनामृतमे पूर्णतया लीन रहैत छथि, हुनका अपन आध्यात्मिक कर्मक योगदानक कारण अवश्य ही भगवद्धामक प्राप्ति होइत अछि, किएक तऽ हुनकामे हवन आध्यात्मिक होइत अछि आओर हवि भी आध्यात्मिक होइत अछि।

तात्पर्यः ब्रह्म शब्दक अर्थ अछि आध्यात्मिक। भगवान् आध्यात्मिक छथि आओर हुनकर दिव्य शरीरक किरण ब्रह्मज्योति कहलाबैत अछि। इहै हुनकर आध्यात्मिक तेज अछि। प्रत्येक वस्तु एहि ब्रह्मज्योतिमे स्थित रहैत अछि, किन्तु जखन ई ज्योति माया या इन्द्रियतृप्ति द्वारा आच्छादित भऽ जाइत अछि तो ई भौतिक ज्योति कहलाबैत अछि। ई भौतिक आवरण कृष्णभावनामृत द्वारा तुरन्त हटाएल जा सकैत अछि। अतएव कृष्णभावनामृतक लेल अर्पित हबि, ग्रहणकर्ता, हवन तथा फल– ई सब मिलिक ब्रह्म या परम सत्य अछि। माया द्वारा आच्छादित परम सत्य पदार्थ कहलावैत अछि। जखन इहै पदार्थ परम सत्यक निमित्त प्रयुक्त होइत अछि, तो एहिमे पुनः आध्यात्मिक गुण आवि जाइत अछि। कृष्णभावनामृत मोहजनित चेतना केँ ब्रह्म या परमेश्वरीन्मुख करक विधि अछि। जखन मन कृष्णभावनामृतमे पूर्णतया निमग्न रहैत अछि तो

ओकरा समाधि कहल जाइत अछि। एहि दिव्य चेतनामे सम्पन्न कार्य यज्ञ कहलावैत अछि। आध्यात्मिक चेतनाक एहन स्थितिमे होता, हवन, अग्नि, यज्ञकर्ता तथा अन्तिम फल ई सब परब्रह्ममे एकाकार भऽ जाइत अछि। इहै कृष्णभावनामृतक विधि अछि।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति॥२५॥

दैवम्– देवताक पूजा करमे; **एव**– एहि प्रकार; **अपरे**– अन्य; **यज्ञम्**– यज्ञ केँ; **योगिनः**– योगीजन; **पर्युपासते**– भलीभाँति पूजा करैत अछि; **ब्रह्म**– परम सत्यक; **अग्नौ**– अग्निमे; **अपरे**– अन्य; **यज्ञेन**– यज्ञ सँ; **एव**– एहि प्रकार; **उपजुह्वति**– अर्पित करैत अछि।

किछु योगीजन विभिन्न प्रकारक यज्ञ द्वारा देवगणक भलीभाँति पूजा करैत छथि आओर किछु परब्रह्म रुपी अग्निमे आहुति डालैत छथि।

तात्पर्यः जे मनुष्य भौतिक लाभ चाहैत छथि, ओ वैदिक अनुष्ठानक अनुसार विविध देवतागणक पूजा करैत छथि ओ बह्वीश्वरवादी कहबैत छथि। किन्तु जे क्यो परम सत्यक निर्गुण स्वरुपक पूजा करैत छथि आओर देवगणक स्वरुप केँ अनित्य मानैत छथि ओ ब्रह्मक अग्निमे अपने आप ही आहुति दैत छथि आओर एहि प्रकार ब्रह्मक अस्तित्वमे अपन अस्तित्व केँ समाप्त कऽ दैत छथि। निर्विशेषवादी परब्रह्ममे लीन होम लेल अपन भौतिक उपाधिक यजन करैत छथि। हुनका लेल यज्ञाग्नि ही परब्रह्म अछि, जाहिमे आत्मस्वरुपक बिलय ही आहुति अछि। अर्जुन सनक भगवत्भक्त कृष्ण केँ प्रसन्न कर लेल सर्वस्व अर्पितक दैत छथि। एहि तरह हुनकर सब भौतिक सम्पत्तिक संग–संग आत्मस्वरुप भी कृष्णक लेल अर्पित भऽ जाइत अछि। ओ परम योगी छथि किन्तु हुनकर पृथक स्वरुप नष्ट नहि होइत अछि। वस्तुतः यज्ञक अर्थ अछि भगवान् विष्णु केँ प्रसन्न करब आओर विष्णु केँ यज्ञ भी कहल गेलनि अछि।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥२६॥

श्रोत आदिनि– श्रोत आदि; **इन्द्रियाणि**– इन्द्रिय; **अन्ये**– अन्य; **संयम**– संयमक; **अग्निषु**– अग्निमे; **जुह्यति**– अर्पित करैत छथि; **शब्द आदीन्**–

शब्द आदि; **बिषयान्**- इन्द्रियतृप्तिक विषय केँ; **जुह्वति**- यजन करैत छथि।

एहिमे सँ किछु विशुद्ध ब्रह्मचारी श्रवणादि क्रिया द्वारा तथा इन्द्रिय केँ मनक नियन्त्रण रुपी अग्निमे स्वाहा कऽ दैत छथि, तो दोसर लोग (नियमित गृहस्थ) इन्द्रिय विषय केँ इन्द्रियक अग्निमे स्वाहाक दैत छथि।

तात्पर्य: मानव जीवनक चारू आश्रमक सदस्य-ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संयासी-पूर्ण योगीक निमित्त छथि। मानव जीवन पशुक भाँति इन्द्रियतृप्तिक लेल नहि बनल अछि। मानव जीवनक चारू आश्रम एहि प्रकार व्यवस्थित अछि कि मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमे पूर्णता प्राप्तक सकैत अछि। ब्रह्मचारी या शिष्यगण प्रामाणिक गुरुक देखरेखमे इन्द्रियतृप्ति सँ दूर रहिक मन वशमे करैत छथि। भगवानक यशक कीर्तन तथा श्रवणमे ही लागल रहैत छथि। गृहस्थ भी, जिनका इन्द्रियतृप्तिक सीमित छूट अछि, ओ बड़े ही संयम सँ एहि कार्य केँ पूरा करैत छथि। संयमित गृहस्थ उच्चतर दिव्य जीवनक लेल अपन इन्द्रियतृप्तिक प्रवृत्तिक आहुतिक दैत छथि।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥२७॥

सर्वाणि- सब; **इन्द्रिय**- इन्द्रियक; **कर्माणि**- कर्म; **प्राण कर्माणि**- प्राणवायुक कार्य केँ; **च**- भी; **अपरे**- अन्य; **आत्म-संयम**- मनोनिग्रह करैत अछि; **ज्ञान-दीपिते**- आत्म साक्षात्कारक लालसाक कारण।

दोसर, जे मन आओर इन्द्रिय केँ वशमे कऽ आत्म साक्षात्कार कर चाहैत छथि, सम्पूर्ण इन्द्रिय तथा प्राण वायुक कार्य केँ संयमित मन रुपी अग्नि मे आहुतिक दैत छथि।

तात्पर्य: जाधरि जीवात्मा इन्द्रिय भोगमे आसक्त रहैत अछि ताधरि ओ परागात्मा कहलाबैत अछि आओर जखने ओ इन्द्रियभोग सँ विरत भऽ जाइत अछि तो परागात्मा कहलाब लगैत अछि। जीवात्माक शरीरमे दस प्रकारक वायु कार्यशील रहैत अछि आओर एकरा प्राणायाम द्वारा जानल जाइत अछि। प्राणवायुक क्रिया सँ जखन मनुष्य प्रबुद्ध भऽ जाइत

अछि तो ओ एहि सब वायु केँ आत्मसाक्षात्कारक खोजमे लगबैत अछि।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥२८॥

द्रव्य यज्ञाः- अपन सम्पत्तिक यज्ञ; **तपः यज्ञाः**- तपक यज्ञ; **योग यज्ञाः**- अष्टांग योगमे यज्ञ; **तथा**- इस प्रकार; **अपरे**- अन्य; **स्वाध्याय**- वेदाध्ययन रुपी यज्ञ; **ज्ञान यज्ञाः**- दिव्य ज्ञानक प्रगति हेतु यज्ञ; **च**- भी; **यतयः**- प्रबुद्ध पुरुष; **संशित व्रताः**- दृढ़ व्रतधारी।

कठोर व्रत अंगीकार करि कऽ किछु लोग अपन सम्पत्तिक त्याग कऽ, किछु कठिन तपस्या द्वारा, किछु अष्टांग योगपद्धतिक अभ्यास द्वारा अथवा दिव्य ज्ञानमे उन्नति करए लेल वेदक अध्ययन द्वारा प्रबुद्ध बनैत छथि।

तात्पर्यः यज्ञक अनेक वर्ग अछि। बहुत सँ लोग विविध प्रकारक दान पुण्य द्वारा अपन सम्पत्तिक यजन (अर्पित) करैत छथि, अनेक प्रकारक संस्था खोलैत छथि। गरीबक भोजन, शिक्षा तथा चिकित्साक सुविधा प्रदान करैत छथि। ई सब दानकर्म द्रव्यमय यज्ञ अछि। किछु लोग जीवनमे उन्नति करमे अथवा उच्चलोकमे जेवा लेल कठिन व्रत कठोर नियमक अधीन करैत छथि। जीवनक सुखक एहन परित्याग तपोमय यज्ञ कहलाबैत अछि। किछु लोग अनेक योग पद्धतिक अनुसरण करैत विशेष सिद्धिक लेल अष्टांगयोगक अभ्यास करैत छथि। किछु लोग समस्त तीर्थ स्थानक यात्रा करैत छथि। ई सब अनुष्ठान योग यज्ञ कहलाबैत अछि। जे भौतिक जगतमे कोनो सिद्धि विशेषक लेल कैल जाइत अछि। किछु लोग विभिन्न वैदिक साहित्य तथा उपनिषद् तथा वेदान्तसूत्र या सांख्यदर्शनक अध्ययनमे अपन ध्यान लगबैत छथि जे स्वाध्याय यज्ञ कहलाबैत अछि। उच्चजीवनक तलाशमे सब योगी विभिन्न प्रकारक यज्ञमे लागल रहैत छथि। किन्तु कृष्णभावनामृत एहि सँ पृथक अछि किएक तऽ ओ परमेश्वरक प्रत्यक्ष सेवा अछि। एहि उपयुक्त कोनो भी यज्ञ सँ प्राप्ति नहि कएल जा सकैत अछि, अपितु भगवत्कृपा एवं भगवत्भक्ति सँ प्राप्त भऽ सकैत अछि।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।

प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।२९।।

अपाने– निम्नगामी वायुमे; **जुह्वति**– अर्पित करैत अछि; **प्राणम्**– प्राण केँ; **प्राणे**– प्राणमे; **अपानम्**– निम्नगामी वायुक; **तथा**– अहिना; **अपरे**– अन्य; **प्राण**– प्राणक; **अपान**– निम्नगामी वायु; **गती**– गति केँ; **रुद्ध्वा**– रोकक; **प्राण आयाम**– स्वास रोकिक समाधिमे; **परायणाः**– प्रवृत्त; **अपरे**– अन्य; **नियत**– संयमित, अल्प; **आहारः**– खा क; **प्राणान्**– प्राण केँ; **प्राणेषु**– प्राणमे; **जुह्वति**– हनन करैत अछि; अर्पित करैत अछि।

अन्य लोक भी छथि जे समाधिमे रहि कऽ श्वास केँ रोकने रहैत छथि (प्राणायाम)। ओ अपानमे प्राणक आओर प्राणमे अपान केँ रोकि कऽ अभ्यास करैत छथि आओर अन्तमे प्राण-अपान केँ रोकि कऽ समाधिमे रहैत छथि। अन्य योगी कम भोजन कऽ प्राणक प्राणमे ही आहुति दैत छथि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति भगवानक निश्छल भक्तिमे प्रवृत्त होइत छथि ओ प्रकृतिक गुण केँ लाँघि जाइत छथि आओर तुरन्त आध्यात्मिक पद केँ प्राप्त करैत छथि। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति दिव्य अवस्थामे प्रारम्भ करैत छथि आओर निरन्तर ओहि चेतनामे रहैत छथि। अतः हुनकर पतन नहि होइत अछि, इन्द्रियनिग्रहक लेल अल्पहार अत्यन्त लाभप्रद होइत अछि। इन्द्रियनिग्रहक बिना भवबन्धन सँ निकलव सम्भव नहि अछि।

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।।३०।।

सर्वे– सब; **अपि**– ऊपर सँ भिन्न भऽकऽ भी; **एते**– ई; **यज्ञविदः**– यज्ञ करक प्रयोजन सँ परिचित; **यज्ञक्षपित**– यज्ञ केलाक कारण शुद्ध भेल; **कल्मषाः**– पापकर्म सँ; **यज्ञशिष्ट**– एहन यज्ञक फल; **अमृत भुजः**– अमृत चख वाला; **यान्ति**– जाइत अछि; **ब्रह्म**– परम ब्रह्म; **सनातनम्**– नित्य आकाश केँ।

ई सब यज्ञ करएवाला यज्ञक अर्थ जनलाक कारण पापकर्म सँ मुक्त भऽ जाइत छथि आओर यज्ञक फल रुपी अमृत केँ चखिक परम दिव्य आकाशक ओर बढ़ैत जाइत छथि।

तात्पर्यः विभिन्न प्रकारक यज्ञ (द्रव्ययज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ) सँ संसारक पापकर्म सँ विमल भऽ सकैत छी, जीवनमे एहि प्रगति सँ मनुष्य न केवल सुखी एवं ऐश्वर्यवान बनैत छथि, अपितु अन्तमे निराकार ब्रह्मक शाश्वत धाम केँ प्राप्त करैत अछि।

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥३१॥

न- कहियो नहि; **अयम्**- ई; **लोकः**- लोक; **अस्ति**- अछि; **अयज्ञस्य**- यज्ञ नहि करएवाला केँ; **कुतः**- कतए अछि; **अन्यः**- अन्य; **कुरु सत्-तम**- हे कुरुश्रेष्ठ।

हे कुरुश्रेष्ठ! जखन यज्ञक बिना मनुष्य एहि लोकमे या एहि जीवनमे ही सुखपूर्वक नहि रहि सकैत अछि, तो फेर अगिला जन्ममे कोना रहि सकत।

तात्पर्यः यदि कोनो व्यक्ति वेदानुसार यज्ञ करएमे तत्पर नहि होइत अछि, तऽ ओ एहि शरीर सँ सुखी जीवनक आशा कोनाक सकैत अछि, भौतिक जगतमे हमर अस्तित्व हमर पाप-पुण्य जीवनक फलक कारण अछि। दोसर लोकमे दोसर शरीर सँ सुखी जीवनक आशा तो व्यर्थ अछि। विभिन्न स्वर्गमे भिन्न भिन्न प्रकारक जीवन सुविधा अछि। अतः जे लोग यज्ञ करमे लागल रहैत छथि, हुनका सर्वत्र सुख भेटैत अछि।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥३२॥

एवं- एहि प्रकार; **बहुविधाः**- विविध प्रकारक; **यज्ञाः**- यज्ञ; **विततः**- फैलल; **ब्रह्मणः**- वेदक; **मुखे**- मुख सँ; **कर्मज्ञान्**- कर्म सँ उत्पन्न; **विद्धि**- जानू; **तान्**- ओहि; **सर्वान्**- सब केँ; **ज्ञात्वा**- जानि कऽ; **विमोक्ष्यसे**- मुक्त भऽ जाएब।

ई विभिन्न प्रकारक यज्ञ वेद सम्मत अछि आओर ई सब प्रकारक कर्म सँ उत्पन्न अछि। एकरा एहि रुपमे जानला पर अहाँ मुक्त भऽ जाएब।

तात्पर्यः चूँकि लोग देहात्मबुद्धिमे लीन अछि, अतः एहि यज्ञक व्यवस्था एहि प्रकार कैल गेल अछि कि मनुष्य ओकरा अपन शरीर, मन तथा बुद्धिक अनुसार सम्पन्नक सके। किन्तु देह सँ मुक्त हुअ लेल ही

एहि सबहक विधान अछि। भगवान् अपना मुख सँ एतै पुष्ट कैलनि अछि।

श्रेयान्द्रव्यमयाद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥३३॥

श्रेयान्– श्रेष्ठ; **द्रव्य मयात्**– सम्पत्तिक; **यज्ञात्**– यज्ञ सँ; **ज्ञान यज्ञः**– ज्ञानयज्ञ; **परन्तप**– हे शत्रु केँ दमन करएवाला; **सर्वम्**– सब; **कर्म**– कर्म; **अखिलम्**– पूर्णतः; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **ज्ञाने**– ज्ञानमे; **परिसमाप्यते**– समाप्त होइत अछि।

हे परंतप! द्रव्य यज्ञ सँ ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ अछि। हे पार्थ! अन्ततोगत्वा सब कर्मयज्ञक अवसान दिव्य ज्ञानमे होइत अछि।

तात्पर्यः ज्ञानक उन्नतिक बिना यज्ञ मात्र भौतिक कर्म बनल रहैत अछि। किन्तु जखन ओकरा दिव्यज्ञानक स्तर तक पहुँचा देल जाइत अछि तो एहन सब कर्म आध्यात्मिक स्तर प्राप्तक लैत अछि। चेतनाभेदक अनुसार एहन यज्ञकर्म कहियो–कहियो कर्मकाण्ड कहलाबैत अछि आओर कौखन ज्ञानकाण्ड। यज्ञ ओहे श्रेष्ठ अछि, जकर अन्त ज्ञानमे हो।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥३४॥

तत्– विभिन्न यज्ञक ओहि ज्ञान केँ; **विद्धि**– जानैक प्रयास करु; **प्रणिपातेन**– गुरुक पास जाक; **परिप्रश्नेन**– विनीत जिज्ञासा सँ; **सेवया**– सेवाक द्वारा; **उपदेक्ष्यन्ति**– दीक्षित करत; **ते**– अहाँ केँ; **ज्ञानम्**– ज्ञानमे; **ज्ञानिनः**– स्वरुपसिद्ध; **तत्त्व**– तत्त्वक; **दर्शिनः**– दर्शी।

अहाँ गुरुक पास जाक सत्य जानैक प्रयास करु। हुनका सँ विनीत भऽकऽ जिज्ञासा करु आओर हुनकर सेवा करु। स्वरुपसिद्ध व्यक्ति अहाँ केँ ज्ञान प्रदानक सकैत छथि, किएक तऽ ओ सत्यक दर्शन कैलनि अछि।

तात्पर्यः शिष्य न केवल गुरु सँ विनीत भऽकऽ सुनथि, अपितु विनीतभाव तथा सेवा आओर जिज्ञासा द्वारा गुरु सँ स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करथि। प्रमाणिक गुरू स्वभाव सँ शिष्यक प्रति दयालु होइत छथि, अतः यदि शिष्य विनीत हो आओर सेवामे तत्पर रहे तो ज्ञान आओर जिज्ञासाक विनिमय पूर्ण भऽ जाइत अछि।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥३५॥

यत्- जकरा; **ज्ञात्वा**- जानिक; **न**- कहियो नहि; **पुनः**- फेर; **मोहम्**- मोह केँ; **एवम्**- एहि प्रकार; **यास्यसि**- प्राप्त हैत; **पाण्डव**- हे पाण्डवपुत्र; **येन**- जाहि सँ; **भूतानि**- जीवक; **अशेषेण**- समस्त; **द्रक्ष्यसि**- देखव; **आत्मनि**- परमात्मामे; **अथो**- अथवा, अन्य शब्दमे; **मयि**- हमरामे।

स्वरुपसिद्ध व्यक्ति सँ वास्तविक ज्ञान प्राप्त कऽ चुकला पर अहाँ पुनः कहियो एहन मोह केँ प्राप्ति नहि होएव किएक तऽ एहि ज्ञानक द्वारा अहाँ देखि सकब कि सब जीव परमात्माक अंशरुप अछि, अर्थात् ओ सब हमरे अछि।

तात्पर्यः स्वरुपसिद्ध व्यक्ति सँ ज्ञान प्राप्त भेलाक परिणाम ई होइत अछि कि पता चल जाइत अछि कि सब जीव भगवान् श्रीकृष्णक भिन्न अंश अछि। कृष्ण सँ पृथक अस्तित्वक भाव माया कहलाबैत अछि। ब्रह्मसंहितामे स्पष्ट कहल गेलै अछि कि भगवान् श्रीकृष्ण सब कारणक कारण छथि। एते धरि कि लाखों अवतार हुनकर विभिन्न विस्तार ही अछि। ब्रह्मविद्याक पर्याप्त ज्ञान नहि रहलाक कारण हम सब माया सँ आवृत छी, अतः हम अपना केँ कृष्ण सँ पृथक सोचैत छी। यद्यपि हम सब कृष्णक भिन्न अंश छी, किन्तु तो भी हम हुनका सँ भिन्न नहि छी। जीवक शारीरिक अन्तर माया अछि अथवा वास्तविक सत्य नहि अछि। हम सब भगवान् कृष्णक सेवा तथा प्रसन्न करक निमित्त छी। केवल मायाक कारण ही अर्जुन सोचला कि स्वजन सँ हुनकर क्षणिक शारीरिक सम्बन्ध कृष्णक शाश्वत आध्यात्मिक सम्बन्ध सँ अधिक महत्वपूर्ण अछि। जखन क्यो कृष्णभावनामृतक माध्यम सँ दिव्य सेवामे लागि जाइत अछि तो ओ ओहि माया सँ तुरन्त मुक्त भऽ जाइत अछि। पूर्णज्ञान तो ई अछि कि परमात्मा कृष्ण समस्त जीवक परम आश्रय छथि आओर एहि आश्रम केँ त्यागि देला पर जीव माया द्वारा मोहित भऽ जाइत अछि, किएक तऽ ओ अपन अस्तित्व पृथक् समझैत छथि।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥३६॥

अपि– भी; **चेत्**– यदि; **असि**– अहाँ छी; **पापेभ्यः**– पापी सँ; **सर्वेभ्यः**– समस्त; **पाप कृत् तमः**– सर्वाधिक पापी; **सर्वम्**– समस्त पापकर्म; **ज्ञान प्लवेन**– दिव्य ज्ञानक नाव द्वारा; **एव**– निश्चय ही; **वृजिनम्**– दु:खक सागर केँ; **सन्तरिष्यसि**– पूर्णतया पारक जाएव।

यदि अहाँ केँ समस्त पापियोंमे भी सर्वाधिक पापी समझल जाए तो भी अहाँ दिव्यज्ञान रुपी नावमे स्थित भऽकऽ दु:खसागर केँ पार करमे समर्थ होएव।

तात्पर्यः भौतिक जगत कहियो–कहियो अज्ञान सागर मानि लेल जाइत अछि। सागरमे क्यो कतबो ही कुशल तैराक किएक न हो, जीवन संघर्ष अत्यन्त कठिन अछि। भगवान् सँ प्राप्त पूर्णज्ञान मुक्तिक पथ अछि। कृष्णभावनामृतक नाव अत्यन्त सुगम अछि, किन्तु ओकरे संग–संग अत्यन्त उदात्त भी।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥३७॥

यथा– जाहि प्रकार सँ; **एधांसि**– इन्धान केँ; **समिद्धः**– जलैत; **अग्निः**– अग्नि; **भस्मसात्**– राख; **कुरुते**– कऽ दैत अछि; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **ज्ञान अग्निः**– ज्ञान रुपी अग्नि; **सर्व कर्माणि**– भौतिक कर्मक समस्त फल केँ; **भस्मसात्**– भस्म, राख; **कुरुते**– करैत अछि; **तथा**– ओहि प्रकार सँ।

जेना प्रज्जवलित अग्नि ईंधन केँ भस्मक दैत अछि, ओहि प्रकार हे अर्जुन! ज्ञान रुपी अग्नि भौतिक कर्मक समस्त फल केँ जला दैत अछि।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥३८॥

न– किछु भी नहि; **हि**– निश्चय ही; **ज्ञानेन**– ज्ञान सँ; **सदृशम्**– तुलनामे; **पवित्रम्**– पवित्र; **इह**– एहि संसारमे; **विद्यते**– अछि; **तत्**– ओ; **स्वयम्**– अपने; **योग**– भक्तिमे; **संसिद्धः**– परिपक्व भेला पर; **कालेन**– यथासमय; **आत्मनि**– अपने आपमे, अन्तरमे; **विन्दति**– आस्वादन करैत अछि।

एहि संसारमे दिव्यज्ञानक समान किछु भी उदात्त तथा शुद्ध नहि

अछि। एहन ज्ञान समस्त योगक परिपक्व फल अछि। जे व्यक्ति भक्तिमे सिद्ध भऽ जाइत अछि, ओ यथासमय अपन अन्तरमे एहि ज्ञानक आस्वादन करैत अछि।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥३९॥

श्रद्धावान्– श्रद्धालु व्यक्ति; **लभते**– प्राप्त करैत अछि; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **तत् परः**– ओहिमे अत्यधिक अनुरक्त; **संयत**– संयमित; **इन्द्रियः**– इन्द्रिय; **लब्ध्वा**– प्राप्तक; **पराम्**– दिव्य; **शान्तिम्**– शान्ति; **अचिरेण**– शीघ्र ही; **अधिगच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

जे श्रद्धालु दिव्यज्ञानमे समर्पित अछि आओर जे इन्द्रिय केँ वशमेक लेलक अछि, ओ ओहि ज्ञान केँ प्राप्त करक अधिकारी छथि आओर एकरा प्राप्त करिते ही ओ तुरन्त आध्यात्मिक शान्ति केँ प्राप्त होइत छथि।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥४०॥

अज्ञः– मूर्ख, जकरा शास्त्रक ज्ञान नहि अछि; **च**– तथा; **अश्रद्धधानः**– शास्त्रमे श्रद्धा सँ विहीन; **संशय**– शंकाग्रस्त; **आत्मा**– व्यक्ति; **विनश्यति**– गिर जाइत अछि; **न**– नहि; **अयम्**– एहि; **लोकः**– जगतमे; **अस्ति**– अछि; **परः**– अगिला जन्ममे; **सुखम्**– सुख; **संशयः**– संशयग्रस्त; **आत्मनः**– व्यक्तिक लेल।

किन्तु जे अज्ञानी तथा श्रद्धाविहीन व्यक्ति शास्त्रमे संदेह करैत अछि जो भगवद्भावनामृत नहि प्राप्त करैत अछि, अपितु नीचा गिर जाइत अछि। संशयात्माक लेल न तो एहि लोकमे, न ही परलोकमे कोनो सुख अछि।

तात्पर्यः आध्यात्मिक उत्थानमे संशयग्रस्त मनुष्य केँ कोनो स्थान नहि भेटैत अछि। अतः मनुष्य केँ चाही कि परम्परा सँ चल अविरहल महान आचार्यक पदचिन्हक अनुसरणक सफलता प्राप्त करथि।

योगसन्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।

आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय॥४१॥

योग– कर्मयोगमे भक्ति सँ; **संन्यस्त**– जे त्याग देलक अछि; **कर्माणम्**– कर्मफल; **ज्ञान**– ज्ञान सँ; **सञ्छिन्न**– काटि देलक अछि; **संशयम्**– सन्देह केँ; **आत्मवन्तम्**– आत्मपरायण केँ; **न**– कहियो नहि; **कर्माणि**– कर्म; **निबध्नन्ति**– बाँधैत अछि; **धनञ्जय**– हे सम्पत्तिक विजेता।

जे व्यक्ति अपन कर्मफलक परित्याग करैत भक्ति करैत छथि आओर जकर संशय दिव्यज्ञान द्वारा विनष्ट भऽ चुकल अछि ओहे वास्तवमे आत्मपरायण छथि। हे धनञ्जय! ओ कर्मक बन्धन सँ नहि बँधैत छथि।

तात्पर्यः जे मनुष्य भगवद्गीताक ओहि रुपमे पालन करैत अछि जाहि रुपमे भगवान् श्रीकृष्ण देलथिन तो ओ दिव्यज्ञानक कृपा सँ समस्त संशय सँ मुक्त भऽ जाइत अछि।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥४२॥

तस्मात्– अतः; **अज्ञान सम्भूतम्**– अज्ञान सँ उत्पन्न; **हृत्स्थम्**– हृदयमे स्थित; **ज्ञान**– ज्ञान रुपी; **असिना**– शस्त्र सँ; **आत्मनः**– अपना केँ; **छित्वा**– काटि कऽ; **एनम्**– एहि; **संशयम्**– संशय केँ; **योगम्**– योगमे; **अतिष्ठ**– स्थित होओ; **उत्तिष्ठ**– युद्ध कर लेल उठू; **भारत**– हे भरतवंशी।

अतएव अहाँक हृदयमे अज्ञानक कारण जे संशय उठल अछि ओकरा ज्ञानरुपी शस्त्र सँ काटि डालू। हे भारत! अहाँ योग सँ समन्वित भऽकऽ खड़ा हो जाउ आओर युद्ध करू।

तात्पर्यः जे व्यक्ति गीताक उपदेश केँ नहि समझैत अछि ओ श्रद्धाविहीन अछि आओर जे भगवान् द्वारा उपदेश देला पर भी भगवानक सच्चिदानन्द स्वरुप केँ नहि समझ पाबैत अछि ओ निपट मूर्ख अछि। कृष्णभावनामृतक सिद्धान्त केँ स्वीकारक अज्ञान केँ क्रमशः दूर कएल जा सकैत अछि। अतः गीतामे व्यक्त भगवद्गीताक पथक अनुसरण करक चाही। भगवान् निश्चित रुप सँ परमपुरुष छथि आओर हुनकर कार्य कलाप दिव्य अछि।

दिव्यज्ञानक संक्षिप्त विवरण

श्रीकृष्ण भगवान् कहलखिन– एहि अविनाशी कर्मयोग केँ हम सूर्य सँ कहलियैन, सूर्य मनु सँ कहलथिन आओर मनु राजा इक्ष्वाकु सँ कहलथिन। हे अर्जुन! एहि परम्परा सँ प्राप्त ई योग सब राजर्षि केँ ज्ञात भेलनि, परन्तु अधिक काल व्यतीत भेलाक कारण ई लुप्त भऽ गेल। ई प्राचीन योग आइ अहाँ केँ बतेलहुँ अछि, किएक तऽ अहाँ हमर भक्त आओर मित्र छी, ई योग रहस्य अति उत्तम अछि। अर्जुन कहए लगलथि– अहाँक जन्म तऽ एखन भेल अछि, सूर्यक जन्म लाखों वर्ष पहिने भेल छलैन, हम कोना मानब जे ई कथा अहाँ सूर्य केँ कहने हेबनि? भगवान् श्रीकृष्ण कहलखिन– हे अर्जुन! हमर आ अहाँक जन्म अनेकों बार भऽ चुकल अछि। हमरा याद अछि, अहाँ बिसरि गेलहुँ अछि। हम जन्म सँ रहित, अविनाशी, सम्पूर्ण प्राणीक स्वामी, अपन प्रकृतिमे स्थित छी तथापि अपन माया सँ जन्मैत छी। हे भरतवंशी! जखन–जखन धर्मक हानि होइत अछि आओर अधर्मक प्रबलता होइत अछि, तखन–तखन हम जन्म लैत छी। जे हमर एहि अलौकिक जन्म या तत्त्व जानैत अछि, ओ मृत्यु भेला पर पुनः जन्म नहि लैत अछि तथा हमरामे लीन भऽ जाइत अछि। एहि भाँति मोह, भय आओर क्रोध केँ त्यागि कऽ हमरामे भक्तिक आओर हमर शरणागत भऽ बहुत सँ मनुष्य ज्ञानरुपी तप सँ पवित्र भऽ हमरेमे मिलि गेल छथि। जे जाहि भाव सँ हमर पूजन करैत अछि हम ओकरा ओहि प्रकार फल दैत छियै। हे पार्थ! मनुष्य सब प्रकार सँ हमरे मार्गक अनुसरण करैत अछि अर्थात ओ चाहे जकर सेवा करथि ओ हमरे सेवा अछि। मनुष्य लोकमे कर्म सिद्धिक इच्छा करएवाला लोग देवगणक पूजा करैत अछि, किएक तऽ एहि लोकमे कर्मक सिद्धि शीघ्र नहि होइत अछि। हम ही चारू वर्णक सृष्टिककर्ता छी तथापि हमरा अकर्ता, अविनाशी जानू। कर्म हमरा बद्ध नहि कऽ सकैत अछि तथापि कर्मफलमे हमर कामना नहि अछि। एहि प्रकार जे हमरा पहचानैत अछि ओ कर्मक बन्धनमे नहि पड़ैत अछि। हे अर्जुन! कर्म की अछि आओर अकर्म की अछि? एकर विचारमे विद्वानक बुद्धि भी चकरा जाइत अछि ओहि कर्मक वर्णन अहाँ सँ कहब, जकरा जानला सँ संसारक बन्धन छूटिक मोक्षक भागी हैब। कर्म, विकर्म आओर अकर्म तीनू केँ जानब

आवश्यक अछि, किएक तऽ कर्मक गति गम्भीर अछि। जे कर्ममे अकर्म आओर अकर्ममे कर्म देखैत अछि ओहे पुरुष विद्वान अछि, ओहे योगी अछि। हे अर्जुन! जकरा कर्म करबाक कोनो कामना नहि रहैत अछि आओर समस्त कर्म ज्ञान रुपी अग्नि सँ भस्म (निर्मल) भऽ गेलै अछि हुनके पंडित कहल जाइत अछि। जे कर्म फलक आशा छोड़ि कऽ आओर ओहिमे आसक्ति भी नहि राखैत आओर निराश्रयमे ही सदा संतुष्ट रहैत अछि, एहन व्यक्ति कमाईमे घेरायल रहला पर भी मानू किछु नहि करैत अछि। जे सब कामना केँ त्यागि मन आओर आत्मा केँ वशमेक संसारी झंझट सँ छूटि कऽ केवल शरीर सँ कर्म बन्धन सँ संतापित नहि होइत छथि, देवयोग सँ जे किछु मिल जाए ओहि सँ संतुष्ट रहैत छथि। जे हर्ष–शोक आदि द्वन्द्व सँ मुक्त छथि तथा ककरो सँ ईर्ष्या नहि करैत छथि, कर्मक सिद्धि या असिद्धिमे भेद नहि समझैत ओ कर्म करैत भी ओहिमे नहि बँधैत छथि।

जे फलक इच्छा नहि रखैत, वासना सँ दूर भऽ गेला अछि, ज्ञानमे जिनका मन अचल अछि आओर जे यज्ञक कर्म करैत अछि, ओ सब कर्म लुप्त भऽ जाइत अछि। हवनक पदार्थ भी ब्रह्म अछि, आहुति दिअवाला भी ब्रह्म अछि। एहि प्रकार जाहि बुद्धिमे सब काम ज्ञानमय अछि ओकरा ब्रह्म प्राप्त होइत अछि। कोनो कोनो कर्मयोगी देवताक पूजा करैत अछि, कोनो ज्ञानयोगी ब्रह्म रुप अग्निमे यज्ञ रुपमे हवनक परमात्माक भजन करैत अछि। क्यो एहनो अछि जे अपन इन्द्रियक रुपमे शब्दादि विषय केँ होम दैत अछि। क्यो द्रव्ययज्ञ करैत अछि, क्यो तप यज्ञ, क्यो योग यज्ञ, क्यो स्वाध्याय आओर क्यो ज्ञानरुप यज्ञ, क्यो प्राणयाममे तत्पर रहै वाला यज्ञ करैत अछि, क्यो आहार केँ निरन्तर कम कऽ प्राणक होम दैत छथि। ई सब यज्ञवेता छथि। यज्ञ सँ ही हुनकर सब पाप नष्ट भऽ जाइत अछि। यज्ञमे बचल अमृत रुप अन्न केँ खाइत छथि ओ सनातन ब्रह्म केँ प्राप्त करैत छथि। हे परन्तप (अर्जुन)! द्रव्य यज्ञ सँ ज्ञान उत्तम अछि। हे पार्थ फल सहित सब कर्म ज्ञानमे समाप्त भऽ जाइत अछि तो ओहि ज्ञानक तत्त्वदर्शी आओर ज्ञानी लोग अहाँ केँ उपदेश देत अतः अहाँ हुनका सबहक सेवा करब आओर हुनका सँ विनयपूर्वक प्रश्नक ज्ञान यज्ञ समझब। हे अर्जुन! जेना प्रज्वलित अग्नि लकड़ी केँ जला कऽ

भस्म कऽ दैत अछि ओहिना ज्ञानरुपी अग्नि सब कर्मफल केँ भस्म कऽ दैत अछि। एहि लोकमे ज्ञानक समान पवित्र आओर किछु नहि अछि, ई ब्रह्म बहुत काल पर्यन्त कर्म योग सँ सिद्ध भेल पुरुष केँ अपने आप प्राप्त भऽ जाइत अछि आओर ज्ञान पाबि कऽ अल्प समयमे शान्ति केँ पाबि जाइत अछि। जे अज्ञानी अछि, जिनका मनमे संदेह अछि, हुनका एहिलोक आओर परलोकमे सुख किछु भी प्राप्त नहि होइत अछि। हे अर्जुन! जे परमेश्वर अराधना आओर निष्काम कर्मयोगक आश्रय सँ कर्म बन्धन त्याग देने अछि, ओहि आत्मज्ञानी पुरुष केँ दुःख नहि होइत अछि। हे अर्जुन! अज्ञान सँ विचलित चित्तक एहि संशय केँ ज्ञानरुपी तलवार सँ काटि कऽ हमरा द्वारा बताएल कर्मयोग कर लेल प्रस्तुत भऽ जाउ। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक चारिम अध्याय **''दिव्य ज्ञान''** पूर्ण भेल।



सैवाहम् न च दृश्य वस्तु,
ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या।

हम शुद्ध चेतना छी न कि ई नाशवान शरीर। अविनाशी तत्त्व (ब्रह्म) ही सत्य अछि, ई भौतिक संसार असत्य (नाशवान) अछि।

अध्याय-पाँच



कर्मयोग-
कृष्णभावनाभावित कर्म

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।।१।।

अर्जुनः उवाच- अर्जुन कहलखिन; **संन्यासम्**- संन्यास; **कर्मणाम्**- सम्पूर्ण कर्मक; **कृष्ण**- हे कृष्ण; **पुनः**- फेर; **योगम्**- भक्ति; **च**- भी; **शंससि**- प्रशंसा करैत; **यत्**- जे; **श्रेयः**- अधिक लाभप्रद हो; **एतयोः**- एहि दूनूमे सँ; **एकम्**- एक; **तत्**- ओ; **मे**- हमरा लेल; **ब्रूहि**- कहू; **सु-निश्चितम्**- निश्चित रुप सँ।

अर्जुन कहलखिन-हे कृष्ण! पहिने अहाँ हमरा सँ कर्म त्याग कहैत छी आओर फेर भक्तिपूर्वक कर्म करक आदेश दैत छी। अहाँ आब कृपा कऽ निश्चित रुप सँ हमरा बताउ कि एहि दूनूमे सँ कोन अधिक लाभप्रद अछि।

तात्पर्यः- भगवद्गीताक एहि पंचम अध्यायमे भगवान् बतबैत छथि कि भक्तिपूर्वक कैल कर्म शुष्क चिन्तन सँ श्रेष्ठ अछि। भक्ति पथ अधिक सुगम अछि किएक तऽ दिव्यस्वरुपा भक्ति मनुष्य केँ कर्मबन्धन सँ मुक्त

करैत छै। द्वितीय अध्यायमे आत्मा तथा ओकर शरीर बन्धनक सामान्य ज्ञान बताएल गेलै अछि। ओहिमे बुद्धियोग अर्थात् भक्ति द्वारा एहि भौतिक बन्धन सँ निकलैक भी वर्णन अछि। तृतीय अध्यायमे ई बताएल गेलै अछि कि ज्ञानी केँ भी कोनो काज नहि कर पड़ैत छै। चतुर्थ अध्यायमे भगवान् अर्जुन केँ बतौलनि कि सब यज्ञक पर्यवसान ज्ञानमे होइत अछि, किन्तु अन्तमे भगवान् कृष्ण अर्जुन केँ सलाह देलथिन कि ओ पूर्णज्ञान सँ युक्त भऽकऽ, उठि कऽ युद्ध करी। अतः एक संगे भक्तिमय कर्म तथा ज्ञानयुक्त अकर्मक महत्ता पर बल दैत श्रीकृष्ण अर्जुनक संकल्प केँ भ्रमितक देलथिन। अर्जुन सोचैत छथि कि ज्ञानमय सन्यास केँ सब प्रकारक कार्य सँ मुक्त होमक चाही, किएक तऽ हुनका कर्म तथा ज्ञान असंगति सँ लागलनि। अतएव ओ पूछैत छथि कि ओ सब प्रकार सँ कर्म त्याग दी या पूर्णज्ञान सँ युक्त भक्त कर्म करी?

श्रीभगवानुवाच

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।२।।

श्रीभगवानुवाच– श्री भगवान् कहलखिन; **संन्यासः**– कर्मक परित्याग; **कर्मयोगः**– निष्ठायुक्त कर्म; **च**– भी; **निःश्रेयसकरौ**– मुक्ति पथक ओर; **उभौ**– दूनू; **तयोः**– दूनूमे सँ; **तु**– लेकिन; **कर्म संन्यासात्**– सकाम कर्मक त्याग सँ; **कर्मयोगः**– निष्ठायुक्त कर्म; **विशिष्यते**– श्रेष्ठ अछि।

श्रीभगवान् उत्तर देलथिन–मुक्तिक लेल तो कर्मक परित्याग तथा भक्तिमय कर्म (कर्मयोग) दूनू ही उत्तम अछि। किन्तु एहि दूनूमे सँ कर्मक परित्याग सँ भक्तियुक्त कर्म श्रेष्ठ अछि।

तात्पर्यः इन्द्रियतृप्तिमे लागल रहब ही भवबन्धनक कारण अछि। जाधरि मनुष्य शारीरिक सुखक स्तर बढ़ावक उद्देश्य सँ कर्म करैत अछि ताधरि ओ विभिन्न प्रकारक शरीरमे देहान्तर करैत भवबन्धन केँ बनाक राखैत अछि। वासुदेवक भक्तिक प्रति प्रेम करक चाही तखने ओ भवबन्धन सँ छूटैक अवसर प्राप्तक सकैत अछि। अतः ज्ञान ही मुक्तिक लेल पर्याप्त नहि अछि। जीवात्माक स्तर पर मनुष्य केँ कर्म कर पड़ैत अन्यथा भवबन्धन सँ उबरैक अन्य उपाय नहि अछि। कृष्णभावनाभावित

कर्म संन्यास सँ सदा श्रेष्ठ होइत अछि कारण संन्यासमे नीचा गिरैक सम्भावना बनल रहैत अछि। अतः भगवानक भक्ति सँ रहित संन्यास अपूर्ण अछि। संन्यास तैखन पूर्ण मानल जाएत तखन ज्ञात हैत कि संसारक प्रत्येक वस्तु भगवानक अछि, ओकर अपन किछु भी नहि अछि।

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्‍क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥३॥

ज्ञेयः– जानए चाही; **सः**– ओ; **नित्य**– सदैव; **सन्न्यासी**– सन्यासी; **यः**– जे; **न**– कहियो नहि; **द्वेष्टि**– घृणा करब; **न**– ना तो; **काङ्‍क्षति**– इच्छा करैत अछि; **निर्द्वन्द्वः**– समस्त देवता सँ मुक्त; **हि**– निश्चय ही; **महाबाहो**– हे बलिष्ठ भुजावाला; **सुखम्**– सुखपूर्वक; **बन्धात्**– बन्धन सँ; **प्रमुच्यते**– पूर्णतया मुक्त भऽ जाइत अछि।

जे पुरुष न तो कर्मफल सँ घृणा करैत अछि आओर न कर्मफलक इच्छा करैत अछि, ओ नित्य संन्यासी जानल आइत अछि। हे महाबाहु अर्जुन! एहन मनुष्य समस्त द्वन्द्व सँ रहित भऽकऽ भवबन्धक केँ पारक पूर्णतया मुक्त भऽ जाइत अछि।

तात्पर्यः पूर्णतया कृष्णभावनाभावित पुरुष नित्य संन्यासी अछि, किएक तऽ ओ अपन कर्मफल सँ न तो घृणा करैत छथि, न ही ओकर आकांक्षा करैत छथि। एहन संन्यासी भगवानक दिव्य प्रेम शक्तिक परायण भऽकऽ पूर्णज्ञानी होइत छथि। हुनका मनमे कोनो प्रकारक छल कपट नहि रहैत अछि कारण ओ जे किछु करैत छथि ओ भगवानक हेतु। अतः ओ भौतिक जगत् सँ भी मुक्त भऽ जाइत छथि।

साङ्‍ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥४॥

सांख्य– भौतिक जगतक विश्लेषणात्मक अध्ययन; **योगौ**– भक्तिपूर्ण कर्म, कर्मयोग; **पृथक्**– भिन्न; **बालाः**– अल्पज्ञ; **प्रवदन्ति**– कहैत अछि; **न**– कहियो नहि; **पण्डिताः**– विद्वान् जन; **एकम्**– एकमे; **अपि**– भी; **आस्थितः**– स्थित; **सम्यक्**– पूर्णतया; **उभयोः**– दूनूक; **विन्दते**– भोग करैत अछि; **फलम्**– फल।

अज्ञानी ही भक्ति (कर्मयोग) केँ भौतिक जगतक विश्लेषणात्मक

अध्ययन (सांख्य) सँ भिन्न कहैत अछि। जे वस्तुतः ज्ञानी छथि ओ कहैत छथि कि जे एहिमे सँ कोनो एक मार्गक ठीक-ठीक अनुसरण करैत छथि, ओ दूनूक फल प्राप्त करैत छथि।

तात्पर्यः भौतिक जगतक आत्मा विष्णु या परमात्मा छथि। भगवानक भक्तिक अर्थ परमात्माक सेवा अछि। एक विधि सँ वृक्षक जड़ि खोजल जाइत अछि आओर दोसर विधि सँ ओकरा सींचल जाइत अछि। सांख्य दर्शनक वास्तविक शिक्षार्थी जगतक मूल अर्थात विष्णु केँ ढूढ़ैत अछि आओर पुनः पूर्णज्ञान समेत अपना केँ भगवानक सेवामे लगा दैत अछि। अतः मूलतः एहि दूनूमे कोनो भेद नहि अछि किएक तऽ दूनूक उद्देश्य विष्णुक प्राप्ति अछि।

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥५॥

यत्– जे; **साख्यैः**– साख्यदर्शनक द्वारा; **प्राप्यते**– प्राप्त कैल जाइत अछि।; **स्थानम्**– स्थान; **तत्**– ओहे; **योगैः**– भक्ति द्वारा; **अपि**– भी; **गम्यते**– प्राप्तक सकैत अछि; **एकम्**– एक; **सांख्यम्**– विश्लेषणात्मक अध्ययन; **च**– तथा; **योगम्**– भक्तिमय कर्म केँ; **यः**– जे; **पश्यति**– देखैत अछि; **सः**– ओ; **पश्यति**– वास्तवमे देखैत अछि।

जे ई जानैत अछि कि विश्लेषणात्मक अध्ययन (सांख्य) द्वारा प्राप्य स्थान भक्ति द्वारा भी प्राप्त कैल जा सकैत अछि आओर एहि तरह ओ सांख्ययोग तथा भक्तियोग केँ एक समान देखैत अछि, ओहे वस्तु केँ यथारुपमे देखैत अछि।

तात्पर्यः सांख्य (दार्शनिक शोध)क वास्तविक उद्देश्य जीवनक परमलक्ष्यक खोज अछि। चूँकि जीवनक चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार अछि। अतः एहि दूनू विधि सँ प्राप्त हुअबला परिणाममे कोनो अन्तर नहि अछि। वस्तुतः दूनू ही विधि एक अछि, यद्यपि ऊपर सँ एक विधिमे विरक्ति दिखाई अछि आओर दोसरमे आसक्ति अछि। जे पदार्थ सँ विरक्ति आओर कृष्णमे आसक्ति केँ एक ही तरह देखैत अछि, ओहे वस्तु केँ यथारुपमे देखैत छथि।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति॥६॥

संन्यासः- संन्यास आश्रम; **तु**- लेकिन; **महाबाहो**- हे बलिष्ठ भुजा वाला; **दुःखम्**- दुःख; **आप्तुम**- सँ प्रभावित; **अयोगतः**- भक्तिक बिना; **योग युक्तः**- भक्तिमे लागल; **मुनिः**- चिन्तक; **ब्रह्म**- परमेश्वर केँ; **न चिरेण**- शीघ्र ही; **अधिगच्छति**- प्राप्त करैत अछि।

भक्तिमे बिना लागल समस्त कर्मक परित्याग केला सँ क्यो सुखी नहि भऽ सकत। परन्तु भक्तिमे लागल विचारवान व्यक्ति शीघ्र ही परमेश्वर केँ प्राप्तक लैत छथि।

तात्पर्यः संन्यासी दू प्रकारक होइत अछि। मायावादी संन्यासी सांख्यदर्शनक अध्ययनमे लागल रहैत छथि तथा वैष्णव संन्यासी वेदान्त सूत्रक यथार्थ भाष्य भागवत-दर्शनक अध्ययनमे लागल रहैत छथि। भक्तिमे लागल वैष्णव संन्यासी अपन दिव्य कर्म केँ करैत प्रसन्न रहैत छथि आओर ई भी निश्चित रहैत अछि कि ओ भगवद्धाम केँ प्राप्त करता। मायावादी संन्यासी कहियो आत्मसाक्षात्कार पथ सँ गिर जाइत अछि। आओर पुनः समाजसेवा, परोपकार सनक भौतिक कर्ममे प्रवृत्त होइत छथि। अतः निष्कर्ष ई निकलल कि कृष्णभावनामृतक कार्यमे लागल व्यक्ति ब्रह्म-अब्रह्म विषयक साधारण चिन्तनमे लागल संन्यासी सँ श्रेष्ठ होइत छथि।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥७॥

योगयुक्तः- भक्तिमे लागल; **विशुद्ध आत्मा**- शुद्ध आत्मा; **विजित-आत्मा**- आत्म संयमी; **जितेन्द्रियः**- इन्द्रिय केँ जीतएवाला; **सर्वभूत**- समस्त जीवक प्रति; **आत्मभूत-आत्मा**- दयालु; **कुर्वन् अपि**- कर्ममे लगला पर भी; **न**- कहियो नहि; **लिप्यते**- बँधैत अछि।

जे भक्तिभाव सँ कर्म करैत अछि, जे विशुद्ध आत्मा अछि आओर अपन मन तथा इन्द्रिय केँ वशमे राखैत छथि, ओ सबहक प्रिय होइत छथि आ सब लोग हुनका प्रिय होइत छैन। एहन व्यक्ति कर्म करैत भी कहियो नहि बँधैत छथि।

तात्पर्यः जे भक्तिभावक कारण मुक्तिपथ पर छथि ओ प्रत्येक

जीवक प्रिय होइत छथि आओर प्रत्येक जीव हुनका लेल प्रिय होइत अछि। प्रत्येक व्यक्ति हुनकर कर्म सँ प्रसन्न रहैत अछि। अतः हुनकर चेतना शुद्ध रहैत अछि। चेतना शुद्ध रहलाक कारण मन नियन्त्रित रहैत अछि। मन नियन्त्रित रहलाक कारण इन्द्रिय संयमित रहैत अछि। एहन व्यक्तिक मन सदैव कृष्णमे स्थिर रहैत अछि। ओ सिर्फ कृष्ण कथा सुनैत छथि, कृष्णाक अर्पित भोजन करैत छथि, ओ सिर्फ कृष्ण सम्बन्धित कार्यस्थल पर जाइत छथि कारण हुनकर इन्द्रिय संयमित रहैत अछि। अतः अर्जुन ऊपर सँ ही आक्रमक छलाह। द्वितीय अध्यायमे कहल गेल अछि कि आत्माक अवध्य भेलाक कारण युद्धभूमिमे एकत्रित सब व्यक्ति अपन-अपन स्वरुपमे जीवित बनल रहता। अतः आध्यात्मिक दृष्टि सँ कुरुक्षेत्रक युद्धभूमिमे क्यो मारले नहि गेला। ओतए कृष्णक आदेशानुसार केवल हुनका सबहक वस्त्र बदलि देल गेल। अतः अर्जुन कुरुक्षेत्रक युद्धभूमिमे युद्ध करैत भी वस्तुतः युद्ध नहि कऽ रहल छलाह। एहन व्यक्ति कहियो कर्मबन्धनमे नहि बँधैत अछि।

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपंश्वसन्॥८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥९॥

न- नहि; **एव**- निश्चय ही; **किञ्चित्**- किछु भी; **करोमि**- करैत छी; **इति**- एहि प्रकार; **युक्तः**- दैवी चेतनामे लागल; **मन्यते**- सोचैत अछि; **तत्त्ववित्**- सत्य केँ जानैवाला; **पश्यन्**- देखैत; **शृण्वन्**- सुनैत; **स्पृशन्**- स्पर्श करैत; **जिघ्रन**- सूघैत; **अश्नन्**- खाइत; **गच्छन्**- जाइत; **स्वपन्**- सपना देखैत; **श्वसन्**- साँस लैत; **प्रलपन्**- बात करैत; **विसृजन्**- त्यागैत; **गृहणन्**- स्वीकार करैत; **उन्मिषन्**- खोलैत; **निमिषन्**- बन्द करैत; **अपि**- तो भी; **इन्द्रियाणि**- इन्द्रिय केँ; **इन्द्रिय-अथेषु**- इन्द्रियतृप्तिमे; **वर्तन्ते**- लगा देने रहैत; **इति**- एहि प्रकार; **धारयन्**- विचार करैत।

दिव्य भावनामृत युक्त पुरुष देखैत, सुनैत, स्पर्श करैत, खाइत, चलैत-फिरैत, सुतैत तथा साँस लैत भी अपना अन्तरमे सदैव इहै जानैत रहैत अछि ओ कि वास्तवमे किछु नहि करैत अछि। बोलैत-बाजैत, त्यागैत, ग्रहण करैत या आँख खोलैत, बन्द करैत

भी ओ ई जानए चाहैत अछि कि भौतिक इन्द्रिय अपन-अपन विषयमे प्रवृत्त अछि आओर ओ एहि सब सँ पृथक् अछि।

तात्पर्यः चूँकि कृष्णभावनाभावित व्यक्तिक जीवन शुद्ध होइत अछि फलतः ओकरा निकट तथा दूरस्थ पाँच कारण- कर्ता, कर्म, अधिष्ठान, प्रयास तथा भाग्य पर निर्भर कोनो काज सँ किछु लेना-देना नहि रहैत अछि। एकर कारण इहै अछि कि ओ सदैव भगवानक दिव्य सेवामे लागल रहैत अछि। भौतिक चेतनामे व्यक्ति इन्द्रियतृप्तिमे लागल रहैत अछि किन्तु कृष्णभावनामृतमे ओ कृष्णक इन्द्रियक तुष्टिमे लागल रहैत अछि। अतः भक्ति भावित व्यक्ति सदा मुक्त रहैत अछि भले ही ओ ऊपर सँ भौतिक कार्यमे लागल दिखाई पड़ैत अछि।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥१०॥

ब्रह्मणि- भगवानमे; **आधाय**- समर्पितक; **कर्माणि**- सब कार्य केँ; **संगम्**- आसक्ति; **व्यक्त्वा**- त्यागक; **करोति**- करैत अछि; **यः**- जे; **लिप्यते**- प्रभावित होइत अछि; **न**- कहियो नहि; **सः**- ओ; **पापेन**- पाप सँ; **पद्म पत्रम्**- कमलपत्र; **इव**- क सदृश; **अम्भसा**- जलक द्वारा।

जे व्यक्ति कर्मफल केँ परमेश्वर केँ समर्पितक आसक्ति रहित भऽकऽ अपन कर्म करैत अछि, ओ पापकर्म सँ ओहि प्रकार अप्रभावित रहैत अछि, जाहि प्रकार कमलपत्र जल सँ अस्पृश्य रहैत अछि।

तात्पर्यः ईशोपनिषद्मे कहल गेलै अछि कि सब वस्तु परब्रह्म सँ सम्बन्धित अछि अतएव ओ केवल हुनके अछि जे ई ठीक-ठीक जानैत अछि कि प्रत्येक वस्तु कृष्णक ही अछि आओर ओ प्रत्येक वस्तुक स्वामी छथि। अतः प्रत्येक वस्तु भगवानक सेवामे ही नियोजित अछि, ओकरा स्वभावतः शुभ-अशुभ कर्मफल सँ कोनो प्रयोजन नहि रहैत। कृष्णभावनामृत-विहीन पुरुष शरीर एवं इन्द्रिय केँ अपन स्वरुप समझि कऽ कर्म करैत अछि, कृष्णभावनामृत व्यक्ति ई समझिक कर्म करैत अछि ई देह कृष्णक सम्पत्ति अछि, अतः एकरा भगवानक सेवामे प्रवृत्त होमक चाही।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वात्मशुद्धये॥११॥

कायेन– शरीर सँ; **मनसा**– मन सँ; **बुद्ध्या**– बुद्धि सँ; **केवलैः**– शुद्ध; **इन्द्रियैः**– इन्द्रिय सँ; **अपि**– भी; **योगिनः**– कृष्णभावनाभावित व्यक्ति; **कर्म**– कर्म; **कुर्वन्ति**– करैत अछि; **संगम्**– आसक्ति; **व्यक्त्वा**– त्याग कऽ; **आत्मा**– आत्माक; **शुद्धये**– शुद्धिक लेल।

योगीजन आसक्तिरहित भऽकऽ शरीर, मन, बुद्धि तथा इन्द्रियक द्वारा भी केवल शुद्धिक लेल कर्म करैत छथि।

तात्पर्यः– जखन क्यो कृष्णभावनामृतमे कृष्णक इन्द्रियतृप्तिक लेल शरीर, मन, बुद्धि अथवा इन्द्रिय द्वारा कर्म करैत अछि तो ओ भौतिक कल्मष सँ मुक्त भऽ जाइत अछि। कृष्णभावनाभावित व्यक्तिक कार्य सँ कोनो भौतिक फल प्रकट नहि होइत अछि। अतः सामान्य रुपमे सदाचार कहल जायबला शुद्ध कर्म कृष्णभावनामृतमे रहैत सरलता सँ सम्पन्न कैल जा सकैत अछि।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥१२॥

युक्तः– भक्तिमे लागल; **कर्म फलम्**– समस्त कर्मक फल; **व्यक्त्वा**– त्यागक; **शान्तिम्**– पूर्ण शान्ति केँ; **आप्नोति**– प्राप्त करैत अछि; **नैष्ठिकीम्**– अचल; **अयुक्तः**– कृष्णभावना सँ रहित; **कामकारेण**– कर्मफल केँ भोगक कारण; **फले**– फलमे; **सक्तः**– आसक्त; **निबध्यते**– बँधैत अछि।

निश्चल भक्त शुद्ध शान्ति प्राप्त करैत छथि, किएक तऽ ओ समस्त कर्मफल हमरा अर्पितक दैत छथि, किन्तु जे व्यक्ति भगवान् सँ युक्त नहि छथि आओर जे अपन श्रमक फलकामी छथि, ओ बँध जाइत छथि।

तात्पर्यः– एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति तथा एक देहात्मबुद्धि वाला व्यक्तिमे ई अन्तर अछि कि पहिल तो कृष्णक प्रति आसक्त रहैत छथि जखन कि दोसर अपन कर्मक प्रति आसक्त रहैत अछि। कृष्णभावनामृतमे जीव शान्ति सँ पूरित रहैत अछि। किन्तु जे इन्द्रियतृप्तिक लेल लाभक

लोभमे फँसल रहैत छथि हुनका शान्ति नहि भेटैत अछि।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥१३॥

सर्व- समस्त; **कर्माणि**- कर्म केँ; **मनसा**- मन सँ; **संन्यस्य**- त्यागक; **आस्ते**- रहैत अछि; **सुखम्**- सुख सँ; **वशी**- संयमी; **नवद्वारे**- नौ द्वार वला; **पुरे**- नगरमे; **देही**- देहवान् आत्मा; **न**- नहि; **एव**- निश्चय ही; **कुर्वन्**- करैत; **न**- नहि; **कारयन्**- करबैत।

जखन देहधारी जीवात्मा अपन प्रकृति केँ वशमे कऽ लैत अछि आओर मन सँ समस्त कर्मक परित्यागक दैत अछि तखन ओ नौ द्वारवला नगर (भौतिक शरीर)मे बिना किछु केने-धेने सुखपूर्वक रहैत अछि।

तात्पर्यः जीवक शरीरक भीतर वास करएवाला भगवान् ब्रह्माण्डक समस्त जीवक नियन्ता छथि। ई शरीर नौ द्वार (दू आँखि, दू नाक, दू कान, एक मुँह, गुदा तथा उपस्थ) सँ युक्त अछि। वद्धावस्थामे जीव अपन शरीर मानैत अछि। किन्तु जखन ओ अपन पहचान अपन अन्दरक भगवान् सँ करैत अछि तो ओ शरीरमे रहितो भी भगवान् जकाँ मुक्त भऽ जाइत छथि। अतः कृष्णभावनाभावित (योगीजन) व्यक्ति शरीरक बाह्य तथा आन्तरिक कर्म सँ मुक्त रहैत छथि।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।१४॥

न- नहि; **कर्तृत्वम्**- कर्तापन या स्वामित्व केँ; **न**- न तो; **कर्माणि**- कर्म केँ; **लोकस्य**- लोगक; **सृजति**- उत्पन्न करैत अछि; **प्रभुः**- शरीर रुपी नगरक स्वामी; **कर्मफल**- कर्मक फल सँ; **संयोगम्**- सम्बन्ध केँ; **स्वभावः**- प्रकृतिक गुण; **तु**- लेकिन; **प्रवर्तते**- कार्य करैत अछि।

शरीर रुपी नगरक स्वामी देहधारी जीवात्मा न तो कर्मक सृजन करैत अछि न लोग केँ कर्म करक लेल प्रेरित करैत अछि, न ही कर्मफलक रचना करैत अछि। ई सब तो प्रकृतिक गुण द्वारा कैल जाइत अछि।

तात्पर्यः जाधरि व्यक्ति ओहि शरीररुपी नगरीमे बास करैत अछि,

ताधरि ओकर स्वामी प्रतीत करैत अछि, किन्तु वास्तवमे ओ न तो एकर स्वामी अछि आओर एकर कर्म तथा फलक नियन्ता अछि। ओ तो एहि भवसागरक बीच जीवन संघर्षमे रत प्राणी अछि। सागरक लहर ओकरा उछालैत अछि किन्तु ओकर वश नहि चलैत अछि। अतः दिव्य कृष्णभावनामृत ही एक मात्र साधन अछि जाहि द्वारा भवसागर पार कऽ सकैत अछि।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥१५॥

न– कहियो नहि; **आदत्ते**– स्वीकार करैत अछि; **कस्यचित्**– ककरो; **पापं**– पाप; **न**– न तो; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **सुकृतम्**– पुण्य केँ; **विभुः**– परमेश्वर; **अज्ञानेन**– अज्ञान सँ; **आवृत्तम्**– आच्छादित; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **तेन**– ओहि सँ; **मुह्यन्ति**– मोह प्राप्त करैत अछि; **जन्तवः**– जीवगण।

परमेश्वर न तो ककरो पाप केँ ग्रहण करैत छथि, न पुण्यक। किन्तु सब देहधारी जीव ओहि अज्ञानक कारण मोहग्रस्त रहैत अछि जे हुनकर वास्तविक ज्ञान केँ आच्छादित केने रहैत अछि।

तात्पर्यः विभुक अर्थ अछि, परमेश्वर जे असीम ज्ञान, धन, बल, यश, सौन्दर्य तथा त्याग सँ युक्त छथि। ओ–सदैव आत्मतृप्त आओर पाप–पुण्य सँ अविचलित रहैत छथि, ओ कोनो जीवक लेल विशिष्ट परिस्थिति नहि उत्पन्न करैत छथि अपितु जीव अज्ञान सँ मोहित भऽकऽ जीवनक एहन परिस्थितिक कामना करैत अछि, जकर कारण कर्म तथा फलक शृखंला आरम्भ होइत अछि। भगवान् विभु अर्थात सर्वज्ञ छथि, किन्तु जीव अणु अछि। जीवात्मामे इच्छा करक शक्ति होइत अछि, किन्तु एहन इच्छाक पूर्ति सर्वशक्तिमान भगवान् द्वारा ही कैल जाइत अछि। भगवान् जीव केँ शुभ कार्यमे एहि लेल प्रवृत्त करैत छथि जाहि सँ ओ ऊपर उठे। भगवान् ओकरा अशुभ कर्ममे एहि लेल प्रवृत्त करैत छथि जाहि सँ ओ नरक जाए। जीव अपन सुख दुखमे पूर्णतया आश्रित अछि। परमेश्वरक इच्छा सँ ओ स्वर्ग या नरक जाइत अछि जेना वायुक द्वारा प्रेरित बादल।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥१६॥

ज्ञानेन– ज्ञान सँ; **तु**– लेकिन; **तत्**– ओ; **अज्ञानम्**– अविद्या; **येषाम्**– जकरा; **नाशितम्**– नष्ट भऽ जाइत अछि; **आत्मनः**– जीवक; **तेषाम्**– हुनकर; **आदित्य वत्**– उदीयमान सूर्यक समान; **ज्ञानम्**– ज्ञान केँ; **प्रकाशयति**– प्रकट करैत अछि; **तत् परम्**– कृष्णभावनामृत केँ।

किन्तु जखन क्यो ओहि ज्ञान सँ प्रबुद्ध होइत छथि, जाहि सँ अविद्याक विनाश होइत अछि तो ओकरा ज्ञान सँ सब किछु ओहि तरह प्रकट भऽ जाइत अछि, जेना दिनमे सूर्य सँ सब वस्तु प्रकाशित भऽ जाइत अछि।

तात्पर्यः प्रत्येक जीव व्यष्टि अछि आओर भगवान् भी व्यष्टि छथि। ई सब भूतकालमे भी व्यष्टि छलाह, सम्प्रति भी व्यष्टि छथि आओर भविष्यमे भी व्यष्टि रहता। रात्रिक समय अंधकारमे प्रत्येक वस्तु एक सनक दिखाईत अछि किन्तु दिनमे सूर्योदय भेला पर सब वस्तु अपन-अपन वास्तविक स्वरुपमे दिखाईत अछि। आध्यात्मिक जीवनमे व्यष्टिक पहचान ही वास्तविक ज्ञान अछि।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।।१७।।

तद्बुद्धयः– नित्य भगवत्परायण बुद्धिवला; **तत् आत्मनः**– जकर मन सदैव भगवानमे लागल रहैत अछि; **तत् निष्ठाः**– जकर श्रद्धा एकमात्र परमेश्वरमे अछि; **तत् परायणाः**– जे हुनकर शरण ल लेलक अछि; **गच्छन्ति**– जाइत अछि; **अपुनः आवृत्तिम्**– मुक्ति केँ; **ज्ञान**– ज्ञान द्वारा; **निर्धूत**– शुद्ध कैल गेल; **कल्मषाः**– पाप; अविद्या।

जखन मनुष्यक बुद्धि, मन, श्रद्धा तथा शरण सब किछु भगवानमे स्थिर भऽ जाइत अछि तखने ओ पूर्णज्ञान द्वारा समस्त कल्मष सँ शुद्ध होइत अछि आओर मुक्तिक पथ पर अग्रसर होइत अछि।

तात्पर्यः परम दिव्य सत्य भगवान् कृष्ण ही छथि। जकर मन, बुद्धि, श्रद्धा तथा शरण कृष्णमे अछि, अर्थात् जे पूर्णतया कृष्णभावनाभावित छथि, हुनकर सब कल्मष धुल जाइत अछि आओर हुनका सम्बन्धी प्रत्येक वस्तुक पूर्ण ज्ञान रहैत अछि।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥१८॥

विद्या– शिक्षण; **विनय**– विनम्रता सँ; **सम्पन्ने**– युक्त; **ब्राह्मणे**– ब्राह्मणमे; **गवि**– गायमे; **हस्तिनि**– हाथीमे; **शुनि**– कुत्तामे; **च**– तथा; **एव**– निश्चय ही; **श्वपाके**– कुत्ताभक्षी (चाण्डाल)मे; **च**– क्रमशः; **पण्डिताः**– ज्ञानी; **समदर्शिनः**– समान दृष्टि सँ देखवाला।

विनम्र साधुपुरुष अपन वास्तविक ज्ञानक कारण एक विद्वान तथा विनीत ब्राह्मण, गाय, कुत्ता, हाथी तथा चाण्डाल केँ समान दृष्टि सँ देखैत छथि।

तात्पर्य: साधुपुरुष योनि या जातिमे भेद नहि मानैत छथि। कारण विद्वान् योगीक दृष्टिमे ई शरीरगत भेद अर्थहीन होइत अछि। ओ जानैत छथि जे भगवान् सब पर समान रुप सँ दयालु छथि किएक तऽ ओ प्रत्येक जीव केँ अपन मित्र मानैत छथि फिर भी जीवक समस्त परिस्थितिमे ओ अपन परमात्मा स्वरुप बनौने राखैत छथि। शरीर तो प्रकृतिक गुण द्वारा उत्पन्न भेल अछि, किन्तु शरीरक भीतर आत्मा तथा परमात्मा समान आध्यात्मिक गुणबला अछि। परन्तु आत्मा तथा परमात्माक ई समानता ओकरा मात्रात्मक दृष्टि सँ समान नहि बनबैत अछि किएक तऽ व्यष्टि आत्मा कोनो विशेष शरीरमे उपस्थित होइत अछि, किन्तु परमात्मा प्रत्येक शरीरमे अछि। योगीजन केँ एकर पूर्ण ज्ञान होइत अछि। अतः ओ समदर्शी होइत छथि। आत्मा आओर परमात्माक लक्षण समान अछि किएक तऽ दूनू चेतन, शाश्वत तथा आनन्दमय अछि किन्तु अन्तर एतबे अछि कि आत्मा शरीरक सीमाक भीतर सचेतन रहैत अछि जखन कि परमात्मा सबक शरीरमे सचेतन छथि। परमात्मा बिना कोनो भेदभाव केँ सबहक शरीरमे विद्यमान छथि।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥१९॥

इह– एहि जीवनमे; **एव**– निश्चय ही; **तैः**– हुनका द्वारा; **जितः**– जीतल; **सर्गः**– जन्म तथा मृत्यु; **येषाम्**– जिनकर; **साम्ये**– समतामे; **स्थितम्**– स्थित; **मनः**– मन; **निर्दोषम्**– दोषरहित; **हि**– निश्चय ही; **समम्**– समान; **ब्रह्म**– ब्रह्मक तरह; **तस्मात्**– अतः; **ब्रह्मणि**– परमेश्वरमे; **ते**– ओ;

स्थिताः- स्थित अछि।

जकर मन एकत्व एवं समतामे स्थित अछि, ओ जन्म-मृत्युक बन्धन केँ पहिनहि ही जीत लेलनि अछि। ओ ब्रह्मक समान निर्दोष छथि आओर सदा ब्रह्ममे ही स्थित रहैत छथि।

तात्पर्यः जाधरि मनुष्य शरीर केँ आत्म स्वरुप मानैत अछि ओ बद्धजीव मानल जाइत अछि किन्तु जखने ओ समचित्तताक अवस्था केँ प्राप्तक लैत अछि तो ओ बद्ध जीवन सँ मुक्त भऽ जाइत अछि। दोसर शब्दमे, हुनका एहि भौतिक जगतमे जन्म नहि लिअ पड़ैत छैन। अपितु अपन मृत्युक बाद ओ आध्यात्मिक लोक (बैकुण्ठ) केँ जाइत छथि। एहन व्यक्ति केँ पहिले सँ ही मुक्त मानबाक चाही।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥२०॥

न- कहियो नहि; **प्रहृष्येत्**- हर्षित होइत अछि; **प्रियम्**- प्रिय केँ; **प्राप्य**- प्राप्तक; **न**- नहि; **उद्विजेत्**- विचलित होइत; **प्राप्य**- प्राप्त कऽ; **च**- भी; **अप्रियम्**- अप्रिय केँ; **स्थिर बुद्धिः**- आत्म बुद्धि, कृष्ण चेतना; **असम्मूढ़ः**- मोहरहित, संशयरहित; **ब्रह्मवित्**- परब्रह्म केँ जानएबला; **ब्रह्मणि**- ब्रह्ममे; **स्थितः**- स्थित।

जे न तो प्रिय वस्तु केँ पाबिक हर्षित होइत छथि आओर न अप्रिय पाबि कऽ विचलित होइत छथि, जे मोह रहित छथि आओर भगवत्विद्या केँ जानएवाला छथि, ओ पहिले सँ ही ब्रह्ममे स्थित रहैत छथि।

तात्पर्यः एतय स्वरुपसिद्ध व्यक्तिक लक्षण देल गेल अछि। पहिल लक्षण अछि कि हुनकामे शरीर आओर आत्मस्वरुपक तादात्म्यक भ्रम नहि होइत अछि ओ भलीभाँति जानैत छथि कि ओ शरीर नहि छथि अपितु भगवानक अंश छथि। अतः किछु प्राप्त भेला पर न तो हुनका प्रसन्नता होइत अछि न शरीरक हानि भेला पर शोक होइत अछि। मनक ई स्थिरता स्थिरबुद्धि या आत्मवृद्धि कहलाबैत अछि। एकरा ब्रह्मसाक्षात्कार या आत्म साक्षात्कार कहल जाइत अछि। एहन स्थिरबुद्धि कृष्णभावनामृत कहलाबैत छथि।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥२१॥

बाह्य स्पर्शेषु– ब्राह्य इन्द्रिय सुखमे; **असक्त आत्मा**– अनासक्त पुरुष; **विन्दति**– भोग करैत अछि; **आत्मनि**– आत्मामे; **यत्**– जे; **सुखम्**– सुख; **सः**– ओ; **ब्रह्मयोग**– ब्रह्ममे एकाग्रता द्वारा; **युक्तआत्मा**– समाहित; **सुखम्**– सुख; **अक्षयम्**– असीम; **अश्नुते**– भोगैत अछि।

एहन मुक्त पुरुष भौतिक इन्द्रियसुखक ओर आकृष्ट नहि होइत छथि, अपितु सदैव समाधिमे रहि कऽ अपन अन्तरमे आनन्दक अनुभव करैत छथि। एहि प्रकार स्वरुपसिद्ध व्यक्ति परब्रह्ममे एकाग्रचित भेलाक कारण असीम सुख भोगैत छथि।

तात्पर्यः भौतिकताक दृष्टिमे कामसुख ही सर्वोपरि आनन्द अछि। समस्त संसार ओकरे वशीभूत अछि। किन्तु कृष्णभावनामृतमे लीन कामसुखक बिना ही उत्साह पूर्वक अपन कार्य करैत अछि। इहै आत्मसाक्षात्कारक कसौटी अछि। आत्मसाक्षात्कार तथा कामसुख कहियो संग–संग नहि चलैत अछि।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥२२॥

ये– जे; **हि**– निश्चय ही; **संस्पर्शजाः**– भौतिक इन्द्रियक स्पर्श सँ उत्पन्न; **भोगाः**– भोग; **दुःख**– दुख; **योनयः**– श्रोत, कारण; **एव**– ही; **ते**– ओ; **आदि**– प्रारम्भ; **अन्तवन्तः**– अन्तवाला; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **न**– कहियो नहि; **तेषु**– हुनका मे; **रमते**– आनन्द लैत; **बुधः**– बुद्धिमान् लोग।

बुद्धिमान लोग दुखक कारणमे भाग नहि लैत छथि जे कि भौतिक इन्द्रियक संसर्ग सँ उत्पन्न होइत अछि। हे कुन्तीपुत्र! एहन भोगीक आदि तथा अन्त होइत अछि। अतः चतुर व्यक्ति एहिमे आनन्द नहि लैत छथि।

तात्पर्यः भौतिक इन्द्रियसुख ओहि इन्द्रियक स्पर्श सँ उद्भुत अछि जे नाशवान अछि किएक तऽ शरीर स्वयं नाशवान अछि। मुक्तात्मा कोनो नाशवान वस्तुमे रुचि नहि राखैत अछि। दिव्य आनन्दक सुख सँ ठीक–ठीक अवगत ओ भला मिथ्या सुखक लेल किएक सहमत हैत?

अतः जे यथार्थ योगी या दिव्य ज्ञानी छथि ओ इन्द्रियसुखक ओर आकृष्ट नहि होइत छथि किएक तऽ ओ निरन्तर भवरोगक कारण अछि। जे भौतिक सुखक प्रति जतेक ही आसक्त होइत छथि हुनका ओतेक ही अधिक भौतिक दुख भेटैत अछि।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥२३॥

शक्नोति– समर्थ अछि; **इह एव**– एहि शरीरमे; **यः**– जे; **सोढुम्**– सहन करक लेल; **प्राक्**– पूर्व; **शरीर**– शरीर; **विमोक्षणात्**– त्याग कर; **काम**– इच्छा; **क्रोध**– क्रोध सँ; **उद्भवम्**– उत्पन्न; **वेगम्**– बेग केँ; **सः**– ओ युक्तः– समाधि सँ; **सः**– ओ; **सुखी**– सुखी; **नरः**– मनुष्य।

यदि एहि शरीर केँ त्यागक पूर्व क्यो मनुष्य इन्द्रियक वेगक सहन करबाक तथा इच्छा एवं क्रोधक वेग केँ रोकैमे समर्थ होइत अछि तो ओ एहि संसारमे सुखी रहि सकैत छथि।

तात्पर्य: यदि कियो आत्म साक्षात्कारक पथ पर अग्रसर होमय चाहैत अछि तँ ओकरा भौतिक इन्द्रियक वेग केँ रोकैक प्रयत्न करक चाही। ई वेग अछि–वाणीवेग, क्रोधवेग, मनोवेग, उदरवेग, उपस्थ वेग तथा जिह्वा वेग। जे व्यक्ति एहि विभिन्न इन्द्रियक वेग केँ तथा मन केँ वशमे करमे समर्थ अछि ओ स्वामी कहलाबैत अछि। भौतिक इच्छा पूर्ण न भेला पर क्रोध उत्पन्न होइत अछि आओर एहि प्रकार मन, नेत्र तथा वक्षस्थल उत्तेजित होइत अछि। अतः एहि शरीरक त्याग सँ पूर्व मनुष्य केँ एकरा वशमे करैक अभ्यास करक चाही। योगीक कर्तव्य अछि कि ओ इच्छा तथा क्रोध केँ वशमे करक भरसक प्रयत्न करथि।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥२४॥

चः– जे; **अन्तःसुखः**– अन्तरमे सुखी; **अन्तः–आराम**– अन्तरमे रमण कर वाला अन्तर्मुखी; **तथा**– आओर; **अन्तःज्योतिः**– भीतर भीतर लक्ष्य करैत; **एव**– निश्चय ही; **यः**– जे क्यो; **सः**– ओ; **योगी**– योगी; **ब्रह्म निर्वाणम्**– परब्रह्ममे मुक्ति; **ब्रह्म भूतः**– स्वरुपसिद्ध; **अधिगच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

जे अतंःकरणमे सुखक अनुभव करैत अछि, जे कर्मठ अछि आओर अन्तःकरणमे ही रमण करैत अछि तथा जकर लक्ष्य अन्तर्मुखी होइत अछि ओ सचमुच पूर्ण योगी छथि। ओ परब्रह्ममे मुक्ति पाबैत छथि आओर अन्ततोगत्वा ब्रह्म कें प्राप्त होइत छथि।

तात्पर्यः मुक्त पुरुष वास्तविक अनुभव द्वारा सुख भोगैत छथि। अतः ओ कोनो भी स्थानमे मौन भाव सँ बैठक अन्तःकरणमे जीवनक कार्यकलापक आनन्द लैत छथि। एहन मुक्त पुरुष कहियो वाह्य भौतिक सुखक कामना नहि करैत छथि। ई अवस्था ब्रह्मभूत कहलाबैत अछि, जकरा प्राप्त करला पर भगवद्धाम जाएव निश्चित अछि।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥२५॥

लभन्ते– प्राप्त करैत अछि; **ब्रह्मनिर्वाणम्**– मुक्ति; **ऋषयः**– अन्तर सँ कार्यशील रहै वाला; **क्षीण कल्मषाः**– समस्त पाप सँ रहित; **छिन्न**– निवृत्त भऽकऽ; **द्वैधाः**– द्वैत सँ; **यत आत्मनः**– आत्म साक्षात्कारमे निरत; **सर्वभूत**– समस्त जीवक; **हिते**– कल्यागमे; **रताः**– लागल।

जे लोग संशय सँ उत्पन्न हुअवाला द्वैत सँ परे अछि, जकर मन आत्म साक्षात्कारमे रत अछि, जे समस्त जीवक कल्याणकार्य करमे सदैव व्यस्त रहैत अछि आओर जे समस्त पाप सँ रहित अछि, ओ ब्रह्मनिर्वाण (मोक्ष) कें प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः केवल ओहे व्यक्ति सब काज जीवक कल्याण कार्यमे रत कहल जाएत जे पूर्णतया कृष्णभावनाभावित छथि। हुनका ज्ञान भऽ जाइत अछि कि भगवान् ही सब वस्तुक उद्गम छथि।

कामक्रोधविमुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥२६॥

काम– इच्छा; **क्रोध**– क्रोध सँ; **विमुक्तानाम्**– मुक्त पुरुषक; **यतीनाम्** – साधु पुरुषक; **यत-चेतसाम्**– मनक ऊपर संयम राखएवलाक; **अभितः**– निकट भविष्यमे आश्वस्त; **ब्रह्म निर्वाणम्**– ब्रह्ममे मुक्ति; **वर्तते**– होइत अछि; **विदित-आत्मनाम्**– स्वरुप सिद्धि कऽ।

जे क्रोध तथा समस्त भौतिक इच्छा सँ रहित छथि, जे स्वरुप सिद्ध

आत्मसंयमी छथि आओर संसिद्धिक लेल निरन्तर प्रयास करैत छथि हुनकर मुक्ति निकट भविष्यमे सुनिश्चित अछि।

तात्पर्यः मोक्षक लेल सतत प्रयत्नशील रहवाला महापुरुषमे सँ जे कृष्णभावनाभावित होइत छथि ओ सर्वश्रेष्ठ छथि। बद्धजीवमे कर्मक फल केँ भोगैक इच्छा एतेक बलबती होइत अछि कि ऋषि, मुनि-महात्मा तकक लेल कठोर परिश्रमक बाबजूद एहन इच्छा केँ वशमे करब कठिन होइत अछि। जे भगवत्भक्त आत्म साक्षात्कारमे सिद्ध होइत छथि, ओ शीघ्र ही मुक्त भऽ जाइत छथि। आत्म साक्षात्कारक पूर्णज्ञान भेला सँ ओ निरंतर समाधिस्त रहैत छथि। मछली, कछुआ तथा पक्षी केवल दृष्टि, चिन्तन तथा स्पर्श सँ ही अपन सन्तान केँ पालैत अछि। एहि प्रकार भगवत्भक्त, भगवद्धाम सँ दूर स्थित रहिक भी भगवानक चिन्तनक कृष्णभावनामृत द्वारा हुनकर धाम पहुँच जाइत छथि। हुनका भौतिक क्लेशक अनुभव नहि होइत अछि।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥२७॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥२८॥

स्पर्शान्- इन्द्रियविषय यथा ध्वनि केँ; **कृत्वा**- करि कऽ; **बहिः**- बाहरी; **बाह्यान्**- अनावश्यक; **चक्षुः**- आँखि; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **अन्तरे**- मध्यमे; **भ्रुवोः**- भौंहक; **प्राण अपानौ**- उर्ध्व तथा अधोगामी वायु; **समौ**- रुद्ध; **कृत्वा**- करि कऽ; **नास-अभ्यन्तर**- नथुनीक भीतर; **चारिणौ**- चलवाला; **यत**- संयमित; **इन्द्रिय**- इन्द्रिय; **मनः**- मन; **बुद्धिः**- बुद्धि; **मुनिः**- योगी; **मोक्ष**- मोक्षक लेल; **परायणः**- तत्पर; **विगत**- परित्यागक; **इच्छा**- इच्छा; **भय**- डर; **क्रोधः**- क्रोध, तामस; **यः**- जे; **सदा**- सदैव; **मुक्तः**- मुक्त; **एव**- निश्चय ही; **सः**- ओ।

समस्त इन्द्रियविषय केँ बाहर, दृष्टि केँ भौंहक मध्यमे केन्द्रित कऽ प्राण तथा अपान वायु केँ नथुनीक भीतर रोकि कऽ आओर एहि तरह मन, इन्द्रिय तथा बुद्धि केँ वशमे कऽ जे मोक्ष केँ लक्ष्य बनवैत अछि ओ योगी इच्छा, भय, क्रोध सँ रहित भऽ जाइत अछि।

जे निरन्तर एहि अवस्था रहैत अछि, ओ अवश्य ही मुक्त छथि।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति सदैव भक्तिमे लीन रहैत छथि जाहि सँ हुनकर इन्द्रियक अन्यत्र प्रवृत्त होमक कोनो भय नहि रहि जाइत अछि। अष्टायोगक अपेक्षा इन्द्रिय केँ वशमे करक ई उत्तम विधि अछि।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥२९॥

भोक्ततारम्– भोगएवला, भोक्ता; **यज्ञ**– यज्ञ; **तपसाम्**– तपस्याक; **सर्वलोक**– सम्पूर्ण लोक एवं हुनकर देवताक; **महा ईश्वरम्**– परमेश्वर; **सुहृदम्**– उपकारी; **सर्व**– समस्त; **भूतानाम्**– जीवक; **ज्ञात्वा**– जानिक; **माम्**– मुझ (कृष्ण केँ); **शान्तिम्**– भौतिक यातना सँ मुक्ति; **ऋच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

हमर समस्त यज्ञ तथा तपस्याक परम भोक्ता, समस्त लोक तथा देवताक परमेश्वर एवं समस्त जीवक उपकारी एवं हितैषी जानिक हमर भावनामृत सँ पूर्ण पुरुष भौतिक दुख सँ शान्ति लाभ करैत अछि।

तात्पर्यः मायाक वशीभूत सब बद्धजीव एहि संसारमे शान्ति प्राप्त करक लेल उत्सुक रहैत अछि। शान्तिक सबसँ पैघ सूत्र इहै अछि कि भगवान् कृष्ण समस्त मानवीय कर्मक भोक्ता छथि। मायाक वशीभूत भऽकऽ सब जीव सर्वत्र अपन प्रभुत्व जतब चाहैत अछि। लेकिन वास्तविकता तो ई अछि कि सर्वत्र भगवानक मायाक प्रभुत्व अछि।

कर्मयोग–कृष्णभावनाभावित कर्मक संक्षिप्त विवरण

अर्जुन कहलखिन हे कृष्ण! अहाँ पहिने कर्म केँ त्यागक लेल कहलँहु, फिर कर्म करैक प्रशंसा करैत छी, एहि दूनूमे जे अधिक हितकर अछि ओ एक बात निश्चय कऽ बताउ। श्रीकृष्ण जी कहलखिन– कर्मक त्याग आओर कर्म कर, ई दूनू मोक्ष दिअबला अछि परन्तु एहि दूनूमे कर्म त्याग सँ कर्मयोग हितकर अछि। जे ककरो सँ द्वेष नहि रखता, न कोनो पदार्थक इच्छा ही करता, ओ नित्य संन्यासी छथि। एहन पुरुष संसार बन्धन सँ छूटि जाइत छथि। सांख्य आओर योग केँ मूर्खलोग ही

पृथक्-पृथक् कहैत अछि, पंडित नहि कहैत छथि। एहि दूनूमे सँ एक भी ठीक तरह स्थित भऽ जाए तो हुनका दूनूक फल प्राप्त होइत अछि। ज्ञान योगी केँ जे स्थान मिलैत अछि ओहे कर्मयोगी केँ भी प्राप्त होइत अछि। ज्ञानयोग आ कर्मयोग एक ही अछि, जे एना देखैत छथि ओहे उत्तम छथि। कर्मयोगक बिना संन्यासक प्राप्त हैव दुष्कर अछि। कर्म करै वाला मुनिजन केँ ब्रह्म प्राप्त हेबामे विलम्ब नहि लागैत अछि। कर्मयोग युक्त शुद्ध अन्तःकरण वाला, मन तथा इन्द्रिय केँ जीतै वाला, सम्पूर्ण प्राणीमे अपन आत्मा केँ देखैवाला, कर्म करैत भी फलमे लिप्त नहि होइत छथि। योगयुक्त तत्त्ववेत्ता पुरुष देखैत छथि, सुनैत छथि, स्पर्श करैत छथि, सूंघैत छथि, खाइत छथि, चलैत छथि, श्वास लैत छथि तो भी ओ मानैत छथि कि हम किछु नहि करैत छी। ओ बाजैत छथि, त्यागैत छथि, ग्रहण करैत छथि परन्तु इहै मानैत छथि कि हम किछु नहि करैत छी। ई बुद्धि धारण करैत कि इन्द्रिय ही अपन-अपन विषयमे वर्तती अछि। जे प्राणी ब्रह्ममे अपन संगक त्यागक कर्म करैत छथि, ओ पाप सँ लिप्त नहि होइत छथि, जेना कमलपत्र पर जल नहि ठहरैत। योगीजन शरीर सँ, मन बुद्धि सँ तथा इन्द्रियक आसक्ति सँ रहित आत्म शुद्धिक निमित्त कर्म करैत छथि। योगयुक्त पुरुष कर्मफल त्यागक मोक्ष रुप शान्तिक लाभ करैत छथि आओर जे योग रहित छथि ओ कर्मक इच्छाक बन्धनमे पड़ि जाइत अछि। सब कर्म केँ मनमे त्यागक प्राणी एहि नवद्वारक देहरुपी पुरीमे न किछु करैत अछि, न करावैत आनन्दपूर्वक रहैत अछि। परमेश्वर कोनो कर्ममे प्रवृत्त नहि करैत छथि कर्म आओर कर्मफल केँ उत्पन्न नहि करैत छथि। ई सब प्रवृत्ति द्वारा होइत रहैत अछि। परमेश्वर ककरो पुण्य आओर पाप केँ नहि लैत छथि। ज्ञान जे अज्ञान सँ आच्छादित अछि, ओहिमे जीव मोह केँ प्राप्त भऽ जाइत अछि परन्तु आत्मज्ञानक द्वारा जिनकर अज्ञान नष्ट भऽ गेल अछि, हुनकर ओ आत्मज्ञान परमेश्वरक रुप केँ एहि प्रकार भाषित करैत अछि, जाहि प्रकार सूर्य संसार केँ प्रकाशितक दैत अछि। ओहि परमात्मामे जिनकर बुद्धि स्थिर अछि ओहिमे मन लगबैत छथि, ओहीमे निष्ठा रखैत छथि आओर जे सदा हुनके ध्यानमे लागल छथि। दान द्वारा जिनकर सब पाप नष्ट भऽ गेल अछि, ओ एहि संसार नहि जन्मैत छथि। विद्या आओर

विनय सँ सम्पन्न ब्राह्मणमे, गायमे, कुत्तामे आओर चाण्डालमे पंडितजनक दृष्टि समान रहैत अछि। जकरा मनमे एहि तरहक समानता उत्पन्न भऽ गेलै अछि ओ एहि लोकमे जन्म-मरण रुप संसार केँ जीत लेलक अछि किएक तऽ ब्रह्म निर्दोष आओर सर्वत्र अछि, इसलिए ओ ब्रह्म केँ प्राप्त भऽ जाइत छथि। जे प्रिय पदार्थ केँ पाबि कऽ खिन्न नहि होइत अछि एहन स्थिर बुद्धिवाला, मोह रहित ब्रह्मवेत्ता केँ ब्रह्म स्थिर जानू। बाहरी पदार्थमे जे चित्त केँ आसक्त नहि होम दैत अछि ओहे आत्मसुखक अनुभव करैत अछि आओर ब्रह्ममे अन्तःकरण केँ मिला कऽ अक्षय सुख (मोक्ष) प्राप्त करैत अछि। भौतिक इन्द्रिय सुख ओहि इन्द्रियक स्पर्श सँ उद्भूत अछि, जे नाशवान अछि किएक तऽ शरीर स्वयं नाशवान अछि। हे कौन्तेय! ज्ञानी लोग एहन भोग विलासमे रत नहि होइत छथि। शरीर छूटलाक पहिने जे मनुष्य काम आओर क्रोधक वेग केँ सहन करमे समर्थ होइत छथि ओहे योगी आओर सच्चा सुखी छथि। जे योगी आत्मसुख सँ सुखी, अन्तरात्माक आनन्द सँ आनन्दित आओर अन्तर ज्योति सँ ही प्रकाशित छथि ओ ब्रह्मरुप भऽकऽ ब्रह्म निर्वाण (मोक्ष) केँ प्राप्त होइत छथि। जिनकर पाप नष्ट भऽ गेल अछि, कुबुद्धि दूर भऽ गेल अछि, मन केँ जे वशमे कऽ लेलक अछि, जीवमात्रक जे हित चाहैत अछि, एहन योगी केँ ब्रह्मनिर्माण प्राप्त होइत अछि।

कृष्णभावनामृतमे अष्टांगयोग पद्धतिक स्वयमेव अभ्यास होइत अछि किएक तऽ एहि सँ अन्तिम लक्ष्यक पूर्ति होइत अछि। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधिक अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे प्रगति भऽ सकैत अछि। किन्तु भक्तियोगमे तऽ ई प्रस्तावनाक स्वरुप अछि किएक तऽ केवल एहि सँ मनुष्य केँ पूर्णशक्ति प्राप्त भऽ सकैत अछि। इहै जीवनक परम सिद्धि अछि।

भगवान् कृष्ण परमेश्वर छथि तथा देवता सहित सब जीव हुनकापर आश्रित अछि। पूर्ण कृष्णभावनामृतमे रहि कऽ ही पूर्ण शान्ति प्राप्त कएल जा सकैत अछि। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक पाँचम अध्याय ''**कर्मयोग-कृष्णभावनाभावित कर्म**'' पूर्ण भेल।



अध्याय-छह



ध्यानयोग

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥१॥

श्री भगवान् उवाच– भगवान् कहलखिन; **अनाश्रितः**– शरण ग्रहण केने बिना; **कर्मफलम्**– कर्मफलक; **कार्यम्**– कर्तव्य; **कर्म**– कर्म; **करोति**– करैत अछि; **यः**– जे; **सः**– वह; **संन्यासी**– संन्यासी; **च**– भी; **योगी**– योगी; **न**– नहि; **निः**– रहित; **अग्निः**– अग्नि; **अक्रियः**– क्रियाहीन।

श्रीभगवान् कहलखिन– जे पुरुष अपन कर्मफलक प्रति अनासक्ति अछि आओर जे अपन कर्तव्यक पालन करैत अछि, ओहे सन्न्यासी आओर योगी छथि। ओ नहि, जे न तो अग्नि जलबैत अछि आओर न कर्म करैत अछि।

तात्पर्यः भगवान् श्रीकृष्ण कहैत छथि कि अष्टांगयोग पद्धति मन तथा इन्द्रिय केँ वशमे करैक साधन अछि किन्तु एहि कलियुगमे सामान्य व्यक्तिक लेल एकरा सम्पन्न करब अत्यन्त कठिन अछि। अतः भगवान् बल दैत छथि कि कर्मयोगमे कर्म करब एहि सँ श्रेष्ठ अछि। जे जीव अपन तुष्टिक लेल नहि, अपितु परब्रह्मक तुष्टिक लेल कार्य करैत अछि ओहै पूर्ण संन्यासी या पूर्ण योगी छथि। त्यागक सर्वोच्च प्रतीक भगवान्

चैतन्य प्रार्थना करैत छथि, हे सर्वशक्तिमान् प्रभु! हमरा न तो धन-संग्रहक कामना अछि, न हम सुन्दर स्त्रीक साथ रमण करक अभिलाषी छी, न ही हमरा अनुयायीक कामना अछि। हम तो जन्म जन्मान्तर अहाँक प्रेम भक्तिक अहैतुकी कृपाक ही अभिलाषी छी।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसन्न्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन॥२॥

यम्- जकर; **संन्सासम्**- संन्यास; **इति**- एहि प्रकार; **प्राहुः**- कहैत छथि; **योगम्**- परब्रह्मक संग युक्त भेर्नाइ; **तम्**- ओकरा; **विद्धि**- जानू; **पाण्डव**- हे पाण्डव; **न**- कहियो नहि; **हि**- निश्चय ही; **असंन्यस्त**- बिना त्यागने; **सङ्कल्पः**- आत्मतृप्तिक इच्छा; **भवति**- होइत अछि; **कश्चन**- क्यो।

हे पाण्डुपुत्र! जकरा संन्यास कहल जाइत अछि ओकरे ही अहाँ योग अर्थात् परब्रह्म सँ युक्त हैव जानू किएक तऽ इन्द्रियतृप्तिक लेल इच्छा केँ बिना त्यागने क्यो कौखन योगी नहि भऽ सकैत अछि।

तात्पर्यः वास्तविक संन्यास योग या भक्तिक अर्थ अछि कि जीवात्मा अपन स्वभाविक स्थिति केँ ज्ञात करे आओर तदानुसार कर्म करे। जीवात्माक अपन स्वतंत्र अस्तित्व नहि होइत अछि। ओ परमेश्वरक तटस्था शक्ति अछि। जखन ओ मायाक वशीभूत होइत अछि तो ओ वद्ध भऽ जाइत अछि। किन्तु जखन ओ आध्यात्मिक शक्तिमे सजग रहैत अछि तो ओ अपन सहज स्थितिमे होइत अछि। जखन मनुष्य पूर्णज्ञानमे होइत अछि तो ओ समस्त इन्द्रियतृप्तिक कार्य कलापक परित्याग कऽ दैत अछि। एकर अभ्यास योगी करैत छथि जे इन्द्रिय केँ भौतिक आसक्ति सँ रोकैत अछि। सब काज सुचारु रुप सँ सम्पन्न होइत अछि।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥३॥

आरुरुक्षोः- जे एखन योग प्रारम्भ केलथि अछि; **मुनेः**- मुनिक; **योगम्**- अष्टांगयोग पद्धति; **कर्म**- कर्म; **कारणम्**- साधन; **उच्यते**- कहाबैत अछि; **आरुढ़स्य**- प्राप्त हुअवलाक; **तस्य**- ओकर; **एव**- निश्चय ही; **शमः**- सम्पूर्ण भौतिक कार्यकलापक त्याग; **कारणम्**- कारण; **उच्यते**-

कहल जाइत अछि।

अष्टांगयोगक नवसाधकक लेल कर्म साधन कहलाबैत अछि आओर योगसिद्ध पुरुषक लेल समस्त भौतिक कार्यकलापक परित्याग ही साधन कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः परमेश्वर सँ युक्त होमक विधि योग कहाबैत अछि। एकर तुलना ओहि सीढ़ी सँ कैल जा सकैत अछि जाहि सँ सर्वोच्च आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त कैल जाइत अछि। ई सीढ़ी जीवक अधम अवस्था सँ प्रारम्भ भऽकऽ आध्यात्मिक जीवनक पूर्ण आत्मसाक्षात्कार तक जाइत अछि। विभिन्न चढ़ावक अनुसार एहि सीढ़ीक विभिन्न भाग भिन्न-भिन्न नाम सँ जानल जाइत अछि। किन्तु कुल मिलाक ई पूरी सीढ़ी योग कहलाबैत अछि। एकरा तीन भागमे बाँटल जा सकैत अछि- ज्ञानयोग, ध्यानयोग तथा भक्तियोग। सीढ़ीक प्रारम्भिक भाग केँ योगारुरुक्ष अवस्था आओर अन्तिम भाग केँ योगारुढ़ कहल जाइत अछि। जखन मनुष्य पूर्ण ध्यानमे सिद्धहस्त भऽ जाइत अछि तो विचलित करएवाला समस्त मानसिक कार्य बन्द भेल मानल जाइछ।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते॥४॥

यदा- जखन; **हि**- निश्चय ही; **न**- नहि; **इन्द्रिय-अर्थेषु**- इन्द्रियतृप्तमे; **कर्मसु**- सकाम कर्ममे; **अनुषज्जते**- निरत रहैत अछि; **सर्व सङ्कल्प**- सम्पूर्ण भौतिक इच्छाक; **संन्यासी**- त्याग करएवाला; **योग-आरुढ़ः**- योगमे स्थित; **तदा**- ओहि समय; **उच्चते**- कहलाबैत अछि।

जखन कोनो पुरुष समस्त भौतिक इच्छाक त्यागक न तो इन्द्रियतृप्तिक लेल कार्य करैत अछि आओर न सकाम कर्ममे प्रवृत्त होइत अछि तखन ओ योगरुढ़ कहाबैत अछि।

तात्पर्यः बिना कृष्णभावनामृतक मनुष्य सदैव इन्द्रियतृप्तिमे तत्पर रहैत अछि, किएक तऽ कर्म केने बिना क्यो नहि रहि सकैत अछि। किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति भगवानक प्रसन्नताक लेल सब किछु करैत अछि, फलतः ओ इन्द्रियतृप्ति (स्वार्थ) सँ पूर्ण रुपेन विरक्त रहैत छथि। जिनका एहन अनुभूति प्राप्त नहि अछि हुनका भौतिक इच्छा सँ

बचि रहैक ओ यंत्रवत् प्रयास करथि तखने ओ योगक सीढ़ी सँ ऊपर पहुँच सकैत छथि।

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥५॥

उद्धरेत्– उद्धार करू; **आत्मना**– मन सँ; **आत्मानम्**– बद्धजीव केँ; **न**– कहियो नहि; **अवसादयेत्**– पतन होमए दियौ; **आत्मा**– मन; **एव**– निश्चय ही; **रिपुः**– शत्रु; **आत्मनः**– बद्धजीवक।

मनुष्य केँ चाही कि अपन मनक सहायता सँ अपन उद्धार करे आओर अपना केँ नीचा नहि गिर दियै ई मन बद्धजीवक मित्र भी अछि आओर शत्रु भी।

तात्पर्यः जे व्यक्ति जतेक ही इन्द्रियविषयक प्रति आकृष्ट होइत छथि ओ ओतेक ही एहि संसारमे फँसैत अछि। अपना केँ विरत करक सर्वोत्कृष्ट साधन इहै अछि कि मन केँ सदैव कृष्णभावनामृतमे निरत राखल जाय। कारण मन ही मनुष्य केँ बन्धनक आओर मोक्षक भी कारण अछि। इन्द्रियविषयमे लीन मन बन्धनक कारण अछि आओर विषय सँ विरक्त मन मोक्षक कारण अछि। अतः जे मन निरंतर भगवत्प्रेममे लागल रहैत अछि, ओहे (वही) परम मुक्तिक कारण अछि।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥६॥

बन्धु– मित्र; **आत्मा**– मन; **आत्मनः**– जीवक; **तस्य**– ओकर; **येन**– जाहि सँ; **आत्मा**– मन; **एव**– निश्चय ही; **आत्मना**– जीवात्माक द्वारा; **जितः**– विजित; **अनात्मनः**– जे मन केँ वशमे नहि कऽ सकल; **तु**– लेकिन; **शत्रुत्वे**– शत्रुताक कारण; **वर्तेत**– बनल रहैत अछि; **आत्म एव**– ओहे मन; **शत्रुवत्**– शत्रुक भाँति।

जे व्यक्ति मन केँ जीत लेलक अछि ओकरा लेल मन सर्वश्रेष्ठ मित्र अछि, किन्तु जे एना नहि कऽ पाएल ओकरा लेल मन सबसँ पैघ शत्रु बनल रहत।

तात्पर्यः जे अपन मन केँ वशमे नहि कऽ सकैत, ओ सतत अपन परम शत्रुक साथ निवास करैत अछि आओर एहि तरह ओकर जीवन

तथा लक्ष्य दूनू ही नष्ट भऽ जाइत अछि। किन्तु जखन मन पर विजय प्राप्त भऽ जाइत छैक, तो मनुष्य इच्छानुसार ओहि भगवानक आज्ञाक पालन करैत अछि जे सबहक हृदयमे परमात्मास्वरुप स्थित छथि।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।।७।।

जित आत्मनः– जे मन केँ जीत लेलक अछि; **प्रशान्तस्य**– मन केँ वशमे करि कऽ शान्ति प्राप्त करएवालाक; **परम-आत्मा**– परमात्मा; **समाहितः**– पूर्णरुप सँ प्राप्त; **शीत**– सर्दी; **उष्ण**– गर्मीमे; **सुख**– सुख; **दुःखेषु**– दुखमे; **तथा**– भी; **मान**– सम्मान; **अपमानयोः**– अपमानमे।

जे अपन मन केँ जीत लेलक ओ पहिने ही परमात्मा केँ प्राप्त कऽ लेलक अछि किएक तऽ ओ शांति प्राप्त कऽ लेलक अछि, एहन पुरुषक लेल सुख-दुख, सर्दी-गर्मी एवं मान-अपमान एक सन अछि।

तात्पर्यः मन केँ वशमे करला सँ स्वतः ही परमात्माक आदेशक पालन होइत अछि। भगवत्भक्त संसारक द्वन्द्व, यथा सुख-दुख, सर्दी-गर्मी आदि सँ अप्रभावित रहैत अछि। ई अवस्था व्यावहारिक समाधि या परमात्मामे तल्लीनता अछि।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ट्राश्मकाञ्चनः।।८।।

ज्ञान– अर्जित ज्ञान; **विज्ञान**– अनुभूत ज्ञान सँ; **तृप्त**– सन्तुष्ट; **आत्मा**– जीव; **कृटस्थः**– आध्यात्मिक रुप सँ स्थित; **विजित इन्द्रियः**– इन्द्रिय केँ वशमे कऽ; **युक्तः**– आत्म साक्षात्कारक लेल सक्षम; **इति**– एहि प्रकार; **उच्यते**– कहल जाइत अछि; **योगी**– योगक साधक; **सम**– समदर्शी; **लोष्ट्र**– कंकड़; **अश्म**– पत्थर; **कांचनः**– स्वर्ण।

ओ व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार केँ प्राप्त तथा योगी कहलाबैत अछि जे अपन अर्जित ज्ञान तथा अनुभूति सँ पूर्णतया संतुष्ट रहैत अछि। एहन व्यक्ति अध्यात्म केँ प्राप्त तथा जितेन्द्रिय कहाबैत अछि। ओ सब वस्तु केँ चाहे ओ कंकड़ हो, पत्थर हो या कि सोना एक समान देखैत अछि।

तात्पर्यः परम सत्यक अनुभूतिक बिना कोरा ज्ञान व्यर्थ होइत अछि। मात्र संसारी विद्वत्ता सँ क्यो कृष्णभावनाभावित नहि भऽ सकैत अछि। हुनका विशुद्ध चेतनावला व्यक्तिक सान्निध्य प्राप्त हेबाक सौभाग्य भेटक चाही। आध्यात्मिक ज्ञान सँ मनुष्य अपन संकल्पमे दृढ़ रहि सकैत अछि। मात्र शैक्षिक ज्ञान सँ ओ मोहित आ भ्रमित होइत रहैत अछि। केवल अनुभवी आत्मा ही आत्म संयमी होइत अछि कारण ओ भगवानक शरणमे जा चुकल रहैत छथि। जे दिव्य होइत अछि। संसारी विद्वता तथा मनोधर्म जे अन्यक लेल स्वर्णक समान उत्तम होइत अछि परन्तु हुनका लेल कंकड़ या पत्थर सँ अधिक नहि होइत अछि।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥९॥

सु-हृत्- स्वभाव सँ; **मित्र**- स्नेहपूर्ण हितेच्छु; **अरि**- शत्रु; **उदासीन**- शत्रुमे तटस्थ; **मध्यस्थ**- शत्रुमे पंच; **द्वेष्य**- ईर्ष्यालु; **बन्धुषु**- सम्बन्धीमे; **साधुषु**- साधुमे; **अपि**- भी; **च**- तथा; **पापेषु**- पापीमे; **समबुद्धिः**- समान बुद्धिवाला; **विशिष्यते**- आगाँ बढ़ल।

जखन मनुष्य निष्कपट हितैषी, प्रिय मित्र, तटस्थ, मध्यस्थ, ईर्ष्यालु, शत्रु तथा मित्र, पुण्यात्मा एवं पापी केँ समान भाव सँ देखैत अछि तो ओ आओर भी उन्नत, विशेष मानल जाइत अछि।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥१०॥

योगी- योगी; **युञ्जीत**- कृष्णचेतनामे केन्द्रित; **सततम्**- निरन्तर; **आत्मानम्**- आत्मा सँ; **रहसि**- एकान्त स्थानमे; **स्थितः**- स्थिर भऽकऽ; **एकाकी**- अकेले; **यत-चित्त आत्मा**- मनमे सदैव सचेत; **निराशीः**- कोनो अन्य वस्तु सँ आकृष्ट हुए बिना; **अपरिग्रहः**- स्वामित्वक भावना सँ रहित; संग्रहभाव सँ मुक्त।

योगी केँ चाही कि ओ सदैव अपन शरीर मन तथा आत्मा केँ परमेश्वरमे लगाए, एकान्त स्थानमे रहे आओर बहुत सावधानीक साथ अपन मन केँ वशमे करे। हुनका समस्त आकांक्षा तथा संग्रहभावक इच्छा सँ मुक्त होमक चाही।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति भली भाँति जानैत छथि कि प्रत्येक वस्तु भगवानक अछि, फलस्वरुप ओ सब प्रकारक परिग्रहभाव सँ मुक्त रहैत छथि। एहि प्रकार ओ अपना लेल कोनो वस्तुक लालसा नहि करैत छथि। ओ सदैव भौतिक वस्तु सँ दूर रहैत छथि। अतः कृष्णभावनामृतमे रहएवाला व्यक्ति पूर्णयोगी होइत छथि।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥११॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥१२॥

शुचौ– पवित्र; **देशे**– भूमिमे; **प्रतिष्ठाप्य**– स्थापित करि कऽ; **स्थिरम्**– दृढ़; **आसनम्**– आसन; **आत्मनः**– स्वयंक; **न**– नहि; **अति**– अत्यधिक; **उच्छ्रितम्**– ऊँचा; **न**– न तो; **अति**– अधिक; **नीचम्**– नीचा; **चैल अजिन**– मुलायम वस्त्र तथा मृगछाला; **कुश**– तथा कुशक; **उत्तरम्**– आवरण; **तत्र**– ओहि पर; **एक अग्रम्**– एकाग्र; **मनः**– मन; **कृत्वा**– करि कऽ; **यतचित्त**– मन केँ वशमे करैत; **इन्द्रिय**– इन्द्रिय सब; **क्रियः**– क्रिया; **उपविश्य**– बैठक; **आसने**– आसन पर; **युञ्जयात्**– अभ्यास करु; **योगम्**– योग; **आत्म**– हृदयक; **विशुद्धये**– शुद्धिक लेल।

योगाभ्यासक लेल योगी एकान्त स्थानमे जा कऽ भूमि पर कुश बिछा देथि आओर पुनः ओकरा मृगछाला सँ ढ़कथि तथा ऊपर सँ मुलायम वस्त्र बिछा देथि। आसन न तो बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा। ओ पवित्र स्थानमे स्थित हो। योगी केँ चाही कि एहि पर दृढ़तापूर्वक बैठ जाय आओर मन, इन्द्रिय तथा कर्म केँ वशमे करैत तथा मन केँ एक बिन्दु पर स्थिरक हृदय केँ शुद्ध करक लेल योगाभ्यास करथि।

तात्पर्यः जकर मन विचलित अछि आओर जे आत्मसंयमी नहि छथि, ओ ध्यानक अभ्यास नहि कऽ सकता। अतः बृहन्नारदीय पुराणमे कहल गेलै अछि कि कलियुगमे, जखन कि लोग अल्पजीवी, आत्म साक्षात्कारमे मन्द तथा चिन्ता सँ व्यग्र रहैत छथि, भगवत्प्राप्तिक सर्वश्रेष्ठ माध्यम भगवानक पवित्र नामक कीर्तन अछि।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्र स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥१३॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥१४॥

समम्– सीधा; **काय**– शरीर; **शिरः**– सिर; **ग्रीवम्**– गर्दन; **धारयन्**– राखैत; **अचलम्**– अचल; **स्थिरः**– शान्त; **सम्प्रेक्ष्य**– देखक; **नासिका**– नाक; **अग्रम्**– अग्रभाग केँ; **स्वम्**– अपन; **दिशः**– दिशामे; **च**– भी; **अनवलोकयन्**– नहि देखैत; **प्रशान्तः**– अविचलित; **आत्मा**– मन; **विगत भीः**– भय सँ रहित; **ब्रह्मचारि व्रते**– ब्रह्मचर्यव्रतमे; **स्थितः**– स्थित; **मनः**– मन केँ; **संयम्य**– पूर्णतया दमित करि कऽ; **मत्**– हमरामे; **चित्तः**– मन केँ केन्द्रित करैत; **युक्तः**– वास्तविक योगी; **आसीत**– बैठैत; **मत्**– हमरामे; **परः**– परम लक्ष्य।

योगाभ्यास कर वाला केँ चाही कि ओ अपन शरीर, गर्दन तथा सिर केँ सीधा रखे आओर नाकक अगिला सिरे पर दृष्टि लगाए। एहि प्रकार ओ अविचलित तथा दमित मन सँ, भय रहित, विषयी जीवन सँ पूर्णतया मुक्त भऽकऽ अपन हृदयमे हमर चिन्तन करे आओर हमरामे अपन चरम लक्ष्य बनाबे।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही योगक पूर्ण अभ्यासक सकैत छथि आओर चूँकि योगाभ्यासक चरम लक्ष्य अन्तःकरणमे भगवानक दर्शन पाएब, अतः एहन व्यक्ति समस्त योगीमे श्रेष्ठ होइत छथि।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥१५॥

युञ्जन्– अभ्यास करैत; **एवम्**– एहि प्रकार; **सदा**– निरन्तर; **आत्मानम्**– शरीर, मन एवं आत्मा; **योगी**– योगक साधक; **नियत-मानसः**– संयमित मन सँ युक्त; **शान्तिम्**– शान्ति केँ; **निर्वाणपरमाम्**– भौतिक अस्तित्वक अन्त; **मत्-संस्थाम्**– चिन्मयव्योम (भगवद्धाम) केँ; **अधिगच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

एहि प्रकार शरीर, मन तथा कर्ममे निरन्तर संयमक अभ्यास करैत संयमित मनवाला योगी केँ एहि भौतिक अस्तित्वक समाप्ति पर

भगवद्धामक प्राप्ति होइत अछि।

तात्पर्यः एक पूर्णयोगी जकरा भगवान् कृष्णक पूर्णज्ञान अछि ओ वास्तविक शान्ति प्राप्तक सकैत छथि आओर अन्ततोगत्वा कृष्णलोक या गोलोक केँ प्राप्त होइत छथि। भगवद्गीतामे भगवद्धामक स्पष्टीकरण कैल गेल अछि कि ई ओ स्थान अछि जत न सूर्यक आवश्यकता अछि, न चाँदक। आध्यात्मिक राज्यक सब लोक ओहि प्रकार सँ स्वतः प्रकाशित अछि जाहि प्रकार सूर्य द्वारा भौतिक आकाश। योगक पूर्णता संसार सँ मुक्ति प्राप्त करमे जीतल जा सकैत अछि।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥१६॥

न– कहियो नहि; **अति**– अधिक; **अश्नतः**– खानेवालाक; **तु**– लेकिन; **योगः**– भगवान् सँ जुड़ब; **अस्ति**– अछि; **न**– न तो; **च**– भी; **एकान्तम्**– बिल्कुल, नितान्त; **अनश्नतः**– भोजन नहि करएवालाक; **स्वप्न-शीलस्य**– सुतैवाला; **जाग्रतः**– रात भरि जागएवाला; **एव**– ही; **च**– तथा; **अर्जुन**– हे अर्जुन।

हे अर्जुन! जे अधिक खाइत अछि या बहुत कम खाइत अछि, जे अधिक सूतैत अछि अथवा जे पर्याप्त नहि सूतैत अछि, ओकरा योगी बनैक कोनो सम्भावना नहि अछि।

तात्पर्यः एतय योगीक लेल भोजन तथा निन्दक नियमक संस्तुति कैल गेल अछि। जे आवश्यकता सँ अधिक भोजन करैत अछि ओ सुतै समय अनेक स्वप्न देखत, अतः आवश्यकता सँ ज्यादा सूतत। तमोगुणी व्यक्ति आलसी होइत अछि ओ योग नहि साधि सकैत अछि

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥१७॥

युक्त– नियमित; **आहार**– भोजन; **विहारस्य**– आमोद प्रमोदक; **चेष्टस्य**– जीवन निर्वाहक लेल कर्म कर वाला; **कर्मसु**– कर्म करमे; **स्वप्न अवबोधस्य**– नींद एवं जागरणक; **योगः**– योगाभ्यास; **भवति**– होइत अछि; **दुःखहा**– कष्ट केँ नष्ट करएवाला।

जे खेवा, पीवा, आमोद-प्रमोद तथा काम करक आदतमे नियमित

रहैत अछि, ओ योगाभ्यास द्वारा समस्त भौतिक क्लेश केँ नष्टक सकैत अछि।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति एहन कोनो काज नहि करैत छथि जे भगवान् सँ सम्बन्धित न हो। एहि प्रकार हुनकर कार्य सदैव नियमित रहैत अछि एवं इन्द्रियतृप्ति सँ अदूषित। चूँकि ओ अपन कार्य, वचन, निद्रा, जागृति तथा अन्य शारीरिक कार्यमे नियमित रहैत छथि, अतः हुनका कोनो भौतिक दु:ख नहि सताबैत अछि।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥१८॥

यदा– जखन; **विनियतम्**– विशेष रुप सँ अनुशासित; **चित्तम्**– मन तथा ओकर कार्य; **आत्मनि**– अध्यात्ममे; **एव**– निश्चय ही; **अवतिष्ठते**– स्थित भऽ जाइत अछि; **निस्पृहः**– आकांक्षा रहित; **सर्व**– सब प्रकार सँ; **कामेभ्यः**– भौतिक इन्द्रियतृप्ति सँ; **युक्तः**– योगमे स्थित; **इति**– एहि प्रकार; **उच्यते**– कहावैत अछि; **तदा**– ओहि समय।

जखन योगी योगाभ्यास द्वारा अपन मानसिक कार्यकलाप केँ वशमेक लैत अछि आओर अध्यात्ममे स्थित भऽ जाइत अछि अर्थात् समस्त भौतिक इच्छा सँ रहित भऽ जाइत अछि, ओहि समय ओ योगमे सुस्थिर कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः एक पूर्णयोगी अपन मानसिक कार्यमे एतेक अनुशासित होइत अछि कि हुनका कोनो भी भौतिक इच्छा विचलित नहि कऽ सकैत अछि। राजा अम्बरीष सर्वप्रथम अपन मन केँ भगवानक चरण कमल पर स्थिर कैलनि, पुनः क्रमशः अपन वाणी केँ कृष्णक गुणानुवादमे लगौलनि, हाथ केँ मन्दिर सबहक स्वच्छ करएमे, कान केँ भगवानक कार्यकलापमे सुनबामे, आँखि केँ भगवानक दिव्यरूपक दर्शन करमे, शरीर केँ अन्य भक्तक शरीरक स्पर्श करमे, घ्राणेन्द्रिय केँ भगवान् पर चढ़ल कमल पुष्पक सुगन्ध सूँघमे, जीभ केँ भगवानक चरणकमल पर चढ़ाएक तुलसी पत्रक स्वाद लेब, पाँव केँ तीर्थ यात्रा करमे तथा सिर केँ भगवानक प्रणाम करमे एवम् अपन इच्छा केँ भगवानक इच्छा पूरा करमे लगा देलनि। ई सब दिव्यकार्य शुद्ध भक्तक सर्वथा अनुरूप अछि।

महाराज अम्बरीषक उपरिवर्णित जीवनचर्या सँ स्पष्ट भऽ जाइत अछि कि जाधरि निरन्तर स्मरण द्वारा भगवानक चरणकमलमे मन केँ स्थिर नहिक लेल जाएत, ताधरि एहन दिव्यकार्य व्यावहारिक नहि बन पाओत। भगवानक भक्तिमे एहि विहित कार्य केँ अर्चन कहल जाइत अछि। जकर अर्थ अछि–समस्त इन्द्रिय केँ भगवत्सेवामे लगायव।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥१९॥

यथा– जाहि प्रकार; **दीप**– दीपक; **निवातस्थः**– वायु रहित स्थानमे; **न**– नहि; **इङ्गते**– हिलैत–डोलैत; **सा**– ओ; **उपमा**– तुलना; **स्मृता**– मानल जाइत; **योगिनः**– योगीक; **यत चित्तस्य**– जकर मन वशमे अछि; **युञ्जतः**– निरन्तर संलग्न; **योगम्**– ध्यानमे; **आत्मनः**– अध्यात्ममे।

जाहि प्रकार वायु रहित स्थानमे दीपक हिलैत–डोलैत नहि अछि, ओहि तरहेँ जाहि योगीक मन वशमे होइत अछि, ओ आत्मतत्त्वक ध्यानमे सदैव स्थिर रहैत छथि।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अपन आराध्य देवक चिन्तनमे ओहि प्रकार अविचलित रहैत छथि जाहि प्रकार वायु रहित स्थानमे एक दीपक रहैत अछि। पूर्णतया संयमित भऽ जाइत छथि।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥२०॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥२१॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥२२॥
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्॥२३॥

यत्र– जाहि अवस्थामे; **उपरमते**– दिव्यसुखक अनुभूतिक कारण बन्द हैव; **चित्तम्**– मानसिक गतिविधि; **निरुद्धम्**– पदार्थ सँ निवृत्त; **योग सेवया**– योगक अभ्यास द्वारा; **यत्र**– जाहिमे; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **आत्मना**– विशुद्ध मन सँ; **आत्मानम्**– आत्माक; **पश्यन्**– देखैत; **आत्मनि**– अपनामे; **तुष्यति**– तुष्ट भऽ जाइत अछि; **सुखम्**– सुख; **आत्यन्तिकम्**– परम;

यत्- जे; **तत्**- ओ; **बुद्धि**- बुद्धि सँ; **ग्राह्यम्**- ग्रहणीय; **अतीन्द्रियम्**- दिव्य; **वेत्ति**- जानैत अछि; **यत्र**- जाहिमे; **न**- कहियो नहि; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **अयम्**- ओ; **स्थितः**- स्थित; **चलति**- हटैत अछि; **तत्त्वतः**- सत्य सँ; **यम्**- जकरा; **लब्ध्वा**- प्राप्तक; **अपरम्**- अन्य क्यो; **लाभम्**- लाभ; **मन्यते**- मानैत अछि; **अधिकम्**- अधिक; **ततः**- ओहि सँ; **यस्मिन्**- जाहिमे; **दुःखेन**- दुःख सँ; **गुरुणा अपि**- अत्यन्त कठिन भेला पर; **विचाल्यते**- चलायमान होइत अछि; **तम्**- ओकरा; **विद्यात्**- जानू; **दुःख संयोग**- भौतिक संसर्ग सँ उत्पन्न दुःख; **वियोगम्**- उन्मूलन केँ; **योग संज्ञितम्**- योगमे समाधि कहलाबएवाला।

सिद्धिक अवस्थामे, जकरा समाधि कहल जाइत अछि, मनुष्यक मन योगाभ्यासक द्वारा भौतिक मानसिक क्रिया सँ पूर्णतया संयमित भऽ जाइत अछि। एहि सिद्धिक विशेषता ई अछि कि मनुष्य शुद्ध मन सँ अपना केँ देख सकैत अछि आओर अपने आपमे आनन्द उठा सकैत अछि। ओहि आनन्दमयी स्थितिमे ओ दिव्य इन्द्रिय द्वारा असीम दिव्यसुखमे स्थित रहैत अछि। एहि प्रकार स्थापित मनुष्य कहियो सत्य सँ विपथ नहि होइत अछि आओर एहि सुखक प्राप्ति भेला पर ओ एहि सँ पैघ कोनो दोसर लाभ नहि मानैत अछि। एहन स्थित केँ पाबिक मनुष्य पैघ सँ पैघ कठनाईमे विचलित नहि होइत अछि। ई निस्सन्देह भौतिक संसर्ग सँ उत्पन्न हुअबला समस्त दुःख सँ वास्तविक मुक्ति अछि।

तात्पर्यः योगाभ्यास सँ मनुष्य भौतिक धारणा सँ क्रमशः विरक्त भऽ जाइत अछि। ई योगक प्रमुख लक्षण अछि। एकरा बाद ओ समाधिमे स्थित भऽ जाइत छथि जकर अर्थ होइत अछि कि दिव्य मन तथा बुद्धिक द्वारा योगी अपने आप केँ परमात्मा समझैक भ्रम नहिक परमात्माक अनुभूति करैत छथि। योगपद्धतिक अनुसार समाधि दू प्रकारक होइत अछि–सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात। जखन मनुष्य विभिन्न दार्शनिक सोधक द्वारा दिव्य स्थित केँ प्राप्त होइत अछि तो कहल जाइत अछि कि हुनका सम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त भेल अछि। असम्प्रज्ञात समाधिमे संसारी आनन्द सँ कोनो सम्बन्ध नहि रहि जाइत अछि किएक तऽ एहि सँ मनुष्य इन्द्रिय सँ प्राप्त हुअवाला सब प्रकारक सुख सँ परे भऽ जाइत अछि। अतः योगाभ्यासमे

परम सिद्धि प्राप्त होइत अछि।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।
संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।।२४।।

स– ओ; **निश्चयेन**– दृढ़ विश्वासक संग; **योक्तव्यः**– अवश्य अभ्यास करी; **योगः**– योगपद्धति; **अनिर्विण्णचेतसा**– विचलित भेने बिना; **संकल्प**– मनोधर्म सँ; **प्रभवान्**– उत्पन्न; **कामान्**– भौतिक इच्छा; **त्यक्त्वा**– त्यागक; **सर्वान्**– समस्त; **अशेषतः**– पूर्णतया; **मनसा**– मन सँ; **एव**– निश्चय ही; **इन्द्रियग्रामम्**– इन्द्रियक समूह केँ; **विनियम्य**– वशमे करि कऽ; **समन्ततः**– सब ओर सँ।

मनुष्य केँ चाही कि संकल्प तथा श्रद्धाक संग योगाभ्यासमे लागथि आओर पथ सँ विचलित नहि होथि। हुनका चाही कि मनोधर्म सँ उत्पन्न समस्त इच्छा केँ निरपवाद रुप सँ त्यागि देथि आओर एहि प्रकार मनक द्वारा सब ओर सँ इन्द्रिय केँ वशमे करथि।

तात्पर्यः योगाभ्यास करएवाला केँ दृढ़संकल्प होमक चाही। बिना विचलित भेने धैर्यपूर्वक अभ्यास करी। अन्तमे हुनकर सफलता निश्चित अछि। जहाँ धरि संकल्पक बात अछि, मनुष्य केँ चाही कि ओहि गोरैयाक आदर्श करे जकर सब अंडा समुद्रक लहरिमे मग्न भऽ गेल छलै। कहल जाइत अछि कि एक गोरैया समुद्र तट पर अंडा देलक, किन्तु विशाल समुद्र ओकरा अपन लहरिमे समेटक लऽ गेल। एहि पर गोरैया अत्यन्त क्षुब्ध भेल आओर ओ समुद्र सँ अंडा लौटाबैक लेल कहलक। किन्तु समुद्र ओकर प्रार्थना पर कोनो ध्यान नै देलक। अतः ओ समुद्र केँ सुखा देबाक ठान लेलक। ओ अपन नन्हीं सँ चोंच सँ पानी उलीच लागल। सब ओकर एहि असम्भव संकल्पक उपहास कर लागल। ओकर एहि कार्यक सर्वत्र चर्चा होम लागल। अन्तमे भगवान् विष्णुक विराट वाहन पक्षिराज गरुड़ केँ ई बात ज्ञात भेलनि। गरुड़क ओहि नन्हीं गोरैयाक निश्चय सँ बहुत प्रसन्नता भेलनि आओर ओ ओकर सहायताक वचन देलथिन। गरुड़ समुद्र केँ तुरन्त अंडा लौटाबए लेल कहलखिन अन्यथा हुनका स्वयं आगाँ आबए पड़त। एहि सँ समुद्र भयभीत भेलाह आओर

अंडा लौटा देल गेलै। ओ गौरैया गरुड़क कृपा सँ सुखी भऽ गेल। जे क्यो कोनो संकल्पक संग नियमक पालन करैत अछि, भगवान् निश्चित रुप सँ ओकरा सहायता करैत छथिन। दृढ़ अभ्यासीक सफलता सुनिश्चत अछि।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥२५॥

शनैः– धीरे–धीरे; **शनैः**– क्रम सँ; **उपरमेत्**– निवृत्त रहे; **बुद्ध्या**– बुद्धि सँ; **धृतिगृहीतया**– विश्वास पूर्वक; **आत्म संस्थम्**– समाधिमे स्थित; **मनः**– मन; **कृत्वा**– करि कऽ; **न**– नहि; **किञ्चित्**– अन्य किछु; **अपि**– भी; **चिन्तयेत्**– सोचए।

धीरे–धीरे क्रमशः पूर्ण विश्वासपूर्वक बुद्धिक द्वारा समाधिमे स्थित होमक चाही आओर एहि प्रकार मन केँ आत्मामे ही स्थित करक चाही तथा अन्य किछु भी नहि सोचक चाही।

तात्पर्यः समुचित विश्वास तथा बुद्धिक द्वारा मनुष्य केँ धीरे–धीरे सब इन्द्रियकर्म करब बन्दक देवाक चाही। ई प्रत्याहार कहाबैत अछि। मन केँ विश्वास ध्यान तथा इन्द्रियनिवृत्ति द्वारा वशमे करैत समाधिमे स्थिर करक चाही। ओहि समय देहात्मबुद्धिमे अनुरक्त हेवाक कोनो सम्भावना नहि रहि जाइत अछि।

यतो यतो निश्चलति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥२६॥

यतः यतः– जतए जतए भी; **निश्चलति**– विचलित होइत अछि; **मनः**– मन; **चञ्चलम्**– चलायमान; **अस्थिरम्**– अस्थिर; **ततः ततः**– ततए–ततए सँ; **नियम्य**– वशमे कऽ; **एतत्**– एहि; **आत्मनि**– अपन; **एव**– निश्चय ही; **वशम्**– वशमे; **नयेत्**– लऽ आएल।

मन अपन चंचलता तथा अस्थिरताक कारण जत कतौ भी विचरण करैत हो, मनुष्य केँ चाही कि ओकरा ओतए सँ खींच आओर अपन वशमे लाबए।

तात्पर्यः मन स्वभाव सँ चंचल आओर अस्थिर अछि। जे मन तथा इन्द्रिय केँ वशमे राखैत अछि ओ स्वामी कहलाबैत अछि आओर जे मनक वशीभूत होइत अछि ओ गोदास अर्थात् इन्द्रियक सेवक कहलाबैत

छथि। शुद्ध इन्द्रियक भगवानक सेवा ही कृष्ण चेतना या कृष्णभावनामृत कहाबैत अछि।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥२७॥

प्रशान्त– कृष्णक चरणकमलमे स्थित, शान्त; **मनसम्**– जकर मन; **हि**– निश्चय ही; **एनम्**– ई; **योगिनम्**– योगी; **सुखम्**– सुख; **उत्तमम्**– सर्वोच्च; **उपैति**– प्राप्त करैत अछि; **शान्त रजसम्**– जकर कामेच्छा शान्त भऽ चुकल अछि; **ब्रह्मभूतम्**– परमात्माक सँग अपन पहचान द्वारा मुक्ति; **अकल्मषम्**– समस्त पूर्व पाप कर्म सँ मुक्त।

जाहि योगीक मन हमरामे स्थिर रहैत अछि, ओ निश्चय ही दिव्यसुखक सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करैत अछि। ओ रजोगुण सँ परे भऽ जाइत अछि, ओ परमात्माक साथ अपन गुणात्मक एकता केँ समझैत छथि आओर एहि प्रकार अपन समस्त विगत कर्मक फल सँ निवृत्त भऽ जाइत छथि।

तात्पर्यः जाधरि मनुष्यक मन भगवानक चरणकमलमे स्थिर नहि भऽ जाइत अछि ताधरि क्यो ब्रह्मरुपमे नहि रहि सकैत अछि। भगवानक दिव्य प्रेमाभक्तिमे निरन्तर प्रवृत्त रहब या कृष्णभावनामृतमे रहब वस्तुतः रजोगुण तथा भौतिक कल्मष सँ मुक्त हैव अछि।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥२८॥

युञ्जन्– योगाभ्यासमे प्रवृत्त हैब; **एवम्**– एहि प्रकार; **सदा**– सदैव; **आत्मानम्**– स्व, आत्मा केँ; **योगी**– योगी जे परमात्माक सम्पर्कमे रहैत अछि; **विगत**– मुक्त; **कल्मषः**– सब भौतिक दूषण सँ; **सुखेन**– दिव्यसुख सँ; **ब्रह्म संस्पर्शम्**– ब्रह्मक सान्निध्यमे रहिक; **अत्यन्तम्**– सर्वोच्च; **सुखम्**– सुख केँ; **अश्नुते**– प्राप्त करैत अछि।

एहि प्रकार योगाभ्यासमे निरन्तर लागल रहिक आत्मसंयमी योगी समस्त भौतिक कल्मष सँ मुक्त भऽ जाइत छथि आओर भगवानक दिव्य प्रेमाभक्तिमे परमसुख प्राप्त करैत छथि।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥२९॥

सर्व भूत स्थम्- सब जीवमे स्थित; **आत्मानम्**- परमात्मा केँ; **सर्व**- सब; **भूतानि**- जीव केँ; **च**- भी; **आत्मनि**- आत्मामे; **ईक्षते**- देखैत अछि; **योग-युक्त आत्मा**- कृष्णचेतनामे लागल व्यक्ति; **सर्वत्र**- सब जगह; **समदर्शनः**- समभाव सँ देखएवाला।

वास्तविक योगी समस्त जीवमे हमरा तथा हमरामे समस्त जीव केँ देखैत छथि। निस्सन्देह स्वरुपसिद्ध व्यक्ति हमर परमेश्वर रुप केँ सर्वत्र देखैत अछि।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित योगी पूर्ण द्रष्टा होइत छथि किएक तऽ ओ परब्रह्म कृष्ण केँ प्रत्येक प्राणीक हृदयमे परमात्मा रुपमे स्थित देखैत छथि। भगवानक दू मुख्य शक्ति अछि-परा तथा अपरा। अपरा शक्तिमे जीव भौतिक इन्द्रियक दास रहैत अछि। जखन कि पराशक्तिमे ओ साक्षात परमेश्वरक दास रहैत अछि। कृष्णभावनाभावित व्यक्तिमे ओ समदृष्टि पूर्ण होइत अछि। प्रत्येक अवस्थामे जीव ईश्वरक दास अछि।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥३०॥

यः- जे; **माम्**- हमरा; **पश्यति**- देखैत अछि; **सर्वत्र**- सब जगह; **सर्वम्**- प्रत्येक वस्तु केँ; **च**- तथा; **मयि**- हमरामे; **तस्य**- ओकरा लेल; **अहम्**- हम; **न**- नहि; **प्रणश्यामि**- अदृश्य होइत छी; **सः**- ओ; **च**- भी; **मे**- हमरा लेल; **प्रणश्यति**- अदृश्य होइत अछि।

जे हमरा सर्वत्र देखैत अछि आओर सब किछु हमरामे देखैत अछि, ओकरा लेल न तो हम कौखन अदृश्य होइत छी आओर न हमरा लेल ओ अदृश्य होइत अछि।

तात्पर्यः जखन भगवान् तथा भक्तक बीच अन्तरंग स्थापित भऽ जाइत अछि, ओहि अवस्थामे न तो भगवान् श्रीकृष्ण अपन भक्तक दृष्टि सँ ओझल होइत छथि आओर न भक्त ही हुनकर दृष्टि सँ ओझल पाबैत अछि। इहे बात योगीक लेल भी सत्य अछि।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥३१॥

सर्व भूत स्थितम्– प्रत्येक जीवक हृदयमे स्थित; **यः**– जे; **माम्**– हमरा; **भजति**– भक्तिपूर्वक सेवा करैत अछि; **एकत्वम्**– तादात्म्यमे; **आस्थितः**– स्थित; **सर्वथा**– सब प्रकार सँ; **वर्तमानः**– उपस्थित भऽकऽ; **अपि**– भी; **सः**– ओ; **योगी**– योगी; **मयि**– हमरामे; **वर्तते**– रहैत अछि।

जे योगी हमरा तथा परमात्मा केँ अभिन्न जानैत परमात्माक भक्तिपूर्वक सेवा करैत छथि, ओ हर प्रकार सँ हमरामे सदैव स्थित रहैत छथि।

तात्पर्यः योगाभ्यासमे समाधिक सर्वोच्च अवस्था कृष्णभावनामृत अछि। केवल एहि ज्ञान सँ कि भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्येक जन केँ हृदयमे परमात्मा रुपमे उपस्थित छथि, योगी निर्दोष भऽ जाइत छथि। यद्यपि भगवान् एक छथि किन्तु ओ जतेक सब हृदय अछि ओहिमे उपस्थित रहैत छथि। एहि सँ भगवानक अचिन्त्य शक्तिक पुष्टि होइत अछि। विष्णु एक छथि फिर भी सर्वव्यापी छथि जाहि प्रकार सूर्य एके समयमें अनेक स्थानमे दिखाई पड़ैत अछि।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥३२॥

आत्म– अपन; **औपम्येन**– तुलना सँ; **सर्वत्र**– सब जगह; **समम्**– समान रुप सँ; **पश्यति**– देखैत अछि; **यः**– जे; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **सुखम्**– सुख; **वा**– अथवा; **दुखम्**– दुःख; **सः**– ओ; **योगी**– योगी; **परमः**– परमपूर्ण; **मतः**– मानल जाइत अछि।

हे अर्जुन! ओ पूर्णयोगी अछि जे अपन तुलनामे समस्त प्राणीक ओकर सुख तथा दुखमे वास्तविक समानताक दर्शन करैत अछि।

तात्पर्यः कृष्णभावनाभावित व्यक्ति पूर्ण योगी होइत छथि। पूर्ण योगी ई जानैत छथि कि भौतिक प्रकृतिक गुण सँ प्रभावित बद्धजीव कृष्ण सँ अपन सम्बन्ध केँ भूलला पर तीन प्रकारक भौतिक ताप केँ भोगैत छथि। भगवत्भक्त सदैव जीवक कल्याण केँ देखैत छथि आओर एहि प्रकार ओ सब प्राणी केँ सखा समझैत छथि। ओ सर्वश्रेष्ठ योगी छथि किएक तऽ ओ **''स्वान्तः सुखाय सिद्धि''** नहि चाहैत छथि अपितु अन्यक लेल भी चाहैत छथि।

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्।।३३।।

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलखिन; **यः अयम्**– ई पद्धति; **योगः**– योग; **त्वया**– अहाँ द्वारा; **प्रोक्तः**– कहल गेल; **साम्येन**– सामान्यतया; **मधुसूदन**– हे मधु असुरक संहर्ता; **एतस्य**– एकर; **अहं**– हम; **न**– नहि; **पश्यामि**– देखैत छी; **चञ्चलत्वात्**– चंचल भेलाक कारण; **स्थितिम्**– स्थिति केँ; **स्थिराम्**– स्थायी।

अर्जुन कहलखिन– हे मधुसूदन! अहाँ जाहि योग पद्धतिक संक्षेपमे वर्णन कैलहुँ अछि ओ हमरा लेल अव्यावहारिक तथा असहनीय अछि कारण मन चंचल तथा अस्थिर अछि।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण अर्जुनक लेल **''शुचौ देशे सँ लक योगी परमो मतः''** तक जाहि योगपद्धतिक वर्णन कैलनि ओकरा अर्जुन अपन असमर्थताक कारण अस्वीकार करैत छथि। एहि कलियुगमे सामान्य व्यक्तिक लेल सम्भव नहि अछि कि ओ अपन घर छोड़ि केँ कोनो पर्वत या जंगलक एकान्त स्थानमे जाकऽ योगाभ्यास करे। आधुनिक युगक विशेषता अछि–अल्पकालिक जीवनक लेल घोर संघर्ष। अतः व्यावहारिक व्यक्तिक रुपमे अर्जुन सोचलथि कि ई योगपद्धतिक पालन असम्भव अछि।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।३४।।

चंचलम्– चंचल; **हि**– निश्चय ही; **मनः**– मन; **कृष्ण**– हे कृष्ण; **प्रमाथि**– विचलित करएवाला, क्षुब्ध करएवाला; **बलवत्**– बलवान्; **दृढ़म्**– दुराग्रही; **तस्य**– ओकर; **अहं**– हम; **निग्रहम्**– वशमे करब; **मन्ये**– सोचैत छी; **वायोः**– वायुक; **इव**– तरह; **सुदुष्करम्**– कठिन।

हे कृष्ण! चूँकि मन चंचल, उच्छृंखल, हठीला तथा अत्यन्त बलवान अछि, अतः हमरा एकरा वशमे करब, वायु केँ वशमे करब सँ भी अधिक कठिन लागैत अछि।

तात्पर्यः मन एतेक बलवान तथा दुराग्रही अछि कि कौखन-कौखन ओ बुद्धिक उल्लंघनक दैत अछि यद्यपि बुद्धिक अधीन मानल जाइत अछि। एहि व्यावहारिक दुनियामे जत मनुष्य केँ अनेक विरोधी तत्त्व सँ संघर्ष कर पड़ैत छैक, ओकरा लेल मन केँ वशमे करब अत्यन्त कठिन अछि। एहन मन केँ योगाभ्यास द्वारा वशमे कैल जा सकैत अछि परन्तु संसारी व्यक्तिक लेल व्यावहारिक नहि होइत अछि। अतः मनुष्य केँ चाही कि ओ अपन मन केँ पूर्णतया भगवानमे लगाए।

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥३५॥

श्रीभगवान् उवाच- भगवान् कहलखिन; **असंशयम्**- निसन्देह; **महाबाहो**- हे बलिष्ठ भुजावाला; **मनः**- मन केँ; **दुर्निग्रहम्**- दमन करब कठिन अछि; **चलम्**- चंचल, चलायमान; **अभ्यासेन**- अभ्यास द्वारा; **तु**- लेकिन; **कौन्तेय**- हे कुन्तीपुत्र; **वैराग्येण**- वैराग्य द्वारा; **च**- भी; **गृह्यते**- एहि तरह वशमे कैल जा सकैत अछि।

भगवान् श्रीकृष्ण कहलखिन-हे महाबाहो कुन्तीपुत्र! निसंदेह चंचल मन केँ वशमे करब अत्यन्त कठिन अछि, किन्तु अभ्यास द्वारा तथा विरक्ति द्वारा एहन सम्भव अछि।

तात्पर्यः अर्जुन द्वारा व्यक्त एहि हठीला मन केँ वशमे करबक कठिनाई केँ भगवान् स्वीकार करैत छथिन किन्तु संग ही ओ समझाबैत छथिन कि अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा ई सम्भव अछि। वैराग्यक अर्थ अछि पदार्थ सँ विरक्ति आओर मनक आत्मामे प्रवृत्त हैब। कृष्णभावनामृतक अभ्यास सँ मनुष्य भगवानक नवधा भक्तिक आचरण करैत अछि। एहि भक्तिक प्रथम अंग अछि-भगवानक विषयमे श्रवण करब। मन केँ वशमे राखैक सरलतम उपाय, जकरा चैतन्य महाप्रभु सुलझेलनि अछि-हरे कृष्ण महामंत्रक कीर्तन करल जाए।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥३६॥

असंयत- उच्छृंखल; **आत्मना**- मनक द्वारा; **योगः**- आत्म साक्षात्कार;

दुष्पापः– प्राप्त करब कठिन; **इति**– इस प्रकार; **मे**– हमर; **मतिः**– मन; **वश्य**– वशीभूत; **आत्मना**– मन सँ; **तु**– लेकिन; **यतता**– प्रयत्न करैत; **शक्यः**– व्यावहारिक; **अवाप्तुम्**– प्राप्त करब; **उपायतः**– उपयुक्त साधन।

जकर मन उच्छृंखल अछि, ओकरा लेल आत्मसाक्षात्कार कठिन कार्य होइत अछि, किन्तु जकर मन संयमित अछि आओर जे समुचित उपाय करैत अछि ओकर सफलता ध्रुव अछि। एहन हमर मत अछि।

तात्पर्यः भगवान् घोषणा करैत छथि कि जे व्यक्ति अपन मन केँ भौतिक व्यापार सँ विलगक समुचित उपचार नहि करैत अछि, ओकरा आत्म साक्षात्कारमे शायद ही सफलता प्राप्त भऽ सकत। भौतिक भोगमे मन लगा कऽ योगक अभ्यास करब मानू अग्निमे जल डालि कऽ ओकरा प्रज्ज्वलित करक प्रयास करब। योगाभ्यास करएवालाक कृष्णभावनाभावित बिना भेने सफलता नहि प्राप्त भऽ सकैत अछि।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलखिन; **अयतिः**– असफल योगी; **श्रद्धया**– श्रद्धा सँ; **उपेतः**– लागल, संलग्न; **योगात्**– योग सँ; **चलित**– विचलित; **मानसः**– मनवाला; **अप्राप्य**– प्राप्त नहि कऽ; **योग संसिद्धिम्**– योगक सर्वोच्च सिद्धि; **काम्**– कोन; **गतिम्**– लक्ष्य केँ; **कृष्ण**– हे कृष्ण; **गच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

अर्जुन कहलखिन–हे कृष्ण! ओहि असफल योगीक गति केना होइत अछि जे प्रारम्भमे श्रद्धापूर्वक आत्म साक्षात्कारक विधि ग्रहण करैत अछि, किन्तु बादमे भौतिकताक कारण ओहि सँ विचलित भऽ जाइत अछि आओर योग सिद्धि केँ प्राप्त नहि कऽ पावैत अछि।

तात्पर्यः भगवद्गीतामे योग मार्गक वर्णन अछि। योगमार्गक मूलभूत नियम ई अछि कि जीवात्मा ई भौतिक शरीर नहि अछि। अपितु एहि सँ भिन्न अछि आओर ओकर सुख शाश्वत जीवन, आनन्द तथा ज्ञानमे निहित अछि। ई शरीर तथा मन दूनू सँ परे अछि। आत्म साक्षात्कार (योगमार्ग)

क खोज ज्ञान द्वारा कयल जाइत अछि। एहि लेल अष्टांग विधि या भक्तियोगक अभ्यास कर होइत अछि। अष्टांगयोगक अभ्यास एहि युगक लेल सामान्यतया बहुत कठिन अछि। अतः निरन्तर प्रयास भेला पर भी मनुष्य अनेको कारण सँ असफल भऽ सकैत अछि। बद्धजीव पहिने सँ प्रकृतिक गुण द्वारा मोहित रहैत अछि। अतः अर्जुन आत्म साक्षात्कारक मार्ग सँ विचलनक प्रभावक सम्बन्धमे जिज्ञासा करैत छथि।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि॥३८॥

कच्चित्– क्या, की; **न**– नहि; **उभय**– दूनू; **विभ्रष्टः**– विचलित; **छिन्न**– छिन्न भिन्न; **अभ्रम्**– बादल; **इव**– सदृश; **नश्यति**– नष्ट भऽ जाइत अछि; **अप्रतिष्ठः**– बिना कोनो पद क; **महाबाहो**– हे बलिष्ठ भुजा वाला कृष्ण; **विमूढ़ः**– मोहग्रस्त; **ब्रह्मणः**– ब्रह्म प्राप्तिक; **पथि**– मार्गमे।

हे महाबाहु कृष्ण! की ब्रह्म प्राप्तिक मार्ग सँ, भ्रष्ट एहन व्यक्ति आध्यात्मिक तथा भौतिक दूनू ही सफलता सँ च्युत नहि होइत अछि आओर छिन्न-भिन्न बादलक भाँति विनष्ट नहि होइत अछि जकरा फलस्वरुप ओकरा लेल कोनो लोकमे कोनो स्थान नहि रहत?

तात्पर्यः उन्नतिक दूटा मार्ग अछि। भौतिकवादी व्यक्ति केँ अध्यात्ममे कोनो रुचि नहि होइत अछि, अतः ओ आर्थिक विकास द्वारा भौतिक प्रगतिमे अत्यधिक रुचि लैत छथि आओर पुनः अध्यात्म मार्ग केँ चूनैत छथि, तो हुनका सब प्रकारक तथाकथित भौतिक सुख सँ विरक्त होम पड़ैत अछि। यदि महत्वाकांक्षी ब्रह्मवादी असफल होइत छथि, तो ओ दूनू ओर सँ जाइत छथि। ओ न तो भौतिक सुख भोग पाबैत छथि न आध्यात्मिक सफलता ही पाबैत छथि। हुनकर कोनो स्थान नहि रहैत अछि। ओ छिन्न-भिन्न बादलक समान होइत छथि। ब्रह्म तथा परमात्मा साक्षात्कारक माध्यम सँ जीवनक एहि लक्ष्य तक पहुँचवमे अनेकानेक जन्म लागि जाइत अछि। अतः दिव्य साक्षात्कारक सर्वश्रेष्ठ मार्ग भक्तियोग या कृष्णभावनामृतक प्रत्यक्ष विधि अछि।

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते॥३९॥

एतत्– ई अछि; **मे**– हमर; **संशयम्**– संदेह; **कृष्ण**– हे कृष्ण; **छेत्तुम**– दूर करक लेल; **अर्हसि**– अहाँ सँ प्रार्थना; **अशेषतः**– पूर्णतया; **त्वत्**– अहाँक अपेक्षा; **अन्यः**– दोसर; **संशयस्य**– सन्देहक; **अस्य**– एहि; **छेत्ता**– दूर कर वाला; **न**– नहि; **हि**– निश्चय ही; **उपपद्यते**– पाओल जाएब सम्भव।

हे कृष्ण! इहै हमर संदेह अछि आओर हम अहाँ सँ एकरा पूर्णतया दूर करक प्रार्थना करैत छी। अहाँक अलाबा अन्य क्यो एहन नहि छथि, जे एहि सन्देह केँ नष्ट कऽ सके।

तात्पर्यः अर्जुन असफल योगीक भविष्यक विषयमे जानवाक चाहैत छथि। अतः समस्त सन्देहक पूरा–पूरा उत्तर पावक लेल कृष्णक निर्णय अन्तिम तथा पूर्ण अछि किएक तऽ ओ भूत, वर्तमान तथा भविष्यक ज्ञाता छथि, किन्तु हुनका क्यो नहि जानैत अछि। कृष्ण तथा कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही ज्ञातक सकैत अछि कि कोन कि अछि?

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥४०॥

श्रीभगवान् उवाच– भगवान् कहलखिन; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **न एव**– कहियो नहि; **इह**– एहि संसारमे; **न**– कहियो नहि; **अमुत्र**– अगिला जन्ममे; **विनाशः**– नाश; **तस्य**– ओकर; **विद्यते**– होइत अछि; **कल्याण कृत्**– शुभकार्यमे लागल; **कश्चित्**– क्यो भी; **दुर्गतिम्**– पतन केँ; **तात**– हे हमर मित्र; **गच्छति**– जाइत अछि।

भगवान् कहलखिन–हे पृथापुत्र! कल्याण कार्यमे निरत योगीक न तो एहि लोकमे आओर न परलोकमे ही विनाश होइत अछि। हे मित्र! भलाई करएवला कौखन बुराई सँ पराजित नहि होइत अछि।

तात्पर्यः मानवताक दू विभाग कयल जा सकैत अछि–नियमित तथा अनियमित। जे लोग अगिला जन्म तथा मुक्तिक ज्ञानक बिना पाशविक इन्द्रियतृप्तिमे लागल रहैत अछि ओ अनियमित वर्गमे आबैत अछि। जे लोग शास्त्रमे वर्णनित कर्तव्यक सिद्धान्तक पालन करैत छथि ओ नियमित विभागमे वर्गीकृत होइत छथि। अनियमिति वर्गक व्यक्तिक कार्य कहियो भी कल्याणकारी नहि होइत अछि कारण ओ पशुक भाँति आहार, निद्रा,

भय तथा मैथूनक भोग करैत एहि संसारमे निरन्तर रहैत छथि, जे सदा ही दुखमय अछि। किन्तु जे लोग शास्त्रीय आदेशक अनुसार संयमित रहैत छथि ओ क्रमशः कृष्णभावनामृत केँ प्राप्त करैत छथि। ओ निश्चित रुप सँ जीवनमे उन्नति करैत छथि। अष्टांगयोग पद्धति कल्याणप्रद होइत अछि। अतः एहि दिशामे यथाशक्ति प्रयास करक चाही, ओकरा कहियो अपन पतनक प्रति भयभीत नहि होमक चाही।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥४१॥

प्राप्य– प्राप्त कऽ; **पुण्य कृताम्**– पुण्य कर्म करएवालाक; **लोकान्**– लोकमे; **उषित्वा**– निवासक; **शास्वती**– अनेक; **समाः**– वर्ष; **शुचीनाम्**– पवित्रात्माक; **श्रीमताम्**– सम्पन्न लोगक; **गेहे**– घरमे; **योग भ्रष्टः**– आत्म साक्षात्कारक पथ सँ च्युत व्यक्ति; **अभिजायते**– जन्म लैत अछि।

असफल योगी पवित्रात्माक लोकमे अनेकानेक वर्ष तक भोग करक बाद या तो सदाचारी पुरुषक परिवारमे या धनवानक कुलमे जन्म लैत छथि।

तात्पर्यः असफल योगीक दू श्रेणी अछि। एक ओ जे बहुत कम उन्नतिक बाद ही भ्रष्ट भऽ जाइत अछि, दोसर ओ जे दीर्घकाल तक योगाभ्यासक बाद भ्रष्ट होइत अछि। जे योगी अल्पकालिक अभ्यासक बाद भ्रष्ट होइत अछि, ओ स्वर्गलोक केँ जाइत छथि जतय केवल पुण्यात्मा केँ प्रविष्ट हुअ देल जाइत अछि। ओतय दीर्घकाल तक रहलाक बाद ओकरा पुनः एहि लोकमे भेज देल जाइत छैक ताकि ओ कोनो सदाचारी ब्राह्मण वैष्णवक कुलमे अथवा धनवान वणिकक कुलमे जन्म लऽ सके एहन परिवारमे जन्म लिअवाला एहि सुविधाक लाभ उठा केँ अपने आप केँ पूर्ण कृष्णभावनामृत तक ऊपर लऽ जाइत अछि।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥४२॥

अथवा– या; **योगिनाम्**– विद्वान योगीक; **एव**– निश्चय ही; **कुले**– परिवारमे; **भवति**– जन्म लैत छथि; **धीमताम्**– परम बुद्धिमानक; **एतत्**– ई; **हि**– निश्चय ही; **दुर्लभ तरम्**– अत्यन्त दुर्लभ; **लोके**– एहि लोकमे;

जन्म– जन्म; **यत्**– जे; **ईदृशम्**– एहि प्रकार।

अथवा (यदि दीर्घकाल तक योग केलाक बाद असफल भेला पर) ओ एहन योगीक कुलमे जन्म लैत अछि जे अति बुद्धिमान अछि। निश्चय ही एहि संसारमे एहन जन्म दुर्लभ अछि।

तात्पर्यः एतय योगक बुद्धिमान कुलमे जन्म लेवाक प्रशंसा कयल गेल अछि। एहन कुलमे अत्यन्त विद्वान होइत अछि आओर परम्परा तथा प्रशिक्षणक कारण श्रद्धावान् होइत छथि। प्रारम्भ सँ आध्यात्मिक प्रोत्साहन प्राप्त होइत अछि।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥४३॥

तत्र– ओतय; **तम्**– ओकर; **बुद्धिसंयोगं**– चेतनाक जागृतक; **लभते**– प्राप्त होइत अछि; **पौर्वदेहिकम्**– पूर्व देह सँ; **यतते**– प्रयास करैत अछि; **च**– भी; **ततः**– तत्पश्चात्; **भूयः**– पुनः; **संसिद्धौ**– सिद्धिक लेल; **कुरुनन्दन**– हे कुरुपुत्र।

हे कुरुनन्दन! एहन जन्म पाक अपन पूर्वजन्मक दैवी चेतना केँ पुनः प्राप्त करैत अछि आओर पूर्ण सफलता प्राप्त करक उद्देश्य सँ ओ आगाँ उन्नति करक प्रयास करैत अछि।

तात्पर्यः राजा भरत, जिनका तेसर जन्ममे उत्तम ब्राह्मण कुलमे जन्म भेलैन, पूर्व चेतनाक पुनः प्राप्तिक लेल उत्तम जन्मक उदाहरण स्वरुप छथि। भरत अल्पायुमे ही आध्यात्मिक सिद्धिक लेल संन्यास ग्रहणक लेलथि, किन्तु ओ सफल नहि भऽ सकला। अगिला जन्ममे हुनका उत्तम ब्राह्मण जन्म लेव पड़लैन आओर ओ भरत कहलौलनि किएक तऽ ओ एकान्तवास करैत छलाह, ककरो सँ बात नहि करैत छलाह। बादमे राजा रहूगण हिनका महानतम योगीक रुपमे पौलनि। हिनका जीवन सँ पता चलैत अछि कि दिव्य प्रयास अथवा योगाभ्यास कौखन व्यर्थ नहि जाइत अछि। भगवत्कृपा सँ योगी केँ कृष्णभावनामृतमे पूर्ण सिद्धि प्राप्त करक बारम्बार सुयोग प्राप्त होइत रहैत अछि।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥४४॥

पूर्व– पिछला; **अभ्यासेन**– अभ्यास सँ; **तेन**– ओहि सँ; **एव**– ही; **ह्रियते**– आकर्षित होइत अछि; **हि**– निश्चय ही; **अवशः**– स्वतः; **अपि**– भी; **सः**– ओ; **जिज्ञासुः**– उत्सुक; **योगस्य**– योगक विषयमे; **शब्द ब्रह्म**– शास्त्रक अनुष्ठान; **अतिवर्तते**– परे चलि जाइत अछि, उल्लंघन करैत अछि।

अपन पूर्वजन्मक दैवी चेतना सँ ओ न चाहितो भी स्वतः योगक नियमक ओर आकर्षित भऽ जाइत छथि। एहन जिज्ञासु योगी शास्त्रक अनुष्ठान सँ परे स्थित होइत छथि।

तात्पर्य: हे भगवान्! जे लोग अहाँक पवित्र नामक जप करैत अछि, जे चाण्डालक परिवारमे जन्म लऽकऽ भी आध्यात्मिक जीवनमे अत्यधिक प्रगति होइत अछि। एहन जपकर्ता निस्संदेह सब प्रकारक जपतप आओर यज्ञक चूकल होइत अछि। तीर्थस्थानमे स्नानक चूकल रहैत छथि आओर समस्त शास्त्रक अध्ययनक चुकल होइत छथि। एकर सुप्रसिद्ध उदाहरण चैतन्य महाप्रभु प्रस्तुत कैलनि अछि। ओ ठाकुर हरिदास केँ अपन परमप्रिय शिष्यक रुपमे स्वीकार केने छलाह। यद्यपि हरिदासक जन्म मुसलमान परिवारमे भेल छल, किन्तु चैतन्य महाप्रभु हुनका नामाचार्यक पदवी प्रदान कैलनि किएक तऽ ओ प्रतिदिन नियमपूर्वक तीन लाख भगवानक पवित्र नाम **''हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे''**क जप करैत छलाह। अतः ई समझल जाइत अछि कि पूर्वजन्ममे ओ शब्दब्रह्म नामक वेदवर्णित कर्मकाण्ड केँ पूरा केने हेताह।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।४५।।

प्रयत्नात्– कठिन अभ्यास सँ; **यतमानः**– प्रयास करैत; **तु**– तथा; **योगी**– एहन योगी; **संशुद्धः**– शुद्ध भऽकऽ; **किल्विषः**– जकर सब पाप; **अनेक**– अनेकानेक; **जन्म**– जन्मक बाद; **संसिद्धः**– सिद्धि प्राप्तक; **ततः**– तत्पश्चात्; **याति**– प्राप्त करैत अछि; **पराम्**– सर्वोच्च; **गतिम्**– गन्तव्य केँ।

आओर जखन योगी समस्त कल्मष सँ शुद्ध भऽकऽ सच्च निष्ठा सँ आगाँ प्रगति करक प्रयास करैत छथि तो अन्ततोगत्वा अनेकानेक

जन्मक अभ्यास पश्चात् सिद्धि लाभ करि कऽ ओ परम गन्तव्य केँ प्राप्त करैत छथि।

तात्पर्यः अनेक जन्म तक पुण्यकर्मक कार्य करला सँ जखन क्यो समस्त कल्मष तथा मोहमय द्वन्द्व सँ पूर्णतया मुक्त भऽ जाइत अछि, तखने ओ भगवानक दिव्य प्रेमाभक्तिमे लागि पाबैत अछि। कृष्णभावनामृत ही समस्त कल्मष सँ मुक्त हुअक पूर्ण अवस्था अछि।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥४६॥

तपस्विभ्यः– तपस्वी सँ; **अधिकः**– श्रेष्ठ; **योगी**– योगी; **ज्ञानिभ्यः**– ज्ञानी सँ; **अपि**– भी; **मतः**– मानल जाइत अछि; **अधिकः**– बढ़ि कऽ; **कर्मिभ्यः**– सकाम कर्मीक अपेक्षा; **च**– भी; **तस्मात्**– अतः; **भव**– बनू, होउ; **अर्जुन**– हे अर्जुन।

योगी पुरुष तपस्वी सँ, ज्ञानी सँ तथा सकामकर्मी सँ बढ़िक होइत छथि। अतः हे अर्जुन! अहाँ सब प्रकार सँ योगी बनू।

तात्पर्यः आत्मज्ञानक बिना तपस्या अपूर्ण अछि। परमेश्वरक प्रति समर्पित भेला बिना ज्ञानयोग भी अपूर्ण अछि। सकामकर्म भी भक्तियोगक बिना समयक अपव्यय अछि। अतः एतय योगक सर्वाधिक प्रशंसित रुप भक्तियोग अछि आओर भक्तियोग समस्त योगक परमसिद्धि अछि।

योगिनामपि सर्वेषां मद्‌गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥४७॥

योगिनाम्– योगी सबमे; **अपि**– भी; **सर्वेषाम्**– समस्त प्रकारक; **मत्‌गतेन**– हमर परायण, सदैव हमरा विषयमे सोचैत; **अन्तः आत्मना**– अपन भीतर; **श्रद्धावान्**– पूर्णश्रद्धा सहित; **भजते**– दिव्य प्रेमाभक्ति करैत; **यः**– जे; **माम्**– हमर; **सः**– ओ; **मे**– हमरा द्वारा; **युक्तः तमः**– परम योगी; **मतः**– मानल जाइत।

आओर समस्त योगीमे सँ जे योगी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक हमर परायण अछि, अपन अन्तःकरणमे हमरा विषयमे सोचैत अछि आओर हमर दिव्य प्रेमाभक्ति करैत अछि ओ योगमे हमरा सँ परम अन्तरंग रुपमे युक्त रहैत अछि आओर सबमे सर्वोच्च अछि। ई हमर मत अछि।

तात्पर्यः भक्तिक अर्थ अछि भगवानक सेवा जे एहि जीवनमे या अगिला जीवनमे भौतिक लाभक इच्छा सँ रहित होइत अछि। एहन प्रवृत्ति सँ मुक्त भऽकऽ मनुष्य केँ अपन मन परमेश्वरमे लीन करक चाही। जे व्यक्ति अपन जन्मदाता आद्य भगवानक सेवा नहि करैत अछि आओर अपन कर्तव्यमे शिथिलता देखबैत अछि ओ निश्चितरुप सँ अपन स्वाभाविक स्थिति सँ नीचा गिरैत अछि। जाहि महात्माक हृदयमे भगवान् तथा गुरुमे श्रद्धा होइछ हुनकामे वैदिक ज्ञानक सम्पूर्ण तात्पर्य स्वतः प्रकाशित भऽ जाइत अछि।

ध्यानयोगक संक्षिप्त विवरण

भगवान् श्रीकृष्ण कहलखिन हे अर्जुन! जकरा कर्मफलमे आसक्ति नहि आओर कर्म करैत अछि ओहे सन्यासी आओर योगी छथि। जे हवन आदिक लौकिक कर्म छोड़ि देलनि अछि ओ योगी छथि। हे अर्जुन! जिनका सन्यासी कहैत अछि ओकरे कर्मयोगी जानू किएक तऽ संकल्पक त्यागक बिना क्यो योगी नहि भऽ सकैत अछि। जे मुनि योग प्राप्तिक इच्छा राखैत छथि हुनका लेल हुनकर साधन कर्म ही अछि आओर हुनका योगी भेला पर हुनकर ज्ञान पूर्ण भेलाक मन, चित्तक समाधान अछि। जखन मनुष्य विषय आ कर्मक आसक्ति सँ छूटि गेल आओर सम्पूर्ण वासना केँ ओ त्याग देलक ओही समय ओ योगरुढ़ कहल जाइत अछि। मन केँ जीतएवाला शांत स्वभाव मनुष्यक आत्मा शीत-उष्ण, सुख-दुख, मान-अपमान सबहक भेलो पर भी अत्यन्त स्थिर रहैत अछि। जे ज्ञान-विज्ञान सँ अपन अन्तःकरण केँ तृप्तक लेलक ओ निर्विकार भऽ गेलाह तथा जे अपन इन्द्रिय केँ वशमेक लेलक ओ मिट्टी-पत्थर आओर सोना केँ एक समान समझैत छथि आओर ओहे योगी कहावैत छथि। आत्मबृद्धिक लेल योग करक चाही। योगी केँ निरन्तर योगाभ्यास करैत रहला सँ अन्तमे निर्वाण अर्थात् हमर स्वरुपमे लीन करएवाला शान्ति प्राप्त होइत अछि। जे उपयुक्त आहार आओर विहार करैत अछि, कर्मक योग रीति सँ पालन करैत अछि, योग एहन व्यक्तिक दुःख मिटा दैत अछि। चित्त अपन आत्मामे ही स्थिर भऽ जाइत छैक आओर सब कामना सँ निवृत्त भऽ जाइत अछि तखने योगीपद पाबि सकैत छथि। शान्त चित्त तथा रजोगुण सँ रहित निष्पाप तथा ब्रह्मस्वरुप योगी केँ उत्तम सुख होइत

अछि। हे अर्जुन! जे समस्त प्राणीक सुख-दुख के अपन सुख-दुखक समान समझैत अछि आओर सब केँ समभाव सँ देखैत अछि ओहे श्रेष्ठ योगी छथि। अर्जुन कहलखिन हे मधुसूदन! अहाँ जे योग सिखेलहुँ कि सबकेँ अपने समान देखी, ओ मनक चंचल भेलाक कारण ओकर दृष्टि स्थितिमे अपनामे नहि दिखाइत अछि। हे कृष्ण! चंचल मन बड़ हठी होइत अछि। ओकरा अधीन राखव तो हमरा वायु केँ बाँध राखैक समान प्रतीत होइत अछि। भगवान् श्रीकृष्ण कहलखिन-हे महाबाहो! एहिमे संदेह नहि कि मन अत्यन्त चंचल होइत अछि, एकरा वशमे करब अत्यन्त कठिन अछि तो भी अभ्यास कएला पर एकरा आधीन कएल जा सकैत अछि। जकर मन वशमे नहि अछि हुनका योग अत्यन्त दुर्लभ अछि। अर्जुन कहलखिन हे कृष्ण! जकरामे श्रद्धा तो अछि परन्तु जे योग करबामे सफल नहि भेला अछि आओर जकर चित्त योग सँ विचलित भऽ गेलै अछि, ओ योग सिद्धि नहि प्राप्त केला सँ कोन गति केँ जा पहुँचैत अछि? हे महाबाहो! जकर पहिल आश्रय भी चल गेलै आओर ब्रह्म प्राप्ति भी नहि भेलै ओ दूनू ओर सँ भ्रष्ट भऽकऽ विभिन्नमेघक समान नष्ट तो नहि भऽ जाइत अछि? हे कृष्ण! हमर ई सन्देह अहाँ केँ दूर कर पड़त, एकरा दूर करएवाला अहाँक अतिरिक्त क्यो अन्य नहि छथि। श्रीभगवान् कहलखिन हे तात् पार्थ! ओकर एतय नाश नहि हेतै आओर परलोकमे भी नहि हेतै किएक तऽ उत्तम कार्य करएवाला कोनो मनुष्यक दुर्गति नहि होइत अछि। ओ योगमे असफल मनुष्य बहुत दिन तक पुण्यवान केँ प्राप्त हुअवाला लोकमे वास करैत अछि आओर ओ पुनः कोनो पवित्र आओर धनवानक घरमे आ जन्मैत अछि अथवा ओ बुद्धिमान योगीक कुलमे ही जन्म लैत अछि। एहि प्रकारक जन्म पाएब एहि लोकमे बहुत ही दुर्लभ अछि। हे कुरुनन्दन! ओ योगीक वंशमे जन्म लऽकऽ पूर्व जन्मक बुद्धि संस्कार अर्थात् आत्मज्ञान केँ पाबैत अछि आओर ओहि सँ अधिक सिद्धिक लेल प्रयास करैत अछि। पूर्व जन्ममे कैल योगाभ्यासक बलसँ अनेक विघ्न पड़ला पर भी मोक्ष केँ प्राप्त करैत अछि। योगक यदि केवल इच्छा ही हो तो भी पुरुष शब्द ब्रह्मक पार जा पहुँचैत अछि। कठिन श्रम आओर यत्न सँ जे योगाभ्यास करैत अछि ओ पाप सँ शुद्ध भऽकऽ अनेक जन्ममे कठिन परिश्रमक सफल

होइत अछि आओर परमगति कें प्राप्त करैत अछि। पैघ-पैघ तपस्वी सँ योगी श्रेष्ठ छथि, ज्ञानी सँ भी योगी श्रेष्ठ छथि। अतः हे अर्जुन! अहाँ योगी बनू। केवल हमरामे ही मन लगा कें हमर प्राप्तिक लेल जे हमर भजन करैत अछि, हुनका समस्त योगीक मध्य हम अत्यन्त श्रेष्ठ मानैत छी। ओ सबमे सर्वोच्च अछि। इहे हमर अभिप्राय अछि। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक छठम अध्याय ध्यानयोग पूर्ण भेल।





भगवान् श्री कृष्ण

अध्याय-सात



भगवद्ज्ञान

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥१॥

श्रीभगवान् उवाच– भगवान् कृष्ण कहलखिन; **मयि**– हमरामे; **आसक्त मनाः**– आशक्त मनवाला; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **योगम्**– आत्म साक्षात्कार; **युञ्जन्**– अभ्यास करैत; **मत् आश्रयः**– हमर चेतना (कृष्ण चेतना)मे; **असंशयम्**– निस्सन्देह; **समग्रम्**– पूर्णतया; **माम्**– हमरा; **यथा**– जाहि प्रकार; **ज्ञास्यसि**– जानि सकैत हो; **तत्**– ओ; **शृणु**– सुनो।

श्रीभगवान् कहलखिन– हे पृथापुत्र! आब सुनु कि अहाँ कोन तरह हमर भावना सँ पूर्ण भऽकऽ आओर मन केँ हमरामे आसक्तक योगाभ्यास करैत हमरा पूर्णतया संशयरहित जानि सकैत छी।

तात्पर्यः भक्ति योग भौतिक मोहक कठिन ग्रंथि केँ भेदैत अछि आओर भक्त केँ **'असंशयं समग्रम्'** अर्थात परम सत्य श्रीभगवान् केँ समझबाक अवस्था केँ प्राप्त होइत अछि। अतः श्रीकृष्ण सँ या कृष्णभावनाभावित भक्तक मुख सँ सुनि कऽ जानल जा सकैत अछि।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥२॥

ज्ञानम्– प्रत्यक्ष ज्ञान; **ते**– अहाँ सँ; **अहम्**– हम; **स**– सहित; **विज्ञानम्**– दिव्यज्ञान; **इदम्**– ई; **वक्ष्यामि**– कहब; **अशेषतः**– पूर्णरूप सँ; **यत्**– जकरा; **ज्ञात्वा**– जानिकऽ; **न**– नहि; **इह**– एहि संसारमे; **भूयः**– आगाँ; **अन्यत्**– अन्य किछु; **ज्ञातव्यम्**– जानए योग्य; **अवशिष्यते**– शेष रहैत अछि।

आब हम अहाँ सँ पूर्णरुप सँ व्यावहारिक तथा दिव्यज्ञान कहब। एकरा जान लेला पर अहाँ केँ जानवाक लेल किछु भी शेष नहि रहत।

तात्पर्यः पूर्ण ज्ञानमे प्रत्यक्ष जगत एकरा पाछाँ काम कर वाला आत्मा तथा एहि दूनूक उद्‌गम सम्मिलित अछि। ई दिव्यज्ञान अछि। भगवान् उपर्युक्त ज्ञान पद्धति बतब चाहैत छथि, किएक तऽ अर्जुन हुनकर विश्वस्त भक्त तथा मित्र छथिन। जखन समस्त कारणक पता चल जाइत अछि, तो सब ज्ञेय वस्तु ज्ञात भऽ जाइत अछि आओर किछु भी अज्ञेय नहि रहि जाइत अछि। मनुष्य केँ समस्त ज्ञानक उद्‌गम जानबाक चाही जे समस्त कारणक कारण अछि।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥३॥

मनुष्याणाम्– मनुष्य मे; **सहस्त्रेषु**– हजार; **कश्चित्**– कोनो एक; **यतति**– प्रयत्न करैत अछि; **सिद्धये**– सिद्धिक लेल; **यतताम्**– एहि प्रकार, प्रयत्न कर वाला; **अपि**– निसन्देह; **सिद्धनाम्**– सिद्ध लोग मे सँ; **कश्चित्**– कोनो एक; **माम्**– हमरा; **वेत्ति**– जानैत अछि; **तत्त्वतः**– वास्तव मे।

कई हजार मनुष्यमे सँ क्यो एक सिद्धिक लेल प्रयत्नशील होइत अछि आओर एहि तरह सिद्धि प्राप्त कर वालामे सँ बिरला ही क्यो एक हमरा वास्तवमे जानि पाबैत अछि।

तात्पर्यः मनुष्यक विभिन्न कोटि अछि आओर हजारों मनुष्यमे सँ शायद बिरला मनुष्य ही ई जानमे रुचि राखैत अछि कि आत्मा की अछि आ शरीर की अछि आओर परम सत्य की अछि। सामान्यतया मानव आहार, निद्रा, भय आओर मैथून सनक पशुवृत्तिमे लागल रहैत अछि

आओर मुश्किल सँ क्यो एक दिव्यज्ञानमे रुचि राखैत अछि। कुंठित इन्द्रियक द्वारा कृष्ण केँ तत्त्वत: नहि समझल जा सकैत अछि। किन्तु भक्तक द्वारा कैल गेल अपन दिव्यसेवा सँ प्रसन्न भऽकऽ ओ भक्तजन केँ आत्म तत्त्व प्रकाशित करैत छथिन।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।४।।

भूमि- पृथ्वी; **आप**ः- जल; **अनल**ः- अग्नि; **वायु**ः- वायु; **खम्**- आकाश; **मन**ः- मन; **बुद्धि**ः- बुद्धि; **एव**- निश्चय ही; **च**- तथा; **अहंकार**ः- अहंकार; **इति**- एहि प्रकार; **इयम्**- ई सब; **मे**- हमर; **भिन्ना**- पृथक; **प्रकृति**ः- शक्ति; **अष्टधा**- आठ प्रकारक।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि तथा अहंकार-ई आठ प्रकार सँ विभक्त हमर अपरा (भिन्न) प्रकृति अछि।

तात्पर्य: भगवानक निभिन्न पुरुष अवतार (विस्तार)क शक्ति केँ प्रकृति कहल जाइत अछि। सृष्टिक लेल भगवान् कृष्णक स्वांश तीन विष्णुक रुप धारण करैत अछि। पहिने महाविष्णु छथि, जे सम्पूर्ण भौतिक शक्ति महत्तत्व केँ उत्पन्न करैत छथि। द्वितीय गर्भोदकशायी विष्णु छथि जे समस्त ब्रह्माण्डमे प्रवृष्टि भऽकऽ ओहिमे विविधता उत्पन्न करैत छथि। तृतीय क्षीरोदकशायी विष्णु छथि जे समस्त ब्रह्माण्डमे सर्वव्यापी परमात्माक रुपमे फैलल छथि आओर परमात्मा कहलाबैत छथि। ओ प्रत्येक परमाणु तकक भीतर उपस्थित छथि जे क्यो भी एहि तीनू विष्णु रूप केँ जानैत छथि ओ भवबन्धन सँ मुक्त भऽ जाइत छथि। भौतिक शक्ति आठ प्रधान रुपमे व्यक्त होइत अछि। एहिमे सँ प्रथम पाँच-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश स्थूल अथवा विराट सृष्टि कहल जाइत अछि जाहिमे पाँच इन्द्रिय विषय जकर नाम अछि-शब्द, स्पर्श, रुप, रस तथा गंध सम्मलित रहैत अछि। भौतिक विज्ञानमे इहे दस तत्त्व अछि। किन्तु अन्य तीन तत्त्व केँ जकर नाम-मन, बुद्धि तथा अहंकार अछि, भौतिकवादी उपेक्षित राखैत अछि। दार्शनिक भी जे मानसिक कार्यकलाप सँ सम्बन्ध राखैत अछि, पूर्णज्ञानी नहि छथि किएक तऽ ओ परम उद्गम कृष्ण केँ नहि जानैत छथि। मिथ्या अहंकार-हम छी तथा हमर ई अछि- जे कि

संसारक मूल कारण अछि एहिमे विषय भोगक दस इन्द्रियक समावेश अछि। बुद्धि महत्तत्व नामक समग्र भौतिक सृष्टिक सूचक अछि। अतः भगवानक आठ विभिन्न शक्ति सँ जगतक चौबीस तत्त्व प्रकट अछि जे नास्तिक सांख्य दर्शनक विषय अछि। सांख्य दर्शनक विवेचनाक विषय भगवानक बहिरंगा शक्तिक प्राकट्य अछि।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।५।।

अपरा– निकृष्ट; **इयं**– ई; **इतः**– एकर अतिरिक्त; **तु**– लेकिन; **अन्याम्**– अन्य; **प्रकृतिम्**– प्रकति केँ; **विद्धि**– जानवाक प्रयत्न; **मे**– हमर; **पराम्**– उत्कृष्ट, चेतन; **जीव भूताम्**– जीवएवला; **महाबाहो**– हे बलिष्ठ भुजावाला; **यया**– जकरा द्वारा; **इदम्**– ई; **धार्यते**– प्रयुक्त कएल जाइत अछि; **जगत्**– संसार।

हे महाबाहु अर्जुन! एकर अतिरक्त हमर एक अन्य परा शक्ति अछि जे ओहि जीव सँ युक्त अछि, जे एहि भौतिक अपरा प्रकृतिक साधनक विदोहनक रहल अछि।

तात्पर्यः हे परम शाश्वत! यदि सब देहधारी जीव अहीक तरह शाश्वत एवं सर्वव्यापी होइत तो ओ अहाँक नियन्त्रणमे नहि होइत। किन्तु यदि जीव केँ अहाँक सूक्ष्म शक्तिक रुपमे मानि लेल जाय तखन तो ओ सब अहाँक परम नियन्त्रणमे आबि जाइत अछि। अतः वास्तविक मुक्ति तो अहाँक शरण जेवाक अछि आओर एहि शरणागति सँ ओ सुखी हेताह। शक्तिक नियन्त्रण सदैव शक्तिमान करैत अछि, अतः जीव सदैव भगवान् द्वारा नियन्त्रित होइत अछि। जीवक अपन कोनो स्वतंत्र अस्तित्व नहि होइत अछि। जखन जीव शक्ति भौतिक कल्मष सँ मुक्त भऽ जाइत अछि तो ओ पूर्णतया कृष्णभावनाभावित या बन्धन मुक्त भऽ जाइत अछि।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।६।।

एतत्– ई दूनू शक्ति; **योनीनि**– जकर जन्मक श्रोत; **भूतानि**– प्रत्येक सृष्ट पदार्थ; **सर्वाणि**– सब; **इति**– एहि प्रकार; **उपधारय**– जानू; **अहं**– हम; **कृत्स्नस्य**– सम्पूर्ण; **जगतः**– जगतक; **प्रभवः**– उत्पत्तिक कारण; **प्रलयः**–

प्रलय, संहार; **तथा**– आओर।

सब प्राणीक उद्गम एहि दूनू शक्तिमे अछि। एहि जगतमे जे किछु भौतिक तथा आध्यात्मिक अछि, ओकर उत्पत्ति तथा प्रलय हमरा ही जानू।

तात्पर्यः आत्मा तथा पदार्थ मूलतः भगवानक दू टा शक्ति अछि, जकर संयोग सँ विराट ब्रह्माण्ड प्रकट होइत अछि। आत्मा सृष्टिक मूल क्षेत्र अछि आओर पदार्थ आत्मा द्वारा उत्पन्न कएल जाइत अछि। भौतिक विकासक कोनो भी अवस्थामे आत्माक उत्पत्ति नहि होइत अछि।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥७॥

मत्तः– हमरा सँ परे; **पर तरम्**– श्रेष्ठ; **न**– नहि; **अन्यत् किञ्चित्**– अन्य किछु भी; **अस्ति**– अछि; **धनञ्जय**– हे धनक विजेता; **मयि**– हमरा मे; **सर्वम्**– सब किछु; **इदम्**– ई जे हम देखैत छी; **प्रोतम्**– गुँथल; **सूत्रे**– धागामे; **मणिगणा**– मोतीक दाना; **इव**– सदृश।

हे धनञ्जय! हमरा सँ क्यो श्रेष्ठ नहि अछि। जेना मोती धागामे गुँथल रहैत अछि तहिना सब किछु हमरा पर ही आश्रित अछि।

तात्पर्यः भगवान् श्रीकृष्ण सँ बढ़िक कोनो सत्य नहि किएक ओ श्रेष्ठतम छथि। ओ सूक्ष्म सँ भी सूक्ष्मतर छथि आओर महान सँ भी महान्तर छथि। ओ मूक वृक्षक समान स्थित छथि तथा दिव्य आकाश केँ प्रकाशित करैत छथि। जाहि प्रकार वृक्ष अपन जड़ि फैलबैत अछि, ओ भी अपन विस्तृत शक्तिक प्रसार करैत छथि। एतै निष्कर्ष निकलैत अछि जे परम सत्य श्रीभगवान् छथि जे अपन विविध परा–अपरा शक्तिक द्वारा सर्वव्यापी छथि।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥८॥

रसः– स्वाद; **अहं**– हम; **अप्सु**– जल मे; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **प्रभा**– प्रकाश; **अस्मि**– छी; **शशिसूर्ययोः**– चन्द्रमा तथा सूर्यक; **प्रणवः**– ओंकारक; **अ उ म**– ई तीन अक्षर; **सर्व**– समस्त; **वेदेषु**– वेद सब मे; **शब्दः**– शब्द, ध्वनि; **खे**– आकाशमे; **पौरुषम्**– सामर्थ्य; **नृषु**– मनुष्य में।

हे कुन्तीपुत्र! हम जलक स्वाद छी, सूर्य तथा चन्द्रमाक प्रकाश छी, वैदिक मंत्रमे ओंकार छी, आकाशमे ध्वनि छी तथा मनुष्यमे सामर्थ्य छी।

तात्पर्यः जेना सूर्यदेवता एक पुरुष छथि एवं अपन सर्वव्यापी शक्ति सूर्यप्रकाश–द्वारा अनुभव कैल जाइत छथि, ओहिना भगवान् अपन परमधाममे रहैत भी अपन सर्वव्यापी शक्तिक द्वारा अनुभव कैल जाइत छथि। कृष्णभावनामृतक क्षेत्र व्यापक अछि आओर जे एहि भावनामृत केँ जानैत अछि ओ धन्य छथि।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु॥९॥

पुण्यः– मूल, आद्य; **गन्धः**– सुगंध; **पृथिव्याम्**– पृथ्वी मे; **च**– भी; **तेजः**– प्रकाश; **अस्मि**– छी; **विभावसौ**– अग्नि मे; **जीवनम्**– प्राण; **सर्व**– समस्त; **भूतेषु**– जीव सब मे; **तपः**– तपस्या; **तपस्विषु**– तपस्वी सब मे।

हम पृथ्वीक आद्य सुगंध छी आओर अग्निक उष्मा छी। हम समस्त जीवक जीवन एवं तपस्वीजनक तप छी।

तात्पर्यः बुद्धियोगमे हम एहि बात सँ अवगत होइत छी कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा प्रत्येक सक्रिय तत्त्व, सब रसायन एवं सब भौतिक तत्त्व भगवानक कारण अछि। मनुष्यक आयु भी भगवानक कारण अछि। अतएव भगवानक कृपा सँ ही मनुष्य अपना केँ दीर्घायु या अल्पजीवी बना सकैत अछि।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥१०॥

बीजम्– बीज; **माम्**– हमरा; **सर्व भूतानाम्**– समस्त जीवक; **विद्धि**– जानबाक प्रयास करु; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **सनातनम्**– शाश्वत; **बुद्धिः मताम्**– बुद्धिमानक; **अस्मि**– छी; **तेजः**– तेज; **तेजास्विनाम्**– तेजस्वी सबहक; **अहं**– हम।

हे पृथापुत्र! ई जानि लिअ कि हम ही समस्त जीवक आदि बीज छी, बुद्धिमानक बुद्धि तथा समस्त तेजस्वी पुरुषक तेज छी।

तात्पर्यः वैदिक साहित्य–कठोपनिषद्मे एकर पुष्टि भेलै अछि कि भगवान् समस्त नित्यक नित्य छथि। ओ समस्त जीवक परमजीव छथि आओर ओ ही समस्त जीवक पालनकर्त्ता छथि। भगवान् कहै छथि कि ओ ही समस्त बुद्धिक मूल छथि। जाधरि मनुष्य बुद्धिमान नहि हैत, ओ भगवान् कृष्ण केँ नहि समझि सकत।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥११॥

बलम्– शक्ति; **बलवतां**– बलवानक; **च**– तथा; **अहं**– हम; **काम**– विषयभोग; **राग**– आसक्ति सँ; **विवर्जितम्**– रहित; **धर्म अविरुद्धः**– जे धर्म केँ विरुद्ध नहि अछि; **भूतेषु**– समस्त जीवमे; **अस्मि**– छी; **भरत ऋषभ**– हे भारतवंशियोमे श्रेष्ठ।

हम बलवान सबहक कामना तथा इच्छा सँ रहित बल छी। हे भरतश्रेष्ठ (अर्जुन)! हम ओ काम छी, जे धर्मक विरुद्ध नहि अछि।

तात्पर्यः बलवान पुरुषक शक्तिक उपयोग दुर्बल जनक रक्षाक लेल होमक चाही, व्यक्तिगत आक्रमणक लेल नहि एहि प्रकार धर्मसम्मत मैथून सन्तानोत्पत्तिक लेल होमक चाही। अतः माता–पिताक उत्तरदायित्व अछि कि ओ अपन सन्तान केँ कृष्णभावनाभावित बनाबथि।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥१२॥

ये– जे; **च**– तथा; **एव**– निश्चय ही; **सात्त्विका**– सतोगुणी; **भावाः**– भाव; **राजसाः**– रजोगुणी; **तामसाः**– तमोगुणी; **मत्त**– हमरा सँ; **इति**– एहि प्रकार; **तान्**– हुनका; **विद्धि**– जानू; **न**– नहि; **तू**– लकिन; **तेषु**– हुनका मे; **ते**– ओ; **मयि**– हमरा मे।

अहाँ जानि लिय कि हमर शक्ति द्वारा समस्त गुण प्रकट होइत अछि, चाहे ओ सतोगुण हो, रजोगुण हो या तमोगुण हो। एक प्रकार सँ हम ही सब किछु छी, किन्तु छी स्वतंत्र। हम प्रकृतिक गुणक अधीन नहि छी, अपितु ओ हमरा अधीन अछि।

तात्पर्यः प्रकृतिक सबगुण–सतो, रजो आओर तमोगुण–भगवान् कृष्ण सँ उद्भूत अछि किन्तु भगवान् कृष्ण प्रकृतिक अधीन नहि छथि। अतः

ओ निर्गुण छथि। ई भगवानक विशेष लक्षण अछि।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥१३।

त्रिभिः– तीन; **गुण मयैः**– गुण सँ युक्त; **भावैः**– भावक द्वारा; **एभिः**– एहि; **सर्वम्**– सम्पूर्ण; **इदम्**– ई; **जगत्**– ब्रह्माण्ड; **मोहितम्**– मोहग्रस्त; **न अभिजानाति**– नहि जानैत; **माम्**– हमरा; **एभ्यः**– एहि सँ; **परम्**– परम; **अव्ययम्**– अव्यय, सनातन।

तीनू गुण (सतो, रजो तथा तमो)क द्वारा मोहग्रस्त ई समस्त संसार हमर गुणातीत एवं अविनाशी केँ नहि जानैत अछि।

तात्पर्यः प्रकृतिक तीनू गुणक अन्तर्गत कार्य करएवला मनुष्यक चारि श्रेणी अछि। जे नितान्त सतोगुणी छथि ओ ब्राह्मण, जे रजोगुणी छथि ओ क्षत्रिय आओर जे रजोगुणी एवं तमोगुणी दूनू छथि ओ वैश्य कहलाबैत छथि तथा जे नितान्त तमोगुणी छथि ओ शूद्र कहलाबैत छथि। यद्यपि ई जीवन नश्वर अछि आओर हम नहि जानि पाबैत छी कि अगिला जन्ममे हम की हैव, किन्तु मायाक वशमे रहिक हम प्रकृतिक गुणमे बँध जाइत छी, तखन हम ओहि भगवान् केँ विसरि जाइत छी जे एहि गुणक मूलमे छथि। भगवानक कहब अछि कि समस्त जीव प्रकृतिक एहि गुण द्वारा मोहित भऽ कै ई नहि समझि पावैत अछि कि एहि संसारक पृष्ठभूमिमे भगवान् छथि।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥१४॥

दैवी– दिव्य; **हि**– निश्चय ही; **एषा**– ई; **गुणमयी**– तीनू गुण सँ युक्त; **मम**– हमर; **माया**– शक्ति; **दुरत्यया**– पार करब कठिन, दुस्तर; **माम्**– हमर; **एव**– निश्चय ही; **ये**– जे; **प्रपद्यन्ते**– शरण ग्रहण करैत छथि; **मायाम् एताम्**– एहि माया केँ; **तरन्ति**– पार कऽ जाइत अछि; **ते**– ओ।

प्रकृतिक तीनू गुणवाली एहि हमर दैवी शक्ति केँ पार करब दुस्तर अछि। किन्तु जे हमर शरणागत भऽ जाइत अछि ओ सरलता सँ एकरा पार कऽ लैत अछि।

तात्पर्यः एहिमे सन्देह नहि कि विष्णु ही सबहक मुक्तिदाता छथि।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥१५॥

न– नहि; **माम्**– हमर; **दृष्कृतिनः**– दुष्ट; **मूढ़ाः**– मूर्ख; **प्रपद्यन्ते**– शरण ग्रहण करैत अछि; **नराधमाः**– मनुष्यमे अधम; **मायया**– मायाक द्वारा; **अपहृत**– चुरायल गेल; **ज्ञानाः**– ज्ञानबला; **आसुरम्**– आसुरी; **भावम्**– प्रकृति या स्वभाव केँ; **आश्रिताः**– स्वीकार केने।

जे निपट मूर्ख अछि, जे मनुष्यमे अधम अछि, जकर ज्ञान माया द्वारा हर लेल गेलै अछि तथा जे असुरक नास्तिक प्रकृति केँ धारण करएबला अछि, एहन दुष्ट हमर शरण ग्रहण नहि कऽ सकत।

तात्पर्यः गीतामे स्पष्ट कहल गेलै अछि कि भौतिक शक्ति परमेश्वरक पूर्ण निर्देशनमे कार्य करैत अछि। ओकर कोनो स्वतंत्र प्रभुत्व नहि अछि। जाहि प्रकार छाया पदार्थक अनुशरण करैत अछि, ओहि प्रकार ई शक्ति भी कार्य करैत अछि। तेँ ओ ई भौतिक शक्ति अत्यन्त प्रबल अछि आओर नास्तिक अपन अनीश्वरवादी स्वभावक कारणेँ ई नहि जानि सकैते अछि कि ओ कोन तरहक कार्य करैत अछि, न ही ओ परमेश्वरक योजना केँ जानि सकैत अछि। मोह तथा रजो एवं तमो गुणमे रहिक ओकर समस्त योजना ओहि प्रकार ध्वस्त भऽ जाइत अछि जाहि प्रकार भौतिक दृष्टि सँ विद्वान, दार्शनिक तथा शासक होइतो भी हिरण्यकशिपु तथा रावणक सब योजना ध्वस्त भऽ गेल छलै। ई दृष्कृति या दुष्ट चारि प्रकारक होइत अछि–मूढ़, नराधम, माययापहृतज्ञाना (माया द्वारा हरित ज्ञान वाला) एवं आसुरी सिद्धान्तवाला।

मूढ़– ओ जे कठिन श्रम करएबला भारवाही पशुक भाँति निपट मूर्ख होइत अछि। ओ अपन श्रमक लाभ स्वयं उठब चाहैत अछि, अतः ओ भगवान् केँ ओकरा अर्पित नहि करै चाहैत अछि। एहि तरहक मूर्ख कर्मी एहि नश्वर जगत्क इन्द्रिय केँ सुख दिअवला सब समाचार केँ निरन्तर सुनैत रहैत अछि किन्तु संसारक शाश्वत गतिशील जीवित शक्ति (प्राण) क विषयमे सुनैमे तनिक भी समय नहि लगबैत अछि।

नराधम– चौरासीलाख जीव योनिमे सँ चारि लाख मानव योनि अछि। एहिमे अनेक निम्न मानव योनि अछि, जाहिमे सँ अधिकांश असंस्कृत

अछि। जकर कोनो धर्म नहि होइत ओ नराधम मानल जाइत अछि। जे नराधम भगवान् द्वारा बहिष्कृत कैल जाइत अछि, ओ केवल भगवत्भक्तक अनुकम्पा सँ पुनः अपन आध्यात्मिक भावनामृत प्राप्त कऽ सकैत अछि।

माययापहृतज्ञाना– एहन व्यक्तिक जकर प्रकाण्ड ज्ञान मायाक प्रभाव सँ शून्य भऽ चुकल अछि, ई अधिकांशतः बुद्धिमान व्यक्ति होइत छथि–यथा महान दार्शनिक, कवि, साहित्यकार आदि किन्तु माया हिनकाँ भ्रमित कै दैत अछि, जाहि कारणेँ ई परमेश्वरक अवज्ञा करैत छथि।

आसुरं भावमाश्रिताः–(आसुरी सिद्धान्तबला) एहि श्रेणीक व्यक्ति खुले रुप सँ नास्तिक होइत अछि। हिनकामे किछु तर्क करैत अछि कि परमेश्वर कहियो भी एहि संसारमे अवतरिक नहि भऽ सकैत अछि, किन्तु ओ एकर ठोस प्रमाण नहि बता पाबैत अछि कि एना किएक नहि भऽ सकैत अछि। एहि वर्गक लोग जिनका जीवनक एकमात्र उद्देश्य भगवान् केँ नकारना अछि, ओ कहियो शरणागत नहि भऽ सकताह।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।१६।।

चतुः विधाः– चारि प्रकारक; **भजन्ते**– सेवा करैत अछि; **माम्**– हमर; **जनाः**– व्यक्ति; **सुकृतिनः**– पुण्यात्मा; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **आर्तः**– पीड़ित; **जिज्ञासुः**– ज्ञानक जिज्ञासु; **अर्थ अर्थी**– लाभक इच्छा राखएवाला; **ज्ञानी**– वस्तुक सही रुप सँ जानवाला; **भरत ऋषभ**– हे भरतश्रेष्ठ।

हे भरतश्रेष्ठ! चारि प्रकारक पुण्यात्मा हमर सेवा करैत अछि– आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी।

तात्पर्यः ओ जे पीड़ित अछि, जकरा धनक आवश्यकता अछि, जिनका जिज्ञासा अछि आओर ओ जिनका परम सत्यक ज्ञान अछि। ई सब लोग विभिन्न परस्थितिमे परमेश्वरक भक्ति करैत रहैत छथि परन्तु ओ शुद्ध भक्त नहि छथि किएक ओ भक्तिक बदलामे महत्वाकांक्षीक पूर्ति करै चाहैत छथि। शुद्ध भक्ति निष्काम होइत अछि, एहिमे कोनो प्रकारक लाभक आकांक्षा नहि रहैत।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।१७।।

तेषाम्– ओहिमे सँ; **ज्ञानी**– ज्ञानवान; **नित्ययुक्तः**– सदैव तत्पर; **एक**– एक मात्र; **भक्तिः**– भक्ति मे; **विशिष्यते**– विशिष्ट अछि; **प्रियः**– अतिशय प्रिय; **हि**– निश्चय ही; **ज्ञानिनः**– ज्ञानवानक; **अत्यर्थम्**– अत्यधिक; **अहं**– हम; **सः**– ओ; **च**– भी; **मम**– हमर।

एहिमे सँ जे परमज्ञानी अछि आओर शुद्ध भक्तिमे लागल रहैत अछि, ओ सर्वश्रेष्ठ छथि, किएक कि हम हुनकर अत्यन्त प्रिय छी एवं ओ हमर प्रिय छथि।

तात्पर्यः भौतिक इच्छाक समस्त कल्मष सँ मुक्त आर्त, जिज्ञासु, धनहीन तथा ज्ञानी ई सब शुद्ध भक्त बनि सकैत अछि। किन्तु एहिमे सँ जे परम सत्यक ज्ञानी अछि आओर भौतिक इच्छा सँ मुक्त होइत अछि ओहै भगवानक शुद्ध भक्त भऽ पाबैत अछि।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥१८॥

उदाराः– विशाल हृदयवाला; **सर्वे**– सब; **एव**– निश्चय ही; **एते**– ई सब; **ज्ञानी**– ज्ञानवाला; **तु**– लेकिन; **आत्मा एव**– हमरा समान ही; **मे**– हमर; **मतम्**– मत मे; **आस्थितः**– स्थित; **सः**– ओ; **हि**– निश्चय ही; **युक्त आत्मा**– भक्तिमे तत्पर; **माम्**– हमर; **अनुत्तमाम्**– सर्वोच्च; **गतिम्**– लक्ष्य।

निस्सन्देह ई सब उदारचेता व्यक्ति अछि, किन्तु जे हमर ज्ञान केँ प्राप्त अछि, ओकरा हम अपने ही समान मानैत छी। ओ हमर दिव्य सेवामे तत्पर रहिकै हमर सर्वोच्च उद्देश्य केँ निश्चित रुप सँ प्राप्त करैत अछि।

तात्पर्यः भगवान् कहैत छथि जे भक्तगण सदैव हमरा हृदयमे वास करैत अछि, आओर हम भक्तक हृदयमे वास करैत छी। भक्त हमरा अतिरिक्त आओर किछु नहि जानैत अछि आ हमहूँ भक्त केँ कौखन नहि बिसरैत छियै। हमरा तथा शुद्ध भक्तक बीच घनिष्ट सम्बन्ध रहैत अछि। ज्ञानी शुद्ध भक्त कौखन भी आध्यात्मिक सम्पर्क सँ दूर नहि होइछ, अतः ओ हमरा अत्यन्त प्रिय अछि।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥१९॥

बहूनाम्– अनेक; **जन्मनाम्**– जन्म एवं मृत्युक चक्रक; **अन्ते**– अन्त मे; **ज्ञानवान्**– ज्ञानी; **माम्**– हमर; **प्रपद्यते**– शरण ग्रहण करैत अछि; **वासुदेवः**– भगवान् कृष्ण; **सर्वम्**– सब किछु; **इति**– एहि प्रकार; **सः**– एहन; **महात्मा**– महान् आत्मावला; **सुदुर्लभः**– अत्यन्त दुर्लभ अछि।

अनेक जन्म-जन्मान्तरक बाद जकरा सचमुच ज्ञान होइत अछि, ओ हमरा समस्त कारणक कारण जानिक हमरा शरणमे आबैत अछि। एहन महात्मा अत्यन्त दुर्लभ होइत अछि।

तात्पर्यः अनेक जन्मक पश्चात् दिव्यज्ञान केँ प्राप्त भेलाक बाद ओ अनुभव करैत अछि कि प्रत्येक वस्तुक परमेश्वर कृष्ण सँ सम्बन्ध अछि। एहि प्रकार ओ प्रत्येक वस्तु केँ वासुदेव श्रीकृष्ण सँ सम्बन्धित समझैत अछि। वासुदेव सर्वव्यापी छथि एवं प्रत्येक वस्तु वासुदेव अछि। अतः भक्त पूर्णज्ञानमे रहि कऽ शरण ग्रहण करैत अछि।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः　　प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥२०॥

कामैः– इच्छा द्वारा; **तैः तैः**– ओकरा ओकरा; **हृत**– विहीन; **ज्ञानाः**– ज्ञान सँ; **प्रपद्यन्ते**– शरण लैत अछि; **अन्य**– अन्य, दोसर; **देवताः**– देवताक; **तम् तम्**– ओकर ओकर; **नियमम्**– विधानक; **आस्थाय**– पालन करैत; **प्रकृत्या**– स्वभाव सँ; **नियताः**– वशमे भेल; **स्वया**– अपने आप।

जकर बुद्धि भौतिक इच्छा द्वारा मारल गेलै अछि, ओ सब देवताक शरणमे जाइत अछि एवं ओ सब अपन-अपन स्वभावक मुताबिक पूजाक विशेष विधि-विधानक पालन करैत अछि।

तात्पर्यः जे समस्त भौतिक कल्मष सँ मुक्त भऽ चुकल अछि ओ भगवानक शरण ग्रहण करैत अछि। केवल भगवान् श्रीकृष्ण ही स्वामी छथि आओर अन्य सब दास अछि। अतः शुद्ध भक्त हमेशा परमेश्वर पर निर्भर रहैत अछि। फलतः जे किछु प्राप्त होइत अछि ओही सँ भक्त संतुष्ट रहैत छथि।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥२१॥

यःयः– जे जे; **याम् याम्**– जकरा जकरा; **तनुम्**– देवताक रुप केँ; **भक्तः**– भक्त; **श्रद्धया**– श्रद्धा सँ; **अर्चितुम्**– पूजा करक लेल; **इच्छति**– इच्छा करैत अछि; **तस्य तस्य**– ओकर–ओकर; **अचलाम्**– स्थिर; **श्रद्धाम्**– श्रद्धा केँ; **ताम्**– ओकर; **एव**– निश्चय ही; **विदधामि**– दैत छी।

हम प्रत्येक जीवक हृदयमे परमात्मा स्वरुप स्थित छी। जखन क्यो कोनो देवताक पूजा करैक इच्छा करैत अछि, हम ओकर आस्था केँ स्थिर करैत छी, जाहि सँ ओ ओही विशेष देवताक भक्ति कऽ सके।

तात्पर्यः जीवात्मा तथा देवता दूनू ही परमेश्वरक इच्छाक अधीन अछि। परमात्मा रुपमे भगवान् देवताक हृदयमे भी स्थित रहैत छथि। अतः ओ देवताक माध्यम सँ जीवक इच्छा केँ पूरा करैक व्यवस्था करैत छथि। जीव एवं देवता दूनू ही परमात्माक इच्छा पर आश्रित छथि। ओ स्वतंत्र नहि छथि।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्॥२२॥

सः– ओ; **तथा**– ओ; **श्रद्धया**– श्रद्धा सँ; **युक्तः**– युक्त; **तस्य**– ओहि देवताक; **आराधनम्**– पूजाक लेल; **ईहते**– आकांक्षा करैत अछि; **लभते**– प्राप्त करैत अछि; **च**– तथा; **ततः**– ओहि सँ; **कामान्**– इच्छा केँ; **मया**– हमरा द्वारा; **एव**– ही; **विहितान्**– व्यवस्थित; **तान्**– ओ सब।

एहि श्रद्धा सँ समन्वित ओ देवता विशेषक पूजा करैत प्रयास करैत अछि आओर अपन इच्छाक पूर्ति करैत अछि। किन्तु वास्तविकता तो ई अछि कि ई सब लाभ केवल हमरा द्वारा ही प्रदत्त अछि।

तात्पर्यः भगवान् शुद्ध भक्त केँ ओ भौतिक लाभ नहि प्रदान करैत छथिन्ह, जकर कामना अल्पज्ञ जीव करैत रहैत अछि। जाहि कारणेँ ओ परमेश्वरक भक्ति नहि कऽ देवताक पूजामे लागल रहैत अछि।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥२३॥

अन्तवत्– नाशवान; **तु**– लेकिन; **फलम्**– फल; **तेषाम्**– हुनका; **तत्**– ओ; **भवति**– होइत अछि; **अल्पमेधसाम्**– अप्लज्ञक; **देवान्**– देवताक

पास; **देवयजः**– देवगण केँ पूजवला; **यान्ति**– जाइत अछि; **मत्**– हमर; **भक्ताः**– भक्तगण; **माम्**– हमरा पास; **अपि**– भी।

अल्पबुद्धि वाला व्यक्ति देवगणक पूजा करैत अछि आओर हुनका प्राप्त होमवला फल सीमित तथा क्षणिक होइत अछि। देवताक पूजा करएवाला देवलोक केँ जाइत अछि, किन्तु हमर भक्त अनन्तः हमर परमधाम केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः देवता सँ प्राप्त वर नाशवान होइत अछि किएक तऽ एहि भौतिक जगतक भीतर सब लोक, सब देवता तथा हुनक सब उपासक नाशवान अछि। अतः एहन पूजा केवल अल्पज्ञ द्वारा कैल जाइत अछि। परमेश्वरक भक्तिमे कृष्णभावनामृतमे संलग्न व्यक्ति ज्ञान सँ पूर्ण दिव्य आनन्दमय लोकक प्राप्ति करैत छथि। परमेश्वर असीम छथि, हुनकर अनुग्रह अनन्त अछि, हुनकर दया भी अनन्त अछि। अतः परमेश्वरक अपन शुद्ध भक्त पर कृपा भी असीम अछि।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥२४॥

अव्यक्तम्– अप्रकट; **व्यक्तिम्**– स्वरूप केँ; **आपन्नम्**– प्राप्त भेल; **मन्यते**– सोचैत अछि; **माम्**– हमरा; **अबुद्धयः**– अल्पज्ञानी व्यक्ति; **परम्**– परम; **भावम्**– सत्ता; **अजानन्तः**– बिना जानने; **मम**– हमर; **अव्ययम्**– अनश्वर; **अनुत्तमम्**– सर्वश्रेष्ठ।

बुद्धिहीन मनुष्य हमरा ठीक सँ नहि जाननाक कारण सोचैत अछि कि हम (भगवान् कृष्ण) पहिने निराकार छलहुँ आओर आब हम एहि स्वरूप केँ धारण केलहुँ अछि। ओ अपन अल्पज्ञानक कारण हमर अविनाशी तथा सर्वोच्च प्रकृति केँ नहि जानि पाबैत अछि।

तात्पर्यः देवताक उपासक केँ अल्पज्ञ कहल जा चुकल अछि आओर एहि श्लोकमे निर्विशेषवादी केँ भी अल्पज्ञ कहल गेलै अछि। भगवान् कृष्ण अपन साकार रूपमे एतै अर्जुन सँ बात कऽ रहला अछि, परन्तु तौखन भी निर्विशेषवादी अपन अज्ञानक कारणेँ तर्क करैत रहैत अछि कि परमेश्वरक अन्ततः कोनो स्वरूप नहि होइत। ब्रह्मसंहितामे ई बताओल गेल अछि कि केवल वेदान्त साहित्यक अध्ययन सँ भगवान्

केँ नहि समझल जा सकैत अछि। श्रीमद्भागवतमे बताओल गेल अछि कि निर्विशेष ब्रह्म सँ ही परम अनुभूति प्रारम्भ होइत अछि जे ऊपर उठैत अन्तर्यामी परमात्मा तक जाइत अछि, किन्तु परम् सत्यक अन्तिम अवस्था तऽ भगवाने छथि। तथ्य तऽ ई अछि जे कियो बिना भक्तिक तथा कृष्णभावनामृत विकसित केने बिना कृष्ण केँ नहि समझि सकैत अछि। एकर पुष्टि भागवतमे भेलै अछि–

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानति तत्त्वं भगवन् महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्।।

हे प्रभु! यदि क्यो अपनेक चरणकमलक रंचमात्र भी कृपा प्राप्त कऽ लैत अछि तऽ ओ अहाँक महानता केँ समझि सकैत अछि। किन्तु जे लोग भगवान् केँ समझबाक लेल मानसिक कल्पना करैत अछि ओ वेदक वर्षो तक अध्ययन कएला पर भी नहि समझि पाबैत अछि। क्यो नहि तऽ मनोधर्म द्वारा, न ही वैदिक साहित्यक व्याख्या द्वारा भगवान् कृष्ण या हुनकर रूप केँ समझि सकैत अछि। भगवद्गीतोमे हमसब स्पष्टतया समझि सकैत छी कि देवताक रूप तथा परमेश्वरक स्वरूप संग–संग विद्यमान अछि आओर भगवद्गीतामे हम एहि समस्त तथ्य केँ जानि सकैत छी। अतः हम ई नहि समझि पाबैत छी कि भगवान् कोन तरहेँ निर्विशेष छथि? जतए तक गीताक कथन अछि, ओकरा अनुसार निर्विशेषवादी अद्वैतवादीक ई आरोपित सिद्वान्त मिथ्या अछि। एतय ई स्पष्ट अछि कि परम सत्य भगवान् कृष्णक रूप आओर व्यक्तित्त्व दूनू अछि। भगवान् कृष्ण परमेश्वर छथि। हुनकर अपन लोक (गोलोक) अछि आओर देवता केँ भी अपन–अपन लोक अछि।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।।२५।।

न– न तो; **अहं**– हम; **प्रकाशः**– प्रकट; **सर्वस्य**– सबहक लेल; **योगमाया**– अन्तरंगा शक्ति सँ; **समावृतः**– आच्छादित; **मूढ़**– मूर्ख; **अयं**– ई; **अभिजानाति**– समझ सकैत अछि; **लोकः**– लोग; **माम्**– हमरा; **अजम्**– अजन्मा केँ; **अव्ययम्**– अविनाशी केँ।

हम मूर्ख तथा अल्पज्ञक लेल कौखन प्रकट नहि भेलौ अछि। ओकरा लेल तो हम अपन अंतरंगा शक्ति द्वारा आच्छादित रहैत

छी। अतः ओ ई नहि जानि पाबैत अछि कि हम अजन्मा तथा अविनाशी छी।

तात्पर्यः भगवान् अपन भक्तक समक्ष ही आनन्दक आगारक रुपमे प्रकट होइत छथि, किन्तु अल्पज्ञ अभक्तक लेल अपन अन्तरंगा शक्ति सँ आच्छादित रहैत छथि।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥२६॥

वेद– जानैत छी; **अहं**– हम; **समतीतानि**– भूतकाल केँ; **च**– तथा; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **भविष्याणि**– भविष्य केँ; **च**– भी; **भूतानि**– सब जीव केँ; **माम्**– हमरा; **तु**– लेकिन; **न**– नहि; **कश्चन**– क्यो।

हे अर्जुन! भगवानक नाते हम जे किछु भूतकालमे घटित भऽ चुकल अछि, जे वर्तमानमे घटित भऽ रहल अछि आओर जे आगाँ होमवला अछि, ओ सब किछु हम जानैत छी। हम समस्त जीव केँ भी जानैत छी, किन्तु हमरा क्यो नहि जानत।

तात्पर्यः जीवात्मा केँ शरीर बदललापर विगत जीवनक विषयमे सब किछु विस्मरण भऽ जाइत अछि। अतः क्यो भी भौतिक देहधारी अपन विगत जीवनक स्मृति बनाये नहि राखि पाबैत, न ही ओ भावी जीवनक विषयमे या वर्तमान जीवनक उपलब्धिक विषयमे भविष्यवाणीक सकैत अछि। ओ ई नहि जानैत अछि कि भूत, वर्तमान तथा भविष्यमे की घटि रहलै अछि। भौतिक कल्मष सँ मुक्त बिना भेले ई सम्भव नहि अछि।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप॥२७॥

इच्छा– इच्छा; **द्वेष**– घृणा; **समुत्थेन**– उदय भेला सँ; **द्वन्द्व**– द्वन्द्व सँ; **मोहेन**– मोहक द्वारा; **भारत**– हे भरतवंशी; **सर्व**– सब; **भूतानि**– जीव; **सम्मोहम्**– मोह केँ; **सर्गे**– जन्म ल कऽ; **यान्ति**– प्राप्त होइत अछि; **परन्तप**– हे शत्रुक विजेता।

हे भरतवंशी! हे शत्रुविजेता! समस्त जीव जन्म लकै इच्छा तथा घृणा सँ उत्पन्न द्वन्द्व सँ मोहग्रस्त भऽकऽ मोह केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्य: जीवक स्वाभाविक स्थिति शुद्ध ज्ञान रुप परमेश्वरक अधीन अछि। मोहवश जखन मनुष्य एहि शुद्धज्ञान सँ दूर भऽ जाइत अछि तो ओ मायाक वशीभूत भऽ जाइत अछि आओर भगवान् केँ नहि समझि पाबैत अछि।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥२८॥

येषाम्- जकर; **तु**- लेकिन; **अन्तगतम्**- पूर्णतया विनष्ट; **पापम्**- पाप; **जनानाम्**- मनुष्यक; **पुण्य**- पवित्र; **कर्मणाम्**- जिनकर पूर्वकर्म; **ते**- ओ; **द्वन्द्व**- द्वैतक; **मोह**- मोह सँ; **निर्मुक्ता**- मुक्त; **भजन्ते**- भक्तिमे तत्पर होइत अछि; **माम्**- हमरा; **दृढ़ व्रताः**- संकल्प पूर्वक।

जे मनुष्य सब पूर्वजन्ममे तथा एहि जन्ममे पुण्यकर्म कैलनि अछि आओर जिनकर पाप कर्मक पूर्णतया उच्छेदन भऽ चुकल होइत अछि, ओ मोहक द्वन्द्व सँ मुक्त भऽ जाइत अछि आओर ओ संकल्पपूर्वक हमर सेवामे तत्पर रहैत अछि।

तात्पर्य: श्रीमद्‌भागवतमे कहल गेलै अछि कि यदि कियो सचमुच मुक्ति चाहैत अछि तऽ ओकरा भक्तक सेवा करक चाही (**महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः**) किन्तु जे भौतिकवादी पुरुषक संगति करैत अछि ओ संसारक गहन अंधकारक ओर अग्रसर होइत जाइत अछि। भगवानक सब भक्त विश्वभरिक भ्रमण एहि लेल करैत छथि जाहि सँ ओ बद्धजीव केँ हुनक मोह सँ उबारि सकी।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥२९॥

जरा- वृद्धावस्था सँ; **मरण**- मृत्यु सँ; **मोक्षाय**- मुक्तिक लेल; **माम्**- हमर; **आश्रित्य**- आश्रय बनाक, शरण लऽकऽ; **ये**- ई; **ते**- एहन व्यक्ति; **तत्**- वास्तव मे; **विदुः**- ओ जानैत अछि; **कृत्स्नम्**- सब किछु; **अध्यात्मम्**- दिव्य; **कर्म**- कर्म; **च**- भी; **अखिलम्**- पूर्णतया।

जे जरा तथा मृत्यु सँ मुक्ति पाव लेल यत्नशील रहैत अछि, ओ बुद्धिमान व्यक्ति हमर भक्तिक शरण ग्रहण करैत अछि। ओ वास्तवमे ब्रह्म छथि किएक तऽ ओ दिव्य कर्मक विषयमे पूर्ण

रुपेन परिचित छथि।

तात्पर्य: जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग एहि भौतिक शरीर केँ सतबैत अछि, आध्यात्मिक शरीर केँ नहि। आध्यात्मिक शरीरक लेल न जन्म अछि न मृत्यु, न जरा, न रोग। अतः जकरा आध्यात्मिक शरीर प्राप्त भऽ जाइत अछि, ओ भगवानक पार्षद बनि जाइत अछि आओर नित्य भक्ति करैत अछि। ओहे मुक्ति अछि। शुद्ध भक्त ब्रह्मपद पर आसीन होइत छथि एवं ओ दिव्यकर्मक विषयमे सब किछु जानैत रहैत छथि।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥३०॥

स अधिभूत– तथा भौतिक जगत केँ चलाबएवाला सिद्धान्त; **अधिदैवम्**– समस्त देवता केँ नियन्त्रित करएवाला; **माम्**– हमरा; **स अधियज्ञम्**– तथा समस्त यज्ञ केँ नियन्त्रित करएबला; **च**– भी; **ये**– जे; **विदुः**– जानैत अछि; **प्रयाण**– मृत्युक; **काले**– समयमे; **अपि**– भी; **च**– तथा; **युक्त चेतसः**– जिनकर मन हमरामे लागल अछि।

जे हम परमेश्वर केँ हमर पूर्ण चेतनामे रहि कऽ हमरा संसारक, देवता केँ तथा समस्त यज्ञ विधिक नियामक जानैत अछि ओ अपन मृत्युक समय भी हम भगवान् केँ जानि आओर समझि सकैत अछि।

तात्पर्य: कृष्णभावनामृतमे कर्म करैबला आदमी कौखन भी भगवान् केँ पूर्णतया समझैक पथ सँ विचलित नहि होइत अछि। कृष्णभावनामृतक दिव्य सान्निध्य सँ मनुष्य ई समझि सकैत अछि कि भगवान् कोन तरहेँ भौतिक जगत तथा देवता तकक नियामक छथि।

सारांश– ई सातम अध्याय विशेष रुप सँ बताबैत अछि कि क्यो कोनो प्रकार सँ पूर्णतया कृष्णभावनाभावित भऽ सकैत अछि। एहन सान्निध्य आध्यात्मिक होइत अछि एवं एहि सँ मनुष्य प्रत्यक्ष भगवानक संसर्गमे आबैत अछि। एहि अध्यायमे जाहि अनेक विषयक विवेचना कएल गेलै अछि ओ अछि– दुःखमे पड़ल मनुष्य, जिज्ञासु मानव, अभावग्रस्त मानव, ब्रह्मज्ञान, परमात्मा ज्ञान, जन्म, मृत्यु तथा रोग सँ मुक्ति एवं परमेश्वरक पूजा। किन्तु जे व्यक्ति वास्तवमे कृष्णभावनामृत केँ प्राप्त अछि, ओ विभिन्न विधिक परबाह नहि करैत अछि। एहन अवस्थामे ओ शुद्ध

भक्तिमे परमेश्वर केँ श्रवण तथा गुणगानमे आनन्द पाबैत अछि। एहन दृढ़ श्रद्धा दृढ़व्रत कहाबैत अछि जे भक्तियोगक शुरुआत अछि। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक सातम अध्याय **''भगवद्ज्ञान''** पूर्ण भेल।



श्रीकृष्णाष्टकम्

भजे व्रजैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं
स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव नन्दनन्दनम्।
सुपिन्छगुच्छमस्तकं सुनादवेणुहस्तकम्
अनङ्गरङ्गसागरं नमामि कृष्णनागरम्।।१।।

मनोजगर्वमोचनं विशाललोललोचनम्
विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनम्।
करारविन्दभूधरं स्मितावलोकसुन्दरं
महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्णवारणम्।।२।।

कदम्बसूनकुण्डलं सुचारुगण्डमण्डलम्
व्रजान्गनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम्।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया
युतं सुखैकदायकम् नमामि गोपनायकम्।।३।।

अध्याय-आठ



भगवत्प्राप्ति

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥१॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलथिन; **किम्**– की; **तत्**– ओ; **ब्रह्म**– ब्रह्म; **अध्यात्मम्**– आत्मा; **कर्म**– सकाम कर्म; **पुरुष उत्तम**– हे परमपुरुष; **अधि भूतम्**– भौतिक जगत्; **च**– तथा; **प्रोक्तम्**– कहलाबैत अछि; **अधिदैवम्**– देवतागण; **उच्यते**– कहलाबैत अछि।

अर्जुन कहलथिन–हे भगवान्! हे पुरुषोत्तम! ब्रह्म की छियै? आत्मा की छियै? सकाम कर्म की छियै? ई भौतिक जगत की छियै? तथा देवता की छियै? कृपा करि कऽ ई सब हमरा बताउ।

तात्पर्यः अर्जुन परमेश्वर केँ पुरुषोत्तम या परम पुरुष कहिक सम्बोधित कएलनि अछि, जकर अर्थ ई होइत अछि कि ओ ई सब प्रश्न अपन एक मित्र सखा सँ नहि अपितु परमपुरुष सँ हुनका परम प्रमाण मानि कऽ पूछि रहल छलखिन, जे निश्चित उत्तर दऽ सकैत छलखिन।

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः॥२॥

अधियज्ञः– यज्ञक स्वामी; **कथम्**– कोन तरहेँ; **कः**– के; **अत्र**– एतय; **देहे**– शरीर मे; **अस्मिन्**– एहि; **मधुसूदन**– हे मधुसूदन; **प्रयाणकाले**– मृत्युक समय; **च**– तथा; **ज्ञेयः असि**– जान जा सकैत अछि; **नियत-आत्मभिः**– आत्मसंयमीक द्वारा।

हे मधुसूदन! यज्ञक स्वामी के अछि आओर ओ शरीरमे कोना रहैत अछि? एवं मृत्युक समय भक्तिमे लागल रहैवाला अहाँ केँ कोना जानि पाबैत अछि?

तात्पर्यः अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण केँ मधुसूदन कहि कऽ सम्बोधित कैलथिन किएक तऽ कृष्ण एकबेर मधु नामक असुरक बध केने छलथिन। वस्तुतः ई सब प्रश्न, जे शंकाक रुपमे अछि, अर्जुनक मनमे नहि उठबाक चाही छल, किएक तऽ अर्जुन एक कृष्णभावनाभावित भक्त छलाह। अतः ई सब शंका असुरक सदृश अछि। चूँकि श्रीकृष्ण असुर केँ मारमे सिद्धहस्त छलाह, अतः अर्जुन हुनका मधुसूदन कहिक सम्बोधित करैत छथिन, जाहि सँ श्रीकृष्ण हुनका मनमे उठएबला समस्त आसुरी शंकाक नष्ट कै देथि।

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥३॥

श्रीभगवान् उवाच– भगवान् कहलखिन; **अक्षरम्**– अविनाशी; **ब्रह्म**– ब्रह्म; **परमम्**– दिव्य; **स्वभावः**– सनातन प्रकृति; **अध्यात्मम्**– आत्मा; **उच्यते**– कहाबैत अछि; **भूत भाव उद्भव करः**– जीवक भौतिक शरीर केँ उत्पन्न करैबला; **विसर्गः**– सृष्टि; **कर्म**– सकाम कर्म; **संज्ञितः**– कहाबैत अछि।

भगवान् कहलथिन-अविनाशी एवं दिव्य जीव ब्रह्म कहलाबैत अछि आओर ओकर नित्य स्वभाव अध्यात्म या आत्मा कहलाबैत अछि। जीवक भौतिक शरीर सँ सम्बन्धित गतिविधि कर्म या सकाम कर्म कहलाबैत अछि।

तात्पर्यः वैदिक साहित्यमे जीव केँ जीवात्मा तथा ब्रह्म कहल जाइत अछि किन्तु ओकरा कहियो परब्रह्म नहि कहल जाइत अछि। जीवात्मा

विभिन्न स्थिति ग्रहण करैत अछि। भौतिक प्रकृतिमे ओ चौरासी लाख योनिमे सँ कोनो भी शरीर धारण कै सकैत अछि किन्तु आध्यात्मिक प्रकृतिमे ओकर एक ही शरीर होइत अछि। भौतिक प्रकृतिमे ओ अपन कर्मक अनुसार कौखन मनुष्य रुप प्रकट होइत अछि तो कभी देवता, पशु, पक्षी आदि रुपमे प्रकट होइत अछि। ई भौतिक चेतनाक कारण कर्म अथवा विविध सृष्टि कहलाबैत अछि। वैदिक साहित्यमे ब्रह्म (जीवात्मा) केँ परब्रह्म (परमेश्वर) सँ पृथक मानल जाइत अछि।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥४॥

अधिभूतम्- भौतिक जगत्; **क्षरः**- निरन्तर परिवर्तनशील; **भावः**- प्रकृति; **पुरुषः**- सूर्य, चन्द्र जेना समस्त देवता सहित विराट रुप; **च**- तथा; **अधिदैवतम्**- अधिदैव नामक; **अधियज्ञः**- परमात्मा; **अहं**- हम (कृष्ण); **एव**- निश्चय ही; **अत्र**- एतय; **देहे**- शरीर मे; **देहभृताम्**- देहधारी मे; **वर**- हे श्रेष्ठ।

हे देहधारीमे श्रेष्ठ! निरन्तर परिवर्तनशील ई भौतिक प्रकृति अधिभूत (भौतिक अभिव्यक्ति) कहलाबैत अछि। भगवानक विराट रुप, जाहिमे सूर्य तथा चन्द्र सनक समस्त देवता सम्मिलित छथि, अधिदैव कहलाबैत अछि। तथा प्रत्येक देहधारीक हृदयमे परमात्मा स्वरुप स्थित हम परमेश्वर अधियज्ञ (यज्ञक स्वामी) कहलाबैत छी।

तात्पर्यः- ई भौतिक प्रकृति निरन्तर परिवर्तित होइत रहैत अछि। सामान्यतः भौतिक शरीर केँ छह अवस्था सँ निकल होइत अछि-ओ उत्पन्न होइत अछि, बढ़ैत अछि, किछु काल तक रहैत अछि, किछु गौण पदार्थ उत्पन्न करैत अछि, क्षीण होइत अछि आओर अन्तमे विलुप्त भऽ जाइत अछि। ई कोनो निश्चित समयमे उत्पन्न कैल जाइत अछि एवं कोनो निश्चित समयमे विनष्ट कऽ देल जाइत अछि। परमेश्वरक विराट स्वरुपक धारणा, जाहिमे समस्त देवता तथा हुनकर लोक सम्मिलित अछि, अधिदैवत कहलाबैत अछि। प्रत्येक शरीरमे आत्मा सहित परमात्माक वास होइत अछि, जे भगवान् कृष्णक अंश स्वरूप अछि। ई परमात्मा अधियज्ञ कहलाबैत अछि आओर हृदयमे स्थित होइत अछि। अधिदैवत

नामक भगवानक विराट स्वरुपक चिन्तन ओहि नवदीक्षितक लेल अछि जे भगवानक परमात्मा स्वरुप तक नहि पहुँच पाबैत अछि।

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥५॥

अन्तकाले– मृत्युक समय; **च**– भी; **माम्**– हमरा; **एव**– निश्चय ही; **स्मरन्**– स्मरण करैत; **मुक्त्वा**– त्यागक; **कलेवरम्**– शरीर केँ; **यः**– जे; **प्रयाति**– जाइत अछि; **सः**– ओ; **मत्भावम्**– हमर स्वभाव केँ; **याति**– प्राप्त करैत अछि; **अस्ति**– अछि; **अत्र**– एतय; **संशयः**– सन्देह।

आओर जीवनक अन्तमे जे केवल हमर स्मरण करैत शरीरक त्याग करैत अछि, ओ तुरन्त हमर स्वभाव केँ प्राप्त करैत अछि। एहिमे रंचमात्र भी सन्देह नहि अछि।

तात्पर्यः– जे क्यो भी कृष्णभावनामृतमे अपन शरीर त्याग करैत अछि, ओ तुरन्त परमेश्वरक दिव्य स्वभाव केँ प्राप्त करैत अछि। अतः मनुष्य केँ जीवनक प्रारम्भ सँ ही कृष्णभावनामृतक अभ्यास करक चाही।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥६॥

यं यं– जाहि; **वा अपि**– कोनो भी; **स्मरन्**– स्मरण करैत; **भावं**– स्वभाव केँ; **त्यजति**– त्याग करैत अछि; **अन्ते**– अन्त मे; **कलेवरम्**– शरीर केँ; **तम् तम्**– ओहने; **एव**– निश्चय ही; **एति**– प्राप्त करैत अछि; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **सदा**– हमेशा; **तत्**– ओहि; **भाव**– भाव; **भावितः**– स्मरण करैत।

हे कुन्तीपुत्र! शरीर त्यागैत समय मनुष्य जाहि जाहि भावक स्मरण करैत अछि, ओ ओहि ओहि भाव केँ निश्चित रुप सँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः एतय मृत्युक समय अपन स्वभाव बदलबाक विधिक वर्णन अछि। जे व्यक्ति अन्त समय कृष्णक चिन्तन करैत शरीर त्याग करैत छथि, हुनका परमेश्वरक दिव्य स्वभाव प्राप्त होइत छैन।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥७॥

तस्मात्– अतएव; **सर्वेषु**– समस्त; **कालेषु**– काल मे; **माम्**– हमरा; **अनुस्मर**– स्मरण करैत रहू; **युद्ध**– युद्ध करु; **च**– भी; **मयि**– हमरा मे; **अर्पित**– शरणागत भऽ कै; **मनः**– मन; **बुद्धिः**– बुद्धि; **एव**– निश्चय ही; **एष्यसि**– प्राप्त करब; **असंशयः**– निस्संदेह ही।

अतएव हे अर्जुन! अहाँ केँ सदैव कृष्ण रुपमे हमर चिन्तन करक चाही आओर संग ही युद्ध करैक कर्तव्य केँ भी पूरा करक चाही। अपन कर्म केँ हमरा समर्पित कऽकऽ तथा अपन मन एवं बुद्धि केँ हमरामे स्थिर कयक अहाँ निश्चित रुप सँ हमरा प्राप्त करब।

तात्पर्यः भगवान् ई कौखन नहि कहैत छथि जे मनुष्य अपन कर्तव्य त्याग दिए। अपन कर्तव्य करैत भगवानक जप करैत रहू।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥८॥

अभ्यास योग– अभ्यास सँ; **युक्तेन**– ध्यान मे लागल रहैत; **चेतसा**– मन तथा बुद्धि सँ; **न अन्यगामिना**– बिना विचलित होइत; **परमम्**– परम; **पुरुषम्**– भगवान् केँ; **दिव्यम्**– दिव्य; **याति**– प्राप्त करैत अछि; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **अनुचिन्तयन्**– निरन्तर चिन्तन करैत।

हे पार्थ! जे व्यक्ति हमर स्मरण करैमे अपन मन निरन्तर लगाक अविचलित भाव सँ भगवानक रुपमे हमर ध्यान करैत अछि, ओ हमरा निश्चय ही प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः यदि हम निरन्तर भगवान् कृष्णक चिन्तन करैत रही तो ई निश्चित अछि कि हम जीवनक अन्तमे कृष्ण जकाँ शरीर प्राप्तक सकब।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥९॥

कविम्– सर्वज्ञ; **पुराणम्**– प्राचीनतम, पुरातन; **अनुशासितारम्**– नियन्ता; **अणोः**– अणुक तुलनामे; **अणीयांसम्**– लघुतर; **अनुस्मरेत्**– सदैव सोचैत अछि; **यः**– जे; **सर्वस्य**– हर वस्तुक; **धातारम्**– पालक; **अचिन्त्य**– अकल्पनीय; **रुपम्**– जकर स्वरुप; **आदित्य वर्णम्**– सूर्यक समान प्रकाशमान; **तमसः**– अंधकार सँ; **परस्तात्**– दिव्य, परे।

मनुष्य केँ चाही कि परमपुरुषक ध्यान सर्वज्ञ, पुरातन, नियन्ता, लघुतम सँ भी लघुतर, सबहक पालनकर्ता, समस्त भौतिकबुद्धि सँ परे, अचिन्त्य तथा नित्य पुरुषक रुपमे करे। ओ सूर्यक भाँति तेजवान छथि आओर एहि भौतिक प्रकृति सँ परे दिव्य रुप अछि।

तात्पर्यः भगवान् भूत, वर्तमान तथा भविष्यक ज्ञाता छथि, ओ समस्त वस्तुक उद्गम छथि। ओ ब्रह्माण्डक परम नियन्ता भी छथि। ओ मनुष्यक पालक एवं शिक्षक छथि। ओ अणु सँ भी सूक्ष्म छथि। अतः ओ लघुतर कहाबैत छथि। ईश्वरक शक्ति हमर कल्पना या विचार शक्तिक परे अछि। अतः अचिन्त्य कहाबैत छथि। ओ अकल्पनीय छथि। एहि श्लोकमे परमेश्वरक चिन्तनक विधिक वर्णन कैल गेल अछि।

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥१०॥

प्रयाणकाले– मृत्युक समय; **मनसा**– मन सँ; **अचलेन**– अचल, दृढ़; **भक्त्या**– भक्ति सँ; **युक्तः**– लागल; **योगबलेन**– योग शक्तिक द्वारा; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **भ्रुवोः**– दूनू भौंह क; **मध्ये**– बीच मे; **प्राणम्**– प्राण केँ; **आवेश्य**– स्थापित करे; **सम्यक्**– पूर्णतया; **सः**– ओ; **तम्**– ओहि; **परम्**– दिव्य; **पुरुषं**– भगवान् केँ; **उपैति**– प्राप्त करैत अछि; **दिव्यं**– दिव्य भगवद्धाम केँ।

मृत्युक समय जे व्यक्ति अपन प्राण केँ दूनू भौंहक मध्य स्थिरक लैत अछि आओर योग शक्तिक द्वारा अविचलित मन सँ पूर्ण भक्तिक संग परमेश्वरक स्मरणमे अपना केँ लगबैत अछि, ओ निश्चित रुप सँ भगवान् केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः क्यो भी मृत्युक समय परमेश्वरक सहसा स्मरण नहिक पाबैत अछि, हुनका कोनो न कोनो योगक विशेषता भक्तियोगक अभ्यास होबक चाही। चूँकि मृत्युक समय मनुष्यक मन अत्यधिक विचलित रहैत अछि, अतः अपन जीवनमे मनुष्य केँ योगक माध्यम सँ अध्यात्मक अभ्यास करैक चाही।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥११॥

यत्– जाहि; **अक्षरम्**– अक्षर ऊँ केँ; **वेद विदः**– वेदक ज्ञाता; **वदन्ति**– कहैत अछि; **विशन्ति**– प्रवेश करैत अछि; **यत्**– जाहि मे; **यतयः**– बड़ा, बड़ा मुनि; **वीतरागाः**– सन्यास आश्रम मे रहैवला सन्यासी; **यत्**– जे; **इच्छन्तः**– इच्छा करैबला; **ब्रह्मचर्यम्**– ब्रह्मचर्यक; **चरन्ति**– अभ्यास करैत अछि; **तत्**– ओहि; **ते**– अहाँ केँ; **पदम्**– पद केँ; **संग्रहेण**– संक्षेप मे; **प्रवक्ष्ये**– हम बतायब।

जे वेदक ज्ञाता छथि, ओ ओंकारक उच्चारण करैत छथि आओर जे संयासी आश्रमक पैघ पैघ मुनि छथि, ओ ब्रह्ममे प्रवेश करैत छथि। एहन सिद्धिक इच्छा करैबला ब्रह्मयर्चव्रतक अभ्यास करैत छथि। आब हम अहाँ केँ ओ विधि बताएब, जाहि सँ कोनो भी व्यक्ति मुक्ति लाभक सकैत अछि।

तात्पर्यः ज्ञानक वैदिक पद्धतिमे ब्रह्मचर्यव्रतक पालन करैत ओंकारक उच्चारण तथा परम निर्विशेष ब्रह्मक शिक्षा देल जाइत अछि। ब्रह्मचर्यक बिना आध्यात्मिक जीवनमे उन्नति करब अत्यन्त कठिन अछि। चैतन्य महाप्रभुक अनुसार कलियुगमे भगवान् श्रीकृष्णक पवित्र नामक जप करक चाही।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥१२॥

सर्वद्वाराणि– शरीरक समस्त द्वार केँ; **संयम्य**– वश मे कऽ; **मनः**– मन केँ; **हृदि**– हृदय मे; **निरुध्य**– बन्दक; **च**– भी; **मूर्ध्नि**– सिर पर; **आधाय**– स्थिरक; **आत्मनः**– अपन; **प्राणम्**– प्राणवायु केँ; **आस्थितः**– स्थित; **योगधारणाम्**– योगक स्थिति।

समस्त ऐन्द्रिय क्रिया सँ विरक्ति केँ योगक स्थिति (योग धारणा) कहल जाइत अछि। इन्द्रियक समस्त द्वार केँ बन्द करकि तथा मन केँ हृदयमे आओर प्राणवायु केँ सिर पर केन्द्रित करिक मनुष्य अपना केँ योगमे स्थापित करैत अछि।

तात्पर्यः योगाभ्यासक लेल सबसँ पहिने इन्द्रिय भोगक सब द्वार बन्द करै पड़ैत अछि। ई प्रत्याहार अथवा इन्द्रियविषय सँ हटायब कहल जाइत अछि। योगाभ्यासक विस्तृत वर्णन छठम अध्यायमे भऽ चुकल अछि।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥१३॥

ॐ- ओंकार; **इति**- एहि तरहेँ; **एक अक्षरम्**- एक अक्षर; **ब्रह्म**- परब्रह्मक; **व्याहरन्**- उच्चारण करैत; **माम्**- हमरा; **अनुस्मरन्**- स्मरण करैत; **यः**- जे; **प्रयाति**- जाइत अछि; **त्यजन्**- छोड़ैत; **देहम्**- एहि शरीर केँ; **सः**- ओ; **याति**- प्राप्त करैत अछि; **परमाम्**- परम; **गतिम्**- गन्तव्य लक्ष्य।

एहि योगाभ्यासमे स्थित भऽकऽ तथा अक्षरक परम संयोग यानी ओंकारक उच्चारण करैत, यदि क्यो भगवानक चिन्तन करैत अछि आओर अपन शरीरक त्याग करैत अछि, तो ओ निश्चित रुप सँ आध्यात्मिक लोक केँ जाइत अछि।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥१४॥

अनन्यचेताः- अविचलित मन सँ; **सततम्**- सदैव; **यः**- जे; **माम्**- हमर(कृष्ण); **स्मरति**- स्मरण करैत अछि; **नित्यशः**- नियमित रूप सँ; **तस्य**- ओहि; **अहं**- हम; **सुलभः**- सुलभ, सरलता सँ प्राप्य; **पार्थ**- हे पृथापृत्र; **नित्य**- नियमित रुप सँ; **युक्तस्य**- लागल; **योगिनः**- भक्तक लेल।

हे अर्जुन! जे अन्य भाव सँ निरन्तर हमर स्मरण करैत अछि ओकरा लेल हम सुलभ छी किएक तऽ ओ हमर भक्तिमे प्रवृत्त रहैत अछि।

तात्पर्यः गीता समस्त योग पद्धतिमे सँ, भक्तियोगक ही संस्तुति करैत अछि। सामान्यतया भक्तियोगी पाँच प्रकार सँ भक्तिमे लागल रहैत छथि-(१) शान्त भक्त-जे उदासीन रहिक भक्तिमे युक्त होइत छथि, (२) दास्य भक्त-जे दासक रुपमे भक्तिमे युक्त होइत छथि, (३) सख्य भक्त- जे सखा रुपमे भक्तिमे युक्त होइत छथि, (४) वात्सल्य भक्त-जे माता पिताक भाँति भक्तिमे युक्त होइत छथि, तथा (५) माधुर्य भक्त-जे परमेश्वरक संग दामपत्य प्रेमीक भाँति भक्तिमे युक्त होइत छथि। शुद्ध भक्त एहिमे सँ कोनोमे भी परमेश्वरक प्रेमाभक्तिमे युक्त होइत छथि आओर हुनका कौखन नहि बिसरि पावैत, जाहि सँ भगवान् हुनका सरलता

सँ प्राप्त भऽ जाइत अछि। जाहि प्रकार शुद्ध भक्त क्षणभरिक लेल भी भगवान् केँ नहि भूलैत अछि ओहि प्रकार भगवान् भी अपन शुद्ध भक्त केँ क्षणभरिक लेल नहि विसरैत छथि।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दु:खालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥१५॥

माम्– हमरा; **उपेत्य**– प्राप्तक; **पुनः**– फिर; **जन्म**– जन्म; **दु:ख आलयम्**– दुखक स्थान केँ; **अशाश्वतम्**– क्षणिक; **न**– कहियो नहि; **आप्नुवन्ति**– प्राप्त करैत अछि; **महात्मानः**– महान पुरुष; **संसद्धिम्**– सिद्धि केँ; **परमाम्**– परम; **गताः**– प्राप्त भेलाह।

हमरा प्राप्त करिक महापुरुष, जे भक्तियोगी छथि, कहियो भी दुख सँ पूर्ण एहि अनित्य जगतमे नहि लौटैत छथि, किएक तऽ हुनका परम सिद्धि प्राप्त भऽ चुकल रहैत अछि।

तात्पर्य: ई नश्वर जगत जन्म, जरा तथा मृत्युक क्लेश सँ पूर्ण अछि, अतः जे परमसिद्धि प्राप्त करैत अछि एवं परमलोक या गोलोक वृन्दावन केँ प्राप्त होइत अछि ओ ओतय सँ वापस नहि आब चाहैत अछि। ओ केवल भगवान् कृष्णक सामीप्य चाहैत अछि। इहै जीवनक सबसँ पैघ सिद्धि अछि।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥१६॥

आ ब्रह्म भुवनात्– ब्रह्मलोक धरि; **लोकाः**– समस्त लोक; **पुनः**– फेर; **आवर्तिनः**– लौटैवला; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **माम्**– हमरा; **उपेत्य**– पाविक; **तु**– किन्तु; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **पुनर्जन्म**– दुबारा जन्म; **न**– कहियो नहि; **विद्यते**– होइत अछि।

एहि जगतमे सर्वोच्च लोक सँ लक निम्नतम सब लोक दुखक घर अछि, जतय जन्म तथा मरणक चक्कर लागल रहैत अछि। किन्तु हे कुन्तीपुत्र! जे हमर धाम केँ प्राप्त कऽ लैत अछि, ओ पुनः कहियो जन्म नहि लैत अछि।

तात्पर्य: समस्त योगी केँ चाहे ओ कर्मयोगी हो या ज्ञानयोगी–अन्ततः भक्तियोग (कृष्णभावनामृत)मे भक्तिक सिद्धि प्राप्त कर पड़ैत अछि,

तखने ओ कृष्णक दिव्यधाम केँ जा सकैत अछि।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥१७॥

सहस्त्र– एक हजार; **युग**– युग; **पर्यन्तम्**– सहित; **अहः**– दिन; **यत्**– जे; **ब्रह्मणः**– ब्रह्माक; **विदुः**– ओ जानैत अछि; **रात्रिम्**– रात्रि; **सहस्त्रान्ताम्**– एहि प्रकार एक हजार युग बाद समाप्त हुअवला; **ते**– ओ; **विदः**– जौनत अछि; **जनाः**– लोग।

मानवीय गणनाक अनुसार एक हजार युग मिलक ब्रह्माक एक दिन बनैत अछि आओर ओतबे पैघ ब्रह्माक रात्रि भी होइत अछि।

तात्पर्यः भौतिक ब्रह्माण्डक अवधि सीमित अछि। ई कल्पक चक्र रूपमे प्रकट होइत अछि। ई कल्प ब्रह्माक एक दिन अछि जाहिमे सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुगक एक हजार चक्र होइत अछि। ब्रह्माक आयु एक सौ वर्ष होइत अछि। ब्रह्माक ई १०० वर्ष गणनाक अनुसार पृथ्वीक ३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्षक तुल्य अछि।

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥१८॥

अव्यक्ताद्– अव्यक्त सँ; **व्यक्तयः**– जीव; **सर्वाः**– सब; **प्रभवन्ति**– प्रकट होइत अछि; **अहःआगमे**– दिन भेला पर; **रात्रिआगमे**– रात्रि एला पर; **प्रलीयन्ते**– विनष्ट भऽ जाइत अछि; **तत्र**– ओहि मे; **एव**– निश्चय ही; **अव्यक्त**– अप्रकट; **संज्ञके**– नामक, कहए जाएवाला।

ब्रह्माक दिनक शुभारम्भमे समस्त जीव अव्यक्त अवस्था सँ व्यक्त होइत अछि आओर पुनः जखन रात्रि आबैत अछि तो ओ पुनः अव्यक्तमे विलीन भऽ जाइत अछि।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥१९॥

भूतग्रामः– समस्त जीवक समूह; **सः**– वही (ओहै); **एव**– निश्चय ही; **अयं**– ई; **भूत्वा भूत्वा**– बारम्बार जन्म लक; **प्रलीयते**– विनष्ट होइत अछि; **रात्रि**– रात्रिमे; **आगमे**– एला पर; **अवशः**– स्वतः; **पार्थ**– हे

पृथापुत्र; **प्रभवति**– प्रकट होइत अछि; **अहः**– दिन; **आगमे**– एला पर।

जखन-जखन ब्रह्माक दिन आबैत अछि तो सब जीव प्रकट होइत आओर ब्रह्माक रात्रि होइते ओ असहायवत् विलीन भऽ जाइत अछि।

तात्पर्यः ब्रह्माक दिन भेला पर एहि जगतक उच्चतर तथा निम्नतर लोकमे अपन कार्यक प्रदर्शन करैत अछि, किन्तु ब्रह्माक रात्रि होइत ही ओ विनष्ट भऽ जाइत अछि। दिनमे हुनका भौतिक कार्यक लेल नाना शरीर प्राप्त होइत अछि, किन्तु रात्रि होइत देरी हुनकर शरीर विष्णुक शरीरमे विलीन भऽ जाइत अछि। ओ पुनः ब्रह्माक दिन एला पर प्रकट होइत अछि। बारम्बार दिनक समय प्रकट होइत अछि आओर रात्रिक समय पुनः विनष्ट भऽ जाइत अछि। अन्ततोगत्वा जखन ब्रह्माक जीवन समाप्त होइत अछि, तो ओहि सबहक संहार भऽ जाइत अछि एवं ओ करोड़ों वर्ष तक अप्रकट रहैत अछि। अन्य कल्पमे ब्रह्माक पुनर्जन्म भेला पर ओ पुनः प्रकट होइत अछि। एहि प्रकार ओ भौतिक जगतक जादू सँ मोहित होइत रहैत अछि। बुद्धिमान व्यक्ति भक्तियोग स्वीकार करैत ओ एहि मनुष्यक जीवनक उपयोग भगवानक भक्ति करएमे व्यतीत करैत अछि।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥२०॥

परः– परम; **तस्मात्**– ओहि; **तु**– लेकिन; **भावः**– प्रकृति; **अन्य**– दोसर; **अव्यक्तः**– अव्यक्त; **अव्यक्तात्**– अव्यक्त सँ; **सनातनः**– शाश्वत; **यः सः**– ओ जे; **सर्वेषु**– समस्त; **भूतेषु**– जीवक; **नश्यत्सु**– नाश भेला पर; **न**– कहियो नहि; **विनश्यति**– विनष्ट होइत अछि।

एकर अतिरिक्त एक अन्य अव्यक्त प्रकृति अछि, जे शाश्वत अछि आओर एहि व्यक्ति तथा अव्यक्त पदार्थ सँ परे अछि। ई परा (श्रेष्ठ) आओर कहियो विनष्ट नहि हुअवाला अछि। जखन एहि संसारक सब किछु लय भऽ जाइत अछि तौखन भी ओकर नाश नहि होइत अछि।

तात्पर्यः कृष्णक पराशक्ति दिव्य एवं शाश्वत अछि। ई ओहि भौतिक प्रकृतिक समस्त परिवर्तन सँ परे अछि, जे ब्रह्माक दिनक समय व्यक्त आओर रात्रिक समय विनष्ट होइत रहैत अछि। कृष्णक पराशक्ति भौतिक,

प्रकृतिक गुणसँ सर्वथा विपरीत अछि। परा तथा अपरा प्रकृतिक व्याख्या सातम अध्यायमे भेल अछि।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥२१॥

अव्यक्तः– अप्रकट; **अक्षर**ः– अविनाशी; **इति**– एहि प्रकार; **उक्त**ः– कहल गेलै; **तम्**– ओकरा; **आहुः**– कहल जाइत अछि; **परमाम्**– परम; **गतिम्**– गन्तव्य; **यम्**– जकरा; **प्राप्य**– प्राप्तक; **न**– कहियो नहि; **निवर्तन्ते**– वापस आबैत अछि; **तत्**– ओ; **धाम**– निवास; **परमम्**– परम; **मम**– हमर।

जकरा वेदान्ती अप्रकट तथा अविनाशी बतवैत छथि जे परम गन्तव्य अछि, जकरा प्राप्तक लेला पर क्यो वापस नहि आबैत अछि, ओहे हमर (कृष्ण) परमधाम अछि।

तात्पर्यः ब्रह्मसंहितामे भगवान् कृष्णक परमधाम केँ चिन्तामणि धाम कहल गेलै अछि, जे एहन स्थान अछि जतै समस्त इच्छा पूर्ण होइत अछि। भगवान् कृष्णक परमधाम गोलोक वृन्दावन कहलाबैत अछि एवं ओ पारसमणि सँ निर्मित प्रासाद सँ युक्त अछि। ओतय वृक्ष भी अछि जकरा कल्पतरु कहल जाइत अछि। जे इच्छा भेला पर कोनो तरहक खाद्य पदार्थ प्रदान करैवाला अछि। ओतय गाय सब भी अछि, जकरा सुरभि गाय कहल जाइत अछि, एवं ओ अनन्त दूध दिअवाली अछि। एहि धाममे भगवानक सेवाक लेल लाखों लक्ष्मी अछि। ओ आदि भगवान् गोविन्द तथा समस्त कारणक कारण कहलाबैत अछि। भगवान् वंशी बजबैत रहैत छथि। हुनकर दिव्य स्वरुप समस्त लोकमे सर्वाधिक आकर्षक अछि। भगवद्गीतामे भगवान् कृष्ण अपन निजिधाम, गोलोक वृन्दावनक संकेत मात्र करैत छथि, जे आध्यात्मिक जगतमे सर्वश्रेष्ठ लोक अछि। कठोपनिषद बतबैत अछि कि भगवानक धाम सर्वश्रेष्ठ अछि आओर वैह परमधाम अछि। एक बेर ओतय पहुँचक पुनः भौतिक संसारमे वापस नहि एवाक होइछ।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥२२॥

पुरुषः– परम पुरुष; **स**ः– ओ; **पर**ः– परम, जिनका सँ बढ़िक क्यो नहि;

पार्थ- हे पृथापुत्र; **भक्त्या**- भक्तिक द्वारा; **लभ्यः**- प्राप्त कैल जा सकैत; **तु**- लेकिन; **अनन्यया**- अनन्य, अविचल; **यस्य**- जकर; **अन्तस्थानि**- भीतर; **भूतानि**- ई समस्त जगत; **येन**- जिनका द्वारा; **सर्वम्**- समस्त; **इदम्**- जे किछु हम देखि सकैत छी; **ततम्**- व्याप्त अछि।

भगवान्, जे सबसँ महान छथि, अनन्य भक्तिक द्वारा ही प्राप्त कैल जा सकैत अछि। यद्यपि ओ अपन धाममे विराजमान रहैत छथि, तो भी ओ सर्वव्यापी छथि आओर ओहिमे सब किछु स्थित अछि।

तात्पर्यः यद्यपि भगवान् निरन्तर परमधाम गोलोक वृन्दावनमे रहैत छथि किन्तु ओ सर्वव्यापी छथि ताकि सब किछु सुचार रुप सँ चलैत रहै। वेदमे कहल गेलै अछि, हुनकर शक्ति एतेक व्यापक अछि कि परमेश्वरक दूरस्थ भेलो उत्तर भी दृश्य जगतमे बिना कोनो त्रुटिक सब किछु सुचार रुप सँ संचालित करैत रहैत अछि।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥२३॥

यत्र- जाहि; **काले**- समय मे; **तु**- तथा; **अनावृत्तिम्**- वापस नहि आएब; **आवृत्तम्**- वापसी; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **तम्**- ओहि; **योगिनः**- विभिन्न प्रकारक योगी; **प्रयाताः**- प्रयाण करवाला; **यान्ति**- प्राप्त करैत अछि; **वक्ष्यामि**- कहब; **भरत ऋषभ**- हे भरत श्रेष्ठ।

हे भरतश्रेष्ठ! आब हम अहाँ केँ ओहि विभिन्न काल केँ बताएव जाहिमे संसार सँ प्रयाण केलाक बाद योगी पुनः आवैत छथि अथवा नहि आबैत छथि।

तात्पर्यः परमेश्वरक अनन्य, पूर्ण शरणागत भक्त केँ एकर चिन्ता नहि रहैत अछि कि ओ कखन आओर कोन तरहेँ शरीर केँ त्यागी। ओ सब किछु भगवान् पर छोड़ि दैत छथि एवं एहि तरहेँ सरलतापूर्वक, प्रसन्नता सहित भगवद्धाम जाइत छथि।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥२४॥

अग्निः- अग्नि; **ज्योतिः**- प्रकाश; **अहः**- दिन; **शुक्लः**- शुक्ल पक्ष; **षट्मासाः**- छह महिना; **उत्तर अयणम्**- जखन सूर्य उत्तर दिशाक ओर

रहैत अछि; **तत्र**- ओतय; **प्रयाता:**- मरैवाला; **गच्छति**- जाइत अछि; **ब्रह्म**- ब्रह्म केँ; **ब्रह्मविद:**- ब्रह्मज्ञानी; **जना:**- लोग।

जे परब्रह्मक ज्ञाता अछि, ओ अग्निदेवक प्रभावमे, प्रकाशमे, दिनक शुभक्षणमे, शुक्लपक्षमे या जखन सूर्य उत्तरायणमे रहैत अछि, ओहि छह मासमे संसार सँ शरीर त्याग कएला पर ओहि परब्रह्म केँ प्राप्त करैत छथि।

तात्पर्य: यदि संयोगवश ओ (ब्रह्मज्ञानी) शुभमुहुर्तमे शरीर त्यागैत छथि, तखन तो हुनका जन्म-मृत्युक चक्रमे लौट नहि पड़ैत अछि, अन्यथा हुनका पुनरावर्तनक सम्भावना बनल रहैत अछि। किन्तु कृष्णभावनामृतमे शुद्ध भक्तक लेल लौटैक कोनो भय नहि रहैत, चाहे ओ शुभमुहूर्तमे शरीर त्याग करथि या अशुभ क्षणमे चाहे अकस्मात् शरीर त्याग करथि या स्वेच्छापूर्वक।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्ण षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥२५॥

धूम:- धुआँ; **रात्रि**- राति; **तथा**- आओर; **कृष्ण:**- कृष्णपक्ष; **षट्मासा:**- छह मासक अवधि; **दक्षिण अयणम्**- जखन सूर्य दक्षिण दिशा मे रहैत अछि; **तत्र**- ओतय; **चान्द्र मसम्**- चन्द्रलोक केँ; **ज्योति:**- प्रकाश; **योगी**- योगी; **प्राप्य**- प्राप्तक; **निवर्तते**- वापस आवैत अछि।

जे योगी धुआँ, रात्रि, कृष्णपक्षमे या सूर्यक दक्षिणायन रहला पर छह मासक अवधिमे दिवंगत होइत छथि, ओ चन्द्रलोक केँ जाइत छथि, किन्तु ओतय सँ पुन: पृथ्वी पर चलि आवैत छथि।

तात्पर्य: भागवतक तृतीय स्कंधमे कपिल मुनि उल्लेख करैत छथि कि जे लोग यज्ञकाण्ड तथा कर्मकाण्डमे निपुण अछि, ओ मृत्यु भेला पर चन्द्रलोक केँ प्राप्त करैत अछि। अन्ततोगत्वा ओ पृथ्वी पर लौट आबैत अछि। एकर अर्थ ई भेल कि चन्द्रलोकमे उच्चश्रेणीक प्राणी रहैत अछि, भले ही हम अपन स्थूल इन्द्रिय सँ हुनका देखि नहि सकी।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगत: शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुन:॥२६॥

शुक्ल- प्रकाश; **कृष्णे**- अंधकार; **गती**- जेवाक मार्ग; **हि**- निश्चय ही;

एते– ई दूनू; **जगतः**– भौतिक जगतक; **शाश्वते**– वेदक; **मते**– मत मे; **एकया**– एकक द्वारा; **याति**– जाइत अछि; **अनावृत्तिम्**– नहि लौटए लेल; **अन्यया**– अन्यक द्वारा; **आवर्तते**– आबि जाइत अछि; **पुनः**– फिर सँ।

वैदिक मतानुसार एहि जगत सँ प्रयाण करैक दू मार्ग अछि–एक प्रकाशक तथा दोसर अधंकारक। जखन मनुष्य प्रकाशक मार्ग सँ जाइत अछि तो ओ वापस नहि आवैछ, किन्तु अंधकारक मार्ग सँ जाइवाला पुनः लौट केँ आबैत अछि।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥२७॥

न– कहियो नहि; **एते**– एहि दूनू; **सृति**– विभिन्न मार्ग केँ; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **जानन्**– जानैत भी; **योगी**– भगवत्भक्त; **मुह्यति**– मोहग्रस्त होइत अछि; **कश्चन**– क्यो; **तस्मात्**– अतः; **सर्वेषु कालेषु**– सदैव; **योग युक्तः**– कृष्णभावनामृत मे; **भव**– होओ; **अर्जुनः**– हे अर्जुन।

हे अर्जुन! यद्यपि भक्तगण एहि दूनू मार्ग केँ जानैत छथि, किन्तु ओ मोहग्रस्त नहि होइत छथि। अतः अहाँ भक्तिमे सदैव स्थिर रहू।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण अर्जुन केँ उपदेश दऽ रहल छथिन्ह जे कि अहाँ केँ एहि जगत सँ आत्माक प्रयाण करैक विभिन्न मार्ग केँ सुनि कऽ विचलित नहि होमक चाही। भगवत्भक्त केँ एकर चिन्ता नहि होमक चाही कि ओ स्वेच्छा सँ मरत या दैववशात्। कृष्णभावनामृतमे तल्लीन हेवाक सर्वोत्तम विधि इहै अछि कि भगवानक सेवामे सदैव रत रहल जाए। एहि सँ भगवद्धामक मार्ग स्वतः सुगम, सुनिश्चित तथा सीधा होएत।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥२८॥

वेदेषु– वेदाध्ययन मे; **यज्ञेषु**– यज्ञ सम्पन्न करबा मे; **तपः सु**– विभिन्न प्रकारक तपस्या करबामे; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **दानेषु**– दान देवा मे; **यत्**– जे; **पुण्यफलम्**– पुण्य कर्मक फल; **प्रदिष्टम्**– सूचित; **अत्येति**– लाँघ जाइत अछि; **तत् सर्वम्**– ओ सब; **इदम्**– ई; **विदित्वा**– जानि कऽ; **योगी**– योगी; **परम्**– परम; **स्थानम्**– धाम केँ; **उपैति**– प्राप्त

करैत अछि; **आद्यम्**- मूल, आदि।

जे व्यक्ति भक्तिमार्ग स्वीकार करैत अछि, ओ वेदाध्ययन, तपस्या, दान, दार्शनिक तथा सकाम कर्म कएला सँ प्राप्त हुअ वाला फल सँ वंचित नहि होइत अछि। ओ मात्र भक्ति सम्पन्न करि कऽ एहि समस्त फलक प्राप्ति करैत अछि एवं अन्तमे परम नित्यधाम केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः भक्तक संगति सँ भक्ति आबैत अछि एवं भक्तिक कारण ईश्वरक कार्यकलाप, हुनकर रुप, नाम, लीला आदि सँ संबन्धित सब भ्रम दूर भऽ जाइत अछि। एहि प्रकार भ्रमक दूर भेला पर ओ अपन अध्ययनमे स्थिर भऽ जाइत अछि। तखन हुनका भगवद्गीताक अध्ययनमे रस आब लागैत अछि आओर कृष्णभावनाभावितक अनुभूति हुअ लागैत अछि। ई जीवनक सर्वोच्च सिद्ध अवस्था अछि, जाहि सँ भक्त कृष्णक धाम गोलोक वृन्दावन केँ प्राप्त होइत अछि, जत ओ नित्य सुखी रहता। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक आठम अध्याय ''**भगवत्प्राप्ति**'' पूर्ण भेल।



नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

असत् वस्तुक अस्तित्व नहि अछि आओर सतक कहियो अभाव नहि अछि। एहि प्रकार एहि दूनूक ही तत्त्व, तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष केँ द्वारा देखल गेलै अछि।

अध्याय-नौ



परम गुह्य ज्ञान

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥१॥

श्रीभगवानुवाच– श्रीभगवान् कहलथिन; **इदं**– एहि; **तु**– लेकिन; **ते**– अहाँक लेल; **गुह्यतमम्**– अत्यन्त गुह्य; **प्रवक्ष्यामि**– कहि रहल छी; **अनसूयवे**– इर्ष्या नहि करवाला केँ; **ज्ञानम्**– ज्ञान केँ; **विज्ञान**– अनुभूत ज्ञान; **सहितम्**– सहित; **यत्**– जकरा; **ज्ञात्वा**– जानिक; **मोक्ष्यसे**– मुक्त भऽ सकब; **अशुभात्**– एहि कष्टमय संसार सँ।

श्रीभगवान् कहलथिन–हे अर्जुन! चूँकि अहाँ हमरा सँ कहियो ईर्ष्या नहि करैत छी, एहि लेल हम अहाँ केँ ई परम गुह्यज्ञान तथा अनुभूति बताएव, जकरा जानि कऽ अहाँ संसारक समस्त क्लेश सँ मुक्त भऽ जाएव।

तात्पर्यः इदं ज्ञानम् (ई ज्ञान) शब्द शुद्ध भक्तिक द्योतक अछि, जे नौ प्रकारक होइत अछि–श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मसमर्पण। भक्ति एहि नौ तत्त्वक अभ्यास कैला सँ मनुष्य आध्यात्मिक चेतना तक उठि पौबत अछि। एहि प्रकार

जखन मनुष्यक ह्रदय भौतिक कल्मष सँ शुद्ध भऽ जाइत अछि तो ओ कृष्णविद्या केँ समझि सकत। केवल ई जानि लेव कि जीव भौतिक नहि अछि, पर्याप्त नहि होएत। या तो आत्मअनुभूतिक शुभारम्भ भऽ सकैत अछि, किन्तु ओहि मनुष्य केँ शरीरक कार्यक तथा ओहि भक्तक आध्यात्मिक कार्यक अन्तर केँ समझ पड़ैत, जे ई जानैत अछि कि ओ शरीर नहि अछि।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥२॥

राजविद्या– विद्याक राजा; **राजगुह्यं**– गोपपीय ज्ञानक राजा; **इदं**– ई; **पवित्रम्**– शुद्धतम; **उत्तमम्**– दिव्य; **प्रत्यक्ष**– प्रत्यक्ष अनुभव सँ; **अवगमम्**– समझल गेल; **धर्म्यम्**– धर्म; **सु-सुखम्**– अत्यन्त सुखी; **कर्तुम्**– सम्पन्न कर मे; **अव्ययम्**– अविनाशी।

ई ज्ञान सब विद्याक राजा अछि, जे समस्त रहस्यमे सर्वाधिक गोपनीय अछि। ई परम शुद्ध अछि एवं चूँकि ई आत्माक प्रत्यक्ष अनुभूति करबैवला अछि, अतः ई धर्मक सिद्धान्त अछि। ई अविनाशी अछि आओर अत्यन्त सुखपूर्वक सम्पन्न कैल जा सकैत अछि।

तात्पर्यः भगवद्गीताक ई अध्याय विद्याक राजा राजविद्या कहलाबैत अछि, किएक तऽ ई पूर्ववर्ती व्याख्यायित समस्त सिद्धान्त एवं दर्शनक सार अछि। भारतक प्रमुख दार्शनिक, गौतम, कणाद, कपिल, याज्ञवल्क्य, शाण्डिल तथा वैश्वानर भेला अछि। सबसँ अन्तमे व्यासदेव आवैत छथि जे वेदान्तसूत्रक लेखक छथि। अतः दर्शन या दिव्यज्ञानक क्षेत्रमे कोनो प्रकारक अभाव नहि अछि। भगवान् कहैत छथि कि ई नवम अध्याय एहन समस्त ज्ञानक राजा अछि, ई वेदाध्ययन सँ प्राप्त ज्ञान एवं विभिन्न दर्शनक सार अछि। ई गुह्यतम अछि, किएक तऽ गुह्य या दिव्यज्ञानमे आत्मा तथा शरीरक अन्तर केँ जानल जाइत अछि। समस्त गुह्यज्ञानक एहि राजविद्याक पराकाष्ठा अछि, भक्तियोग।

जे व्यक्ति भगवत्भक्तिमे रत अछि तिनकर सब पापकर्म चाहे फलीभूत भऽ चुकल हो, सामान्य हो या बीजक रुपमे हो, क्रमशः नष्ट भऽ जाइत

अछि। अतः भक्तिक शुद्धिकारिणी शक्ति अत्यन्त प्रवल अछि आओर विशुद्धतम कहलाबैत अछि। कहल जाइत अछि कि भक्तिक सम्पन्नता एतेक पूर्ण होइत अछि कि ओकर फलक प्रत्यक्ष अनुभव कैल जा सकैत अछि। भक्ति एतेक समर्थ अछि कि भक्तिकार्यमे रत भेला मात्र सँ बिना कोनो संदेहक प्रकाश प्राप्त भऽ जाइत अछि। एकर उदाहरण नारद जीक पुनर्जन्ममे देखल जा सकैत अछि। नारद जी अपन शिष्य व्यासदेव सँ अपन पुनर्जन्मक वर्णन करैत छथि–ओ पहिने दासीक पुत्र छलाह। ओ न तो शिक्षित छलाह, न ही राजकुलमे उत्पन्न भेल छलाह किन्तु जखन हुनकर माता भक्तक सेवा करैत रहैत छली, नारद भी सेवा करैत छलाह। नारद भी कहैत छथि पूर्वजन्ममे बाल्यकालमे ओ चुतर्मासमे शुद्ध भक्तक सेवा करैत छलाह जाहि सँ हुनकर संगति प्राप्त भेलनि। कहियो कहियो ओ ऋषि अपन थालीमे उच्छिष्ट भोजन छोड़ि दैत एवं बालक थाली धोइतकाल उच्छिष्ट भोजन केँ चखए चाहैत छलाह। अतः ओहि ऋषिक अनुमति माँगिक बालक नारद ओहि उच्छिष्ट भोजन केँ खाइत छलाह। फलस्वरुप ओ समस्त पाप कर्म सँ मुक्त भऽ गेलाह। जेना जेना ओ उच्छिष्ट खाइत रहला तेना तेना ओ ऋषिक समान शुद्ध हृदय बनैत गेलाह।

ऋषिक संगति करला सँ नारदमे भी भगवानक महिमाक श्रवण तथा कीर्तनक रुचि उत्पन्न भेलैन आओर ओ भक्तिक तीव्र इच्छा विकसित कैलनि। अतः जेना कि वेदान्तसूत्रमे कहल गेलै अछि– ''**प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात्**'' –जे भक्तिक कार्यमे केवल लागल रहैत अछि हुनका स्वतः सब अनुभूति भऽ जाइत अछि एवं ओ सब किछु समझ लागैत अछि। भगवानक चरणकमल पर चढ़ल तुलसीदलक आस्वादनक सनत्कुमार सनक मुनि महान भक्त बनि गेलाह। अतः भक्तियोग अति उत्तम अछि।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।।३।।

अश्रद्दधानाः– श्राद्धविहीन; **पुरुषाः**– पुरुष; **धर्मस्य**– धर्मक प्रति; **अस्य**– एहि; **परन्तप**– हे शत्रुहन्ताः; **अप्राप्य**– बिना प्राप्त केने; **माम्**– हमरा; **निवर्तन्ते**– लौटैत अछि; **मृत्युः**– मुत्युक; **संसार**– संसार मे; **वर्त्मनि**– पथ मे।

हे परन्तप! जे लोग भक्तिमे श्रद्धा नहि राखैत अछि, ओ हमरा प्राप्त नहिक पाबैत। अतः ओ एहि भौतिक जगतमे जन्म-मृत्युक मार्ग पर वापस आबैत रहैत अछि।

तात्पर्यः श्रद्धाविहीनक लेल भक्तियोग पायब कठिन अछि। श्रद्धा तो भक्तक संगति सँ उत्पन्न कैल जाइत अछि। श्रद्धा तो ई पूर्ण विश्वास अछि कि परमेश्वर श्रीकृष्णक ही सेवा द्वारा सब सिद्धि प्राप्त कैल जा सकैत अछि। भागवतमे कहल गेलै अछि–वृक्षक जड़ि केँ सींचला सँ ओकर डालि, टहनी तथा पत्ता तुष्ट होइत अछि आओर आमाशय केँ भोजन प्रदान केला सँ शरीरक सब इन्द्रिय तृप्त होइत अछि। ओहि तरहेँ भगवानक दिव्य सेवा कैला सँ सब देवता तथा अन्य समस्त जीव स्वतः प्रसन्न भऽ जाइत अछि। यदि ओ एहि जीवन–दर्शन सँ विश्वस्त भऽ जाइत अछि, तो इहै श्रद्धा अछि।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यंक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥४॥

मया– हमरा द्वारा; **ततम्**– व्याप्त अछि; **इदं**– ई; **सर्वम्**– समस्त; **जगत्**– दृश्य जगत; **अव्यक्त मूर्तिना**– अव्यक्त रुप द्वारा; **मत्–स्थानि**– हमरा मे; **सर्वभूतानि**– समस्त जीव; **न**– नहि; **च**– भी; **अहं**– हम; **तेषु**– ओहि मे; **अवस्थितः**– स्थित।

ई सम्पूर्ण जगत हमर अव्यक्त रुप द्वारा व्याप्त अछि। समस्त जीव हमरा मे अछि, किन्तु हम ओकरा सबमे नहि छी।

तात्पर्यः यदि क्यो भगवानक प्रति दिव्य प्रेमाभिरूचि उत्पन्न कै लेलक अछि तो ओ सदैव अपन भीतर तथा बाहर भगवान् केँ देख सकैत अछि। एहि प्रकार ओ समान्यजनक लेल दृश्य नहि छथि। एतय कहल गेलै अछि कि यद्यपि भगवान् सर्वव्यापी छथि आओर सर्वत्र उपस्थित छथि, किन्तु ओ भौतिक इन्द्रिय द्वारा अनुभवगम्य नहि छथि। जाहि प्रकार सूर्य प्रकाश सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमे फैलल अछि ओहि प्रकार भगवानक शक्ति सम्पूर्ण सृष्टिमे फैलल अछि आओर सब वस्तु ओहि शक्ति पर टिकल अछि।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥५॥

न– कहियो नहि; **च**– भी; **मत् स्थानि**– हमरा मे स्थित; **भूतानि**– समस्त सृष्टि; **पश्य**– देखू; **मे**– हमरामे; **योगम् ऐश्वरम्**– अचिन्त्य योगशक्ति; **भूत भृत**– समस्त जीवक पालक; **न**– नहि; **भूतस्थः**– विराट अभिव्यक्तिमे; **मम्**– हमर; **आत्मा**– स्व आत्म; **भूत भावनः**– समस्त अभिव्यक्तिक स्रोत।

तथापि हमरा द्वारा उत्पन्न सब वस्तु हमरेमे स्थित नहि रहैत। जरा, हमर योग ऐश्वर्य केँ देखू। यद्यपि हम समस्त जीवक पालक (भर्ता) छी आओर सर्वत्र व्याप्त छी, लेकिन हम एहि विराट अभिव्यक्तिक अंश नहि छी, किएक तऽ हम सृष्टिक कारणस्वरुप छी।

तात्पर्यः यद्यपि भगवान् समस्त सृष्टिक पालक तथा धारणकर्ता छथि, किन्तु ओ एहि सृष्टिक स्पर्श नहि करैत छथि। केवल हुनकर परम इच्छा सँ प्रत्येक वस्तुक सृजन, पालन एवं संहार होइत अछि। हुनकर मन आओर स्वयं हुनकामे भेद नहि अछि जेना हमर भौतिक मनमे आओर स्वयं हमरामे भेद होइत अछि। किएक तऽ ओ परमात्मा छथि। संग ही ओ प्रत्येक वस्तुमे उपस्थित रहैत छथि, किन्तु सामान्य व्यक्ति ई नहि समझि पाबैत अछि कि ओ साकार रुपमे कोन तरहेँ उपस्थित छथि। ओ भौतिक जगत् सँ अलग छथि तो भी प्रत्येक वस्तु हुनके पर आश्रित अछि। एतय एकरे **'योगम् ऐश्वरम्'** अर्थात् भगवानक योगशक्ति कहल गेलै अछि।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥६॥

यथा– जाहि प्रकार; **आकाश स्थितः**– आकाश मे स्थित; **नित्यम्**– सदैव; **वायुः**– हवा; **सर्वत्रगः**– सब जगह बहएवाली; **महान**– महान; **तथा**– ओहि प्रकार; **सर्वाणि भूतानि**– सब प्राणी; **मत स्थानि**– हमरामे स्थित; **इति**– एहि प्रकार; **उपधारय**– समझू।

जाहि प्रकार सर्वत्र प्रवहमान प्रबल वायु सदैव आकाशमे स्थित रहैत अछि, ओहि प्रकार समस्त उत्पन्न प्राणी केँ हमरामे स्थित समझू।

तात्पर्यः बृहदारण्यक उपनिषद्मे कहल गेलै अछि–भगवानक अध्यक्षतामे परमादेश सँ चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य विशाल लोक घूमि

रहल अछि। समस्त विचित्र विराट अभिव्यक्तिक अस्तित्व भगवानक परम इच्छाक फलस्वरुप अछि। ओ सब एहि परम इच्छाक अधीन अछि। हुनकर इच्छाक बिना एक पत्ता भी नहि हिलैत अछि। एहि प्रकार प्रत्येक वस्तु हुनकर इच्छाक अधीन गतिशील अछि, हुनके इच्छा सँ सब वस्तु उत्पन्न होइत अछि, ओकर पालन होइत अछि आओर ओकर संहार होइत अछि। एतबा पर भी ओ प्रत्येक वस्तु सँ ओहि तरहेँ पृथक रहैत अछि जाहि प्रकार वायुक कार्य सँ आकाश रहैत अछि।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।७।।

सर्वभूतानि– सब प्राणी; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **प्रकृतिम्**– प्रकृति मे; **यान्ति**– प्रवेश करैत अछि; **मामिकाम्**– हमर; **कल्पक्षये**– कलपान्त मे; **पुनः**– फेर सँ; **तानि**– ओहि सब मे; **कल्प-आदौ**– कल्पक आरम्भ मे; **अहं**– हम; **विसृजाम्**– उत्पन्न करैत छी।

हे कुन्तीपुत्र! कल्पक अन्त भेलाक बाद सब प्राणी हमर प्रकृतिमे प्रवेश करैत अछि आओर अन्य कल्पक आरम्भ भेला पर हम ओकरा अपन शक्ति सँ पुनः उत्पन्न करैत छी।

तात्पर्यः एहि विराट भौतिक अभिव्यक्तिक सृजन, पालन एवं संहार पूर्णतया भगवानक परम इच्छा पर निर्भर अछि। कल्पक्षेयक अर्थ अछि, ब्रह्माक मृत्यु भेला पर। ब्रह्मा एक सौ वर्ष जीवित रहैत छथि आओर हुनकर एक दिन हमरा सबहक ४,३०,००,००,०००/– वर्षक तुल्य अछि। रात्रि भी एतवे वर्षक होइत अछि। ब्रह्माक एक महिनामे एहिना तीस दिन तथा रात्रि भी होइत अछि आओर हुनको एक वर्षमे एहिना बारह महिना होइत अछि। अहिना एक सौ वर्षक बाद जखन ब्रह्माक मृत्यु होइत अछि तो प्रलय भऽ जाइत अछि, जकर अर्थ अछि कि भगवान् द्वारा प्रकट शक्ति पुनः सिमटिक हुनकेमे चल जाइत अछि। पुनः जखन विराट जगतक प्रकट करक आवश्यकता होइत अछि तो हुनके इच्छा सँ सृष्टिक उत्पन्न होइत अछि। वैदिक सूक्ति अछि– **''एकोऽहं बहुस्याम्–''** यद्यपि हम अकेला छी, किन्तु हम अनेक भऽ जाएव।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।८।।

प्रकृतिम्- प्रकृति मे; **स्वाम्**- हमर, निजी; **अवस्टभ्य**- प्रवेशक; **विसृजामि**- उत्पन्न करैत छी; **पुनः पुनः**- बारम्बार; **भूतग्रामम्**- समस्त विराट अभिव्यक्ति केँ; **इमम्**- एहि; **कृत्स्नम्**- पूर्णतः; **अवशम्**- स्वतः; **प्रकृते**- प्रकृतिक शक्ति केँ; **वशात्**- वश मे।

सम्पूर्ण विराट जगत हमरा अधीन अछि। ई हमर इच्छा सँ बारम्बार स्वतः प्रकट होइत रहैत अछि आओर हमरे ही इच्छा सँ अन्तमे विनष्ट होइत अछि।

तात्पर्यः ई भौतिक जगत भगवानक अपराशक्तिक अभिव्यक्ति अछि। सृष्टिक समय ई शक्ति महत्तत्त्वक रुपमे प्रकट होइत अछि। जाहिमे भगवान् अपन प्रथम पुरुष अवतार महाविष्णुक रुपमे प्रवेश कऽ जाइत छथि। ओ कारणार्णवमे शयन करैत रहैत छथि एवं अपन श्वास सँ अखण्ड ब्रह्माण्ड निकालैत छथि। एहि प्रकार ब्रह्माण्डक सृष्टि होइत अछि।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥९॥

न- कहियो नहि; **च**- भी; **माम्**- हमरा; **तानि**- ओ; **कर्माणि**- कर्म; **निबध्नन्ति**- बाँधैत अछि; **धनञ्जय**- हे धनक विजेता; **उदासीनवत्**- निरपेक्ष या तटस्थक तरह; **आसीनम्**- स्थित भेल; **असक्तम्**- असक्तिरहित; **तेषु**- ओहि; **कर्मसु**- कार्य में।

हे धनञ्जय! ई सब कर्म हमरा नहि बाँधि पावैत अछि। हम उदासीनक भाँति एहि समस्त भौतक कर्म सँ सदैव विरक्त रहैत छी।

तात्पर्यः ब्रह्मसंहितामे कहल गेलै अछि- **''आत्मारामस्य तस्यास्ति प्रकृत्या न समागमः''** ओ सतत दिव्य आनन्दमय आध्यात्मिक कार्यमे रत रहैत छथि, किन्तु एहि भौतिक कार्य सँ हुनका कोनो सरोकार नहि रहैत अछि। सब भौतिक कार्य हुनकर विभिन्न शक्ति द्वारा सम्पन्न होइत रहैत अछि। ओ सदा ही एहि सृष्टिक भौतिक कार्यक प्रति उदासीन रहैत छथि। एहि उदासीनता केँ ही एतै उदासीनवत् कहल गेलै अछि।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥१०॥

मया- हमरा द्वारा; **अध्यक्षेण**- अध्यक्षताक कारण; **प्रकृतिः**- प्रकृति;

सूयते– प्रकट होइत अछि; **स**– सहित; **चर अचरम्**– जड़ तथा जंगम; **हेतुना**– कारण सँ; **अनेन**– एहि; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **जगत**– दृश्य जगत; **विपरिवर्तते**– क्रियाशील अछि।

हे कुन्तीपुत्र! ई भौतिक प्रकृति हमर शक्तिमे एक अछि आओर हमर अध्यक्षतामे कार्य करैत अछि, जाहिमे सब चर तथा अचर प्राणी उत्पन्न होइत अछि। हिनकर शासनमे ई जगत् बारम्बार सृजित आओर विनष्ट होइत अछि।

तात्पर्यः जखन कोनो व्यक्तिक समक्ष फूल होइत अछि तो ओकरा ओकर सुगन्धि मिलैत रहैत अछि, किन्तु फूल एवं सुगन्धि एक दोसर सँ विलग रहैत अछि। एहने सम्बन्ध भौतिक जगत तथा भगवानक बीच भी अछि। वस्तुतः भगवान् केँ एहि जगत सँ कोनो प्रयोजन नहि रहैत, किन्तु ओ ही एकरा अपन दृष्टिपात सँ उत्पन्न करैत तथा व्यवस्थित करैत छथि। सारांशक रुप हम कहि सकैत छी कि परमेश्वरक अध्यक्षताक बिना प्रकृति किछु भी नहि कऽ सकत। तो भी भगवान् समस्त कार्य सँ पृथक् रहैत छथि।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥११॥

अवजानन्ति– उपहास करैत अछि; **माम्**– हमर; **मूढ़ा**– मूर्ख व्यक्ति; **मानुषीम्**– मनुष्यरुप मे; **तनुम्**– शरीर; **आश्रितम्**– मानैत; **परम्**– दिव्य; **भावम्**– स्वभाव केँ; **अजानन्तः**– नहि जानैत भी; **मम**– हमर; **भूत**– प्रत्येक वस्तुक; **महाईश्वरम्**– परम स्वामी।

जखन हम मनुष्य रुपमे अवतरित होइत छी, तो मूर्खजन हमर उपहास करैत अछि। ओ हमर परमेश्वरक दिव्य स्वभाव केँ नहि जानैत अछि।

तात्पर्यः यद्यपि भगवान् मनुष्यक रुपमे प्रकट होइत अछि, किन्तु ओ सामान्य व्यक्ति नहि होइत छथि। जे भगवान् समस्त विराट जगतक सृजन, पालन तथा संहार करैत हो ओ मनुष्य नहि भऽ सकैछ। तो भी एहन अनेक मूर्ख अछि जे कृष्ण केँ एक शक्तिशाली पुरुषक अतिरिक्त आओर किछु नहि मानैत अछि। वस्तुतः ओ आदि परमपुरुष छथि।

ब्रह्मसंहितामे प्रमाण स्वरुप कहल गेलै अछि– **"ईश्वरः परमः कृष्णः"** ओ परम ईश्वर छथि।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥१२॥

मोघाशा– निष्फल आशा; **मोघकर्माणः**– निष्फल सकाम कर्म; **मोघ ज्ञानाः**– विफल ज्ञान; **विचेतसः**– मोहग्रस्तः; **राक्षसीम्**– राक्षसी; **आसुरीम**– आसुरी; **च**– तथा; **एव**– निश्चय ही; **प्रकृतिम्**– स्वभाव केँ; **मोहिनीम्**– मोहवाली; **श्रिताः**– शरण ग्रहण केने हुए।

जे लोग एहि प्रकार मोहग्रस्त अछि, ओ आसुरी तथा नास्तिक विचारक प्रति आकृष्ट रहैत अछि। एहि मोहग्रस्त अवस्थामे ओकर मुक्ति आशा, ओकर सकाम कर्म तथा ज्ञानक अनुशीलन सब निष्फल भऽ जाइत अछि।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण केँ साधारण व्यक्ति मानव अपराध अछि। जे एना करैत छथि ओ निश्चित रुप सँ मोहग्रस्त रहैत अछि किएक तऽ ओ कृष्णक शाश्वत रुप केँ नहि समझि पावैत अछि। जे भगवान् कृष्ण केँ परब्रह्म नहि मानैत छथि, ओहन व्यक्ति केँ कहियो भी भक्तिफल–भगवद्धाम गमन प्राप्त नहि होइछ।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥१३॥

महा आत्मनः– महापुरुष; **तु**– लेकिन; **माम्**– हमरा; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **दैवीम्**– दैवी; **प्रकृतिम्**– प्रकृतिक; **आश्रिताः**– शरणागत; **भजन्ति**– सेवा करैत अछि; **अनन्य-मनसः**– अविचलित मन सँ; **ज्ञात्वा**– जानि कऽ; **भूत**– सृष्टिक; **आदिम्**– उद्गम; **अव्ययम्**– अविनाशी।

हे पार्थ मोहमुक्त महात्माजन दैवी प्रकृतिक संरक्षणमे रहैत अछि। ओ पूर्णतः भक्तिमे निमग्न रहैत अछि किएक तऽ ओ हमरा आदि तथा अविनाशी भगवानक रुपमे जानैत अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे महात्माक वर्णन भेल अछि। महात्माक पहिल लक्षण ई अछि कि ओ दैवी प्रकृतिमे स्थित रहैत छथि। ओ भौतिक प्रकृतिक अधीन नहि होइत छथि। महात्मा अपन ध्यान केँ कृष्णक

अतिरिक्त अन्य कोनो तरफ नहि लऽ जाइत छथि किएक तऽ ओ ठीक–ठीक जानैत छथि कि कृष्ण ही आदि परम पुरुष, समस्त कारणक कारण छथि। ओ कृष्णभावनामृतमे निरंतर भगवानक अविचल सेवामे लागल रहैत छथि।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥१४॥

सततम्– निरन्तर; **कीर्तयन्तः**– कीर्तन करैत; **माम्**– हमरा विषय मे; **यतन्तः**– प्रयास करैत; **च**– भी; **दृढ़व्रताः**– संकल्पपूर्वक; **नमस्यन्तः**– नमस्कार करैत; **च**– तथा; **माम्**– हमरा; **भक्त्या** – भक्ति मे; **नित्य युक्ताः**– सदैव रत रहिक; **उपासते**– पूजा करैत अछि।

ई महात्मा हमर महिमाक नित्य कीर्तन करैत दृढ़ संकल्पक संग प्रयास करैत, हमरा नमस्कार करैत, भक्तिभाव सँ निरन्तर हमर पूजा करैत अछि।

तात्पर्यः ई भक्ति न केवल सरल अछि अपितु, एकरा सुखपूर्वक कैल जा सकैत अछि। एकरा लेल कठिन तपस्याक आवश्यकता नहि पड़ैत अछि। मनुष्य सक्षम गुरुक निर्देशनमे एहि जीवन केँ गृहस्थ, संयासी या ब्रह्मचारी रहैत भक्तिमे बिता सकैत अछि। एहि संसारमे कोनो अवस्थामे कतौ भी भगवानक भक्तिक वास्तवमे महात्मा बनि सकैत अछि।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ते यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥१५॥

ज्ञानयज्ञेन– ज्ञानक अनुशीलन द्वारा; **च**– भी; **अपि**– निश्चय ही; **अन्ये**– अन्य लोग; **यजन्तः**– यज्ञ करैत; **माम्**– हमरा; **उपासते**– पूजैत अछि; **एकत्वेन**– एकान्त भाव सँ; **पृथक्त्वेन**– द्वैत भाव सँ; **बहुधा**– अनेक प्रकार सँ; **विश्वतः मुखम्**– विश्व रुप मे।

अन्य लोग जे ज्ञानक अनुशीलन द्वारा यज्ञमे लागल रहैत अछि, ओ भगवानक पूजा हुनकर अद्वय रुपमे, विविध रुपमे तथा विश्वरुपमे करैत अछि।

तात्पर्यः भगवान् अर्जुन केँ बतबैत छथि कि जे विशुद्ध कृष्णभावनामृतमे लागल रहैत अछि आओर कृष्णक अतिरिक्त अन्य ककरो नहि जानैत,

ओ महात्मा कहलाबैत अछि। तो भी किछु लोग एहनो अछि जे वास्तवमे महात्मा पद केँ प्राप्त नहि होइत अछि, किन्तु ओ भी विभिन्न प्रकार सँ कृष्णक पूजा करैत अछि। सामान्यतया निर्विशेषवादी एहि प्रकार सँ परमेश्वर केँ पूजैत अछि। दोसर प्रकारक लोग ओ अछि जे देवताक अपासक अछि, जे अपन कल्पना सँ कोनो भी स्वरुप केँ मानि लैत अछि। तृतीय कोटिमे ओ लोग आबैत अछि जे एहि ब्रह्माण्ड सँ परे किछु भी नहि सोचि पाबैत अछि। ओ ब्रह्माण्ड केँ ही परम जीव या सत्ता मानि कऽ ओकर उपासना करैत अछि। ई ब्रह्माण्ड भी भगवानक एक स्वरुप अछि।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥१६॥

अहं- हम; **क्रतुः**- वैदिक अनुष्ठान, कर्मकाण्ड; **यज्ञः**- स्मार्त यज्ञः; **स्वधा**- तर्पण; **औषधम्**- जड़ीबूटी; **मन्त्रः**- दिव्यध्वनि; **एव**- निश्चय ही; **आज्यम्**- घृत; **अग्निः**- अग्नि; **हुतम्**- आहुति; भेंट।

किन्तु हम ही कर्मकाण्ड, हम ही यज्ञ, पितर केँ दिअ जायवाला तर्पण, औषधि, दिव्यध्वनि (मंत्र), घी, अग्नि तथा आहुति छी।

तात्पर्यः ई कहल जा सकैत अछि कि जे लोग कृष्णक भक्तिमे लागल रहैत हुनका लेल ई समझबाक चाही कि ओ सब देवविहित यज्ञ सम्पन्न कऽ लेलथि कारण वेदक कर्मकाण्ड भागमे प्रतिवादित वैदिक यज्ञ भी पूर्णरुप सँ भगवान् कृष्ण छथि।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च॥१७॥

पिता- पिता; **अहं**- हम; **अन्य**- एहि; **जगतः**- ब्रह्माण्डक; **माता**- माता; **धाता**- आश्रयदाता; **पितामहः**- बाबा; **वेद्यम्**- जानए योग्य; **पवित्रम्**- शुद्ध करएवाला; **ॐकारः**- ॐ अक्षर; **ऋक्**- ऋग्वेद; **साम**- सामवेद; **यजुः**- यजुर्वेद; **एव**- निश्चय ही; **च**- तथा।

हम एहि ब्रह्माण्डक पिता, माता, आश्रय तथा पितामह छी। हम ज्ञेय (जान योग्य), शुद्धिकर्ता तथा ओंकार छी। हम ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद भी छी।

तात्पर्यः सब चराचर विराट जगतक अभिव्यक्ति भगवान् कृष्णक शक्तिक विभिन्न कार्यकलाप सँ होइत अछि। एहि भौतिक जगतमे हम विभिन्न जीवक संग तरह–तरहक सम्बन्ध स्थापित करैत छी जे कृष्णक शक्तिक अतिरिक्त अन्य किछु नहि अछि। न केवल हमरा सबहक माता–पिता कृष्णक अंश रुप छथि, अपितु एकर स्त्रष्टा दादा–दादी कृष्ण छथि। वस्तुतः कोनो भी जीव कृष्णक अंश भेलाक कारणेँ कृष्ण छथि। समस्त वैदिक मंत्रमे ॐ शब्द, जकरा प्रणव कहल जाइत अछि, एक दिव्य ध्वनि कम्पन अछि आओर ई कृष्ण भी अछि। चूँकि चारु वेद– ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेदमे प्रणव या ओंकार प्रधान अछि, अतः एकरा कृष्ण समझक चाही।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥१८॥

गति– लक्ष्य; **भर्ता**– पालक; **प्रभुः**– भगवान्; **साक्षी**– गवाह; **निवासः**– धाम; **शरणम्**– शरण; **सुहृत्**– घनिष्ठ मित्र; **प्रभवः**– सृष्टि; **प्रलयः**– संहार; **स्थानम्**– भूमि, स्थिति; **निधानम्**– आश्रय, विश्रामस्थल; **बीजम्**– बीज, कारण; **अव्ययम्**– अविनाशी।

हम ही लक्ष्य, पालनकर्ता, स्वामी, साक्षी, धाम, शरणस्थली तथा अत्यन्त प्रिय मित्र छी। हम सृष्टि तथा प्रलय, सबहक आधार, आश्रय तथा अविनाशी बीज भी छी।

तात्पर्यः कृष्ण परम जीव छथि। चूँकि कृष्ण हमर उत्पत्तिक कारण या हमर परमपिता छथि, अतः हुनका सँ बढ़ि केँ न तो क्यो मित्र भऽ सकैत अछि, न शुभचिन्तक। श्रीकृष्ण सृष्टिक आदि उद्गम आओर प्रलयक पश्चात् परम विश्रामस्थल छथि।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युन्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥१९॥

तपामि– ताप दैत छी, गर्मी पहुँचाबैत छी; **अहं**– हम; **वर्षम्**– वर्षा; **निगृह्णामि**– रोकि सकैत छी; **उत्सृजामि**– भेजैत छी; **च**– तथा; **अमृतम्**– अमरत्व; **एव**– निश्चय ही; **मृत्युः**– मृत्यु; **सत्**– आत्मा; **असत्**– पदार्थ; **अर्जुन**– हे अर्जुन।

हे अर्जुन! हम ही ताप प्रदान करैत छी आओर वर्षा केँ रोकैत एवं लाबैत छी। हम अमरत्व छी आओर साक्षात मृत्यु भी हम छी। आत्मा तथा पदार्थ (सत् तथा असत्) दूनू हमरेमे अछि।

तात्पर्यः श्रीकृष्ण अपन विभिन्न शक्ति सँ विद्युत तथा सूर्यक द्वारा ताप तथा प्रकाश बिखराबैत छथि। ग्रीष्म ऋतुमे कृष्ण ही आकाश सँ वर्षा नहि होम दैत छथि एवं वर्षा ऋतुमे ओहे अनवरत वर्षाक झड़ी लगबैत छथि। जे शक्ति हमरा जीवन प्रदान करैत अछि, ओ कृष्ण छथि आओर अंतमे मृत्यु रुपमे हमरा कृष्ण मिलैत छथि। ओ पदार्थ तथा आत्मा दूनू छथि। मनुष्य हर वस्तुमे कृष्णक ही दर्शन करैत अछि।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति।
दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥२०॥

त्रै विद्या– तीनू वेदक ज्ञाता; **माम्**– हमरा; **सोमपाः**– सोम रसपान करवाला; **पूत**– पवित्र; **पापाः**– पापक; **यज्ञैः**– यज्ञक संग; **इष्ट्वा**– पूजा करिक; **स्वः गतिम्**– स्वर्गक प्राप्तिक लेल; **प्रार्थयन्ते**– प्रार्थना करैत अछि; **ते**– ओ; **पुण्यम्**– पवित्र; **आसाद्य**– प्राप्त करिक; **सुर-इन्द्र**– इन्द्रक; **लोकम्**– लोक केँ; **अश्नन्ति**– भौगैत अछि; **दिव्यान्**– दैवी; **दिवि**– स्वर्ग मे; **देवभोगान्**– देवताक आनन्द केँ।

जे वेदक अध्ययन करैत तथा सोमरसक पान करैत अछि, ओ स्वर्ग प्राप्तिक गवेषणा करैत अप्रत्यक्ष रुप सँ हमर पूजा करैत अछि। ओ पापकर्म सँ शुद्ध भऽकऽ इन्द्रक पवित्र स्वर्गिक धाममे जन्म लैत अछि, जतय ओ देवताक संग आनन्द भोगैत अछि।

तात्पर्यः जे ब्राह्मण एहि तीनू वेद– साम, यजुः तथा ऋग्वेदक अध्ययन कैलनि अछि ओ त्रिवेदी कहलाबैत छथि। वास्तविक त्रिवेदी भगवानक चरणकमलक शरण ग्रहण करैत छथि आओर भगवान् केँ प्रसन्न करै लेल शुद्ध भक्ति करैत छथि। फलस्वरुप ओ उच्चतर लोक तथा जनलोक, तपलोक आदि केँ प्राप्ति होइत छथि।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥२१॥

ते- वे; **तम्-ओकरा; भुक्त्वा**- भोग करि कऽ; **स्वर्गलोकम्**- स्वर्गलोक मे; **विशालम्**- विस्तृत; **क्षीणे**- समाप्त भेला पर; **पुण्ये**- पुण्य कर्मक फल; **मृत्युलोकमे**- मृत्युलोक मे; **विशन्ति**- नीचा गिरैत; **त्रयी**- तीनू वेद; **धर्मम्**- सिद्धान्त केँ; **अनुप्रपन्नाः**- पालन करैवाला; **गत-आगतम्**- मृत्यु तथा जन्म केँ; **कामकामा**- इन्द्रियसुख चाहएवाला; **लभन्ते**- प्राप्त करैत।

एहि प्रकार जखन ओ (उपासक) विस्तृत स्वर्गिक इन्द्रियसुख केँ भोग लैत अछि आओर हुनकर पुण्यकर्मक फल क्षीण भऽ जाइत अछि। तो भी ओ एहि मृत्युलोकमे पुनः लौट आबैत छथि। एहि प्रकार जे तीनू वेदक सिद्धान्तमे दृढ़ रहिक इन्द्रियसुखक गवेषणा करैत छथि, हुनका जन्म-मृत्युक चक्र ही मिल पाबैत अछि।

तात्पर्यः जे स्वर्गलोक प्राप्त करैत छथि हुनका दीर्घजीवन तथा विषयसुखक श्रेष्ठ सुविधा प्राप्त होइत अछि, तो भी हुनका सदा ओतय नहि रह देल जाइत अछि। पुण्यकर्मक फलक क्षीण भेला पर हुनका पुनः पृथ्वी (मृत्युलोक) भेज देल जाइत अछि। सारांश ई अछि कि ओ वैकुण्ठ लोक न जा कऽ स्वर्ग तथा मृत्युलोकक मध्य जन्म-मृत्यु चक्रमे घूमैत रहैत छथि।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥२२॥

अनन्याः- जकर कोनो अन्य लक्ष्य नहि हो, अनन्य भाव सँ; **चिन्तयन्तः**- चिन्तन करैत; **माम्**- हमरा; **ये**- जे; **जनाः**- व्यक्ति; **पर्युपासते**- ठीक सँ पूजैत अछि; **तेषाम्**- हुनका; **नित्य**- सदा; **अभियृक्तानाम्**- भक्ति मे लीन मनुष्यक; **योग**- आवश्यकता; **क्षेमम्**- सुरक्षा, आश्रय; **वहामि**- वहन करैत छी; **अहं**- हम।

किन्तु जे लोग अनन्य भाव सँ, हमर दिव्यरुपक ध्यान करैत हमर पूजा करैत अछि हुनकर जे आवश्यकता होइत अछि, ओकरा हम पूरा करैत छी एवं जे किछु हुनका पास अछि ओकर रक्षा करैत छी।

तात्पर्यः जे एक क्षण भी कृष्णभावनामृतक बिना नहि रहि सकैत, ओ दिन–राति भगवान् कृष्णक चिन्ता करैत अछि एवं श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, वन्दन, अर्चन, दास्य, सख्यभाव तथा आत्मनिवेदन (नवधा भक्ति)क द्वारा भगवानक चरणकमलक सेवामे रत रहैत अछि। एहन भक्त भगवत्कृपा सँ एहि संसारमे पुनः नहि आबैत छथि। संगहि भगवान् हुनका दुखमय बद्ध जीवनमे पुनः गिरै सँ रक्षा करैत छथि।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥२३॥

ये– जे; **अपि**– भी; **अन्य**– दोसर; **देवताः**– देवगणक; **भक्ताः**– भक्तगण; **यजन्ते**– पूजैत अछि; **श्रद्धया अन्विताः**– श्रद्धापूर्वक; **ते**– ओ; **माम्**– हमरा; **एव**– केवल; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **अविधि पूर्वकम्**– त्रुटिपूर्ण ढंग सँ।

हे कुन्तीपुत्र! जे लोग अन्य देवताक भक्त अछि आओर हुनका श्रद्धापूर्वक पूजा करैत अछि, वास्तवमे ओ भी हमरे ही पूजा करैत अछि, किन्तु ओ ई त्रुटिपूर्ण ढंग सँ करैत अछि।

तात्पर्यः श्रीकृष्णक कथन अछि–जे लोग अन्य देवताक पूजामे लागल रहैत अछि, ओ अधिक बुद्धिमान नहि होइत, यद्यपि एहन पूजा अप्रत्यक्षतः हमरे पूजा अछि। उदाहरणार्थ जखन क्यो व्यक्ति वृक्षक जड़िमे जल नहि डालिक ओकर पत्ती तथा टहनीमे डालैत अछि, तो ओ एना इसलिए करैत अछि किएक तऽ ओकरा पर्याप्त ज्ञान नहि होइत अथवा ओ नियमक ठीक सँ पालन नहि करैत अछि। दोसर शब्दमे कृष्ण अन्य देवताक व्यर्थ पूजाक समर्थन नहि करैत छथि।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥२४॥

अहं– हम; **हि**– निश्चित रुप सँ; **सर्व**– समस्त; **यज्ञानाम्**– यज्ञक; **भोक्ता**– भोग करएवाला; **च**– तथा; **प्रभुः**– स्वामी; **एव**– भी; **न**– नहि; **तु**– लेकिन; **माम्**– हमरा; **अभिजानन्ति**– जानैत अछि; **तत्त्वेन**– वास्तव मे; **अतः**– अतएव; **च्यवन्ति**– नीचा गिरैत अछि; **ते**– ओ।

हम ही समस्त यज्ञक एकमात्र भोक्ता तथा स्वामी छी। अतः जे

लोग हमर वास्तविक दिव्य स्वभाव केँ नहि पहिचान पाबैत, ओ नीचा गिर जाइत अछि।

तात्पर्यः भगवान्‌ कृष्ण कहैत छथि– हम समस्त यज्ञक भोक्ता छी, किएक तऽ हम परम प्रभु छी। किन्तु अल्पज्ञ एहि तथ्य सँ अवगत नहि भेलाक कारण क्षणिक लाभक लेल देवता केँ पूजैत अछि। अतः ओ एहि संसारमे आ गिरैत अछि आओर ओकरा जीवनक लक्ष्य प्राप्त नहि होइत अछि।

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्‌॥२५॥

यान्ति– जाइत अछि; **देव व्रताः**– देवताक उपासक; **देवान्‌**– देवताक पास; **पितॄन्‌**– पितरक पास; **पितृ व्रताः**– पितरक उपासक; **भूतानि**– भूत प्रेतक पास; **यान्ति**– जाइत अछि; **भूत इज्याः**– भूत प्रेतक उपासक; **मत्‌**– हमर; **याजिनः**– भक्तगण; **अपि**– लेकिन; **माम्‌**– हमरा पास।

जे देवताक पूजा करैत अछि, ओ देवताक बीच जन्म लेत, जे पितर सबहक पूजा करैत अछि ओ पितरक पास जाइत अछि, जे भूत प्रेतक उपासना करैत अछि, ओ ओकरे बीच जन्म लैत अछि, आओर जे हमर पूजा करैत अछि ओ हमरा संग निवास करैत अछि।

तात्पर्यः विशिष्ट वैदिक नियमक वर्णन वेदक कर्मकाण्ड अंशमे भेल अछि, जाहिमे विभिन्न लोकमे स्थित देवताक लेल विशिष्ट पूजाक विधान अछि। एहि प्रकार विशिष्ट यज्ञक पितृलोक प्राप्त कैल जा सकैत अछि। ओहि तरहेँ भूत-प्रेत लोकमे जाक यक्ष, रक्ष या पिशाच बनि सकैत अछि, एहि प्रकार शुद्ध भक्त केवल भगवानक पूजाक निस्सन्देह वैकुण्ठक प्राप्ति करैत छथि।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥२६॥

पत्रम्‌– पत्ता; **पुष्पम्‌**– फूल; **फलम्‌**– फल; **तोयम्‌**– जल; **यः**– जे; **मे**– हमरा; **भक्त्या**– भक्तिपूर्वक; **प्रयच्छति**– भेंट करैत अछि; **तत**– ओ; **अहम**– हम; **भक्ति उपहृतम**– भक्तिभाव सँ अर्पित; **अश्नामि**– स्वीकार

करै छी; **प्रयत-आत्मनः**- शुद्धचेतनावला सँ।

यदि क्यो प्रेम तथा भक्तिक संग हमरा पत्र, पुष्प, फल या जल प्रदान करैत अछि तो हम ओकरा स्वीकार करैत छी।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण केँ केवल प्रेमाभक्ति चाही आओर किछु नहि। कृष्ण तो अपन शुद्ध भक्त सँ एक छोट फूल तक ग्रहण करैत छथि। किन्तु अभक्त सँ ओ कोनो भेंट नहि चाहैत छथि। हुनका ककरो सँ किछु भी नहि चाही, किएक तऽ ओ आत्मतुष्ट छथि। तो भी ओ अपन भक्तक प्रेम तथा स्नेहक विनिमय स्वीकार करैत छथि। भक्ति ही कृष्णक पास पहुँचैक एकमात्र साधन अछि।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।२७।।

यत्- जे किछु; **करोषि**- करैत छी; **अश्नासि**- खाइत छी; **जुहोषि**- अर्पित करैत छी; **ददासि**- दान दैत छी; **यत्**- जे; **तपस्यसि**- तप करैत छी; **कौन्तये**- हे कुन्तीपुत्र; **तत्**- ओ; **कुरुष्व**- करु; **मत्**- हमरा; **अर्पणम्**- भेंट रुपमे।

हे कुन्तीपुत्र! अहाँ जे किछु करैत हो, जे किछु खाइत हो, जे किछु अर्पित करैत हो या दान दैत हो आओर जे भी तपस्या करैत हो, ओकरा हमरा अर्पित करैत हुए करु।

तात्पर्यः एहि प्रकार ई प्रत्येक व्यक्तिक कर्तव्य अछि कि अपन जीवन केँ एहि प्रकार ढ़ाली कि ओ कोनो दशामे भगवान् केँ नहि भूलि सके। कृष्ण एतय आदेश दैत छथि हर व्यक्ति हुनका लेल कर्म करे, कृष्ण केँ अर्पित भोजनक उच्छिष्टक ग्रहण करे। प्रत्येक व्यक्ति केँ किछु न किछु धार्मिक अनुष्ठान करे, किछु न किछु दान करे। अतः कृष्णक संस्तुति अछि एकरा हमरा लेल करु, इहै अर्चना अछि।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः।
सन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।२८।।

शुभ- शुभ; **अशुभ**- अशुभ; **फलैः**- फलक द्वारा; **एवम्**- एहि प्रकार; **मोक्ष्यसे**- मुक्त भऽ जाएब; **कर्म**- कर्मक; **बन्धनैः**- बन्धन सँ; **संन्यास**- संन्यासक; **योग**- योग सँ; **युक्त आत्मा**- मन केँ स्थिरक; **विमुक्तः**-

मुक्त भेल; **माम्**– हमरा; **उपैष्यसि**– प्राप्त होएब।

एहि तरहेँ अहाँ कर्मक बन्धन तथा एकर शुभाशुभ फल सँ मुक्त भऽ जाएव। एहि संन्यासयोगमे अपन चित्त केँ स्थिरक अहाँ मुक्त भऽकऽ हमरा पास आएव।

तात्पर्यः जाहि व्यक्तिमे अपन जीवनमे भगवत्सेवामे रत राखक अतिरिक्त अन्य कोनो रुचि नहि होइत, ओ है व्यक्ति वास्तविक संन्यासी अछि। एहन व्यक्ति भगवानक परम इच्छा पर आश्रित रहैत अपना केँ हुनकर नित्य दास मानैत अछि। ओ जे किछु कर्म करैत अछि, भगवानक सेवाक लेल करैत अछि। निरन्तर योजना बनबैत रहैत अछि कि कोन तरहेँ भगवानक सेवा कैल जाए। एहने व्यक्ति केँ वर्तमानमे पूर्णतया मुक्त मानवाक चाही। भविष्यमे हुनका भगवद्धाम जाएव ध्रुव अछि।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥२९॥

समः– समभाव; **अहं**– हम; **सर्वभूतेषु**– समस्त जीव मे; **न**– क्यो नहि; **मे**– हमरा; **द्वेष्यः**– द्वेषपूर्ण; **अस्ति**– अछि; **न**– न तो; **प्रियः**– प्रिय; **ये**– जे; **भजन्ति**– दिव्य सेवा करैत अछि; **तु**– लेकिन; **माम्**– हमरा; **भक्त्या**– भक्ति सँ; **मयि**– हमरा मे; **ते**– ओ व्यक्ति; **तेषु**– ओहि मे।

हम न तो ककरो सँ द्वेष करैत छी, न ही ककरो संग पक्षपात करैत छी। हम सबहक लेल समभाव छी। किन्तु जे भी भक्तिपूर्वक हमर सेवा करैत अछि, ओ हमर मित्र छी, हमरामे स्थित रहैत अछि आओर हम भी ओकर मित्र छी।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण सबहक लेल समभाव छथि। प्रत्येक जीव चाहे ओ जाहि योनिक हो, हुनकर पुत्र अछि। अतः ओ प्रत्येक जीव केँ जीवनक आवश्यक वस्तुक प्रदान करैत छथि। ओ ओहि बादलक सदृश छथि जे सबक ऊपर जलवृष्टि करैत छथि, चाहे ओ वृष्टि चट्टान पर हो या स्थल पर, या जलमे हो। भगवान् कल्पवृक्षक समान छथि आओर मनुष्य एहि वृक्ष सँ जे भी माँगैत अछि, भगवान् ओकर पूर्ति करैत छथि। शुद्ध अवस्थामे जीव भक्त कहलाबैत अछि। परमेश्वर अपन भक्तक भी भक्त बनि जाइत छथि।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥३०॥

अपि– भी; **चेत्**– यदि; **सु दुराचारः**– अत्यन्त गर्हित कर्म करै वाला; **भजते**– सेवा करैत अछि; **माम्**– हमर; **अनन्य भाक्**– बिना विचलित भेने; **साधुः**– साधु पुरुष; **एव**– निश्चय ही; **सः**– ओ; **हि**– निश्चय; **मन्तव्य**– मान योग्य; **सम्यक्**– पूर्णतया; **व्यवसितः**– संकल्प वाला।

यदि क्यो जघन्य सँ जघन्य कर्म करैत अछि, किन्तु यदि ओ भक्तिमे रत रहैत अछि, तो ओकरा साधु पुरुष मान चाही, किएक तऽ ओ अपन संकल्पमे अडिग रहैत अछि।

तात्पर्यः वराह पुराणक कथन अछि–यदि भगवद् भक्तिमे तत्पर व्यक्ति कौखन घृणित कार्य करैत पायल जाय तो ओहि कार्य केँ ओहि धब्बाक तरह मानि लेबाक चाही, जाहि प्रकार चाँदमे खरगोशक धब्बा अछि। एहि धब्बा सँ चाँदनीक विस्तारमे बाधा नहि आबैत अछि। एहि प्रकार साधु पथ सँ भक्तक आकस्मिक पतन ओकरा निन्दनीय नहि बनाबैत। यदि ओ भक्तिक द्वारा अपन चरित्र नहि सुधार लैत तो ओकरा उच्चकोटिक भक्त नहि मानबाक चाही। श्रीमद्भागवतमे कहल गेलै अछि कि यदि क्यो व्यक्ति पतित भऽ जाए, किन्तु यदि भगवानक दिव्य सेवामे लागल रहे तो हृदयमे वास करएवाला भगवान् ओकरा शुद्धक दैत छथिन आओर ओहि निन्दनीय कार्यक लेल क्षमाक दैत छथि। भौतिक कल्मष एतेक प्रबल अछि कि भगवानक सेवामे लागल योगी भी कौखन–कौखन ओकर जालमे आ फँसैत अछि। जखन भक्त कृष्णभावनामृतमे पूर्णतया स्थित भऽ जाइत अछि, एहन आकस्मिक पतन किछु समयक पश्चात् रुकि जाइत अछि। भक्तक एक मात्र योग्यता ई अछि कि ओ अविचल तथा अनन्य भाव सँ भक्तिमे तत्पर रहे।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥३१॥

क्षिप्रम्– शीघ्र; **भवति**– बनि जाइत अछि; **धर्मात्मा**– धर्मपरायण; **शाश्वत् शान्तिम्**– स्थायी शान्तिक; **निगच्छति**– प्राप्त करैत अछि; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **प्रतिजानीहि**– घोषित कऽ दियौ; **न**– कहियो नहि; **मे**– हमर; **भक्तः**– भक्त; **प्रणश्यति**– नष्ट होइत अछि।

ओ तुरन्त धर्मात्मा बनि जाइत अछि आओर स्थायी शान्ति केँ प्राप्त होइत अछि। हे कुन्तीपुत्र! निडर भऽकऽ घोषणा कऽ दियौ कि हमर भक्तक कहियो नाश नहि होइत अछि।

तात्पर्यः श्रीमद्भागवतमे उल्लेख आएल अछि–सामान्यतया नौ प्रकारक भक्ति कार्यमे युक्त रहैवाला भक्त अपन हृदय केँ भौतिक कल्मष सँ शुद्ध करमे लागल रहैत छथि। ओ भगवानक अपन हृदयमे बसबैत छथि, फलतः हुनकर समस्त पापपूर्ण कल्मष धुल जाइत अछि। निरन्तर भगवानक चिन्तन केला सँ ओ स्वतः शुद्ध भऽ जाइत छथि।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।३२।।

माम्– हमर; **हि**– निश्चय ही; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **व्यपाश्रित्य**– शरण ग्रहण करि कऽ; **ये**– जे; **अपि**– भी; **स्युः**– अछि; **पापयोनियः**– निम्नकुलमे उत्पन्न; **स्त्रियः**– स्त्री; **वैश्याः**– वणिक लोग; **तथा**– भी; **शूद्राः**– निम्न श्रेणीक व्यक्ति; **ते अपि**– ओ भी; **यान्ति**– जाइत अछि; **पराम्**– परम; **गतिम्**– गन्तव्य केँ।

हे पार्थ! जे लोग हमर शरण ग्रहण करैत अछि, ओ भले ही निम्नजन्मा स्त्री, वैश्य (व्यापारी) तथा शूद्र (श्रमिक) किएक न हो, ओ परमधाममे प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः श्रीमद्भागवगतमे कथा अछि कि अधम योनि चाण्डाल भी शुद्ध भक्तक संसर्ग सँ शुद्ध भऽ जाइत अछि। अतः भक्ति तथा शुद्ध भक्त द्वारा पथप्रदर्शन एतेक प्रबल अछि कि ओतय ऊँच–नीचक भेद नहि रहि जाइत अछि आओर क्यो भी एकरा ग्रहण कऽ सकैत अछि। शुद्ध भक्तक शरण ग्रहणक सामान्य सँ सामान्य व्यक्ति शुद्ध भऽ सकैत अछि।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।३३।।

किम्– क्या, कतेक; **पुनः**– फिर; **ब्राह्मणः**– ब्राह्मण; **पुण्याः**– धर्मात्मा; **भक्ताः**– भक्तगण; **राजऋषयः**– राजर्षि; **तथा**– भी; **अनित्यम्**– नाशवान; **असुखम्**– दुखमय; **लोकम्**– लोक केँ; **इमम्**– एहि; **प्राप्य**– प्राप्तक; **भजस्व**– प्रेमाभक्तिमे लागू; **माम्**– हमर।

पुनः धर्मात्मा ब्राह्मण, भक्तगण तथा राजर्षिक लेल तो कहैक कौन प्रयोजन! अतः एहि क्षणिक दुःखमय संसारमे आवि गेला पर हमर प्रेमाभक्तिमे अपना आप केँ लगाउ।

तात्पर्यः स्पष्ट कहल गेलै अछि–**''अनित्यम् असुखं लोकम्''** ई जगत अनित्य तथा दुखमय अछि आओर कोनो भी भले आदमीक रहय लायक नहि अछि। अर्जुनक जन्म ऋषितुल्य राजकुलमे भेल छलैन। अतः भगवान् कृष्ण हुनको सँ कहैत छथि–हमर सेवा करु आओर शीघ्र ही हमर धाम केँ प्राप्त होएव। भगवत्भक्ति ही एकमात्र एहन विधि अछि जकरा द्वारा सब वर्गक लोगक सब समस्या सुलझा जा सकैत अछि। अतः प्रत्येक व्यक्ति केँ कृष्णभावनामृत स्वीकारक अपन जीवन केँ सफल बनेबाक चाही।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।३४।।

मत् मनाः– सदैव हमर चिन्तन करएवाला; **भव**– होओ; **मत्**– हमर; **भक्तः**– भक्त; **याजी**– उपासक; **माम्**– हमर; **नमस्कुरु**– नमस्कार करु; **एव**– निश्चय ही; **एष्यसि**– पायब; **युक्त्वा**– लीन भऽकऽ; **एवं**– एहि प्रकार; **आत्मानम्**– अपन आत्मा केँ; **मत् परायणः**– हमर भक्ति अनुरक्त।

अपन मन केँ हमर चिन्तनमे नित्य लागाउ, हमर भक्त बनू, हमरा नमस्कार करु आओर हमरे पूजा करु। एहि प्रकार हमरामे पूर्णतया तल्लीन भेला पर अहाँ निश्चित रुप सँ हमरा प्राप्त करब।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे स्पष्ट इंगित अछि जे एहि कल्मषग्रस्त भौतिक जगतसँ छुटकारा पाबैक एकमात्र साधन कृष्णभावनामृत अछि। अतः मनुष्य केँ कृष्ण भगवान् केँ आदिरुपमे मन केँ स्थिर करक चाही। ओकरा अपना मनमे ई दृढ़ विश्वास होमक चाही कि कृष्ण ही परम छथि। मनुष्य केँ नतमस्तक भऽकऽ मनसा वाचा कर्मणा हर प्रकार सँ प्रवृत्त होमक चाही। एहि सँ ओ कृष्णभावमे पूर्णतया तल्लीन भऽ जाइत। एहि सँ ओ कृष्णलोक केँ जा सकत। शुद्धभक्ति मानव समाजक परम उपलब्धि अछि। अन्ततोगत्वा ओ कृष्णरुपी परम पुरस्कार प्राप्त करैत अछि। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक नवम अध्याय **''परम गुह्य ज्ञान''** पूर्ण भेल।

अध्याय-दस



श्रीभगवानक ऐश्वर्य

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया॥१॥

श्रीभगवानुवाच– भगवान् कहलथिन; **भूयः**– पुनः; **एव**– निश्चय ही; **महाबाहो**– हे बलिष्ठ भुजाबला; **शृणु**– सुनु; **मे**– हमर; **परमम्**– परम; **वचः**– उपदेश; **यत्**– जे; **ते**– अहाँ केँ; **अहं**– हमर; **प्रीयमाणाय**– अपन प्रिय मानिक; **वक्ष्यामि**– कहैत छी; **हितकाम्यया**– अहाँक हितक लेल।

श्रीभगवान् कहलथिन–हे महाबाहु अर्जुन! आओर आगे सुनु। चूँकि अहाँ हमर प्रिय सखा छी, अतः हम अहाँक लाभक लेल एहन ज्ञान प्रदान करब, जे एखन धरिक हमरा द्वारा बताएल गेल ज्ञान सँ श्रेष्ठ हैत।

तात्पर्यः पराशर मुनि भगवान् शब्दक व्याख्या एहि प्रकार कैलनि अछि– जे पूर्ण रुप सँ षड्ऐश्वर्य– सम्पूर्ण शक्ति, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण धन, सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण सौन्दर्य तथा सम्पूर्ण त्याग सँ युक्त अछि, ओ भगवान् छथि। जखन कृष्ण एहि धराधाममे छलाह, तो ओ छबो ऐश्वर्यक प्रदर्शन कैलनि छलाह। फलतः पराशर सनक मुनि कृष्ण केँ भगवान् रुपमे

स्वीकार कैलनि अछि। आब अर्जुन केँ कृष्ण अपन ऐश्वर्य एवं कार्यक आओर भी गुह्य ज्ञान प्रदानक रहला अछि। जेना-जेना भगवानक विषयमे क्यो सुनैत अछि, तेना-तेना ओ भक्तिमे रमैत जाइत अछि। मनुष्य केँ चाही कि भक्तक संगतिमे भगवानक विषयमे सदा श्रवण करै, एहि सँ ओकर भक्ति बढतैन। भक्तिक चर्चा समाजमे केवल ओहि लोगक मध्य भऽ सकैत अछि, जे सचमुच कृष्णभावनाक इच्छुक हो। भगवान् अर्जुन सँ स्पष्ट शब्दमे कहैत छथि कि चूँकि अहाँ हमर अत्यन्त प्रिय छी, अतः अहाँक लाभक लेल एहन बात कहि रहलहुँ अछि।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥२॥

न- कहियो नहि; **मे**- हमर; **विदुः**- जानैत अछि; **सुरगणाः**- देवता; **प्रभवम्**- उत्पत्ति या ऐश्वर्य केँ; **महर्षयः**- पैघ पैघ ऋषि; **अहं**- हम; **आदिः**- उत्पत्ति; **हि**- निश्चय ही; **देवानाम्**- देवताक; **महार्षीणां**- महर्षियक; **च**- भी; **सर्वशः**- सब प्रकार।

न तो देवतागण हमर उत्पत्ति या ऐश्वर्य केँ जानैत अछि आओर न महर्षिगण ही जानैत अछि किएक तऽ हम सब प्रकार सँ देवता आओर महर्षिगणक भी कारणस्वरूप (उद्‌गम) छी।

तात्पर्यः जेना कि ब्रह्मसंहितामे कहल गेलै अछि-भगवान् कृष्ण ही परमेश्वर छथि। हुनका सँ बढ़िक क्यो नहि अछि, ओ समस्त कारणक कारण छथि। एतय भगवान् स्वयं कहैत छथि कि ओ समस्त देवगण तथा ऋषिक कारण छी। देवता तथा महर्षि तक कृष्ण केँ नहि समझि पाबैत छथि। जखन ओ हुनक नाम या हुनक व्यक्तितत्त्व केँ नहि समझि पाबैत तो एहि क्षुद्रलोकक तथाकथित विद्वानक विषयमे की कहल जा सकैत अछि? क्यो नहि जानैत अछि कि परमेश्वर किएक मनुष्यक रुपमे एहि पृथ्वी पर आबैत छथि आओर एहन विस्मयजनक असामान्य कार्यकलाप करैत छथि।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३॥

यः- जे; **माम्**- हमरा; **अजम्**- अजन्मा; **अनादिम्**- आदि रहित; **च**-

भी; **वेत्ति**– जानैत अछि; **लोक**– लोकक; **महेश्वरम्**– परम स्वामी; **असम्मूढ़ः**– मोह रहित; **सः**– ओ; **मर्त्येषु**– मरणशील लोग मे; **सर्व पापैः**– सब पापकर्म सँ; **प्रमुच्येत**– मुक्त भऽ जाइत अछि।

जे हमरा अजन्मा, अनादि, समस्त लोकक स्वामीक रुपमे जानैत अछि, मनुष्यमे केवल ओहे (वही) मोह रहित आओर समस्त पाप सँ मुक्त होइत अछि।

तात्पर्यः मनुष्य केँ ई जानबाक चाही कि भगवान् कृष्ण ब्रह्माण्डक समस्त लोकक स्वामी छथि। ओ सृष्टिक पूर्व छलाह आओर अपन सृष्टि सँ भिन्न छथि। सब देवता एहि भौतिक जगतमे उत्पन्न भेला अछि, परन्तु कृष्ण अजन्मा छथि। फलतः ओ ब्रह्मा तथा शिवजी सनक पैघ-पैघ देवता सँ भी भिन्न छथि। चूँकि ओ ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवताक स्रष्टा छथि अतः ओ परम पुरुष छथि।

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च॥४॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः॥५॥

बुद्धिः– बुद्धि; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **सम्मोहः**– संशय सँ रहित; **क्षमा**– क्षमा; **सत्यम्**– सत्यता; **दमः**– इन्द्रियनिग्रह; **शमः**– मनक निग्रह; **सुखम्**– सुख; **दुःखम्**– दुःख; **भवः**– जन्म; **अभावः**– मृत्यु; **भयम्**– डर; **च**– भी; **अभयम्**– निर्भीकता; **एव**– भी; **च**– तथा; **अहिंसा**– अहिंसा; **समता**– समभाव; **तुष्टि**– संतोष; **तपः**– तपस्या; **दानम्**– दान; **यशः**– यश; **अयशः**– अपयश, अपकीर्ति; **भवन्ति**– होइत अछि; **भावाः**– प्रकृति; **भूतानाम्**– जीवक; **मत्तः**– हमरा मे; **एव**– निश्चय ही; **प्रथक् विधाः**– भिन्न भिन्न प्रकार सँ व्यवस्थित।

बुद्धि, ज्ञान संशय तथा मोह सँ मुक्ति, क्षमाभाव, सत्यता, इन्द्रियनिग्रह, मननिग्रह, सुख तथा दुःख, जन्म, मृत्यु, भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, यश तथा अपयश जीवक ई विविध गुण हमरा ही द्वारा उत्पन्न अछि।

तात्पर्यः जीवक नीक या अधलाह गुण कृष्ण द्वारा उत्पन्न अछि

आओर एतय ओकर वर्णन कैल गेल अछि। बुद्धिक अर्थ अछि नीर-क्षीर विवेक कर वाली शक्ति, आओर ज्ञानक अर्थ अछि, आत्मा तथा पदार्थ केँ जानि लेब। आधुनिक शिक्षामे आत्माक विषयमे कोनो ज्ञान नहि देल जाइत अछि, केवल भौतिक तत्त्व तथा शारीरिक आवश्यकता पर ध्यान देल जाइत अछि। फलस्वरुप शैक्षिक ज्ञान पूर्ण नहि अछि।

असम्मोह अर्थात् संशय तथा मोह सँ मुक्ति, तैखन प्राप्त भऽ सकैत अछि जखन मनुष्य झिझकैत नहि आओर दिव्य दर्शन केँ समझैत अछि। दमः केँ अर्थ अछि कि इन्द्रिय केँ व्यर्थक विषय भोगमे नहि लगाएल जाए। भव अर्थात् जन्मक सम्बन्ध शरीर सँ अछि। अभयम् तखन सम्भव अछि जखन कृष्णभावनामृतमे रहल जाए। अच्छा, बुरा सब वस्तु भगवान् कृष्ण सँ उत्पन्न अछि।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥६॥

महा ऋषयः- महर्षिगण; **सप्त**- सात; **पूर्वे**- पूर्वकाल मे; **चत्वारः**- चारि; **मनवः**- मनुगण; **तथा**- भी; **मत्भावाः**- हमरा सँ उत्पन्न; **मानसाः**- मन सँ; **जाताः**- उत्पन्न; **येषाम्**- जिनकर; **लोके**- संसार मे; **इमाः**- ई सब; **प्रजाः**- संतान; जीव।

सप्तर्षिगण तथा हुनको सँ भी पूर्व चारि अन्य महर्षि एवं समस्त मनु (मानव जातिक पूर्वज) सब क्यो हमरे मन सँ उत्पन्न अछि आओर विभिन्न लोकमे निवास करएबला सब जीव हुनके सँ अवतरित होइत अछि।

तात्पर्यः भगवान् एतय ब्रह्माण्डक प्रजाक आनुवंशिक वर्णनक रहला अछि। ब्रह्मा परमेश्वरक शक्ति सँ उत्पन्न आदि जीव छथि, जे हिरण्यगर्भ कहल जाति अछि। ब्रह्मा सँ सात ऋषि तथा हुनको सँ भी पूर्व चारि महर्षि-सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार-एवं सब मनु प्रकट भेला अछि। ई पचीस महान ऋषि ब्रह्माण्डक समस्त जीवक धर्म पथप्रदर्शक कहाबैत छथि। असंख्य ब्रह्माण्ड अछि आओर प्रत्येक ब्रह्माण्डमे असंख्य लोक अछि एवं प्रत्येक लोकमे नाना योनि निवास करैत अछि। ई सब एहि पचीसों प्रजापति सँ उत्पन्न अछि। भगवान् कृष्णक कृपा सँ एक

हजार दिव्य वर्ष तक तपस्या केलाक बाद ब्रह्मा केँ सृष्टि करक ज्ञान प्राप्त भेलनि। तखन ब्रह्मा सँ सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार उत्पन्न भेलाह। ओकरा बाद रुद्र तथा सप्तर्षि आओर एहि प्रकार पुनः भगवानक शक्ति सँ सब ब्राह्मण तथा क्षत्रीयक जन्म भेल। ब्रह्मा के पितामह आओर श्रीकृष्ण केँ प्रपितामह–पितामहक पिता। एकर उल्लेख भगवद्गीताक ग्यारहम अध्यायमे कएल गेल अछि।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।।७।।

एताम्– एहि सबहक; **विभूषितम्**– ऐश्वर्य केँ; **च**– भी; **मम**– हमर; **यः**– जे क्यो; **वेत्ति**– जानैत अछि; **तत्त्वतः**– सही सही; **सः**– ओ; **अविकल्पेन**– निश्चित रुप सँ; **योगेन**– भक्ति सँ; **युज्जते**– लागल रहैत अछि; **न**– कहियो नहि; **अत्र**– एतय; **संशयः**– संदेह; शंका।

जे क्यो हमर एहि ऐश्वर्य तथा योग सँ पूर्णतया आश्वस्त अछि, ओ हमर अनन्य भक्तिमे तत्पर होइत अछि। एहिमे तनिक भी संदेह नहि अछि।

तात्पर्यः आध्यात्मिक सिद्धिक परम परिणति अछि, भगवद्ज्ञान। जाधरि तक क्यो भगवानक विभिन्न ऐश्वर्यक प्रति आश्वस्त नहि भऽ लैत, ताधरि भक्तिमे नहि लागि सकत। जखन क्यो ई जानि लैत अछि कि ईश्वर केहन महान छथि, तो ओ सहज ही शरणागत भऽकऽ भगवद् भक्तिमे लागि जाइत अछि।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।८।।

अहं– हम; **सर्वस्य**– सबहक; **प्रभवः**– उत्पत्तिक कारण; **मत्तः**– हमरा सँ; **सर्वम्**– सब वस्तु; **प्रवर्तते**– उद्भूत होइत अछि; **इति**– एहि प्रकार; **मत्वा**– जानिक; **भजन्ते**– भक्ति करैत अछि; **माम्**– हमर; **बुधाः**– विद्वानजन; **भाव समन्विता**– अत्यन्त मनोयोग सँ।

हम समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतक कारण छी। प्रत्येक वस्तु हमरा सँ ही उद्भूत अछि। जे बुद्धिमान ई ठीक-ठीक जानैत अछि, ओ हमर प्रेमाभक्तिमे लागैत अछि तथा हृदय सँ पूर्ण तरहेँ

हमर पूजामे तत्पर रहैत अछि।

तात्पर्यः मोक्षधर्ममे भगवान् कृष्ण कहैत छथि–सृष्टिक आरम्भमे केवल भगवान् नारायण छलाह। न ब्रह्मा छलाह, न शिव, न अग्नि छल, न चन्द्रमा, न नक्षत्र आओर न सूर्य। ब्रह्मा तथा शिवक स्त्रष्टा भगवान् नारायण ही छथि। आगाँ भगवान् कहैत छथि–हम ही प्रजापति केँ शिव तथा अन्य केँ उत्पन्न कैलहुँ अछि, किन्तु ओ हमरे माया सँ मोहित भेलाक कारणेँ ओ नहि जानैत छथि कि हम ही हुनका सब केँ उत्पन्न कैलहुँ। हम ही सबहक मूल कारण छी। सब वस्तु हमरे अधीन अछि। हमरा ऊपर क्यो नहि अछि। जे ई जानि लैत अछि, ओ अपन सब शक्ति कृष्णभावनामृतमे लगबैत अछि।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥९॥

मत्चित्ताः– जकर मन हमरामे रमल अछि; **मत् गत प्राणाः**– जिनकर जीवन हमरा मे अर्पित अछि; **बोधयन्तः**– उपदेश दैत; **परस्परम्**– एक दोसर सँ, आपस मे; **कथयन्तः**– बात करैत; **च**– भी; **माम्**– हमरा विषय मे; **नित्यम्**– निरन्तर; **तुष्यन्ति**– प्रसन्न होइत अछि; **रमन्ति**– दिव्य आनन्द भोगैत; **च**– भी।

हमर शुद्ध भक्तक विचार हमरामे बास करैत अछि, हुनकर जीवन हमर सेवामे अर्पित रहैत अछि आओर ओ एक दोसर केँ ज्ञान प्रदान करैत तथा हमरा विषयमे बात करैत परम सन्तोष तथा आनन्दक अनुभव करैत अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे शुद्ध भक्तक लक्षणक विशेष रुप सँ उल्लेख भेल अछि। भगवद्भक्त परमेश्वरक गुण तथा हुनकर लीलाक गानमे अहर्निश लगाल रहैत छथि। हुनकर हृदय तथा आत्मा निरन्तर कृष्णमे निमग्न रहैत अछि आओर ओ अन्य भक्त सँ भगवानक विषयमे बात करमे आनन्दानुभव करैत छथि। हुनकर मन भगवान् श्रीकृष्णक चरणकमल सँ हटैत नहि अछि।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥१०॥

तेषाम्– ओकर; **सतत युक्तानाम्**– सदैव रहैवाला केँ; **भजताम्**– भक्ति करएबला केँ; **प्रीति पूर्वकम्**– प्रेमभाव सहित; **ददामि**– दैत छी; **बुद्धि योगम्**– असली बुद्धि; **तम्**– ओ; **येन**– जाहि सँ; **माम्**– हमरा; **उपयान्ति**– प्राप्त होइत अछि; **ते**– ओ।

जे प्रेमपूर्वक हमर सेवा करमे निरन्तर लागल रहैत अछि, ओकरा हम ज्ञान प्रदान करैत छी, जकरा द्वारा ओ हमरा तक आबि सकय।

तात्पर्यः एतय बुद्धियोगक वर्णन कैल जा रहल अछि। बुद्धियोग कृष्णभावनामृतमे रहिक कार्य कर लेल कहैत अछि आओर इहे उत्तम बुद्धि अछि। बुद्धिक अर्थ अछि बुद्धि आओर योगक अर्थ अछि यौगिक गतिविधि अथवा यौगिक उन्नति। जखन क्यो भगवत्धाम केँ जेबाक चाहैत अछि आओर भक्तिमे कृष्णभावनामृत केँ ग्रहणक लैत अछि तो हुनकर ओ कार्य बुद्धियोग कहाबैत अछि। जकरा द्वारा भगवत्धाम पहुँच जाइत छथि।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥११॥

तेषाम्– हुनका पर; **एव**– निश्चय ही; **अनुकम्पा अर्थम्**– विशेष कृपा करक लेल; **अहं**– हम; **अज्ञान जम्**– अज्ञानक कारण; **तम्**– अंधकार; **नाशयामि**– दूर करैत छी; **आत्म-भाव**– हुनका हृदय मे; **स्थः**– स्थित; **ज्ञान**– ज्ञानक; **दीपेन**– दीपक द्वारा; **भास्वता**– प्रकाशमान होइत।

हम हुनका पर विशेष कृपा करक हेतु हुनकर हृदयमे वास करैत ज्ञानक प्रकाशमान दीपकक द्वारा अज्ञानजन्य अंधकार केँ दूर करैत छी।

तात्पर्यः भगवान् अर्जुन केँ बताबैत छथि कि मात्र चिन्तन सँ परम सत्य भगवान् केँ समझि पैव असम्भव अछि, किएक तऽ भगवान् एतेक महान छथि कि कोरे मानसिक प्रयास सँ हुनका न तो जानल जा सकैत अछि, न ही पाप्त कएल जा सकैत अछि। भले ही क्यो लाखो वर्ष तक चिन्तन करैत रहै। करोड़ों जन्मक भौतिक संसर्गक कल्मषक कारण मनुष्यक हृदय भौतिकताक मल (धूलि) सँ आच्छादित भऽ जाइत अछि, किन्तु जखन मनुष्य भक्तिमे लागैत अछि आओर निरन्तर कृष्णक जप

करैत अछि तो ई मल तुरन्त दूर भऽ जाइत अछि आओर हुनका शुद्ध ज्ञान प्राप्त होइत अछि। परम लक्ष्य विष्णु केँ एहि जप तथा भक्ति सँ प्राप्त कैल जा सकैत अछि, अन्य कोनो प्रकारक तर्क द्वारा नहि। भगवद्गीताक अध्ययन सँ मनुष्य भगवानक शरणागत भऽकऽ शुद्धभक्तिमे लागि जाइत अछि। जखन भगवान् अपना ऊपर भाड़ लऽ लैत छथिन्ह, मनुष्य सब भौतिक प्रयास सँ मुक्त भऽ जाइत अछि।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥१२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥१३॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलथिन; **परम्**– परम; **ब्रह्म**– सत्य; **धाम**– आधार; **पवित्रम्**– पवित्र शुद्ध; **परमम्**– परम; **भवान्**– अहाँ; **पुरुषम्**– पुरुष; **शाश्वतम्**– नित्य; **दिव्यम्**– दिव्य; **आदि देवम्**– आदि स्वामी; **अजम्**– अजन्मा; **विभुम्**– सर्वोच्च; **आहुः**– कहैत अछि; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **ऋषयः**– ऋषिगण; **सर्वे**– सब; **देव ऋषि**– देवताक ऋषि; **नारदः**– नारद; **तथा**– भी; **असितः**– असित; **देवलः**– देवल; **व्यासः**– व्यास; **स्वयम्**– स्वयं; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **ब्रवीषि**– अहाँ बता रहल छी; **मे**– हमरा।

अर्जुन कहलथिन–अपने परम भगवान्, परमधाम, परमपवित्र, परम सत्य छी। अहाँ नित्य, दिव्य आदि पुरुष, अजन्मा तथा महानतम छी। नारद, असित, देवल तथा व्यास सनक ऋषि अहाँक एहि सत्यक पुष्टि करैत छथि आओर आब अहाँ स्वयं भी हमरा सँ प्रकट कहि रहल छी।

तात्पर्यः एतय ई स्पष्ट अछि कि परमेश्वर जीवात्मा सँ भिन्न छथि। एहि अध्यायक चारि महत्वपूर्ण श्लोक केँ सुनिक अर्जुनक सब शंका दूर होइत गेलैन आओर ओ कृष्ण केँ भगवान् स्वीकारक लेलनि। ओ तुरन्त ही घोषणा कैलनि ''**अहाँ परब्रह्म छी**''। एहि सँ पूर्व कृष्ण कहि चुकला अछि कि ओ प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक प्राणीक आदि कारण

छथि। प्रत्येक देवता तथा प्रत्येक मनुष्य हुनका पर आश्रित अछि। हुनका कृष्णक चिन्तनमे रत रहिक ही प्राप्त कैल जा सकैत अछि। कृष्णक ई निरन्तर चिन्तन स्मरण अछि, जे भक्तिक नव विधिमे सँ अछि। भक्तिक द्वारा ही मनुष्य भगवानक स्थित केँ समझि सकैत अछि आओर एहि भौतिक देह सँ छुटकारा पाउल जा सकैत अछि।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः॥१४॥

सर्वम्– सब; **एतत्**– एहि; **ऋतम्**– सत्य केँ; **मन्ये**– स्वीकार करैत छी; **यत्**– जे; **माम्**– हमरा; **वदसि**– कहैत अछि; **केशव**– हे केशव, कृष्ण; **न**– कहियो नहि; **हि**– निश्चय ही; **ते**– अपनेक; **भगवन्**– हे भगवान्; **व्यक्तिम्**– स्वरुप केँ; **विदुः**– जानि सकैत अछि; **देवाः**– देवगण; **न**– नहि तो; **दानवाः**– असुरगण।

हे कृष्ण! अहाँ हमरा जे किछु कहलहुँ अछि, ओकरा हम पूर्णतया सत्य मानैत छी, हे प्रभु! न तो देवतागण, न असुरगण ही अहाँक स्वरुप केँ समझि सकैत अछि।

तात्पर्यः एतय अर्जुन एकर पुष्टि करैत छथि कि श्रद्धाहीन तथा आसुरी प्रकृतिवला लोग कृष्ण केँ नहि समझि सकैत अछि। जखन देवतागण तक हुनका नहि समझि पाबैत तो आधुनिक जगतक तथाकथित विद्वानक की कहनाई? भगवत्कृपा सँ अर्जुन समझि गेलथि कि परम सत्य कृष्ण अछि आओर ओ सम्पूर्ण छथि।

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते॥१५॥

स्वयम् एव– निश्चय ही; **आत्मना**– अपने आप; **आत्मानम्**– अपना केँ; **वेत्थ**– जानैत हो; **त्वम्**– अहाँ; **पुरुषोत्तम**– हे पुरुषोत्तम; **भूतभावन**– हे सबहक उद्‌गम; **भूतेश**– सब जीवक स्वामी; **देव देव**– हे समस्त देवताक स्वामी; **जगत् पते**– हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डक स्वामी।

हे पुरुषोत्तम! हे सबहक उद्‌गम, हे समस्त प्राणीक स्वामी, हे देवोक देव, हे ब्रह्माण्डक प्रभु! निस्सन्देह एक मात्र अपने ही अपना केँ अपन अन्तरंगाशक्ति सँ जानैवला छी।

तात्पर्यः परमेश्वर कृष्ण केँ वैह जानि सकैत अछि जे अर्जुन तथा हुनकर अनुयायीक भाँति भक्ति करक माध्यम सँ भगवानक सम्पर्कमे रहैत अछि। आसुरी या नास्तिक प्रकृतिवला लोग कृष्ण केँ नहि जानि सकैत अछि। अतः कृष्णक यथारुपमे समझबाक लेल हमरा सब केँ अर्जुनक पदचिन्हक अनुसरण करक चाही।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि॥१६॥

वक्तुम्– कहैक लेल; **अर्हसि**– योग्य अछि; **अशेषेण**– विस्तार मे; **दिव्या**– दैवी, अलौकिक; **हि**– निश्चय ही; **आत्म**– अपन; **विभूतयः**– ऐश्वर्य; **याभिः**– जाहि; **विभूतिभिः**– ऐश्वर्य सँ; **लोकान्**– समस्त लोक; **इमान्**– एहि; **त्वम्**– अहाँ; **व्याप्य**– व्याप्त भऽकऽ; **तिष्ठति**– स्थित अछि।

कृपा करिक विस्तारपूर्वक हमरा अपन ओहि दैवी ऐश्वर्य केँ बताउ, जिनका द्वारा अपनेँ एहि समस्त लोकमे व्याप्त छी।

तात्पर्यः अर्जुन श्रीकृष्ण सँ पूछैत छथि कि ओ अपन विभिन्न शक्तिक द्वारा कोन प्रकार सर्वव्यापी रुपमे विद्यमान रहैत छी।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥१७॥

कथम्– कोन तरह, केना; **विद्याम् अहं**– हम जानि सकी; **योगिन्**– हे परम योगी; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **सदा**– सदैव; **परिचिन्तयन्**– चिन्तन करैत; **केषु**– कोन; **च**– भी; **भावेषु**– रुप मे; **चिन्त्य असि**– अहाँक स्मरण कैल जाइत अछि; **भगवन्**– हे भगवान्; **मया**– हमरा द्वारा।

हे कृष्ण, हे परम योगी, हम कोन तरहेँ अहाँक निरन्तर चिन्तन करुँ आओर अहाँ केँ कोना जानूँ? हे भगवान्! अहाँक स्मरण कोन-कोन रुपमे कैल जाय?

तात्पर्यः आब अर्जुन केँ विश्वास भऽ चुकलनि कि हुनकर मित्र कृष्ण भगवान् छथि, लेकिन ओ ओहि सामान्य विधि केँ जानए चाहैत छथि, जकरा द्वारा सर्वसाधारण लोग भी हुनका सर्वव्यापी रुपमे समझि सके। असुर तथा नास्तिक सहित सामान्यजन कृष्ण केँ नहि जानि पाबैत,

किएक तऽ भगवान् अपन योगमाया शक्ति सँ आच्छादित रहैत छथि। उच्चकोटिक भक्त केवल अपने ही ज्ञानक प्रति चिन्तित नहि रहैत छथि, अपितु समस्त मानव जातिक ज्ञानक लेल भी रहैत छथि। अतः अर्जुन वैष्णव या भक्त भेलाक कारण अपन दयालु भाव सँ सामान्यजनक लेल भगवानक सर्वव्यापक रुपक ज्ञानक द्वार खोलि रहला अछि।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥१८॥

विस्तरेण– विस्तार सँ; **आत्मनः**– अपन; **योगम्**– योगशक्ति; **विभूतिम्**– ऐश्वर्यक; **च**– भी; **जनार्दन**– हे नास्तिकक बध कर वाला; **भूयः**– पुनः; **कथय**– कहियौ; **तृप्ति**– तुष्टि; **हि**– निश्चय ही; **शृण्वतः**– सुनैत; **न अस्ति**– नहि; **मे**– हमर; **अमृतम्**– अमृत केँ।

हे जनार्दन! अहाँ पुनः विस्तार सँ अपन ऐश्वर्य तथा योग शक्तिक वर्णन करियौ। हम अहाँक विषयमे सुनि कऽ कहियो तृप्त नहि होइत छी, किएक तऽ जतेक अहाँक विषयमे सुनैत छी, ओतेक अहाँक शब्दरूपी अमृत केँ चखए चाहैत छी।

तात्पर्यः एहि प्रकारक निवेदन नैमिषारण्यक शौनक आदि ऋषि सूत गोस्वामी सँ केने छलथि। ओ निवेदन एहि प्रकार अछि– उत्तम स्तुति द्वारा प्रशंसित कृष्णक दिव्य लीलाक निरन्तर श्रवण करैत भेलो पर कहियो तृप्त नहि होइत अछि। किन्तु जे कृष्ण सँ अपन दिव्य सम्बन्ध स्थापितक लेलनि अछि ओ पद–पद पर भगवानक लीलाक वर्णनक आनन्द लैत रहैत छथि। अतः अर्जुन कृष्णक विषयमे आओर विशेष रुप सँ हुनकर सर्वव्यापी रुपक बारेमे सुन चाहैत छथि। हमर पुराण विगत युगक इतिहास अछि, जाहिमे भगवानक विविध अवतारक लीलाक वर्णन अछि। एहि प्रकार बारम्बार पढ़लो पर भी विषयवस्तु नवीन बनल रहैत अछि।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥१९॥

श्रीभगवानुवाच– भगवान् कहलथिन; **हन्त**– हाँ; **ते**– अहाँ सँ; **कथयिस्यामि**– कहब; **दिव्याः**– दैवी; **हि**– निश्चय ही; **आत्मविभूतयः**–

अपन ऐश्वर्य केँ; **प्राधान्यतः**– प्रमुख रुप सँ; **कुरुश्रेष्ठ**– हे कुरुश्रेष्ठ; **न अस्ति**– नहि अछि; **अन्तः**– सीमा; **विस्तरस्य**– विस्तारक; **मे**– हमर।

श्रीभगवान् कहलथिन–हाँ, आब हम अहाँ सँ मुख्य–मुख्य वैभवयुक्त रुपक वर्णन करब, किएक तऽ हे अर्जुन! हमर ऐश्वर्य असीम अछि।

तात्पर्यः कृष्णक महानता तथा हुनकर ऐश्वर्य केँ समझि पैव सम्भव नहि अछि। जीवक इन्द्रिय सीमित अछि, अतः हुनका सँ कृष्णक कार्य कलापक समग्रता केँ समझि पैव सम्भव नहि अछि। कृष्णक वृत्तान्त एतेक आस्वाद्य अछि कि भक्त केँ अमृत तुल्य प्रतीत होइत अछि। एहि प्रकार भक्तगण ओकर आनन्द उठबैत छथि। भगवान् कृष्ण जानैत छथि कि जीव हुनकर ऐश्वर्यक विस्तार केँ नहि समझि सकत, फलतः ओ अपन विभिन्न शक्तिक प्रमुख स्वरुपक ही वर्णन करबाक लेल राजी होइत छथि। आब कृष्ण ओहि रुप केँ बताब जाइत छथि, जे सामान्य व्यक्ति प्रत्यक्ष रुप सँ देख सकत। एहि प्रकार हुनकर रंगविरंगी शक्तिक आंशिक वर्णन कैल गेल अछि।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥२०॥

अहं– हम; **आत्मा**– आत्मा; **गुड़ाकेश**– हे अर्जुन; **सर्वभूत**– समस्त जीव; **आशय स्थितः**– हृदयमे स्थित; **अहं**– हम; **आदिः**– उद्गम; **च**– भी; **मध्यम्**– मध्य; **भूतानाम्**– समस्त जीवक; **अन्तः**– अन्त; **एव**– निश्चय ही; **च**– तथा। गुड़ाकेश– निद्रा रुपी अन्धकार केँ जीतएवाला।

हे अर्जुन! हम समस्त जीवक हृदयमे स्थित परमात्मा छी। हम ही समस्त जीवक आदि, मध्य तथा अन्त छी।

तात्पर्यः सर्वप्रथम कृष्ण अर्जुन केँ बतबैत छथि कि ओ अपन मूल विस्तारक कारण समग्र दृश्य जगतक आत्मा छथि। भौतिक सृष्टि सँ पूर्व भगवान् अपन मूल विस्तार द्वारा पुरुष अवतार धारण करैत छथि आओर ओहि सँ सब किछु आरम्भ होइत अछि। अतः ओ प्रधान महत्तत्वक आत्मा छथि। वास्तवमे महाविष्णु सम्पूर्ण भौतिक शक्ति या महात्तत्वमे प्रवेश करैत छथि। ओ आत्मा छथि। जखन महाविष्णु एहि प्रकटीभूत ब्रह्माण्डमे प्रवेश करैत छथि तो ओ प्रत्येक जीवमे पुनः परमात्माक रुपमे

प्रकट होइत छथि। अतः भगवान् ही एहि ब्रह्माण्डक आदि कारण, पालक तथा समस्त शक्तिक अवसान छथि।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी॥२१॥

आदित्यानाम्– आदित्यो मे; **अहं**– हम छी; **विष्णुः**– परमेश्वर; **ज्योतिषाम्**– समस्त ज्योति मे; **रविः**– सूर्य; **अंशुमान्**– प्रकाशमान्, किरणमाली; **मरीचिः**– मरीचि; **मरुताम्**– मरुत मे; **अस्मि**– छी; **नक्षत्राणाम्**– तारा मे; **शशी**– चन्द्रमा।

हम आदित्यमे विष्णु, प्रकाशमे तेजस्वी सूर्य, मरुतमे मरीचि तथा नक्षत्रमे चन्द्रमा छी।

तात्पर्यः आदित्य बारह अछि, जाहिमे कृष्ण प्रधान छथि, आकाशमे टिमटिमाइत ज्योतिपुंज सबमे सूर्य मुख्य अछि आओर ब्रह्मसंहितामे तो सूर्य केँ भगवानक तेजस्वी नेत्र कहल गेल अछि। अन्तरिक्षमे पचास प्रकारक वायु प्रवहमान अछि जाहिमें वायु अधिष्ठाता मरीचि कृष्णक प्रतिनिधि छथि। नक्षत्रोमे रात्रिक समय चन्द्रमा सर्वप्रमुख नक्षत्र अछि, अतः ओ कृष्णक प्रतिनिधि छथि।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥२२॥

वेदानाम्– वेद मे; **सामवेद**– सामवेद; **अस्मि**– छी; **देवानाम्**– देवगण मे, देवता सबमे; **वासवः**– स्वर्गक राजा; **इन्द्रियाणाम्**– इन्द्रिय मे; **मनः**– मन; **च**– भी; **अस्मि**– छी; **भूतानाम्**– जीव मे; **चेतना**– प्राण; जीवनी शक्ति।

हम वेदमे सामवेद छी, देवतामे स्वर्गक राजा इन्द्र छी, इन्द्रियमे मन छी तथा समस्त जीवमे जीवनी शक्ति (चेतना) छी।

तात्पर्यः पदार्थ तथा जीवमे ई अन्तर अछि कि पदार्थमे जीवक समान चेतना नहि होइत अछि, अतः ई चेतना परम तथा शाश्वत अछि। पदार्थक संयोग सँ चेतना उत्पन्न नहि कएल जा सकैत अछि।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्॥२३॥

रुद्राणाम्– समस्त रुद्र मे; **शंकर**– शिवजी; **च**– भी; **अस्मि**– छी; **वित्तेशः**– देवताक कोषाध्यक्ष; **यक्ष रक्षसाम्**– यक्ष तथा राक्षस मे; **वसूनाम्**– वसु मे; **पावकः**– अग्नि; **मेरु**– मेरु; **शिखरिणाम्**– समस्त पर्वत मे; **अहं**– हम छी।

हम समस्त रुद्रमे शिव छी, यक्ष तथा राक्षसमे सम्पत्तिक देवता (कुबेर) छी, वसुमे अग्नि छी, आओर समस्त पर्वतमे मेरु छी।

तात्पर्यः ग्यारह रुद्रमे शंकर या शिव प्रमुख छथि। ओ भगवानक अवतार छथि, जाहि पर ब्रह्माण्डक तमोगुणक भार अछि। यक्ष तथा राक्षसक नायक कुबेर छथि, जे देवगणक कोषाध्यक्ष तथा भगवानक प्रतिनिधि छथि। मेरु पर्वत अपन समृद्ध प्राकृत सम्पदाक लेल प्रख्यात अछि।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।।२४।।

पुरोधसाम्– समस्त पुरोहित मे; **च**– भी; **मुख्यम्**– प्रमुख; **माम्**– हमरा; **विद्धि**– जानू; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **बृहस्पतिम्**– बृहस्पति; **सेनानीनाम्**– समस्त सेनानायक मे सँ; **अहं**– हम छी; **स्कन्दः**– कार्तिकेय; **सरसाम्**– समस्त जलाशय मे; **अस्मि**– हम छी; **सागरः**– समुद्र।

हे अर्जुन! हमरा समस्त पुरोहितमे मुख्य पुरोहित बृहस्पति जानू। हम ही समस्त सेना नायकमे कार्तिकेय छी आओर समस्त जलाशयमे समुद्र छी।

तात्पर्यः इन्द्र स्वर्गक प्रमुख देवता छथि आओर स्वर्गक राजा कहलाबैत छथि। जाहि लोकमे हुनकर शासन अछि ओ इन्द्रलोक कहाबैत अछि। बृहस्पति राजा इन्द्रक पुरोहित छथि आओर चूँकि इन्द्र समस्त राजाक प्रधान छथि, इसलिए बृहस्पति समस्त पुरोहितमे मुख्य छथि। जेना इन्द्र सब राजाक प्रमुख छथि, ओहि प्रकार पार्वती तथा शिवक पुत्र स्कन्द या कार्तिकेय समस्त सेनापतिक प्रधान छथि। समस्त जलाशयमे समुद्र सब सँ पैघ अछि। कृष्णक ई स्वरुप हुनके महानताक ही सूचक अछि।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।२५।।

महर्षीणाम्– महर्षि मे; **भृगु**– भृगु; **अहं**– हम छी; **गिराम्**– वाणी मे;

अस्मि– छी; **एकम् अक्षरम्**– प्रणवः; **यज्ञानाम्**– समस्त यज्ञ मे; **जप यज्ञ**– कीर्तन, जप; **स्थावराणाम्**– जड़ पदार्थ मे; **हिमालयः**– हिमालय।

हम महर्षिमे भृगु छी, वाणीमे दिव्य ओंकार छी, समस्त यज्ञमे पवित्र नामक कीर्तन (जप) तथा समस्त पर्वत (अचल)मे हिमालय पर्वत छी।

तात्पर्यः ब्रह्माण्डक प्रथम जीव ब्रह्मा विभिन्न योनिक विस्तारक लेल अनेक पुत्र उत्पन्न कैलनि अछि। एहिमे भृगु सबसँ शक्तिशाली मुनि छलाह। समस्त दिव्य ध्वनिमे ओंकार कृष्णक रुप अछि। समस्त यज्ञमे जप (कीर्तन) सबसँ सुगम तथा शुद्धतम् यज्ञ अछि। समस्त जगतमे जे शुभ अछि ओ कृष्णक रुप अछि। संसारक सबसँ पैघ पर्वत हिमालय भी भगवानक स्वरुप अछि।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥२६॥

अश्वत्थः– अश्वत्थ वृक्ष; **सर्व वृक्षाणाम्**– समस्त वृक्ष मे; **देव ऋषीणाम्**– समस्त देव ऋषि मे; **च**– तथा; **नारदः**– नारद; **गन्धर्वाणाम्**– गन्धर्व लोकक वासी मे; **चित्ररथः**– चित्ररथ; **सिद्धानाम्**– समस्त सिद्धि प्राप्त भेला मे; **कपिल मुनिः**– कपिल मुनि।

हम समस्त वृक्षमे अश्वत्थ वृक्ष छी आओर सब देव ऋषिमे नारद छी। हम गन्धर्वमे चित्ररथ छी आओर सिद्ध पुरुषमे कपिल मुनि छी।

तात्पर्यः अश्वत्थ वृक्ष सब सँ ऊँचा तथा सुन्दर वृक्ष अछि, जकरा भारतमे लोग नित्यप्रति नियमपूर्वक पूजैत अछि। देवगणमे नारद विश्वभरिक सबसँ पैघ भक्त मानल जाइत छथि आओर पूजल जाइत छथि। एहि प्रकार ओ भक्तक रुपमे कृष्णक स्वरुप छथि। गन्धर्वलोक एहन निवासी सँ पूर्ण अछि, जे बहुत नीक गाबैत अछि, जाहिमे सँ चित्ररथ सर्वश्रेष्ठ गायक छथि। सिद्धपुरुषमे सँ देवहूतिक पुत्र कपिल मुनि कृष्णक प्रतिनिधि छथि। ओ कृष्णक अवतार मानल जाइत छथि। हिनकर दर्शन श्रीमद्भागवतमे उल्लिखित अछि।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
एरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्॥२७॥

उच्चैः श्रवसम्– उच्चैश्रवा; **अश्वानाम्**– घोड़ा मे; **विद्धि**– जानू; **माम्**– हमरा; **अमृत उद्भवम्**– समुद्र मन्थन सँ उत्पन्न; **ऐरावतम्**– ऐरावत; **गजेन्द्राणाम्**– मुख्य हाथी मे; **नराणाम्**– मनुष्य मे; **च**– तथा; **नराधिपम्**– राजा।

घोड़ामे हमरा उच्चैश्रवा जानू, जे अमृतक लेल समुद्रमन्थनक समय उत्पन्न भेल छल। गजराजामे ऐरावत छी तथा मनुष्यमे राजा छी।

तात्पर्यः एकबेर देव तथा असुर समुद्र मन्थनमे भाग लेलनि। एहि मन्थन सँ अमृत तथा विष प्राप्त भेल। विष केँ तो शिवजी पीब लेलनि, किन्तु अमृतक संग अनेक जीव उत्पन्न भेल, जाहिमे उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा भी छल। एहि अमृतक संग एक अन्य पशु ऐरावत नामक हाथी भी उत्पन्न भेल छल। चूँकि दूनू पशु अमृतक संग उत्पन्न भेल छल, अतः हिनकर विशेष महत्व अछि आओर ई कृष्णक प्रतिनिधि अछि। मनुष्यमे राजा कृष्णक प्रतिनिधि छथि, किएक तऽ कृष्ण ब्रह्माण्डक पालक छथि आओर अपन दैवी गुणक कारण नियुक्त कैल राजा भी अपन प्रजाक पालनकर्ता होइत छथि। भगवान् राम, महाराज युधिष्ठिर तथा महाराज परीक्षित सनक राजा अत्यन्त धर्मात्मा छलाह जे सदैव प्रजाक कल्याण सोचैत छलाह।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः॥२८॥

आयुधानाम्– हथियार मे; **अहं**– हम; **वज्रम्**– वज्र; **धेनूनाम्**– गाय मे; **अस्मि**– छी; **कामधुक्**– सुरभि गाय; **प्रजनः**– सन्तान, उत्पत्तिक कारण; **च**– तथा; **कन्दर्पः**– कामदेव; **सर्पाणाम्**– सर्प मे; **वासुकिः**– वासुकि।

हम हथियारमे वज्र छी, गायमे सुरभि, सन्तति उत्पत्तिक कारणमे प्रेमक देवता कामदेव तथा सर्पमे वासुकि छी।

तात्पर्यः वज्र सचमुच अत्यन्त बलशाली हथियार अछि आओर ई कृष्णक शक्तिक प्रतीक अछि। वैकुण्ठ लोकमे स्थित कृष्णलोकक गाएँ कोनो भी समय दुहल जा सकैत अछि आओर ओकरा सँ जे जतेक चाहे ओतेक दूध प्राप्त कऽ सकैत अछि। भगवान् एहन अनेक गाएँ राखैत छथि, जकरा सुरभि कहल जाइत अछि। नीक सन्तानक उत्पत्तिक लेल

कैल गेल संभोग कन्दर्प कहाबैत अछि आओर ओ कृष्णक प्रतिनिधि होइत अछि।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्॥२९॥

अनन्तः– अनन्त; **च**– भी; **अस्मि**– छी; **नागानाम्**– फणवला सर्प मे; **वरुणः**– जलक अधिष्ठाता देवता; **यादसाम्**– समस्त जलचर मे; **अहम्**– हम छी; **पितृणाम्**– पितर मे; **अर्यमा**– अर्यमा; **च**– भी; **यमः**– मृत्युक नियामक; **संयमताम्**– समस्त नियमनकर्ता मे; **अहम्**– हम छी।

अनेक फणवला सर्पमे हम अनन्त छी आओर जलचरमे वरुणदेव छी। हम पितरमे अर्यमा छी तथा नियमक निर्वाहक मे हम मृत्युराज यम छी।

तात्पर्यः अनेक फणवला नागमे अनन्त सब सँ प्रधान अछि आओर एहि प्रकार जलचरमे वरुणदेव प्रधान छथि। ई दूनू कृष्णक प्रतिनिधत्व करैत छथि। एहि प्रकार पितृलोकक अधिष्ठाता अर्यमा छथि जे कृष्णक प्रतिनिधि छथि। एहन अनेक जीव अछि दुष्ट केँ दण्ड दैत अछि, किन्तु एहिमे यम प्रमुख छथि।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥३०॥

प्रह्लादः– प्रह्लाद; **च**– भी; **अस्मि**– छी; **दैत्यनाम्**– असुर मे; **कालः**– काल; **कलयताम्**– दमन करएवला मे; **अहम्**– हम; **मृगाणाम्**– पशु मे; **च**– तथा; **मृगेन्द्र**– सिंह; **अहं**– हम छी; **वैनतेयः**– गरुड़; **च**– भी; **पक्षिणाम्**– पक्षी सब मे।

दैत्यमे हम भक्तराज प्रह्लाद छी, दमन करएबला मे काल छी, पशुमे सिंह तथा पक्षीमे गरुड़ छी।

तात्पर्यः दिति तथा अदिति दूनू बहिन छली। अदितिक पुत्र आदित्य कहाबैत अछि आओर दितिक पुत्र दैत्य। सब आदित्य भगवद्भक्त भेलाह आओर सब दैत्य नास्तिक निकललाह। यद्यपि प्रह्लादक जन्म दैत्य कुलमे भेल छल, किन्तु ओ बचपन सँ ही परम भक्त छलाह। अपन भक्ति एवं दैवी गुणक कारण ओ कृष्णक प्रतिनिधि मानल जाइत छथि। दमनक अनेक

नियम अछि, किन्तु काल प्रत्येक वस्तु केँ क्षीणक दैत अछि। अतः ओ कृष्णक प्रतिनिधित्व करैत अछि। पशुमे सिंह सबसँ शक्तिशाली आओर पक्षीक लाखों प्रकारमे भगवान् विष्णुक वाहन गरुड़ सबसँ महान् छथि।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥३१॥

पवनः– वायु; **पवताम्**– पवित्र करएवाला मे; **अस्मि**– छी; **रामः**– राम; **शस्त्रभृताम्**– शस्त्रधारी मे; **अहं**– हम; **झषाणाम्**– मछली मे; **मकरः**– मगर; **च**– भी; **स्त्रोतसाम्**– प्रवहमान नदी मे; **जाह्नवी**– गंगा नदी।

समस्त पवित्र करएवालामे वायु छी, शस्त्रधारीमे राम, मछलीमे मगर तथा नदी सबमे गंगा छी।

तात्पर्यः समस्त जलचरमे मगर सबसँ पैघ आओर मनुष्यक लेल सब सँ घातक होइत अछि। अतः मगर कृष्णक प्रतिनिधित्व करैत अछि।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥३२॥

सर्गाणाम्– सम्पूर्ण सृष्टिक; **आदिः**– प्रारम्भ; **अन्तः**– अन्त; **च**– तथा; **मध्यम्**– मध्य; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **अहं**– हम छी; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **अध्यात्म विद्या**– अध्यात्मज्ञान; **विद्यानाम्**– विद्या मे; **वादः**– स्वभाविक निर्णय; **प्रवदताम्**– तर्क मे; **अहम्**– हम छी।

हे अर्जुन! हम समस्त सृष्टिक आदि, मध्य आओर अन्त छी। हम समस्त विद्यामे अध्यात्म विद्या छी आओर तर्कशास्त्रीक बीच हम निर्णायक सत्य छी।

तात्पर्यः सृष्टिमे सर्वप्रथम समस्त भौतिक तत्त्वक सृष्टि कैल जाइत अछि। ई दृश्यजगत महाविष्णु गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु द्वारा उत्पन्न आओर संचालित अछि। बादमे एकर संहार शिवजी द्वारा कैल जाइत अछि। ब्रह्मा गौण स्त्रष्टा छथि। सृजन, पालन तथा संहार करएबला ई सब अधिकारी परमेश्वरक भौतिक गुणक अवतार छथि। अतः ओ ही समस्त सृष्टिक आदि, मध्य तथा अन्त छथि। उच्च विद्याक लेल ज्ञानक अनेक ग्रंथ अछि तथा चारु वेद, ओकर छबो वेदांग, वेदान्त सूत्र, तर्क ग्रंथ, धर्मग्रंथ, पुराण। एहि प्रकार कुल चौदह प्रकारक

ग्रंथ अछि। एहिमे सँ अध्यात्म विद्या सम्बन्धी ग्रंथ विशेष रुप सँ वेदान्त सूत्र, कृष्णक स्वरुप अछि। तर्कशास्त्रीमे विभिन्न प्रकारक तर्क होइत रहैत अछि किन्तु वास्तविक निर्णय वाद कहलाबैत अछि। ई निर्णयात्मक सत्य कृष्णक स्वरुप अछि।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः॥३३॥

अक्षराणाम्– अक्षर मे; **अकारः**– अकार अर्थात् पहिल अक्षर; **अस्मि**– छी; **द्वन्द्वः**– द्वन्द्व समास; **सामासिकस्य**– सामासिक शब्द मे; **च**– तथा; **अहं**– हम छी; **एव**– निश्चय ही; **अक्षयः**– शाश्वत; **कालः**– काल, समय; **धाता**– स्त्रष्टा; **अहं**– हम; **विश्वतःमुखः**– ब्रह्मा।

अक्षरमे हम अकार छी आओर समासमे द्वन्द्व छी। हम शाश्वतकाल भी छी आओर स्रष्टामे ब्रह्मा छी।

तात्पर्यः संस्कृत अक्षरमालाक प्रथम अक्षर (अ) वैदिक साहित्यक शुभारम्भ अछि। अकारक बिना कोनो स्वर उच्चरित नहि भऽ सकैत अतः ई आदि स्वर अछि। सामासिक शब्द जेना राम-कृष्ण सनक दोहरे शब्द द्वन्द्व कहाबैत अछि। एहि समासमे राम तथा कृष्ण अपन ओहि रुपमे अछि, अतः ई समास द्वन्द्व कहाबैत अछि। काल सर्वोपरि अछि किएक तऽ ई सब केँ मारि दैत अछि। काल कृष्ण स्वरुप अछि। सृजन करएवला जीवमे चतुर्मुख ब्रह्मा प्रधान छथि। अतः भगवानक प्रतीक छथि।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥३४॥

मृत्युः– मृत्यु; **सर्वहरः**– सर्वभक्षी; **च**– भी; **अहं**– हम छी; **उद्भवः**– सृष्टि; **च**– भी; **भविष्यताम्**– भावी जगत मे; **कीर्तिः**– यश; **श्रीः**– ऐश्वर्य या सुन्दरता; **वाक्**– वाणी; **नारीणाम्**– स्त्री मे; **स्मृतिः**– स्मरणशक्ति; **मेधा**– बुद्धि; **धृतिः**– दृढ़ता; **क्षमा**– क्षमा, धैर्य।

हम सर्वभक्षी मृत्यु छी आओर हम ही आगाँ हुअबला केँ उत्पन्न करवाला छी। स्त्रीमे हम कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेघा, धृति तथा क्षमा छी।

तात्पर्यः जखने मनुष्य जन्म लैत अछि, ओ क्षण-क्षण मरैत जाइत

अछि। एहि प्रकार मृत्यु समस्त जीवक हर क्षण भक्षण करैत रहैत अछि। किन्तु अन्तिम आघात मृत्यु कहाबैत अछि। ई मृत्यु कृष्ण ही छथि। सब जीवमे छह परिवर्तन होइत अछि। ओ जन्मैत अछि, बढ़ैत अछि, किछु काल तक संसारमे रहैत अछि, सन्तान उत्पन्न करैत अछि, क्षीण होइत अछि आओर अन्तमे समाप्त भऽ जाइत अछि। एहि छबो परिवर्तनमे पहिल गर्भ से मुक्ति अछि आओर ई कृष्ण छथि। प्रथम उत्पत्ति ही भावी कार्यक शुभारम्भ अछि। एतय जाहि सात ऐश्वर्यक उल्लेख अछि, ओ स्त्रीवाचक अछि–कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति तथा क्षमा। यदि कोनो व्यक्तिक पास ई सब या एहिमे सँ किछु ही होइत अछि तो ओ यशस्वी होइत अछि।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः॥३५॥

बृहत्साम– बृहत्साम; **तथा**– भी; **साम्नाम्**– सामवेदक गीत मे; **गायत्री**– गायत्री मंत्र; **छन्दसाम्**– समस्त छन्द मे; **अहं**– हम छी; **मासानाम्**– महिना मे; **मार्गशीर्षः**– नवम्बर–दिसम्बर (अगहन)क महिना; **ऋतूनाम्**– समस्त ऋतु मे; **कुसुमाकरः**– वसन्त।

हम सामवेदक गीतमे बृहत्साम छी आओर छन्दमे गायत्री मंत्र छी। समस्त महिनामे हम मार्गशीर्ष (अगहन) तथा समस्त ऋतुमे फूल खिलाबै वाली वसन्त ऋतु छी।

तात्पर्य: सामवेद विभिन्न देवता द्वारा गायल जायबला गीतक संग्रह अछि। एहि गीतमे सँ एक बृहत्साम अछि। जकर ध्वनि सुमधुर अछि आओर अर्धरात्रिमे गायल जाइत अछि। संस्कृतमे काव्यक निश्चित विधान अछि। एहिमे लए तथा ताल बहुत सँ आधुनिक कविताक तरह मनमाने नहि होइत अछि। एहन नियमित काव्यमे गायत्री मंत्र अछि, जकर जप केवल सुपात्र ब्राह्मण द्वारा ही होइत अछि, सबसँ अधिक महत्त्वपूर्ण अछि। गायत्री मंत्रक उल्लेख श्रीमद्भागवतमे भी भेलै अछि। वैदिक सम्यतामे गायत्री मंत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण अछि आओर ब्रह्मक नाद अवतार मानल जाइत अछि। ब्रह्मा एकर गुरु छथि आओर शिष्य–परम्परा द्वारा ओहि सँ आगाँ बढ़ैत रहैत अछि। महिनामे अगहन मास सर्वोत्तम मानल जाइत अछि

किएक तऽ एहि मासमे खेत सँ अन्न एकत्र कैल जाइत अछि आओर लोग अत्यन्त प्रसन्न रहैत अछि। निस्संदेह वसन्त एहन ऋतु अछि जकरा विश्वभरमे सम्मान होइत अछि। वसन्तमे कृष्णक लीला सँ सम्बन्धित अनेक उत्सव मनायल जाइत अछि। ई भगवान् कृष्णक प्रतिनिधि अछि।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥३६॥

द्यूतम्– जुआ; **छलयताम्**– समस्त छलिया या धूर्त मे; **अस्मि**– छी; **तेजः**– तेज, चमक–दमक; **तेजस्विनाम्**– तेजस्वी मे; **अहम्**– हम; **जयः**– विजय; **व्यवसायः**– जोखिम या साहस; **सत्त्वम्**– बल; **सत्त्ववताम्**– बलवानक।

हम छलियामे जूआ छी आओर तेजस्वीमे तेज छी। हम विजय छी, साहस छी आओर बलवानक बल छी।

तात्पर्यः ब्रह्माण्डमे अनेक प्रकारक छलिया अछि। समस्त छल–कपट कर्ममे द्यूतक्रीडा (जुआ) सर्वोपरि अछि आओर कृष्णक प्रतीक अछि। ओ विजयी पुरुषक विजय छथि, ओ तेजस्वीक तेज, साहसी तथा कर्मठमे ओ सर्वाधिक साहसी तथा कर्मठ छथि। ओ बलवानमे सर्वाधिक बलवान छथि।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥३७॥

वृष्णीनां– वृष्णि कुलमे; **वासुदेवः**– द्वारकाधीश कृष्ण; **अस्मि**– छी; **पाण्डवानाम्**– पाण्डवमे; **धनञ्जय**– अर्जुन; **मुनीनाम्**– मुनि मे; **अपि**– भी; **अहम्**– हम; **व्यासः**– व्यासदेव, समस्त वेदक संकलनकर्ता; **कवीनाम्**– महान विचारक मे; **उशना**– उशना, शुक्राचार्य; **कविः**– विचारक।

हम वृष्णिवंशीमे वासुदेव आओर पाण्डवमे अर्जुन छी। हम समस्त मुनिमे व्यास तथा महान विचारकमे उशना (शुक्राचार्य) छी।

तात्पर्यः वासुदेव कृष्णक निकटतम अंश विस्तार अछि, अतः वासुदेव कृष्ण सँ भिन्न नहि छथि। कृष्ण वसुदेवक पुत्र रुपमे प्रकट भेलाह। अतः हुनका वासुदेव कहल जाइत अछि। पाण्डुपुत्रमे अर्जुन धनञ्जय नाम सँ विख्यात छथि। ओ समस्त पुरुषमे श्रेष्ठतम छथि। अतः कृष्ण स्वरुप छथि। मुनिमे अर्थात् वैदिक ज्ञानमे पटु, विद्वानमे व्यास सबसँ

पैघ छथि। व्यास केँ विष्णुक अवतार भी मानल जाइत अछि। अतः ओ कृष्ण स्वरुप छथि।

कविगण कोनो विषय पर गम्भीरता सँ विचार करमे समर्थ होइत छथि। कविमे उशना अर्थात् शुक्राचार्य असुरक गुरु छथि, ओ अत्यधिक बुद्धिमान तथा दूरदर्शी राजनेता छलाह। एहि प्रकार शुक्राचार्य कृष्णक ऐश्वर्यक दोसर स्वरुप छथि।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।३८।।

दण्डः– दण्ड; **दमयताम्**– दमनक समस्त साधनमे; **अस्मि**– छी; **नीतिः**– सदाचार; **जिगीषताम्**– विजयक आकांक्षा करएबला मे; **मौनम्**– चुप्पी, मौन; **च**– तथा; **एव**– भी; **गुह्यनाम्**– रहस्य मे; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **ज्ञानवताम्**– ज्ञानी मे; **अहम्**– हम।

अराजकताक दमन करबला समस्त साधनमे सँ हम दण्ड छी, आओर जे विजयक आकांक्षी अछि हुनकर हम नीति (सदाचार) छी। रहस्यमे हम मौन छी आओर बृद्धिमानमे ज्ञान छी।

तात्पर्यः जखन दुष्ट केँ दण्डित कैल जाइत अछि तो दण्ड दिअबला कृष्णस्वरुप होइत अछि। कोनो भी क्षेत्रमे विजयक आकांक्षा करबलामे नीतिक ही विजय होइत अछि। सुनैमे, सोचैमे तथा ध्यान करैक गोपनीय क्रियामे मौन धारण ही सबसँ महत्त्वपूर्ण अछि। ज्ञानी व्यक्ति ओ छथि जे भगवानक परा तथा अपरा शक्तिमे भेद कऽ सकथि। एहन ज्ञान साक्षात् कृष्ण छथि।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।।३९।।

यत्– जे; **च**– भी; **अपि**– भऽ सकैत अछि; **सर्वभूतानां**– समस्त सृष्टि मे; **बीजम्**– बीज; **तत्**– ओ; **अहं**– हम; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **न**– नहि; **अस्ति**– अछि; **बिना**– रहित; **स्यात्**– हो; **मया**– हमरा सँ; **भूतम्**– जीव; **चराचरम्**– जंगम तथा जड़।

इहै नहि हे अर्जुन! हम समस्त सृष्टिक जनक बीज छी। एहन चर तथा अचर कोनो जीव नहि अछि, जे हमरा बिना रहि सकए।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥४०॥

न– न तो; **अन्तः**– सीमा; **अस्ति**– अछि; **मम**– हमर; **दिव्यानाम्**– दिव्य; **विभूतीनाम्**– ऐश्वर्यक; **परन्तप**– हे शत्रुक विजेता; **एषः**– ई सब; **तु**– लेकिन; **उद्देशतः**– उदाहरण स्वरुप; **प्रोक्तः**– कहल गेलै; **विभूतेः**– ऐश्वर्यक; **विस्तरः**– विशद वर्णन; **मया**– हमरा द्वारा।

हे परन्तप! हमर दैवी विभूतिक अन्त नहि अछि। हम अहाँ सँ जे किछु कहलहुँ, ओ तो हमर अनन्त विभूतिकक संकेत मात्र अछि।

तात्पर्यः जेना कि वैदिक साहित्यमे कहल गेलै अछि– यद्यपि परमेश्वरक शक्ति तथा विभूति अनेक प्रकार सँ जानल जाइत अछि, किन्तु एहि विभूतिक कोनो अन्त नहि अछि, अतएव समस्त विभूति तथा शक्तिक वर्णन कर पैब सम्भव नहि अछि। अर्जुनक जिज्ञासा केँ शान्ति करक लेल केवल थोड़े सँ उदाहरण प्रस्तुत कैल गेल अछि।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥४१॥

यत् यत्– जे जे; **विभूति**– ऐश्वर्य; **मत्**– युक्त; **सत्त्वम्**– अस्तित्व; **श्रीमत्**– सुन्दर; **ऊर्जितम्**– तेजस्वी; **एव**– निश्चय ही; **वा**– अथवा; **तत् तत्**– ओ ओ; **अवगच्छ**– जानू; **त्वम्**– अहाँ; **मम**– हमर; **तेजः**– तेज; **अंश**– भाग, अंश सँ; **सम्भवम्**– उत्पन्न।

अहाँ जानि लिअ कि समस्त ऐश्वर्य, सौन्दर्य तथा तेजस्वी सृष्टि हमरे तेजक एक स्फुलिंग मात्र सँ उद्भूत अछि।

तात्पर्यः कोनो भी तेजस्वी या सुन्दर सृष्टि केँ, चाहे ओ अध्यात्म जगतमे हो या एहि जगतमे, भगवान् कृष्णक विभूतिक अंश रुप ही मानल जेबाक चाही। कोनो भी अलौकिक तेजयुक्त वस्तु केँ कृष्णक विभूति समझब चाही।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥४२॥

अथवा– या; **बहुना**– अनेक; **एतेन**– एहि प्रकार सँ; **किम्**– की; **ज्ञातेन**–

जानला सँ; **तव**- अहाँक; **अर्जुन**- हे अर्जुन; **विष्टभ्य**- व्याप्त भऽकऽ; **अहम्**- हम; **इदम्**- एहि; **कृत्स्नम्**- सम्पूर्ण; **एक**- एक; **अंशेन**- अंशक द्वारा; **स्थितः**- स्थित अछि; **जगत्**- ब्रह्माण्ड मे।

किन्तु हे अर्जुन! एहि सब विशद ज्ञानक आवश्यकता की अछि? हम तो अपन एक अंश मात्र सँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमे व्याप्त भऽकऽ एकरा धारण करैत छी।

तात्पर्यः परमात्माक रुपमे ब्रह्माण्डक समस्त वस्तुमे प्रवेश करि जेबाक कारण परमेश्वरक सब भौतिक जगतमे प्रतिनिधित्व अछि। भगवान् एतय अर्जुन केँ बतबैत छथि कि ई जानबाक कोनो सार्थकता नहि अछि कि सब वस्तु कोन प्रकार अपने पृथक-पृथक ऐश्वर्य तथा उत्कर्षमे स्थित अछि। हुनका एतबेक ही जानि लेबाक चाही कि सब वस्तुक अस्तित्व एहि लेल अछि किएक तऽ कृष्ण ओहिमे परमात्मा रुपमे प्रविष्ट छथि। ब्रह्मा सनक विराट जीव सँ लक एक क्षुद्र चिंटी तक एहि लेल विद्यमान अछि किएक तऽ भगवान् ओहि सबमे प्रविष्ट भऽकऽ ओकर पालन करैत छथि। भगवान् कृष्ण उत्पन्न जीवक उद्गम् छथि आओर हुनका सँ बढ़िक क्यो भी नहि छथि। न क्यो हुनका सँ श्रेष्ठ अछि, न हुनका तुल्य।

सारांशः भगवान् कृष्ण कहैत छथि- हे अर्जुन! हम ही समस्त सृष्टिक जनक बीज छी। हमरा अतिरिक्त चराचर प्राणी किछु भी नहि अछि। एहन चर तथा अचर कोनो भी प्राणी नहि अछि, जे हमरा बिना रहि सकए। हे परन्तप! हमर दिव्य विभूतिक अन्त नहि अछि। एहि विभूतिक विस्तार हम संक्षेपमे कहलहुँ अछि, जे जे वस्तु ऐश्वर्यवान, शोभायमान एवम् यशवान् अछि। प्रबल सूर्य भी कृष्णक शक्ति सँ अपन शक्ति प्राप्त करैत छथि आओर समस्त संसारक पालन कृष्णक एक लघु अंश द्वारा होइत अछि। अतः श्रीकृष्ण पूजनीय छथि। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक दसम अध्याय **''श्रीभगवानक ऐश्वर्य''** पूर्ण भेल।



अध्याय-ग्यारह



विराट रूप

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥१॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलथिन; **मत् अनुग्रहाय**– हमरा पर कृपा करक लेल; **परमम्**– परम; **गुह्यम्**– गोपनीय; **अध्यात्म**– आध्यात्मिक; **संज्ञितम्**– नाम सँ जानएवाला विषयक; **यत्**– जे; **त्वया**– अहाँ द्वारा; **उक्तम्**– कहल गेल; **वचः**– शब्द; **तेन**– ओकरा सँ; **मोहः**– मोह; **अयम्**– ई; **विगतः**– हटि गेल; **मम**– हमर।

अर्जुन कहलथिन– अपने जाहि अत्यन्त गुह्य आध्यात्मिक विषयक हमरा उपदेश देलहुँ अछि, ओकरा सुनि कऽ आब हमर मोह दूर भऽ गेल।

तात्पर्यः एहि अध्यायमे कृष्णक समस्त कारणक कारण रुपमे देखाओल गेलैन अछि। एतय तक कि ओ ओहि महाविष्णुक भी कारण स्वरुप छथि, जिनका सँ भौतिक ब्रह्माण्डक उद्गम अछि। कृष्ण अवतारे टा नहि छथि, ओ समस्त अवतारक उद्गम छथि। आब जहाँ धरि अर्जुनक बात अछि, हुनकर कहब अछि कि हुनकर मोह दूर भऽ गेलनि अछि। एकर अर्थ ई भेल कि ओ कृष्ण केँ अपन मित्र स्वरुप सामान्य मनुष्य

नहि मानैत अपितु हुनका प्रत्येक वस्तुक कारण मानैत छथि। अर्जुन केँ पूरा विश्वास भऽ चुकलनि अछि जे कृष्ण समस्त कारणक कारण छथि आओर परमात्माक रुपमे प्रत्येक जीवक हृदयमे विद्यमान छथि।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वतः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्॥२॥

भव- उत्पत्ति; **अप्ययौ**- लय (प्रलय); **हि**- निश्चय ही; **भूतानाम्**- समस्त जीवक; **श्रुतौ**- सुनल गेलै अछि; **विस्तरशः**- विस्तारपूर्वक; **मया**- हमरा द्वारा; **त्वत्तः**- अपनेँ सँ; **कमलपत्राक्ष**- हे कमल नयन; **महात्म्यम्**- महिमा; **अपि**- भी; **च**- तथा; **अव्ययम्**- अक्षय, अविनाशी।

हे कमलनयन! हम अपनेँ सँ प्रत्येक जीवक उत्पत्ति तथा प्रलयक विषयमे विस्तार सँ सुनलहुँ अछि आओर अपनेक अक्षय महिमाक अनुभव कैलहुँ अछि।

तात्पर्यः अर्जुन एतय प्रसन्नताक मारे कृष्ण केँ कमलनयन (कृष्णक नेत्र कमलक फूलक पंखड़ि जकाँ दिखाइत अछि) कहि कऽ सम्बोधित करैत छथि किएक तऽ हुनका ज्ञान अछि कि समस्त उत्पत्ति तथा प्रलयक कारण भेलाक अतिरिक्त ओ एहि सब सँ पृथक (असंग) रहैत छथि। कारण ओ सर्वव्यापी छथि। इहै कृष्णक अचिन्त्य ऐश्वर्य अछि, जकरा स्वीकार करैत छथि कि ओ ठीक-ठीक समझि लेलथि अछि।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥३॥

एवम्- एहि प्रकार; **एतत्**- ई; **यथा**- जाहि प्रकार; **आत्थ**- कहलनि अछि; **त्वम्**- अपनेँ; **आत्मानम्**- अपनेँ आपकेँ; **परम ईश्वर**- हे परमेश्वर; **द्रष्टुम्**- देखक लेल; **इच्छामि**- इच्छा करैत छी; **ते**- अपनेक; **रुपम्**- रुप; **ऐश्वरम्**- दैवी; **पुरुषोत्तम**- हे पुरुषमे उत्तम।

हे पुरुषोत्तम! हे परमेश्वर! यद्यपि अपने केँ हम अपन समक्ष अपनेँ द्वारा वर्णित अहाँक वास्तविक रुपमे देख रहल छी, किन्तु हम ई देखैक इच्छुक छी कि अपनेँ एहि दृश्य जगतमे कोन प्रकारेँ प्रविष्टि भेलहुँ अछि। हम अपनेक ओहि रुपक दर्शन करए चाहैत छी।

तात्पर्यः अर्जुन द्वारा भगवानक लेल पुरुषोत्तम सम्बोधन भी महत्वपूर्ण

अछि। चूँकि ओ भगवान् छथि, एहि लेल ओ स्वयं अर्जुनक अन्दर भी उपस्थित छथि। अतः अर्जुनक इच्छा केँ ओ जानैत छथि। ओ जानैत छथि कि अर्जुन केँ हुनकर विराट रुपक दर्शन करक कोनो लालसा नहि छैन्ह, किएक तऽ ओ हुनका साक्षात् देखिक पूर्णतया संतुष्ट छथि। किन्तु भगवान् ई भी जानैत छथि कि अर्जुन अन्य केँ विश्वास दिलेवाक लेल ही विराट रुपक दर्शन कर चाहैत छथि। कृष्ण ई भी जानैत छथि कि अर्जुन विराट रुपक दर्शन एक आदर्श स्थापित कर लेल चाहैत अछि। किएक तऽ भविष्यमे कियो अन्य अपना केँ ईश्वरक अवतार नहि बताबे।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।।४।।

मन्यसे– अहाँ सोचैत छी; **यदि**– यदि; **तत्**– ओ; **शक्यम्**– समर्थ; **मया**– हमरा द्वारा; **द्रष्टुम्**– देख जेबाक लेल; **इति**– एहि प्रकार; **प्रभो**– हे स्वामी; **योग ईश्वर**– हे योगेश्वर; **ततः**– तखन; **मे**– हमरा; **त्वम्**– अहाँ; **दर्शय**– देखाउ; **आत्मनम्**– अपन स्वरुप केँ; **अव्ययम्**– शाश्वत।

हे प्रभु! हे योगेश्वर! यदि अहाँ सोचैत छी कि हम अपनेक विश्वरुप केँ देखमे समर्थ भऽ सकैत छी, तऽ कृपा कऽ हमरा अपन असीम विश्वरुप देखाउ।

तात्पर्यः एना कहल जाइत अछि जे भौतिक इन्द्रिय द्वारा नै तऽ परमेश्वर कृष्ण केँ कियो देख सकैत अछि, न सुनि सकैत आओर नै अनुभव कऽ सकैत अछि। अर्जुन समझि गेला अछि जे एक क्षुद्र जीवक लेल असीम अनन्त केँ समझि पाएब सम्भव नहि अछि। यदि अनन्त स्वयं प्रकट भऽ जाइत, तो अनन्तक कृपा सँ ही हुनकर प्रकृति केँ समझल जा सकैत अछि। भगवान् योगेश्वर छथि। हुनका पास अचिन्त्य शक्ति अछि। यदि ओ चाहैत तऽ असीम भेलो पर भी अपने आप केँ प्रकटक सकैत छथि। अतः अर्जुनक अकल्पनीय कृपाक याचना करैत छथि।

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।।५।।

श्री भगवानुवाच– भगवान् कहलथिन; **पश्य**– देखू; **मे**– हमर; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **रूपाणि**– रूप; **शतशः**– सैकड़ों; **अथ**– भी; **सहस्रशः**– हजारों; **नाना विधानि**– नाना रुपवाला; **दिव्यानि**– दिव्य; **नाना**– नाना प्रकारक; **वर्ण**– रंग; **आकृतीनि**– रुप; **च**– भी।

भगवान् कहलथिन– हे अर्जुन, हे पार्थ! आब अहाँ हमर ऐश्वर्य केँ सैकड़ों-हजारों प्रकारक दैवी तथा विविध रंग वाला रुपमे देखू।

तात्पर्यः चूँकि अर्जुन कृष्णक एहि रुपमे देख चाहैत छलाह, अतः ओ ई रुप प्रकट करैत छथि। सामान्य व्यक्ति एहि रुप केँ नहि देखि सकैत अछि। श्रीकृष्ण द्वारा शक्ति प्रदान कैल गेला पर ही हिनकर दर्शन भऽ सकैत अछि।

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥६॥

पश्य– देखू; **आदित्यान्**– अदितिक बारहों पुत्र केँ; **वसून**– आठों वसु केँ; **रुद्रान्**– रुद्रक ग्यारह रुप केँ; **अश्विनौ**– दू अश्विनी कुमार केँ; **मरुतः**– उन्चासों मरुत (वायु) केँ; **तथा**– भी; **बहूनि**– अनेक; **अदृष्ट**– नहि देखने; **पूर्वाणि**– पहिने, एकर पूर्व; **आश्चर्याणि**– समस्त आश्चर्य केँ; **भारत**– हे भरवंशमे श्रेष्ठ।

हे भारत! लिअ, अहाँ सब आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार तथा अन्य देवताक विभिन्न रुप केँ देखू। अहाँ एहन अनेक आश्चर्यमय रुप केँ देखू, जकरा पहिने क्यो नहि तऽ देखलक अछि आ नै सुनलक अछि।

तात्पर्यः यद्यपि अर्जुन कृष्णक अन्तरंग सखा तथा अत्यन्त विद्वान छलाह, तो भी ओ हुनका विषयमे सब किछु नहि जानैत छलाह। एतय कहल गेलै अछि कि एहि समस्त रुप केँ नै तऽ मनुष्य एहि सँ पूर्व देखलक अछि आ नै सुनलक अछि। आब श्रीकृष्ण एहि आश्चर्यमय रुप केँ प्रकटक रहला अछि।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि॥७॥

इह– एहि मे; **एक-स्थम्**– एक स्थान मे; **जगत्**– ब्रह्माण्ड; **कृत्स्नम्**–

पूर्णतया; **पश्य**– देखू; **अद्य**– तुरन्त; **स**– सहित; **चर**– जंगम; **अचरम्**– अचर, जड़; **मम**– हमर; **देहे**– शरीर मे; **गुड़ाकेश**– हे अर्जुन; **यत्**– जे; **च**– भी; **अन्यत्**– अन्य, आओर; **द्रष्टुम्**– देखब; **इच्छामि**– चाहैत हैब।

हे अर्जुन! अहाँ जे भी देख चाही, ओकरा तत्क्षण हमर एहि शरीरमे देखू। अहाँ एहि समय तथा भविष्यमे भी जे किछु देख चाहत छी, ओकरा ई विश्वरुप देखाब वला अछि। एतय एक ही स्थान पर चर-अचर सब किछु अछि।

तात्पर्यः कोनो भी व्यक्ति एक स्थानमे बैसल-बैसल सम्पूर्ण विश्व नहि देखि सकैत अछि। किन्तु अर्जुन कृष्णक अनुग्रह सँ सभ वस्तु देखएमे समर्थ छथि किएक तऽ अर्जुन भगवान् कृष्णक परम भक्त छथि।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥८॥

न– कहियो नहि; **तु**– लेकिन; **माम्**– हमरा; **शक्यसे**– अहाँ समर्थ हैब; **द्रष्टुम्**– देखए मे; **अनेन**– एहि; **एव**– निश्चय ही; **स्व चक्षुषा**– अपन आँखि सँ; **दिव्यम्**– दिव्य; **ददामि**– दैत छी; **ते**– अहाँ केँ; **चक्षुः**– आँखि; **पश्य**– देखू; **मे**– हमर; **योगम् ऐश्वरम्**– अचिन्त्य योगशक्ति।

किन्तु अहाँ हमरा अपन एहि आँखि सँ नहि देखि सकैत छी। अतः हम अहाँ केँ दिव्य आँखि द रहलहुँ अछि। आब हमर योग ऐश्वर्य केँ देखू।

तात्पर्यः श्रीमद्भागवतमे कहल गेलै अछि कि कृष्णक संग खेलबाला बालक अत्यन्त पवित्र आत्मा अछि आओर कृष्णक संग एहि प्रकार खेलबाक अवसर हुनका अनेकानेक जन्मक बाद प्राप्त भेलनि अछि। एहन बालक ई नहि जानैत अछि कि कृष्ण भगवान् छथि। ओ हुनका निजी मित्र मानैत छथि। भगवान् अर्जुन केँ अपन विश्वरुप देखक लेल आवश्यक शक्ति (दिव्य अक्षु) प्रदान कैलनि अछि किएक तऽ ओ जानैत छथि कि अर्जुन एहि रुप केँ देखक लेल विशेष इच्छुक नहि छलाह, ओ विराट रुपक दर्शन एक आदर्श स्थापित कर लेल चाहैत छलाह।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।

दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥९॥

संजयः उवाच– संजय कहलखिन; **एवम्**– एहि प्रकार; **उक्त्वा**– कहि कऽ; **ततः**– तत्पश्चात्; **राजन्**– हे राजा; **महायोग ईश्वरः**– परम शक्तिशाली योगी; **हरिः**– भगवान् कृष्ण; **दर्शयाम् आस**– देखेलथिन; **पार्थाय**– अर्जुन केँ; **परमम्**– दिव्य; **रुपम् ऐश्वरम्**– विश्वरुप।

संजय कहलखिन-हे राजा (धृतराष्ट्र) एहि प्रकार कहिक महायोगेश्वर भगवान् अर्जुन केँ अपन विश्वरुप देखेलथिन।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥१०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्॥११॥

अनेक– अनेक, कई; **वक्त्र**– मुख; **नयनम्**– नेत्र; **अद्भुत**– विचित्र; **दर्शनम्**– दृश्य; **दिव्य**– आध्यात्मिक, आलौकिक; **आभरणम्**– आभूषण; **दिव्य**– दैवी; **अनेक**– विविध; **उद्यत**– उठायल; **आयुधम्**– हथियार; **दिव्य**– दिव्य; **माल्य**– माला; **अम्बर**– वस्त्र; **धरम**– धारण केने; **गन्ध**– सुगन्धि; **अनुलपेनम्**– लागल छलै; **सर्व**– समस्त; **आश्चर्यम्**– आश्चर्यपूर्ण; **देवम्**– प्रकाशयुक्त; **अनन्तम्**– असीम; **विश्वतः-मुखम्**– सर्वव्यापी।

अर्जुन एहि विश्वासरुपमे असंख्य मुख, असंख्य नेत्र तथा असंख्य आश्चर्यमय दृश्य देखलखिन। ई रुप अनेक दैवी आभूषण सँ अलंकृत छल आओर अनेक दैवी हथियार उठौने छल। ई दैवी माला तथा वस्त्र धारण कैने छल आओर ओहि पर अनेक दिव्य सुगन्धि लागल छल। सब किछु आश्चर्यमय, तेजमय, असीम तथा सर्वत्र व्याप्त छल।

तात्पर्यः एहि दूनू श्लोकमे अनेक शब्दक बारम्बार प्रयोग भेलै अछि, जे ई सूचित करैत अछि कि अर्जुन जाहि रुप केँ देख रहल छलाह ओकर हाथ, मुख, पैरक कोनो सीमा नहि छल। ई रुप समस्त ब्रह्माण्डमे फैलल छल, किन्तु भगवत्कृपा सँ अर्जुन हनका एक स्थान पर बैसल-बैसल देख रहल छलाह। ई सब भगवान् कृष्णक अचिन्त्य शक्तिक कारण छल।

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥१२॥

दिवि– आकाश मे; **सूर्य**– सर्यक; **सहस्त्रस्य**– हजारों; **भवेत्**– छल; **युगपत्**– एक संग; **उत्थिता**– उपस्थित; **यदि**– यदि; **भाः**– प्रकाश; **सदृशी**– क समान; **सा**– ओ; **स्यात्**– हो; **भासः**– तेज; **तस्य**– ओहि; **महात्मनः**– परम स्वामीक।

यदि आकाशमे हजारों सूर्य एक संग उदय हुए, तो हुनकर प्रकाश शायद परमपुरुषक एहि विश्वरुपक तेजक समताक सके।

तात्पर्यः अर्जुन जे किछु देखलनि ओ अकथ्य छल, तो भी संजय धृतराष्ट्र केँ ओहि महान दर्शनक मानसिक चित्र उपस्थित करैक प्रयत्नक रहला अछि। न तो संजय ओतय छलाह न धृतराष्ट्र किन्तु व्यासदेवक अनुग्रह सँ संजय सब घटना केँ देख सकैत छलाह। अतएव एहि स्थितिक तुलना ओ एक काल्पनिक घटना (हजारों सूर्य) सँ कऽ रहला अछि, जाहि सँ एकरा समझल जा सकए।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥१३॥

तत्र– ओतय; **एक स्थम्**– एकत्र, एक स्थान पर; **जगत**– ब्रह्माण्ड; **कृत्स्नम्**– सम्पूर्ण; **प्रविभक्तम्**– विभाजित; **अनेकधा**– अनेक मे; **अपश्यत्**– देखलनि; **देवदेवस्य**– भगवान् केँ; **शरीरे**– विश्वरुप मे; **पाण्डवः**– अर्जुन; **तदा**– तखन।

ओहि समय अर्जुन भगवानक विश्वरुपमे एक ही स्थान पर स्थित हजारों भागमे विभक्त ब्रह्माण्डक अनन्त अंश केँ देखि सकलाह।

तात्पर्यः तत्र (ओतय) शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अछि। एहि सँ सूचित होइत अछि कि जखन अर्जुन विश्वरुप देखलाह, ओहि समय अर्जुन तथा कृष्ण दूनू रथ पर बैसल छलाह। युद्धभूमिक अन्य लोग एहि रुप केँ नहि देख सकल। किएक तऽ कृष्ण केवल अर्जुन केँ दिव्य दृष्टि प्रदान केने छलथिन। क्यो ई नहि जानि सकल कि अर्जुन तथा कृष्णक बीचमे की चलि रहल छल।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत॥१४॥

ततः– तत्पश्चात्; **सः**– ओ; **विस्मय आविष्टः**– आश्चर्यचकित भऽकऽ; **हृष्ट रोमा**– हर्ष सँ रोमांचित; **धनञ्जयः**– अर्जुन; **प्रणम्य**– प्रणाम करिक; **शिरसा**– सिरक बल; **देवम्**– भगवान् केँ; **कृत अंजलि**– हाथ जोड़िक; **अभाषत**– कह लागला।

तखन मोहग्रस्त एवं आश्चर्यचकित रोमांचित भेल अर्जुन प्रणाम करए लेल मस्तक झुकौलनि आओर हाथ जोड़िक भगवान् सँ प्रार्थना करए लगलाह।

तात्पर्यः एक बेर दिव्य दर्शन होइत देरी कृष्ण तथा अर्जुनक पारस्परिक सम्बन्ध तुरन्त बदलि गेल। एखन धरि कृष्ण तथा अर्जुनक सम्बन्धमैत्री सम्बन्ध छल, किन्तु दर्शन होइते ही अर्जुन अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम कऽ रहला अछि आओर हाथ जोड़िक कृष्ण सँ प्रार्थनाक रहला अछि। ओ हुनकर विश्वरुपक प्रशंसाक रहला अछि। एहि प्रकार अर्जुनक सम्बन्ध मित्रताक न रहिक आश्चर्यक बनि गेल।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥१५॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलखिन; **पश्यामि**– देखैत छी; **देवान्**– समस्त देवता केँ; **तव**– अहाँक; **देव**– हे प्रभु; **देहे**– शरीर मे; **सर्वान्**– समस्त; **तथा**– भी; **भूत**– जीव; **विशेष-सङ्घान्**– विशेष रुप सँ एकत्रित; **ब्रह्माणम्**– ब्रह्मा केँ; **कमल आसन स्थम्**– कमलक ऊपर आसीन; **ऋषीन्**– ऋषि केँ; **च**– भी; **सर्वान्**– समस्त; **उरगान्**– सर्प केँ; **च**– भी; **दिव्यान्**– दिव्य।

अर्जुन कहलखिन-हे भगवान् कृष्ण! हम अहाँक शरीरमे समस्त देवता तथा अन्य विविध जीव केँ एकत्र देख रहल छी। हम कमल पर आसीन ब्रह्मा, शिवजी तथा समस्त ऋषि एवं दिव्य सर्प केँ भी देख रहल छी।

तात्पर्यः अर्जुन ब्रह्माण्डक प्रत्येक वस्तु देखैत छथि, अतः ओ

ब्रह्माण्डक प्रथम प्राणी ब्रह्मा केँ तथा ओहि दिव्य सर्प केँ, जाहि पर गर्भोदकशायी विष्णु ब्रह्माण्डक अधोतलमे शयन करैत छथि, अर्जुन देखैत छथि। एहि शेषशय्याक नाग केँ वासुकि भी कहल जाइत अछि। अन्य सर्प केँ भी वासुकि कहल जाइत अछि। भगवानक कृपा सँ आदि सँ अन्त तकक सब वस्तु अपने रथमे एक ही स्थान पर बैसल बैसल देख सकैत छलाह।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥१६॥

अनेक– कई, अनेक; **बाहुः**– भुजाएँ; **उदर**– पेट; **वक्त्र**– मुख; **नेत्रम्**– आँखि; **पश्यामि**– देख रहल छी; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **सर्वतः**– चारु तरफ; **अनन्त रुपम्**– असंख्य रुप; **न अन्तम्**– अन्तहीन, कोनो अन्त नहि अछि; **न मध्यम्**– मध्य रहित; **न पुनः**– नहि फेर; **तव**– अहाँक; **आदिम्**– प्रारम्भ; **पश्यामि**– देखैत छी; **विश्व ईश्वर**– हे ब्रह्माण्डक स्वामी; **विश्वरुप**– ब्रह्माण्डक रुप मे।

हे विश्वेश्वर, हे विश्वरुप! हम अहाँक शरीरमे अनेकानेक हाथ, पेट, मुँह तथा आँखि देख रहल छथि, जे सर्वत्र फैलल अछि आओर जकर अन्त नहि अछि। अहाँमे न अन्त दिखाइत अछि, न मध्य आओर न आदि।

तात्पर्यः कृष्ण भगवान् छथि आओर असीम छथि, अतः हुनका माध्यम सँ सब किछु देखल जा सकैत अछि। भगवत्कृपा हेवाक चाही।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता–
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्॥१७॥

किरीटिनम्– मुकुट युक्त; **गदिनम्**– गदा धारण केने; **चक्रिणम्**– चक्र समेत; **च**– तथा; **तेजः राशिम्**– तेज; **सर्वतः**– चारु तरफ; **दीप्ति मन्तम्**– प्रकाश युक्त; **पश्यामि**– देखैत छी; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **दुर्निरीक्ष्यम्**– देखमे

कठिन; **समन्तात्**- सर्वत्र; **दीप्त अनल**- प्रज्वलित अग्नि; **अर्क**- सूर्यक; **द्युतिम्**- धूप; **अप्रमेयम्**- अनन्त।

अहाँक रुप केँ ओकर चकाचौंध तेजक कारण देखि पायब कठिन अछि, किएक तऽ ओ प्रज्वलित अग्निक भाँति अथवा सूर्यक अपार प्रकाशक भाँति चारु ओर फैल रहल अछि। तो भी हम एहि तेजोमय रुप केँ सर्वत्र देखि रहलहुँ अछि, जे अनेक मुकुट, गदा तथा चक्र सँ विभूषित अछि।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥१८॥

त्वम्- अहाँ; **अक्षरम्**- अच्युत; **परमम्**- परम; **वेदितव्यम्**- जानवाक योग्य; **अस्य**- एहि; **विश्वस्य**- विश्वक; **परम्**- परम; **निधानम्**- आधार; **त्वम्**- अहाँ; **अव्ययः**- अविनाशी; **शाश्वतधर्म गोप्ता**- शाश्वत धर्मक पालक; **सनातनः**- शाश्वत; **पुरुषः**- परमपुरुष; **मतः मे**- हमर मत अछि।

अहाँ परम आद्य ज्ञेय वस्तु छी। अहाँ एहि ब्रह्माण्डक परम (आश्रय) छी। अहाँ अव्यय तथा पुराण पुरुष छी। अहाँ सनातन धर्मक पालक भगवान् छी। इहै हमर मत अछि।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥१९॥

अनादि- आदि रहित; **मध्य**- मध्य; **अन्तम्**- अन्त; **अनन्त**- असीम; **वीर्यम्**- महिमा; **अनन्त**- असंख्य; **बाहुम्**- भुजा; **शशि**- चन्द्रमा; **सूर्य**- सूर्य; **नेत्रम्**- आँखि; **पश्यामि**- देखैत छी; **त्वाम्**- अहाँ केँ; **दीप्त**- प्रज्ज्वलित; **हुताश वक्त्रम्**- अहाँक मुख सँ निकलैत अग्नि केँ; **स्वतेजसा**- अपन तेज सँ; **विश्वम्**- विश्वक; **इदं**- एहि; **तपन्तम्**- तपबैत।

अहाँ आदि, मध्य तथा अन्त सँ रहित छी। अहाँक यश अनन्त

अछि। अहाँ केँ असंख्य भुजा आओर सूर्य तथा चन्द्रमा अहाँक आँखि अछि। हम अहाँक मुख सँ प्रज्ज्वलित अग्नि निकलैत आओर अहाँक तेज सँ एहि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड केँ जलैत देखि रहल छी।

तात्पर्यः भगवानक षड्ऐश्वर्यक कोनो सीमा नहि अछि। एतय तथा अन्यत्र भी पुनरुक्ति पाएल जाइत अछि, किन्तु शास्त्रानुसार कृष्णक महिमाक पुनरुक्ति कोनो साहित्यिक दोष नहि अछि। कहल जाइत अछि कि परम आह्लादक समय या आश्चर्य भेला पर कथनीक पुनरुक्ति होइत अछि। ई कोनो दोष नहि होइत अछि।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥२०॥

द्यौ- वाह्य आकाश सँ लक; **आ पृथिव्योः**- पृथ्वी तक; **इदम्**- एहि; **अन्तरम्**- मध्य मे; **हि**- निश्चय ही; **व्याप्तम्**- व्याप्त; **त्वया**- अहाँ द्वारा; **एकेन**- अकेला; **दिशः**- दिशाएँ; **च**- तथा; **सर्वाः**- सब; **दृष्ट्वा**- देखि कऽ; **अद्भुतम्**- अद्भुत; **रूपम्**- रूप केँ; **उग्रम्**- भयानक; **तव**- अहाँक; **इदम्**- एहि; **लोक**- लोग; **त्रयम्**- तीन; **प्रव्यथितम्**- भयभीत, विचलित; **महात्मन्**- हे महापुरुष।

यद्यपि अहाँ एक छी, किन्तु अहाँ आकाश तथा सब लोक एवम् हुनकर बीचक समस्त अवकाशमे व्याप्त छी। हे महापुरुष! अहाँक एहि अद्भुत रुप केँ देखिक समस्त लोक भयभीत अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे द्याव्-आ-पृथिव्योः (धरती तथा आकाशक बीचक स्थान) तथा लोकत्रयम् (तीनू संसार) महत्त्वपूर्ण शब्द अछि, किएक तऽ एना लागैत अछि कि न केवल अर्जुन एहि विश्वरुप केँ देखलनि, बल्कि अन्य लोकक वासी भी देखलक। अर्जुन द्वारा विश्वरुपक दर्शन स्वप्न नहि छल। भगवान् जिनका जिनका दिव्य दृष्टि प्रदान कैलनि, ओ सब युद्धक्षेत्रमे ओहि विश्वरुप केँ देखलक।

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।

स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥२१॥

अमी– ओ सब; **हि**– निश्चय ही; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **सुर सङ्घा**– देव समूह; **विशन्ति**– प्रवेश कऽ रहला अछि; **केचित्**– ओहिमे सँ किछु; **भीताः**– भयवश; **प्राञ्जलयः**– हाथ जोड़ने; **गृहन्ति**– स्तुतिक रहला अछि; **स्वस्ति**– कल्याण हो; **इति**– एहि प्रकार; **उक्त्वा**– कहिक; **महर्षि**– महर्षिगण; **सिद्ध सङ्घा**– सिद्ध लोग; **स्तुवन्ति**– स्तुति कऽ रहला अछि; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **स्तुतिभिः**– प्रार्थना सँ; **पुष्कलाभिः**– वैदिक स्तोत्र।

देवगण–देवताक सब समूह अहाँक शरण लऽ रहला अछि, आओर अहाँमे प्रवेशक रहला अछि। ओहिमे सँ किछु अत्यन्त भयभीत भऽकऽ हाथ जोड़ने अहाँक प्रार्थनाक रहला अछि। महर्षि तथा सिद्धक समूह कल्याण हो कहिक वैदिक स्तोत्रक पाठ करैत अहाँक स्तुति कऽ रहला अछि।

तात्पर्यः समस्त लोकक देवता विश्वरुपक भयानकता तथा प्रदीप्त तेज सँ एतेक भयभीत छलाह कि ओ सब रक्षाक लेल प्रार्थना करै लगलाह।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे॥२२॥

रुद्र– शिवक रुप; **आदित्याः**– आदित्यगण; **वसवः**– सब वसु; **ये**– जे; **च**– तथा; **साध्याः**– साध्य; **विश्वे**– विश्वेदेवता; **अश्विनौ**– अश्विनी कुमार; **मरुतः**– मरुद्गण; **उष्मपाः**– पितर; **गन्धर्व**– गन्धर्व; **यक्ष**– यक्ष; **असुर**– असुर; **सिद्ध**– सिद्ध देवता केँ; **सङ्घाः**– समूह; **वीक्षन्ते**– देख रहला अछि; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **विस्मिताः**– आश्चर्यचकित भऽकऽ; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही।

शिवक विविध रुप, आदित्यगण, वसु, साध्य, विश्वेदेव, दूनू अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितृगण, गन्धर्व, यक्ष, असुर तथा सिद्धदेव सब अहाँ केँ आश्चर्यपूर्वक देख रहला अछि।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरूपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्॥२३॥

रुपम्– रुप; **महत्**– विशाल; **ते**– अहाँक; **बहु**– अनेक; **वक्त्र**– मुख; **नेत्रम्**– आँखि; **महाबाहो**– हे बलिष्ठ भुजावला; **बाहु**– भुजा; **ऊरु**– जाँघ; **पादम्**– पाँव; **बहु उदरम्**– अनेक पेट; **बहुदंष्ट्रा**– अनेक दाँत; **करालम्**– भयानक; **दृष्ट्वा**– देखि कऽ; **लोकाः**– सब लोक; **प्रव्यथिताः**– विचलित; **तथा**– ओहि प्रकार; **अहं**– हम।

हे महाबाहु! अहाँक एहि अनेक मुख, नेत्र, बाहु, जंघा, पाँव, पेट तथा भयानक दाँत वला विराट रुप केँ देखिक देवतागण सहित अनेक लोक अत्यन्त विचलित अछि आओर हुनके ही तरह हम भी छी।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो॥२४॥

नभः स्पृशम्– आकाश छूइत; **दीप्तम्**– ज्योतिर्मय; **अनेक**– कई, अनेक; **वर्णम्**– रंग; **व्यात्त**– खुलल; **आननम्**– मुख; **दीप्त**– प्रदीप्त; **विशाल**– पैघ–पैघ; **नेत्रम्**– आँखि; **दृष्ट्वा**– देखिक; **हि**– निश्चय ही; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **प्रव्यथितः**– विचलित, भयभीत; **अन्तः**– भीतर; **आत्मा**– आत्मा; **धृतिम्**– दृढ़ता या धैर्य केँ; **न**– नहि; **विन्दामि**– प्राप्त छी; **शमम्**– मानसिक शान्ति केँ; **च**– भी; **विष्णो**– हे विष्णु।

हे सर्वव्यापी विष्णु! नाना ज्योतिर्मय रंग सँ युक्त अहाँ केँ आकाशक स्पर्श करैत, मुख फैलाक तथा पैघ–पैघ चमकैत आँखि निकलता देखिक भय सँ मन विचलित अछि। हम न तो धैर्य धारण कऽ पाबैत छी, न मानसिक संतुलन ही पाबि रहलहुँ अछि।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि

दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥२५॥

दंष्ट्रा– दाँत; **करालनि**– विकराल; **च**– भी; **ते**– अहाँक; **मुखानि**– मुख केँ; **दृष्ट्वा**– देखिक; **एव**– एहि प्रकार; **काल अनल**– प्रलयक; **सन्नि भानि**– मानू; **दिशः**– दिशा; **न**– नहि; **जाने**– जानैत छी; **लभे**– प्राप्त करैत छी; **च**– तथा; **शर्म**– आनन्द; **प्रसीद**– प्रसन्न हो; **देवेश**– हे देवताक स्वामी; **जगत् निवास**– हे समस्त जगतक आश्रय।

हे देवेश! हे जगन्निवास! अहाँ हमरा पर प्रसन्न हो। हम एहि प्रकार सँ अहाँक प्रलयाग्नि स्वरुप मुख केँ तथा विकराल दाँत सब केँ देखिक अपन सन्तुलन नहि राखि पा रहल छी। हम सब ओर सँ मोहग्रस्त भऽ रहलहुँ अछि।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥२६॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥२७॥

अमी– ई; **च**– भी; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **धृतराष्ट्रस्य**– धृतराष्ट्रक; **पुत्राः**– पुत्र; **सर्वे**– सब; **सह**– सहित; **एव**– निस्सन्देह; **अवनि पाल**– वीर राजाक; **संघैः**– समूह; **भीष्मः**– भीष्मदेव; **द्रोणः**– द्रोणाचार्य; **सूत पुत्रः**– कर्ण; **तथा**– भी; **असो**– ई; **सह**– संग; **अस्मदीयैः**– हमर; **अपि**– भी; **योध मुख्यैः**– मुख्य योद्धा; **वक्त्राणि**– मुख मे; **ते**– अहाँक; **त्वरमाणाः**– तेजी सँ; **विशन्ति**– प्रवेश कऽ रहला अछि; **दंष्ट्रा**– दाँत; **करालानि**– विकराल; **भयानकानि**– भयानक; **केचित्**– ओहिमे सँ किछु; **विलग्नाः**– लागल रहिक; **दशन अन्तरेषु**– दाँतक बीच मे; **सन्दृश्यन्ते**– दिख रहल अछि; **चूर्णितैः**– चूर्ण भेल; **उत्तम अंगैः**– शिर सँ।

धृतराष्ट्रक सब पुत्र अपन समस्त सहायक राजा सहित तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण एवं हमर प्रमुख योद्धा भी अपनेक विकराल मुखमे प्रवेशक रहल अछि। ओहिमे सँ किछुक शिर केँ तो हम अहाँक दाँतक बीच चूर्णित होइत देख रहल छी।

तात्पर्यः आब अर्जुन देख रहल छथि कि विपक्षक नेता (भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा धृतराष्ट्रक सब पुत्र) तथा हुनकर सैनिक आओर अर्जुनक भी सैनिक विनष्ट भऽ रहल अछि। यानी सबहक मृत्युक उपरान्त अर्जुन विजयी हेताह।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥२८॥

यथा– जाहि प्रकार; **नदीनाम्**– नदीक; **बहवः**– अनेक; **अम्बु वेगा**– जलक तरंग; **समुद्रम्**– समुद्र; **एव**– निश्चय ही; **अभिमुखाः**– क ओर; **द्रवन्ति**– दौड़ैत अछि; **तथा**– ओहि प्रकार सँ; **तव**– अहाँक; **अमी**– ई सब; **नर लोक वीराः**– मानव समाजक राजा; **विशन्ति**– प्रवेशक रहल अछि; **वक्त्राणि**– मुख मे; **अभिविज्वलन्ति**– प्रज्ज्वलित भऽ रहल अछि।

जाहि प्रकार नदीक अनेक तरंग समुद्रमे प्रवेश करैत अछि, ओहि प्रकार ई समस्त महान योद्धा भी अहाँक प्रज्ज्वलित मुखमे प्रवेशक रहल अछि।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥२९॥

यथा– जाहि प्रकार; **प्रदीप्तम्**– जलैत; **ज्वलनम्**– अग्नि मे; **पतंगाः**– पतंग, कीड़ा-मकोड़ा; **विशन्ति**– प्रवेश करैत अछि; **नाशाय**– नाशक लेल; **समृद्ध**– पूर्ण; **वेगाः**– वेग; **तथा एव**– ओहि प्रकार सँ; **नाशाय**– नाशक लेल; **लोकाः**– सब लोग; **तव**– अहाँक; **अपि**– भी; **वक्त्राणि**– मुख मे; **समृद्ध वेगाः**– पूरा वेग सँ।

हम समस्त लोग केँ पूर्ण वेग सँ अहाँक मुँहमे ओहि प्रकार प्रविष्ट होइत देख रहल छी जाहि प्रकार फतिंगा अपन विनाशक लेल प्रज्ज्वलित अग्निमे कूदि पड़ैत अछि।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो॥३०॥

लेलिह्यसे- चाटि रहल अछि; **ग्रसमानः**- निगलैत; **समन्तात्**- समस्त दिशा मे; **लोकान्**- लोग केँ; **समग्रान्**- सब; **वदनैः**- मुख सँ; **ज्वलद्भिः**- जलैत; **तेजोभिः**- तेज सँ; **आपूर्य**- आच्छादित करिक; **जगत्**- ब्रह्माण्ड केँ; **समग्रम्**- समस्त; **भासः**- किरण; **तव**- अहाँक; **उग्राः**- भयंकर; **प्रतपन्ति**- झुलसा रहल अछि; **विष्णो**- हे विश्वव्यापी भगवान्।

हे विष्णु! हम देखैत छी कि अहाँ अपन प्रज्ज्वलित मुख सँ समस्त दिशाक लोग केँ निगलिने जा रहल छी। अहाँ समस्त ब्रह्माण्ड केँ अपन तेज सँ आपूरित कऽ अपन विकराल झुलसाबयवला किरण सहित प्रकट भऽ रहल छी।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥३१॥

आख्याहि- कृपया बताउ; **मे**- हमरा; **कः**- के (कौन); **भवान्**- अहाँ; **उग्ररुपः**- भयानक रुप; **नमः अस्तु**- नमस्कार हो; **ते**- अहाँ केँ; **देववर**- हे देवता मे श्रेष्ठ; **प्रसीद**- प्रसन्न हो; **विज्ञातुम्**- जानैक लेल; **इच्छामि**- इच्छुक छी; **भवन्तम्**- अहाँक; **आद्यम्**- आदि; **न**- नहि; **हि**- निश्चय ही; **प्रजानामि**- जानैत छी; **तव**- अहाँक; **प्रवृत्तिम्**- प्रयोजन।

हे देवेश! कृपा करिक बताउ कि एतेक उग्ररुपमे अहाँ केँ थिकहुँ? हम अहाँ केँ नमस्कार करैत छी, कृपा करिक हमरा पर प्रसन्न हो। अहाँ आदि भगवान् छी। हम अहाँ केँ जान चाहैत छी किएक तऽ हम नहि जानि पाबैत छी कि अपनेक प्रयोजन की अछि।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥३२॥

श्री भगवान् उवाच– भगवान् कहलथिन; **कालः**– काल; **अस्मि**– छी; **लोक**– लोकक; **क्षयकृत्**– नाश कर वाला; **प्रवृद्धः**– महान; **लोकान्**– समस्त लोग मे; **समाहर्तुम्**– नष्ट कर मे; **इह**– एहि संसार मे; **प्रवृत्तः**– लागल; **ऋते**– बिना; **अपि**– भी; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **न**– कहियो नहि; **भविष्यन्ति**– होयत; **सर्वे**– सब; **ये**– जे; **अवस्थिताः**– स्थित; **प्रति-अनीकेषु**– विपक्ष मे; **योधाः**– सैनिक।

भगवान् कहलथिन– समस्त जगत केँ विनष्ट कर वाला काल हम छी आओर हम एतय समस्त लोगक विनाश कर लेल आयल छी। अहाँक (पाण्डव) सिवा दूनू पक्षक सब योद्धा मारल जाएत।

तात्पर्यः अर्जुन युद्धक पक्षमे नहि छलाह, ओ युद्ध नहि करब श्रेयष्कर समझैत छलाह किएक तऽ तखन कोनो प्रकारक निराशा नहि होइतनि। किन्तु भगवानक उत्तर अछि कि यदि ओ नहि युद्ध करताह तो भी समस्त लोग हुनकर ग्रास बनैत, कारण इहै हुनकर इच्छा अछि। यदि अर्जुन नहि लड़ता, तो भी ओ सब अन्य विधि सँ मरैत। मृत्यु रोकल नहि जा सकैत अछि, चाहे जो लड़थि वा नहि। वस्तुतः ओ सब पहिले सँ मृत अछि। काल विनाश अछि आओर समस्त संसारक ईश्वरानुसार विनष्ट भेनाइ अछि। ई प्रकृतिक नियम अछि।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥३३॥

तस्मात्– अतएव; **त्वम्**– अहाँ; **उत्तिष्ठ**– उठू; **यशः**– यश; **लभस्व**– प्राप्त करु; **जित्वा**– जीतक; **शत्रून्**– शत्रु केँ; **भुङ्क्ष्व**– भोग करु; **राज्यम्**– राज्यक; **समृद्धम्**– सम्पन्न; **मया**– हमरा द्वारा; **एव**– निश्चय

ही; **एते**– ई सब; **निहताः**– मारल गेलाह; **पूर्वम् एव**– पहिने ही; **निमित्त मात्रम्**– केवल कारण मात्र; **भव**– बनू; **सव्य साचिन्**– हे सव्यसाची।

अतः उठू! लड़ै लेल तैयार होउ आओर यश अर्जित करु। अपन शत्रु केँ जीतक सम्पन्न राज्यक भोग करु। ई सब हमरा द्वारा पहिने ही मारल जा चुकल अछि आओर हे सव्यसाची! अहाँ तो युद्धमे केवल निमित्त मात्र भऽ सकैत छी।

तात्पर्यः दृश्य जगतक उत्पत्ति तथा ओकर संहार ईश्वरक परम अध्यक्षतामे होइत अछि। कुरुक्षेत्रक युद्ध ईश्वरक योजनाक अनुसार लड़ल गेलै। अर्जुन युद्ध कर सँ मनाक रहल छलाह, किन्तु हुनका बताएल गेल कि परमेश्वरक इच्छानुसार हुनका लड़ै पड़त। तखने ओ सुखी हेताह। सव्यवाचीक अर्थ अछि ओ जे युद्धभूमिमे अत्यन्त कौशलक संग तीर छोड़ि सके। एहि प्रकार अर्जुन केँ एक पटु योद्धाक रुपमे सम्बोधित कैल गेलैन अछि, जे अपन शत्रु केँ तीर सँ मारिक मौतक घाट उतारि सकैत छथि। भगवान् कृष्ण कहि रहलाह अछि कि ई सब हमरा द्वारा पहिने ही मारल जा चुकल अछि। हे सव्यसाची अर्जुन! अहाँ तो युद्धमे केवल निमित्तमात्र रहव। अतः उठू, लड़ लेल तैयार होउ आओर यश अर्जितक सम्पन्न राज्यक भोगक सकब।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥३४॥

द्रोणम् च– तथा द्रोण; **भीष्मम् च**– भीष्म भी; **जयद्रथम् च**– तथा जयद्रथ; **कर्णम्**– कर्ण; **तथा**– आओर; **अन्यान्**– अन्य; **अपि**– निश्चय ही; **योधवीरान्**– महान योद्धा; **मया**– हमरा द्वारा; **हतान्**– पहिने ही मारल गेल अछि; **त्वम्**– अहाँ; **जहि**– मारु; **व्यथिष्ठा**– विचलित होउ; **युद्धस्व**– लड़ू; **जेता असि**– जीतब; **रणे**– युद्ध मे; **सपत्नान्**– शत्रु केँ।

द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्य योद्धा पहिने ही हमरा द्वारा मारल जा चुकल अछि। अतः अहाँ हुनका सब केँ वध करु आओर तनिक भी विचलित नहि होउ। अहाँ केवल युद्ध करु।

युद्धमे अहाँ अपन शत्रु केँ परास्त करब।

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य॥३५॥

सञ्जय उवाच– संजय कहलखिन; **एतत्**– एहि प्रकार; **श्रुत्वा**– सुनिक; **वचनम्**– वाणी; **केशवस्य**– कृष्णक; **कृत अञ्जलि**– हाथ जोड़िक; **वेपमानः**– काँपैत; **किरीटी**– अर्जुन; **नमस्कृत्वा**– नमस्कार करिक; **भूयः**– पुनः; **एव**– भी; **आह**– बाजलनि; **कृष्णम्**– कुष्ण केँ; **स-गद्गदम्**– अवरुद्ध स्वर सँ; **भीत भीतः**– डराएल सन; **प्रणम्य**– प्रणाम करिक।

संजय धृतराष्ट्र सँ कहलखिन-हे राजा! भगवानक मुख सँ एहि वाणी केँ सुनिक काँपैत अर्जुन हाथ जोड़ि हुनका बारम्बार नमस्कार कैलनि। पुनः ओ भयभीत भऽकऽ अवरुद्ध स्वरमे कृष्ण सँ एहि प्रकार कहलथिन।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥३६॥

अर्जुन उवाच– अर्जुन कहलथिन; **स्थाने**– ई ठीक अछि; **हृषीकेश**– हे इन्द्रियक स्वामी; **तव**– अहाँक; **प्रकीर्त्या**– कीर्ति सँ; **जगत्**– सम्पूर्ण संसार; **प्रहृष्यति**– हर्षित भऽ रहल अछि; **अनुरज्यते**– अनुरक्त भऽ रहल अछि; **च**– तथा; **रक्षांसि**– असुरगण; **भीतानि**– डर सँ; **दिशः**– सब दिशा मे; **द्रवन्ति**– भागि रहल अछि; **सर्वे**– सब; **नमस्यन्ति**– नमस्कार करैत अछि; **च**– भी; **सिद्ध सङ्घाः**– सिद्धपुरुष।

अर्जुन कहलथिन-हे हृषीकेश! अहाँक नामक श्रवण सँ संसार हर्षित होइत अछि आओर सब लोग अहाँक प्रति अनुरक्त होइत

अछि। यद्यपि सिद्ध पुरुष अहाँकेँ नमस्कार करैत अछि, किन्तु असुरगण भयभीत अछि आओर एम्हर ओम्हर भागि रहल अछि। ई ठीक ही भेल अछि।

तात्पर्यः कृष्ण सँ कुरुक्षेत्र युद्धक परिणाम केँ सुनिक अर्जुन प्रबुद्ध भऽ गेलाह आओर भगवानक परम भक्त तथा मित्रक रुपमे हुनका सँ कहलनि कि कृष्ण जे किछु करैत छथि ओ सब उचित अछि। अर्जुन पुष्टि कैलनि कि कृष्ण ही पालक छथि आओर भक्तक आराध्य तथा अवांक्षित तत्त्वक संहारकर्ता छथि। हुनकर सब कार्य सबहक लेल समान रुप सँ शुभ होइत अछि।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्।।३७।।

कस्मात्– किएक (क्यों); **च**– भी; **ते**– अहाँ केँ; **न**– नहि; **नमेरन**– नमस्कार करी; **महात्मन्**– हे महापुरुष; **गरीयसे**– श्रेष्ठतर लोग; **ब्रह्मणः**– ब्रह्माक अपेक्षा; **अपि**– यद्यपि; **आदिकर्त्रे**– परम स्रष्टा केँ; **अनन्त**– हे अनन्त; **देवेश**– हे ईशाक ईश; **जगत् निवास**– हे जगतक आश्रय; **त्वम्**– अहाँ छी; **अक्षरम्**– अविनाशी; **सत् असत्**– कार्य तथा कारण; **तत् परम**– दिव्य; **यत्**– किएक तऽ।

हे महात्मा! अहाँ ब्रह्मा सँ भी बढ़िक छी, अहाँ आदि स्रष्टा छी। तो पुनः ओ अहाँ केँ सादर-प्रणाम किएक न करए? हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवाश! अहाँ परमश्रोत, अक्षर, कारणक कारण तथा एहि भौतिक जगत् सँ परे छी।

तात्पर्यः अर्जुन भी सोचलनि कि ई सर्वथा उपयुक्त अछि कि सब सिद्ध तथा शक्तिशाली देवता भगवानक नमस्कार करैत छथि, किएक तऽ हुनका सँ बढ़िक क्यो नहि अछि। अर्जुन विशेष रुप सँ उल्लेख करैत छथि कि कृष्ण ब्रह्मा सँ भी बढ़िक छथि किएक तऽ ब्रह्मा हुनके द्वारा उत्पन्न भेल छथि। ब्रह्माक जन्म कृष्णक पूर्ण विस्तार गर्भोदकशायी विष्णुक नाभि सँ निकलल कमलनाल सँ भेलाह। अतः ब्रह्मा तथा ब्रह्मा

सँ उत्पन्न शिव एवं सब देवता केँ चाही कि हुनका नमस्कार करथि। भागवतमे कहल गेलै अछि कि शिव, ब्रह्मा तथा हिनका जेना अन्य देवता भगवानक आदर करैत छथि। ई जगत् विनाशशील अछि, किन्तु भगवान् एहि जगत् सँ परे छथि। ओ समस्त कारणक कारण छथि, अतएव ओ एहि भौतिक प्रकृतिक तथा एहि दृश्यजगतक समस्त बद्धजीव सँ श्रेष्ठ छथि। इसलिए ओ ईश्वर छथि।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य
विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥३८॥

त्वम्- अहाँ; **आदिदेवः**- आदि परमेश्वर; **पुरुषः**- पुरुष; **पुराणः**- प्राचीन, सनातन; **अस्य**- एहि; **विश्वस्य**- विश्वक; **परम्**- दिव्य; **च**- आओर; **निधानम्**- आश्रय; **वेत्ता**- जान वाला; **असि**- अछि; **वेद्यम्**- जानबाक योग्य; **च**- आओर; **धाम**- वास, आश्रय; **त्वया**- अहाँक द्वारा; **ततम्**- व्याप्त; **विश्वम्**- विश्व; **अनन्त रुप**- हे अनन्त रुपवाला।

अहाँ आदि देव, सनातन पुरुष तथा एहि दृश्यजगतक परम आश्रय छी। अहाँ सब किछु जानैवला छी आओर अहीं ओ सब किछु छी, जे जानबाक योग्य अछि। अहाँ भौतिक गुण सँ परे परम आश्रय छी। हे अनन्त रुप! ई सम्पूर्ण दृश्यजगत अहाँ सँ व्याप्त अछि।

तात्पर्यः प्रत्येक वस्तु भगवान् पर आश्रित अछि अतएव ओ ही परम आश्रय छथि। ओ एहि संसारमे घटित हुअबला प्रत्येक घटना केँ जान वाला छथि आओर यदि ज्ञानक कोनो अन्त अछि, तो ओ ही समस्त ज्ञानक अन्त छथि। अतः ओ ज्ञाता छथि आओर ज्ञेय भी। ओ जानबाक योग्य छथि किएक तऽ ओ सर्वव्यापी छथि। वैकुण्ठ लोकमे कारण स्वरुप भेलाक सँ ओ दिव्य छथि। ओ दिव्यलोकमे भी प्रधान पुरुष छथि।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥३९॥

वायुः– वायु; **यमः**– नियन्ता; **अग्निः**– अग्नि; **वरुणः**– जल; **शशाङ्कः**– चन्द्रमा; **प्रजापतिः**– ब्रह्मा; **त्वम्**– अहाँ; **प्रपितामहः**– परबाबा; **च**– तथा; **नमः**– हमर नमस्कार; **नमः**– पुनः नमस्कार; **ते**– अहाँ केँ; **अस्तु**– हो; **सहस्त्रकृत्वः**– हजार बार; **पुनः च**– तथा फेर; **भूयः**– पुनः; **अपि**– भी; **नमः**– नमस्कार; **नमः ते**– अहाँ केँ हमर नमस्कार।

अहाँ वायु छी तथा परम नियन्ता भी छी। अहाँ अग्नि छी, जल छी तथा चन्द्रमा छी, अहाँ आदि जीव ब्रह्म छी आओर अहाँ प्रपितामह छी। अतः अहाँ केँ हजार बेर नमस्कार अछि आओर पुनः पुनः नमस्कार अछि।

तात्पर्यः भगवान् केँ वायु कहल गेलैन अछि, किएक तऽ वायु सर्वव्यापी भेलाक कारण समस्त देवताक मुख्य अधिष्ठाता छथि। अर्जुन कृष्ण केँ प्रपितामह (परबाबा) कहिक सम्बोधित करैत छथि किएक तऽ ओ विश्वक प्रथम जीव ब्रह्माक पिता छथि। ब्रह्माक जन्म कृष्णक पूर्ण विस्तार गर्भोदकार्य विष्णुक नाभि सँ निकलल कमलनाल सँ भेल अछि।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥४०॥

नमः– नमस्कार; **पुरस्तात्**– सामने सँ; **अथ**– भी; **पृष्ठतः**– पाछाँ सँ; **ते**– अहाँक; **नमोस्तु**– हम नमस्कार करैत छी; **सर्वतः**– सब दिशा सँ; **एव**– निस्संदेह; **सर्व**– किएक तऽ अहाँ सब किछु छी; **अनन्त वीर्य**– असीम पौरुष; **अमित विक्रमः**– तथा असीम बल; **त्वं**– अहाँ; **सर्वम्**– सब किछु; **समाप्नोषि**– अच्छादित करैत छी; **ततः**– अतएव; **असि**– हो; **सर्वः**– सब किछु।

अहाँ केँ आगाँ-पाछाँ तथा चारु ओर सँ नमस्कार अछि। हे असीम शक्ति! अहाँ अनन्त पराक्रमक स्वामी छी। अहाँ सर्वव्यापी छी, अतः अहाँ सब किछु छी।

तात्पर्यः कृष्णक प्रेम सँ अभिभूत हुनकर मित्र अर्जुन सब दिशा सँ हुनका नमस्कारक रहला अछि। ओ स्वीकार करैत छथि कि कृष्ण समस्त

बल तथा पराक्रमक स्वमी छथि, आओर युद्धभूमिमे एकत्र समस्त योद्धा सँ कहीं अधिक श्रेष्ठ छथि। विष्णु पुराणमे कहल गेलै अछि अहाँक समक्ष जे भी आबैत अछि, चाहे ओ देवता ही किएक न होथि। हे भगवान्! ओ अपनेक द्वारा ही उत्पन्न छथि।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥४१॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥४२॥

सखा– मित्र; **इति**– एहि प्रकार; **मत्वा**– मानिक; **प्रसभम्**– हठ पूर्वक; **यत्**– जे भी; **उक्तम्**– कहल गेलै अछि; **हे कृष्ण**– हे कृष्ण; **हे यादव**– हे यादव; **हे सखा**– हे मित्र; **इति**– एहि प्रकार; **अजानता**– बिना जानने; **महिमानम्**– महिमा केँ; **तव**– अहाँक; **इदम्**– ई; **मया**– हमरा द्वारा; **प्रमादात्**– मूर्खतावश; **प्रणयेन**– प्यार वश; **वा अपि**– या तो; **यत्**– जे; **च**– भी; **अवहास अर्थम्**– हँसीक लेल; **असत् कृतः**– अनादर कैल गेल; **असि**– हो; **विहार**– आराम मे; **शय्या**– लेटे रहला पर; **आसन**– बैसल रहला पर; **भोजनेषु**– भोजन करैत समय; **एकः**– अकेले; **अथवा**– या; **अपि**– भी; **अच्युत**– हे अच्युत; **तत् समक्षम्**– साथीक संग; **तत्**– ओहि सब; **क्षामये**– क्षमाप्रार्थी छी; **त्वाम्**– अहाँ सँ; **अहम्**– हम; **अप्रमेयम्**– अचिन्त्य।

अहाँ केँ अपन मित्र मानैत हम हठपूर्वक अहाँ केँ हे कृष्ण, हे यादव, हे सखा जाहि सम्बोधन सँ पुकारलहुँ अछि, किएक तऽ हम अहाँक महिमा केँ नहि जानैत छलहुँ। हम मूर्खतावश या प्रेमवश जे किछु भी कैलहुँ अछि, कृपया ओकरा लेल हमरा क्षमाक दिअ। इहै नहि, हम कतेको बेर आराम करैत समय, एक साथ लेटे होइत या संग संग खाइत या बैसल, कहियो अकेले तो कौखन अनेक मित्रक समक्ष अहाँक अनादर केलहुँ अछि। हे अच्युत! हमर एहि

समस्त उपराध केँ क्षमा करी।

तात्पर्य: यद्यपि अर्जुनक समक्ष कृष्ण अपन विराट रुपमे छथि, किन्तु हुनका कृष्णक संग अपनमैत्रीभावक स्मरण अछि। अतएव ओ मित्रताक कारण हुअबला अनेक अपराध केँ क्षमा करए लेल प्रार्थना कऽ रहल छथि। भक्त तथा भगवानक बीच दिव्य प्रेमक आदान-प्रदान एहि भाँति होइत रहैत अछि। जीव तथा कृष्णक सम्बन्ध शाश्वत रुप सँ स्थिर अछि ई भुलाएल नहि जा सकैत अछि, जेना कि हम अर्जुनक आचरणमे देखैत छी। यद्यपि अर्जुन विराट रुपक ऐश्वर्य देखि चुकलाह अछि किन्तु ओ कृष्णक संग अपन मैत्री नहि बिसरि सकताह।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥४३॥

पिता- पिता; **असि**- हो; **लोकस्य**- पूरा जगतक; **चर**- सचल; **अचरस्य**- अचलक; **त्वत्**- अहाँ छी; **अस्य**- एकर; **पूज्यः**- पूज्य; **च**- भी; **गुरुः**- गुरु; **गरीयान्**- यशस्वी, महिमामय; **न**- कहियो नहि; **त्वम् समः**- अहाँक तुल्य; **अस्ति**- अछि; **अभ्यधिकः**- बढ़ि कऽ; **कुतः**- कोन प्रकार सम्भव अछि; **अन्यः**- दोसर; **लोक त्रये**- तीनू लोक मे; **अपि**- भी; **अप्रतिम् प्रभाव**- हे अचिन्त्य शक्ति वाला।

अहाँ एहि चर तथा अचर सम्पूर्ण दृश्यजगतक जनक छी। अहाँ परम पूज्य महान आध्यात्मिक गुरु छी। न तो क्यो अहाँक तुल्य अछि, न ही क्यो अहाँक समान भऽ सकैत अछि। हे अतुल शक्ति वाला प्रभु! भला तीनू लोकमे अहाँ सँ बढ़िक क्यो कोना भऽ सकैत अछि?

तात्पर्य: भगवान् कृष्ण ओहि प्रकार पूज्य छथि, जाहि प्रकार पिता पूज्य होइत अछि। ओ गुरु छथि किएक तऽ सर्वप्रथम ओ है (उन्हीं ने) ब्रह्मा केँ वेदक उपदेश देलनि आओर एहि समय ओ अर्जुन केँ भी भगवद्गीताक उपदेश द रहला अछि, अतः ओ आदि गुरु छथि आओर एहि समय कोनो भी प्रमाणिक गुरु केँ कृष्ण सँ प्रारम्भ हुअबला

गुरुपरम्पराक वंशज होमक चाही। कृष्णक प्रतिनिधि हुए बिना क्यो न तो शिक्षक आओर न आध्यात्मिक विषयक गुरु भऽ सकैत अछि। केवल कृष्ण ईश्वर छथि, शेष सब हुनकर दास अछि। प्रत्येक व्यक्ति हुनकर आदेशक पालन करैत अछि। ओ समस्त कारणक कारण छथि।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥४४॥

तस्मात्- अतः; **प्रणस्य**- प्रणाम करिक; **प्रणिधाय**- प्रणत करिक; **कायम्**- शरीर केँ; **प्रसादये**- कृपाक याचना करैत छी; **त्वाम्**- अहाँ सँ; **अहम्**- हम; **ईशम्**- भगवान् सँ; **ईड्यम्**- पूज्य; **पिता इव**- पिता तुल्य; **पुत्रस्य**- पुत्रक; **सखा इव**- मित्रवत; **सख्युः**- मित्रक; **प्रियः**- प्रेमी; **प्रियायाः**- प्रियाक; **अहर्सि**- अहाँ केँ चाही; **देव**- हमर प्रभु; **सोढुम**- सहन करब।

अहाँ प्रत्येक जीवक पूजनीय भगवान् छी। अतः हम झुकि कऽ सादर प्रणाम करैत छी आओर अहाँक कृपाक याचना करैत छी। जाहि प्रकार पिता अपन पुत्रक ढ़िठाई सहन करैत अछि, या मित्र अपन मित्रक धृष्टता सहि लैत अछि या प्रिय अपन प्रियाक अपराध सहन कऽ लैत अछि, ओहि प्रकार अहाँ कृपा करि कऽ हमर त्रुटि सब सहन कऽ लिअ।

तात्पर्यः भगवान् कृष्णक भक्त हुनका संग विविध प्रकारक सम्बन्ध राखैत छथि-क्यो कृष्ण केँ पुत्रवत्, क्यो पतिक रुपमे, क्यो मित्र रुपमे, या क्यो स्वामी रुपमे मानि सकैत अछि। कृष्ण एवं अर्जुनक सम्बन्ध मित्रताक अछि। जाहि प्रकार पिता, पति या स्वामी सब अपराध सहनक लैत अछि ओहि प्रकार कृष्ण सहन करैत छथि।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥४५॥

अदृष्ट पूर्वम्– पहिने कहियो नहि देखल गेल; **हृषित**– हर्षित; **अस्मि**– छी; **दृष्ट्वा**– देखि कऽ; **भयेन**– भयक कारण; **च**– भी; **प्रव्यथितम्**– विचलित, भयभीत; **मनः**– मन; **मे**– हमर; **तत्**– ओ; **एव**– निश्चय ही; **मे**– हमरा; **दर्शय**– दिखाउ; **देव**– हे प्रभु; **रुपम्**– रुप; **प्रसीद**– प्रसन्न होउ; **देवेश**– ईशक ईश; **जगत्–निवास**– हे जगतक आश्रय।

पहिने कहियो नहि देखल गेलै अपनेक एहि विराट रुपक दर्शन करिक हम पुलकित भऽ रहलहुँ अछि, किन्तु संग ही हमर मन भयभीत भऽ रहल अछि। अतः अहाँ हमरा पर कृपा करी आओर हे देवेश, हे जगन्निवास! अपन पुरुषोत्तम भगवत् स्वरुप पुनः दिखाएल जाय।

तात्पर्यः अर्जुन केँ कृष्ण पर विश्वास अछि, किएक तऽ ओ हुनकर परम प्रिय मित्र छथि आओर मित्र रुपमे ओ अपन मित्रक ऐश्वर्य केँ देखिक अत्यन्त पुलकित छथि। अर्जुन ई देखिक अत्यन्त प्रसन्न छथि कि हुनक मित्र कृष्ण भगवान् छथि आओर ओ एहन विराट रुप प्रदर्शितक सकैत छथि। किन्तु संगहि ओ एहि विराट रुप केँ देखिक भयभीत छथि कि ओ अनन्य मैत्रीभावक कारणेँ कृष्णक प्रति अनेक अपराध कैलनि अछि। अतएव अर्जुन कृष्ण सँ प्रार्थना करैत छथि कि ओ अपन नारायण रुप दिखावथि, किएक तऽ ओ कोनो रुप धारणक सकैत छथि। ई विराट रुप भौतिक जगतक ही तुल्य भौतिक एवं नश्वर अछि। किन्तु वैकुण्ठलोकमे नारायणक रुप हुनकर शाश्वत चतुर्भुज रुप रहैत अछि। प्रत्येक वैकुण्ठलोकमे नारायणक स्वरुप चतुर्भुजी अछि, किन्तु एहि चारु हाथमे ओ विभिन्न क्रममे शंख, गदा, कमल तथा चक्रक चिन्ह धारण केने रहैत छथि। विभिन्न हाथ एहि चारु चिन्हक अनुसार नारायण भिन्न–भिन्न नाम सँ पुकारल जाइत छथि। ई सब रुप कृष्ण ही अछि। अतः अर्जुन कृष्णक चतुर्भुज रुपक दर्शन करब चाहैत छथि।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त–
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्त्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥४६॥

किरीटिनम्– मुकुट धारण केने; **गदिनं**– गदाधारी; **चक्रहस्तम्**– चक्र धारण केने; **इच्छामि**– इच्छुक छी; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **द्रष्टुम्**– देखव; **अहम्**– हम; **तथा एव**– ओहि स्थिति मे; **तेन एव**– ओहने; **रुपेण:**– रुप मे; **चतु:भुजेन**– चारि हाथवाला; **सहस्त्रबाहो**– हे हजार भुजावाला; **भव**– भऽ जाउ; **विश्वमूर्ते**– हे विराट रुप।

हे विराट रुप! हे सहस्त्रभुज भगवान्! हम अहाँक मुकुटधारी चतुर्भुज रुपक दर्शन कर चाहैत छी, जाहिमे अहाँ अपन चारु हाथमे शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण केने छी। हम ओहि रुप केँ देखैक इच्छा करैत छी।

तात्पर्य: ब्रह्मसंहितामे कहल गेलै अछि–भगवान् सैकड़ों हजारों रुपमे नित्य विद्यमान रहैत छथि जाहिमे राम, नृसिंह, नारायण हुनकर प्रमुख रुप अछि। रुप तो असंख्य अछि, किन्तु अर्जुन केँ ज्ञात छल कि कृष्ण ही आदि भगवान् छथि, जे ई क्षणिक विश्वरुप धारण कैलनि अछि। आब ओ प्रार्थना करैत छथि कि भगवान् अपन नारायण नित्यरुपक दर्शन देथि।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।।४७।।

श्री भगवान् उवाच– श्री भगवान् कहलथिन; **मया**– हमरा द्वारा; **प्रसन्नेन्**– प्रसन्न; **तव**– अहाँ केँ; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **इदम्**– एहि; **रुपम्**– रुप केँ; **परम्**– दिव्य; **दर्शितम्**– दिखाएल गेल; **आत्मयोगात्**– अपन अन्तरंगा शक्ति सँ; **तेज:मयम्**– तेज सँ पूर्ण; **विश्वम्**– समग्र ब्रह्माण्ड केँ; **अनन्तम्**– असीम; **आद्यम्**– आदि; **यत्**– जे; **मे**– हमर; **त्वत् अन्येन**– अहाँक अतिरिक्त अन्यक द्वारा; **न दृढ़ पूर्वम्**– क्यो पहिने नहि देखलक।

भगवान् कृष्ण कहलथिन–हे अर्जुन! हम प्रसन्न भऽकऽ अपन अन्तरंगाशक्तिक बल पर अहाँ केँ एहि संसारमे अपन एहि परम विश्वरुपक दर्शन करेलहुँ अछि। एकर पूर्व अन्य क्यो एहि असीम तथा तेजोमय आदि रुप केँ कहियो नहि देखने छल।

तात्पर्यः अर्जुन भगवानक विश्वरुप केँ देखए चाहैत छलाह, अतः भगवान् कृष्ण अपन भक्त अर्जुन पर अनुकम्पा करैत हुनका अपन तेजोमय तथा ऐश्वर्यमय विश्वरुपक दर्शन करौलनि। ई रुप सूर्यक भाँति चमकि रहल छल आओर हुनकर मुख निरन्तर परिवर्तिक भऽ रहल छल। कृष्ण ई रुप अर्जुनक इच्छाक शान्त कर लेल ही देखौलनि। ई रुप कृष्णक ओहि अन्तरंगाशक्ति द्वारा प्रकट भेल छल जे मानव कल्पना सँ परे अछि। अर्जुन सँ पूर्व भगवानक एहि विश्वरुपक क्यो नहि दर्शन केने छलाह, किन्तु जखन अर्जुन केँ ई रुप देखैल गेलनि तो स्वर्गलोक तथा अन्य लोकक भक्तजन भी हुनका देख सकल। ओ सब एहि रुप केँ पहिने नहि देखने छलाह, केवल अर्जुनक कारण ओ देखि पाबि रहल छलाह। जखन कृष्ण पाण्डव तरफ सँ सन्धिक प्रस्ताव लक दुर्योधनक पास गेल छलाह, तो ओकरो भी ई रुपक दर्शन कराएल गेल छल। दुर्भाग्यवश दुर्योधन शान्ति प्रस्ताव स्वीकार नहि केने छल, किन्तु कृष्ण ओहि समय अपन किछु रुप ही देखेने छलथि। किन्तु ओ रुप जे अर्जुन केँ देखाओल गेल एहि रुप सँ सर्वथा भिन्न छल। ई स्पष्ट कहल गेलै अछि कि ई विश्वरुप केँ पहिने भी क्यो नहि देखने छल।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥४८॥

न- कहियो नहि; **वेद यज्ञ**- यज्ञ द्वारा; **अध्ययनैः**- या वेदक अध्ययन सँ; **दानैः**- दानक द्वारा; **च**- भी; **क्रियाभिः**- पुण्य कर्म सँ; **तपोभिः**- तपस्याक द्वारा; **उग्रैः**- कठोर; **एवम् रुपः**- एहि रुप मे; **शक्यः**- समर्थ; **अहम्**- हम; **नृलोके**- एहि भौतिक जगत मे; **द्रष्टुम्**- देख जानै मे; **त्वत्**- अहाँक अतिरिक्त; **अन्येन**- अन्यक द्वारा; **कुरु प्रवीर**- कुरु योद्धामे श्रेष्ठ।

हे कुरुश्रेष्ठ! अहाँ सँ पूर्व हमर ई विश्वरुप केँ क्यो नहि देखलक, किएक तऽ हम न तो वेदाध्ययनक द्वारा, न यज्ञ, दान, पुण्य या कठिन तपस्याक द्वारा एहि रुपमे एहि संसारमे देखल जा सकैत छी।

तात्पर्यः एहि प्रसंगमे दिव्यदृष्टि केँ ठीक-ठीक समझि लेबाक चाही।

तो ई दिव्य दृष्टि ककरा पास भऽ सकैत अछि? दिव्यक अर्थ अछि दैवी। जाधरि क्यो देवताक रुपमे दिव्यता प्राप्त नहि कऽ लेताह, ताधरि हुनका दिव्य दृष्टि प्राप्त नहि भऽ सकैत अछि आओर देवता कें छथि? वैदिक शास्त्रमे कथन अछि– "**विष्णुभक्ताः स्मृता देवाः**"। जे भगवान् विष्णुक भक्त छथि, ओ देवता छथि। अतः जिनका दिव्य दृष्टि प्राप्त अछि, ओ भी अर्जुनक ही तरह विश्वरुप देखि सकैत अछि।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यतेपभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य॥४९॥

मा– न हो; **ते**– अहाँ कें; **व्यथा**– पीड़ा, कष्ट; **च**– भी; **विमूढ़भावः**– मोह; **दृष्ट्वा**– देखिक; **रुपम्**– रुप कें; **घोरम्**– भयानक; **ईदृक्**– एहि प्रकार क; **मम**– हमर; **इदम्**– ई; **व्यतेप भीः**– सब प्रकारक भय सँ मुक्त; **प्रीतमनाः**– प्रसन्न चित्त; **पुनः**– फेर; **त्वम्**– अहाँ; **तत्**– ओहि; **एव**– एहि प्रकार; **मे**– हमर; **रुपम्**– रुप कें; **प्रपश्य**– देखू।

अहाँ हमर एहि भयानक रुप कें देखिक अत्यन्त विचलित एवं मोहित भऽ गेलहुँ अछि। आब एकरा समाप्त करैत छी। हे हमर भक्त! अहाँ समस्त चिन्ता सँ मुक्त भऽ जाउ। अहाँ शान्त चित्त सँ आब अपन इच्छित रुप देखि सकैत छी।

तात्पर्यः भगवद्‌गीताक प्रारम्भमे अर्जुन अपन पूज्य पितामह भीष्म, गुरु द्रोणक वधक विषयमे चिन्तित छलाह। कृष्ण अर्जुन कें अपन विश्वरुपक दर्शन ई देखाव लेल करौने छलाह कि ई लोग सब अपन कुकृत्यक कारण पहिने ही मारल जा चुकल छलाह। ई दृश्य अर्जुन कें एहि लेल देखाओल गेल, किएक तऽ भक्त शान्त होइत अछि आओर एहन जघन्य कर्म नहि कऽ सकत। विश्वरुप प्रकट करक अभिप्राय स्पष्ट भऽ चुकल छल। आब अर्जुन कृष्णक चतुर्भुज रुप कें देख चाहैत छलाह। अतः ओ ई रुप देखेलथिन।

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा

स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा॥५०॥

सञ्जयः उवाच– संजय कहलखिन; **इति**– एहि प्रकार; **अर्जुनम्**– अर्जुन केँ; **वासुदेवः**– कृष्ण; **तथा**– ओहि प्रकार सँ; **उक्त्वा**– कहिक; **स्वकम्**– अपन, स्वीय; **रुपम्**– रुप केँ; **दर्शयाम् आस**– देखेलखिन; **भूयः**– पुनः; **आश्वासयाम् आस**– धीरज धरेलखिन; **च**– भी; **भीतम्**– भयभीत; **एनम्**– हुनका; **भूत्वा**– भऽकऽ; **सौम्य वपुः**– सुन्दर रुप; **पुनः**– फेर; **महात्मा**– महापुरुष।

संजय धृतराष्ट्र सँ कहलखिन–अर्जुन सँ एहि प्रकार कहलाक बाद भगवान् कृष्ण अपन असली चतुर्भुज रुप प्रकट केलथिन आओर अन्तमे दू भुजावला अपन रुप प्रदर्शित करिक भयभीत अर्जुन केँ धैर्य बँधेलखिन।

तात्पर्यः जखन कृष्ण, वसुदेव तथा देवकीक पुत्र रुपमे प्रकट भेला तो पहिने ओ चतुर्भुज नारायण रुपमे ही प्रकट भेल छलाह, किन्तु जखन हुनकर माता–पिता प्रार्थना कैलनि तो ओ सामान्य बालकक रुप धारणक लेलथि। ओहि प्रकार कृष्ण केँ ज्ञान छलनि कि अर्जुन हुनकर चतुर्भुज रुप केँ देखबाक इच्छुक नहि छथि, किन्तु चूँकि अर्जुन हुनकर एहि रुपमे देखक लेल प्रार्थना केने छलथिन, अतः कृष्ण पहिले अपन चतुर्भुज रुप देखेलखिन आओर पुनः ओ अपन दू भुजा बला रुपमे प्रकट भऽ गेलाह। अतः भगवान् कृष्ण अपन भक्त अर्जुनक भय दूर कएलनि आओर पुनः हुनका अपन सुन्दर (सौम्य) रुप देखेलथिन।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः॥५१॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलखिन; **दृष्ट्वा**– देखि कऽ; **इदम्**– ई; **मानुषम्**– मानवी; **रुपम्**– रुप केँ; **तव**– अहाँक; **सौम्यम्**– अत्यन्त सुन्दर; **जनार्दन**– हे शत्रु केँ दण्डित करएवाला; **इदानीम्**– आब; **अस्मि**– छी; **संवृत्तः**– स्थिर; **सचेताः**– अपन चेतना मे; **प्रकृतिम्**– अपन प्रकृति केँ;

गतः– पुनः प्राप्त छी।

जखन अर्जुन कृष्ण कैँ हुनकर आदि रुपमे देखलनि तखन कहलखिन हे जनार्दन! अपनेक एहि अतीव सुन्दर मानवी रुप कैँ देखि हम आब स्थिरचित्त छी आओर हम अपन प्राकृत अवस्था प्राप्त कऽ लेलहुँ अछि।

श्रीभगवान् उवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः॥५२॥

श्रीभगवान् उवाच– श्रीभगवान् कहलथिन; **सुन्दुर्दर्शम्**– देखि पावैमे अत्यन्त कठिन; **इदम्**– एहि; **रुपम्**– रुप कैँ; **दृष्टवान् असि**– जेना अहाँ देखलहुँ; **यत्**– जे; **मम**– हमर; **देवाः**– देवता; **अपि**– भी; **अस्य**– एहि; **रुपस्य**– रुपक; **नित्यम्**– शाश्वत; **दर्शन-काङ्क्षिणः**– दर्शनाभिलाषी।

श्रीभगवान् कहलथिन-हे अर्जुन! अहाँ हमर जाहि रुप कैँ एहि समय देखि रहलहुँ अछि, ओकरा देख पायब अत्यन्त दुष्कर अछि। यहाँ तक कि देवता भी एहि अत्यन्त प्रिय रुप कैँ देखैक ताकमे रहैत छथि।

तात्पर्यः श्रीमद्भागवत पुराणमे प्रमाण अछि कि जखन भगवान् अपन माता देवकीक गर्भमे छलाह, तो स्वर्गक सब देवता कृष्णक चमत्कार कैँ देखक लेल अएलाह आओर ओ सब उत्तम स्तुति कैलनि, यद्यपि ओहि समय ओ दृष्टिगोचर नहि छलाह। ओ सब हुनकर दर्शनक प्रतीक्षा करैत रहलाह। कृष्णक द्विभुज रुप कैँ दर्शन तो ब्रह्मा तथा शिव सनक देवता तक कर चाहैत छथि। कृष्णक सर्वाधिक निकट चतुर्भुजी रुप (जे महाविष्णुक नाम सँ विख्यात अछि आओर जे कारणार्णवमे शयन करैत तथा जिनका श्वास तथा प्रश्वासमे अपने ब्रह्माण्ड निगलैत एवं प्रवेश करैत रहैत अछि) भी भगवानक अंश अछि।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥५३॥

न– कहियो नहि; **अहम्**– हम; **वेदैः**– वेदाध्ययन सँ; **तपसा**– कठिन

तपस्या द्वारा; **दानेन**– दान द्वारा; **च**– भी; **इज्यया**– पूजा सँ; **शक्यः**– सम्भव अछि; **एवं विधः**– एहि प्रकार सँ; **द्रष्टुम्**– देखि पायब; **दृष्टवान्**– देखि रहे; **असि**– अहाँ छी; **माम्**– हमरा; **यथा**– जाहि प्रकार।

अहाँ अपन दिव्य नेत्र सँ जाहि रुप केँ दर्शनक रहलहुँ अछि, ओकरा न तो वेदाध्ययन सँ, न कठिन तपस्या सँ, न दान सँ, न पूजा सँ ही जानल जा सकैत अछि। क्यो एहि साधन सबहक द्वारा हमरा हमर रुपमे नहि देखि सकैत अछि।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥५४॥

भक्त्या– भक्ति सँ; **तु**– लेकिन; **अनन्यया**– सकाम कर्म तथा ज्ञान सँ रहित; **शक्यः**– सम्भव; **अहम्**– हम; **एवम् विधः**– एहि प्रकार; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **ज्ञातुम्**– जानव; **दुष्टुम्**– देखब; **च**– तथा; **तत्त्वेन**– वास्तव मे; **प्रवेष्टुम्**– प्रवेश करब; **च**– भी; **परन्तप**– हे बलिष्ठ भुजाबला।

हे अर्जुन! केवल अनन्य भक्ति द्वारा हमरा ओहि रुपमे समझल जा सकैत अछि जाहि रुपमे अहाँक समक्ष खड़ा छी आओर एहि प्रकार हमर साक्षात् दर्शन भी कयल जा सकैत अछि। केवल एहि विधि सँ अहाँ हमर ज्ञानक रहस्य केँ पाबि सकैत छी।

तात्पर्यः जकरामे भगवानक लेल अविचल भक्तिभाव अछि आओर जकर मार्गदर्शन गुरु करैत छथि, जकरामे भी हुनका ओहिना ही अविचल श्रद्धा होइत अछि, ओ भगवानक दर्शन प्रकट रुपमे कऽ सकैत अछि। अतः कृष्ण केँ केवल अनन्य भक्तियोग द्वारा समझल जा सकैत अछि। भक्तिमे रत व्यक्तिक लेल तो दू भुजावाला कृष्णक रुप ही अत्यन्त प्रिय अछि।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्‌भक्तः सङ्‌गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥५५॥

मत् कर्म कृत्– हमर कार्य करमे रत; **मत् परमः**– हमरा परम मानैत; **मत् भक्तः**– हमर भक्तिमे रत; **सङ्गवर्जितः**– सकाम कर्म तथा मनोर्धमक कल्मष सँ मुक्त; **निर्वैरः**– ककरो सँ शत्रुतारहित; **सर्वभूतेषु**– समस्त जीव मे; **यः**– जे; **सः**– ओ; **माम्**– हमरा; **एति**– प्राप्त करैत अछि; **पाण्डव**–

हे पाण्डुक पुत्र।

हे अर्जुन! जे व्यक्ति सकाम कर्म तथा मनोधर्मक कल्मष सँ मुक्त भऽकऽ, हमर शुद्ध भक्तिमे तत्पर रहैत अछि, जे हमरा लेल ही कर्म करैत अछि, जे हमरे ही जीवन लक्ष्य समझैत अछि आओर जे प्रत्येक जीव सँ मैत्रीभाव राखैत अछि, ओ निश्चय ही हमरा प्राप्त करैत अछि।

तात्पर्यः ई श्लोक भगवद्गीताक सार मानल जाइत अछि। भगवद्गीता एक एहन ग्रंथ अछि, जे ओहि बद्धजीवक ओर लक्षित अछि, जे एहि भौतिक संसारमे प्रकृति पर प्रभुत्व जताबमे लागल अछि आओर वास्तविक आध्यात्मिक जीवनक बारेमे नहि जानैत अछि। भगवद्गीताक उद्देश्य ई देखेबाक अछि मनुष्य कोन प्रकारेँ अपन आध्यात्मिक अस्तित्व केँ तथा भगवान् संग अपन सम्बन्ध केँ समझि सकैत अछि तथा ओकरा ई शिक्षा देबाक अछि कि ओ भगदव्धाम केँ कोना पहुँच सकैत अछि। ई श्लोक ओहि विधि केँ स्पष्ट रुप से बतबैत अछि, जाहि सँ मनुष्य अपन आध्यात्मिक कार्य अर्थात् भक्तिमे सफलता प्राप्तक सकैत अछि। अतः एहन कोनो कार्य नहि करी जे भगवान् कृष्ण सँ सम्बन्धित नहि हो। ई कृष्णकर्म कहाबैत अछि।

सारांशः सारांश ई अछि कि कृष्ण अपन क्षणभंगूर विश्वरुपक संग-संग कालरुप केँ जे सब किछु भक्षण करएबला अछि आओर एतैधरि कि चतुर्भुज विष्णुरुप केँ भी देखेलनि अछि। एहि तरह कृष्ण एहि समस्त स्वरुपक उद्गम छथि। विष्णु तो अनेकों छथि लेकिन भक्तक लेल कृष्णक कोनो अन्य रुप ओतेक महत्त्वपूर्ण नहि अछि, जतेक कि मूल दू भुजी श्याम सुन्दर रुप। यदि क्यो अनन्य भक्ति कर चाहैत अछि तो हुनका समस्त प्रकारक भौतिक कल्मष सँ मुक्त होमक चाही। हुनका एहन आदमी सँ दूर रहबाक चाही जे सकाम कर्म तथा मनोधर्ममे आसक्ति अछि। एहन अवांछित संगति तथा भौतिक इच्छाक कल्मष सँ मुक्त भेला पर ही कृष्ण ज्ञानक अनुशीलनक सकैत छथि, जकरा शुद्ध भक्ति कहल जाइत अछि। एहि ग्यारहम अध्यायक तात्पर्य अछि कि कृष्णक रुप ही सर्वोपरि अछि एवं परम सार अछि। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक ग्यारहम अध्याय **''विराट रुप''** पूर्ण भेल। ■

अध्याय-बारह



भक्तियोग

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥१॥

अर्जुनः उवाच– अर्जुन कहलखिन; **एवम्**– एहि प्रकार; **सतत**– निरन्तर; **युक्ताः**– तत्पर; **ये**– जे; **भक्ताः**– भक्तगण; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **पर्युपासते**– ठीक सँ पूजैत अछि; **ये**– जे; **च**– भी; **अपि**– पुनः; **अक्षरम्**– इन्द्रिय से परे; **अव्यक्तम्**– अप्रकट केँ; **तेषाम्**– ओहिमे सँ; **के**– कोन; **योगवित् तमाः**– योगविद्यामे अत्यन्त निपुण।

अर्जुन पूछलखिन– जे अहाँक सेवामें सदैव तत्पर रहैत अछि या जे अव्यक्त निर्विशेष ब्रह्मक पूजा करैत अछि, एहि दूनूमे सँ ककरा अधिक (सिद्ध) मानल जाय।

तात्पर्यः एखन तक कृष्ण सकार, निराकार एवं सर्वव्यापकत्व केँ समझा चुकला अछि आओर सब प्रकारक भक्त एवं योगीक भी वर्णन करि चुकलाह अछि। सामान्यतः अध्यात्मिकवादी केँ दू श्रेणीमे विभाजित कैल जा सकैत अछि। जे लोग भक्तिक द्वारा परमेश्वरक प्रत्यक्ष सेवा करैत अछि, ओ सगुणवादी कहाबैत अछि। जे लोग निर्विशेष ब्रह्मक ध्यान करैत अछि ओ निर्विशेषवादी कहाबैत अछि। एतय अर्जुन पूछैत छथि

कि एहि दूनूमे सँ कोन श्रेष्ठ अछि। यद्यपि परम सत्यक साक्षात्कारक अनेक साधन अछि, किन्तु एहि अध्यायमे कृष्ण भक्तियोग केँ सबमे श्रेष्ठ बतबैत छथि। ई सर्वाधिक प्रत्यक्ष अछि आओर ईश्वरक सान्नध्य प्राप्त करक लेल सब सँ सुगम साधन अछि। अतः मनुष्य केँ कृष्णक सुगुण रुप केँ प्रति अनुरक्त होमक चाही, किएक तऽ ओहे परम आत्म साक्षात्कार अछि।

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥२॥

श्रीभगवान् उवाच– श्री भगवान् कहलथिन; **मयि**– हमरा मे; **आवेश्य**– स्थिर करिक; **मनः**– मन केँ; **ये**– जे; **माम्**– हमरा; **नित्य**– सदा; **युक्ताः**– लागल; **उपासते**– पूजा करैत अछि; **श्रद्धया**– श्रद्धापूर्वक; **परया**– दिव्य; **उपेताः**– प्रदत्त; **ते**– ओ; **मे**– हमरा द्वारा; **युक्त तमाः**– योगमे परम सिद्ध; **मताः**– मानल जाइत अछि।

श्री भगवान् कहलथिन–जे लोग अपना मन केँ हमर साकार रुपमे एकाग्र करैत अछि, आओर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक हमर पूजा करमे सदैव लागल रहैत अछि, ओ हमरा द्वारा परम सिद्ध मानल जाइत अछि।

तात्पर्यः अर्जुनक प्रश्नक उत्तर दैत कृष्ण स्पष्ट कहैत छथि कि जे व्यक्ति हुनकर साकार रुपमे अपन मन केँ एकाग्र करैत अछि, आओर जे अत्यन्त श्रद्धा तथा निष्ठापूर्वक हुनका पूजैत अछि, हुनका योगमे परम सिद्ध मानबाक चाही। जे एहि प्रकार कृष्णभावनाभावित होइत अछि, हुनका लेल कोनो भी भौतिक कार्यकलाप नहि रहि जाइत अछि, किएक तऽ हर कार्य कृष्णक लेल कैल जाइत अछि। शुद्ध भक्त हमेशा कार्यरत रहैत छथि–कौखन कीर्तन करैत छथि तो कौखन श्रवण करैत छथि या कृष्ण विषयक चर्चा करैत छथि। एहन कार्य पूर्ण समाधि कहाबैत अछि।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥३॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥४॥

ये– जे; **तु**– लेकिन; **अक्षरम्**– इन्द्रिय अनुभूति सँ परे; **अनिर्देश्यम्**– अनिश्चित; **अव्यक्तम्**– अप्रकट; **पयुपासते**– पूजा करमे पूर्णतया संलग्न; **सर्वत्रगम्**– सर्वव्यापी; **अचिन्त्यम्**– अकल्पनीय; **च**– भी; **कूट-स्थम्**– अपरिवर्तित; **अचलम्**– स्थिर; **ध्रुवम्**– निश्चित; **सन्नियम्य**– वशमे करिक; **इन्द्रियग्रामम्**– समस्त इन्द्रिय केँ; **सर्वत्र**– सब स्थान मे; **सम बुद्धयः**– समदर्शी; **ते**– ओ; **प्राप्नुवन्ति**– प्राप्त करैत अछि; **माम्**– हमरा; **एव**– निश्चय ही; **सर्व भूत हिते**– समस्त जीवक कल्याणक लेल; **रताः**– संलग्न।

लेकिन जे लोग अपन इन्द्रिय केँ वशमे करिक तथा सबहक प्रति समभाव राखिक परम सत्यक निराकार कल्पनाक अन्तर्गत ओहि अव्यक्तक पूर्ण रुपेन पूजा करैत अछि, जे इन्द्रियक अनुभूति सँ परे अछि, सर्वव्यापी अछि, अकल्पनीय अछि, अपरिर्वतनीय अछि, अचल तथा ध्रुव अछि, ओ समस्त लोगक कल्याणमे संलग्न रहिक अन्ततः हमरा प्राप्त करैत अछि।

तात्पर्यः आत्माक भीतर परमात्माक दर्शन कर लेल मनुष्य केँ देखब, सुनब, स्वाद लेब, कार्य करब आदि ऐन्द्रिय कार्य केँ बन्द करै पड़ैत अछि। तखने ओ ई जानि पाबैत अछि कि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान छथि। एहन अनुभूति भेला पर ओ कोनो जीव सँ ईर्ष्या नहि करता हुनका मनुष्य तथा पशुमे कोनो अन्तर नहि दिखाइत अछि, किएक तऽ ओ केवल आत्माक दर्शन करैत छथि, बाह्य आवरणक नहि। लेकिन सामान्य व्यक्तिक लेल निराकार अनुभूतिक ई विधि अत्यन्त कठिन सिद्ध होइत अछि। भगवानक शरणमे जेबाक पूर्व पर्याप्त तपस्या कर पड़ैत अछि। अनेक जन्मक बाद बुद्धिमान व्यक्ति वासुदेव केँ ही सब किछु जानैत हुनका शरण आबैत अछि।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥५॥

क्लेश– कष्ट; **अधिकतरः**– अत्यधिक; **तेषाम्**– ओहि सबकेँ; **अव्यक्त**– अव्यक्तक प्रति; **आसक्त**– अनुरक्त; **चेतसाम्**– मनबलाक; **अव्यक्ता**–

अव्यक्तक ओर; **हि**– निश्चय ही; **गतिः**– प्रगति; **दुखम्**– दुखक संग; **देह–वृद्धिः**– देहधारीक द्वारा; **अवाप्यते**– प्राप्त कैल जाइत अछि।

जाहि व्यक्ति सबहक मन परमेश्वरक अव्यक्त, निराकार स्वरूपक प्रति आसक्त अछि, हुनका लेल प्रगति कऽ पाबि अत्यन्त कष्टप्रद अछि। देहधारी सबहक लेल ओहि क्षेत्रमे प्रगति करि पायब सदैव दुष्कर होइत अछि।

तात्पर्यः अध्यात्मवादीक समूह, जे परमेश्वरक अचिन्त्य, अव्यक्त, निराकार स्वरुपक पथक अनुशरण करैत अछि, ज्ञान योगी कहाबैव छथि, आओर जे व्यक्ति भगवानक भक्तिमे रत रहिक पूर्ण कृष्णभावनामृतमे रहैत अछि, ओ भक्त योगी कहाबैत अछि एतय ज्ञानयोग तथा भक्तियोगमे निश्चित अन्तर बताएल गेल अछि। ज्ञानयोगक पथ यद्यपि मनुष्य केँ ओही लक्ष्य तक पहुँचाबैत अछि, किन्तु अछि अत्यन्त कष्टकारक, जखन कि भक्तियोग भगवानक प्रत्यक्ष सेवा भेलाक कारण सुगम अछि, आओर देहधारीक लेल स्वभाविक भी अछि। जीव अनादि काल सँ देहधारी अछि। सैद्धान्तिक रुप सँ ओकरा लेल ई समझि पाएब अत्यन्त कठिन अछि कि ओ शरीर नहि अछि। अतएव भक्ति योगी कृष्णक विग्रह केँ पूज्य मानैत अछि, किएक तऽ ओकरा मनमे कोनो न कोनो शारीरिक बोध रहैत अछि, जकरा एहि रुपमे प्रयुक्त कैल जा सकैत अछि। भगवान् सर्वशक्तिमान छथि, अतएव ओ अर्चा–विग्रह रुपी अपन अवतार सँ भक्तक सेवा स्वीकारक सकैत छथि, जाहि सँ बद्धजीवन वला मनुष्य केँ सुविधा हो। एहि प्रकार भक्त केँ भगवानक पास सीधे आओर तुरन्त ही पहुँचैमे कोनो कठनाई नहि अछि, लेकिन जे लोग आध्यात्मिक साक्षात्कारक लेल निराकार विधिक अनुशरण करैत अछि, हुनका लेल मार्ग कठिन अछि।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥६॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥७॥

ये– जे; **तु**– लेकिन; **सर्वाणि**– समस्त; **कर्माणि**– कर्म केँ; **मयि**– हमरा मे; **संन्यस्य**– त्यागक; **मत्पराः**– हमरामे आसक्त; **अनन्येन**– अनन्य;

एव– निश्चय ही; **योगेन**– एहन भक्तियोगक अभ्यास सँ; **माम्**– हमरा; **ध्यायन्तः**– ध्यान करैत; **उपासते**– पूजा करैत; **तेषाम्**– हुनकर; **अहं**– हम; **समुद्धर्ता**– उद्धारक; **मृत्यु**– मृत्युक; **संसार**– संसार रुपी; **सागरात**– समुद्र सँ; **भवामि**– होइत अछि; **न**– नहि; **चिरात्**– दीर्घकालक बाद; **पार्थ**– हे पृथा पुत्र; **मयि**– हमरा पर; **आवेशित**– स्थिर; **चेतसाम्**– मनवाला कें।

जे अपन सब कार्य कें हमरामे अर्पित करिक तथा अविचलित भाव सँ हमर भक्ति करैत हमर पूजा करैत अछि, आओर अपन चित्त कें हमरा पर स्थिरक निरन्तर हमर ध्यान करैत अछि, हुनका लेल हे पार्थ! हम जन्म मृत्युक सागर सँ शीघ्र उद्धार करै वला छी।

तात्पर्यः वराह पुराणमे स्पष्ट कैल गेल अछि कि वैकुण्ठलोकमे आत्मा कें ल जेवाक लेल भक्त कें अष्टांगयोग साधनक आवश्यकता नहि अछि। एकर भार भगवान् स्वयं अपना ऊपर लैत छथि। ओ स्पष्ट कैलनि अछि कि ओ स्वयं ही उद्धारक बनैत छथि। अतएव ओ शुद्ध भक्तक तुरन्त ही भवसागर सँ उद्धारक देताह। मनुष्य कें केवल कृष्णभावनामृतक सुगम विधिक अभ्यास करै पड़ैत अछि आओर अपने आप कें अनन्य भक्तिमे प्रवृत्त कर पड़ैत अछि। अतः कोनो भी बुद्धिमान व्यक्ति कें चाही कि ओ अन्य समस्त मार्गक अपेक्षा भक्तियोग कें चुने।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥८॥

मयि– हमरा मे; **एव**– निश्चय ही; **मनः**– मन कें; **आधत्स्व**– स्थिर करु; **बुद्धि**– बुद्धि कें; **निवेशय**– लगाउ; **निवसिष्यसि**– अहाँ निवास करब; **मयि**– हमरा मे; **एव**– निश्चय ही; **न**– कहियो नहि; **अतः उर्ध्वम्**– तत्पश्चात्; **संशयः**– सन्देह।

हम भगवानमे अपन चित्त कें स्थिर करु आओर अपन सब बुद्धि हमरामे लगाउ। एहि प्रकार अहाँ निःसन्देह हमरामे सदैव वास करब।

तात्पर्यः जे भगवान् कृष्णक भक्तिमे रत रहैत अछि, हुनका परमेश्वरक संग प्रत्यक्ष सम्बन्ध होइत अछि। अतएव प्रारम्भ सँ ही हुनकर स्थिति दिव्य होइत अछि। भक्त कहियो भौतिक धरातल पर नहि रहैत छथि,

ओ सदैव कृष्णमे वास करैत छथि।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥९॥

अथ– अतः; **चित्तम्**– मन केँ; **समाधातुम्**– स्थिर करए मे; **न**– नहि; **शक्नोषि**– समर्थ नहि अछि; **मयि**– हमरा पर; **स्थिरम्**– स्थिर भाव सँ; **अभ्यास योगेन**– भक्तिक अभ्यास सँ; **ततः**– तखन; **माम्**– हमरा; **इच्छ**– इच्छा करु; **आप्तुम्**– प्राप्त करक लेल; **धनम्-जय**– हे सम्पति के विजेता अर्जुन।

हे अर्जुन, हे धनञ्जय! यदि अपन चित्त केँ अविचल भाव सँ हमरा पर स्थिर नहि कऽ सकैत छी, तो अहाँ भक्तियोगक विधि-विधानक पालन करु। एहि प्रकार अहाँ हमरा प्राप्त करबाक चाह उत्पन्न करु।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे भक्तियोगक दू पृथक् विधि बताएल गेल अछि। पहिल ओहि व्यक्ति पर लागू होइत अछि, जे दिव्य प्रेम द्वारा भगवान् कृष्णक प्रति वास्तविक आसक्ति उत्पन्नक लेलक अछि। दोसर विधि ओकरा लेल अछि जे एहि प्रकार सँ भगवान् कृष्णक प्रति आसक्ति नहि उत्पन्न केलक अछि। एहि द्वितीय श्रेणीक लेल नाना प्रकारक विधि-विधान अछि, जकर पालन करिक मनुष्य अन्ततः कृष्ण आसक्ति अवस्था केँ प्राप्त भऽ सकैत अछि।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥१०॥

अभ्यासे– अभ्यास मे; **अपि**– भी; **असमर्थः**– असमर्थ; **असि**– हो; **मत् कर्म**– हमर कर्मक प्रति; **परमः**– परायण; **भव**– बनू; **मत्-अर्थम्**– हमरा लेल; **अपि**– भी; **कर्माणि**– कर्म; **कुर्बन्**– करैत; **सिद्धिम्**– सिद्ध केँ; **अवाप्स्यसि**– प्राप्त करब।

यदि अहाँ भक्तियोगक विधि-विधानक भी अभ्यास नहि कऽ सकैत छी, तो हमरा लेल कर्म करक प्रयत्न करु, किएक तऽ हमरा लेल कर्म केला सँ अहाँ पूर्ण अवस्था (सिद्धि) केँ प्राप्त करब।

तात्पर्यः यदि क्यो गुरुक निर्देशानुसार भक्तियोगक विधि-विधानक

अभ्यास नहि भी कऽ पाबैत, तो भी परमेश्वरक लेल कर्म करिक ओकरा पूर्णावस्था प्रदान कराएल जा सकैत अछि। ई कर्म कोन प्रकारेँ कैल जाए। एकर व्याख्या ग्यारहम अध्यायक पचपनम श्लोक (अध्याय-११/५५)मे पहिने ही भऽ चुकल अछि।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥११॥

अथ- यद्यपि; **एतत्**- ई (यह); **अपि**- भी; **अशक्तः**- असमर्थ; **असि**- हो; **कर्तुम्**- कर मे; **मत्**- हमरा प्रति; **योगम्**- भक्ति मे; **आश्रितः**- निर्भर; **सर्वकर्म**- समस्त कर्मक; **फल**- फलक; **त्यागम्**- त्याग; **ततः**- तखन; **कुरु**- करु; **यत-आत्मवान्**- आत्मस्थित।

किन्तु यदि अहाँ हमर एहि भावनामृतमे कर्म करमे असमर्थ छी तो अहाँ अपन कर्मक समस्त फल केँ त्यागक कर्म करक तथा आत्म-स्थित हेवाक प्रयत्न करु।

तात्पर्यः भऽ सकैत अछि कि कोनो व्यक्ति सामाजिक, पारिवारिक या धार्मिक कारण सँ या कोना अन्य अवरोधक कारणेँ कृष्णभावनामृतक कार्यकलापक प्रति सहानुभूति तक दिखा पाबैमे अक्षम रहे। यदि ओ अपना केँ प्रत्यक्ष रुप सँ एहि कार्यकलापक प्रति जोड़ि लिअ तो भऽ सकैत अछि कि पारिवारिक सदस्य विरोध करे, या अन्य कठनाई उठि खड़ा हो। जाहि व्यक्तिक संग एहन समस्या लागल हो, हुनका ई सलाह देल जाइत अछि कि ओ अपन कार्यकलापक संचित फल केँ कोनो शुभ कार्यमे लगा देथि। एहन विधि वैदिक नियममे वर्णित अछि। एहन अनेक यज्ञ तथा पुण्य कार्य अथवा विशेष कार्यक वर्णन भेल अछि, जाहिमे अपन पहिलुका कार्यक फल केँ प्रयुक्त कैल जा सकैत अछि। एहि सँ मनुष्य धीरे-धीरे ज्ञानक स्तर तक उठैत अछि।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥१२॥

श्रेयः- श्रेष्ठः; **हि**- निश्चय ही; **ज्ञानम्**- ज्ञान; **अभ्यासात्**- अभ्यास सँ; **ज्ञानात्**- ज्ञान सँ; **ध्यानम्**- ध्यान; **विशिष्यते**- विशिष्ट समझल जाइत अछि; **ध्यानात्**- ध्यान सँ; **कर्म फल त्यागः**- समस्त कर्मक फलक

परित्याग; **त्यागात्**– एना त्याग सँ; **शान्तिः**– शान्ति; **अनन्तरम्**– तत्पश्चात्।

यदि अहाँ ई अभ्यास नहि कऽ सकैत छी, तो ज्ञानक अनुशीलनमे लागि जाउ। लेकिन ज्ञान सँ श्रेष्ठ ध्यान अछि आओर ध्यान सँ भी श्रेष्ठ अछि कर्म फलक परित्याग किएक तऽ एहन त्याग सँ मनुष्य केँ मनःशान्ति प्राप्त भऽ सकैत अछि।

तात्पर्यः सर्वोच्च लक्ष्य भगवान् तक पहुँचक दू विधि अछि। एक विधि अछि क्रमिक विकासक तरफ आओर दोसर प्रत्यक्ष विधि। कृष्णभावनामृतमे भक्ति प्रत्यक्ष विधि अछि। अन्य विधिमे कर्मक फलक त्याग करए पड़ैत अछि, तखने मनुष्य ज्ञानक अवस्था केँ प्राप्त होइत अछि। ओकरा बाद ध्यानक अवस्था तथा पुनः परमात्माक बोधक अवस्था आओर अन्तमे भगवानक अवस्था आवि जाइत अछि। मनुष्य चाहे तो एक एक पग करिक आगू बढ़बक विधि अपना सकैत अछि या प्रत्यक्ष विधि ग्रहणक सकैत अछि। लेकिन प्रत्यक्ष विधि हर एकक लेल सम्भव नहि अछि। अतः अप्रत्यक्ष विधि भी बढ़ियाँ अछि। ई समझि लेबाक चाही कि अर्जुनक लेल अप्रत्यक्ष विधि नहि सुझाएल गेल, किएक तऽ ओ पहिने सँ परमेश्वरक प्रति प्रेमाशक्तिक अवस्था केँ प्राप्त छलाह। ई या तो ओहि व्यक्ति सबहक लेल अछि, जे एहि अवस्था केँ प्राप्त नहि अछि। जतय धरि तक भगवद्‌गीताक सम्बन्ध अछि, ओहिमे तो प्रत्यक्ष विधि पर ही बल अछि।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥१३॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्‌भक्तः स मे प्रियः॥१४॥

अद्वेष्टा– इर्ष्याविहीन; **सर्वभूतानाम्**– समस्त जीवक प्रति; **मैत्रः**– मैत्रीभाववाला; **करुणः**– दयालु; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी; **निर्ममः**– स्वामित्वक भावना सँ रहित; **निरहंकारः**– मिथ्या अहंकार सँ रहित; **सम**– समभाव; **दुःख**– दुख; **सुखः**– सुख मे; **क्षमी**– क्षमावान; **सन्तुष्टः**– प्रसन्न, तुष्ट; **सततम्**– निरन्तर; **योगी**– भक्तिमे निरत; **यत् आत्मा**– आत्मसंजमी; **दृढ़ निश्चयः**– संकल्प सहित; **मयि**– हमरा मे; **अर्पित**–

संलग्न; **मनः**– मन केँ; **बुद्धिः**– बुद्धि केँ; **यः**– जे; **मत्-भक्तः**– हमर भक्त; **सः**– ओ; **मे**– हमर; **प्रियः**– प्यारा।

जे ककरो सँ द्वेष नहि करैत, लेकिन सब जीवक दयालु मित्र अछि, जे अपना केँ स्वामी नहि मानैत आओर मिथ्या अहंकार सँ मुक्त अछि, जे सुख-दुखमे समभाव रहैत अछि, सहिष्णु अछि, सदैव आत्मतुष्ट रहैत अछि, आत्मसंयमी अछि तथा जे निश्चयक संग हमरामे मन तथा बुद्धि केँ स्थिर करिक भक्तिमे लागल रहैत अछि, एहन भक्त हमरा अत्यन्त प्रिय अछि।

तात्पर्यः शुद्ध भक्ति पर पुनः आबि कऽ भगवान् एहि दूनू श्लोकमे शुद्ध भक्तक दिव्य गुणक वर्णनक रहला अछि। शुद्ध भक्त कोनो परिस्थितिमे विचलित नहि होइत छथि, न ही ओ ककरो प्रति ईष्यालु होइत छथि। न ओ अपन शत्रुक शत्रु बनैत छथि। ओ तो सोचैत छथि ई व्यक्ति हमर विगत दुष्कर्मक कारण हमर शत्रु बनल अछि, अतएव विरोध करबाक अपेक्षा कष्ट सहब बढ़ियाँ अछि। श्रीमद्‌भागवतमे कहल गेलै अछि– जखन भी कोनो भक्त मुसीबतमे पड़ैत अछि, तो ओ सोचैत छथि कि भगवानक हमरा ऊपर कृपा ही भेल अछि। हमरा अपन विगत दुष्कर्मक अनुसार एहि सँ कहीं अधिक कष्ट भोग चाही छल। ई तो भगवत्कृपा अछि कि हमरा मिलएवाला पूरा दण्ड नहि मिलि रहल अछि। भगवत्कृपा सँ थोड़बेक दण्ड भेटल अछि। अतएव अनेक कष्ट पूर्ण परिस्थितिमे भी ओ सदैव शान्त तथा धीर बनल रहैत छथि। भक्त सदैव प्रत्येक प्राणी पर, एतय तक कि अपन शत्रु पर भी, दयालु होइत छथि। भक्त शारीरिक कष्टक प्रधानता नहि प्रदान करैत छथि, किएक तऽ ओ बढ़ियाँ तरह जानैत छथि कि ओ भौतिक शरीर नहि छथि। ओ अपना केँ शरीर नहि मानैत छथि, अतएव ओ मिथ्या अहंकारक बोध सँ मुक्त रहैत छथि आओर सुख तथा दुखमे समभाव रहैत छथि। ओ सहिष्णु होइत छथि आओर भगवत्कृपा सँ जे किछु प्राप्त होइत अछि, ओही सँ संतुष्ट रहैत छथि। ओ गुरुक आदेश पर अटल रहैत छथि आओर चूँकि हुनकर इन्द्रिय वशमे रहैत अछि, अतः ओ दृढ़निश्चय होइत छथि। ओ झूठ तर्क सँ विचलित नहि होइत छथि, किएक तऽ हुनका भक्तिक दृढ़ संकल्प सँ हटा नहि सकैत अछि। अतएव एहि समस्त गुणक फलस्वरुप

ओ अपन मन तथा बुद्धि केँ पूर्णतया परमेश्वर पर स्थिर करएमे समर्थ होइत छथि। भक्तिक एहन आदर्श अत्यन्त दुर्लभ अछि। भगवान् कहैत छथि कि एहन भक्त हमरा अति प्रिय अछि।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥१५॥

यस्मात्- जाहि सँ; **न**- कहियो नहि; **उद्विजते**- उद्विग्न होइत अछि; **लोकः**- लोग; **लोकात्**- लोग सँ; **उद्विजते**- विचलित होइत अछि; **च**- भी; **यः**- जे; **हर्ष**- सुख; **अमर्ष**- दुख; **भय**- डर; **उद्वेगैः**- चिन्ता सँ; **मुक्तः**- मुक्त; **यः**- जे; **सः**- ओ; **मे**- हमर; **प्रियः**- प्रिय।

जाहि सँ ककरो कष्ट नहि पहुँचैत तथा जे अन्य ककरो द्वारा विचलित नहि कैल जा सकैत अछि, जे सुख-दुखमे, भय तथा चिन्तामे समभाव रहैत अछि, ओ हमरा अत्यन्त प्रिय अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे भक्तक किछु अन्य गुणक वर्णन भेल अछि। एहन भक्त द्वारा कोनो व्यक्ति कष्ट, चिन्ता, भय या अन्तोष केँ प्राप्त नहि होइत अछि। चूँकि भक्त सब पर दयालु होइत छथि, अतएव ओ एहन कार्य नहि करता, जाहि सँ ककरो चिन्ता हो। संगहि यदि क्यो अन्य लोग भक्त केँ चिन्तामे डाल चाहैत अछि, तो ओ विचलित नहि होइत छथि। ओ भगवत्कृपा ही अछि कि ओ कोनो बाह्य उपद्रव सँ क्षुब्ध नहि होइत छथि। एहन भक्त, एहि समस्त उपद्रव सँ परे होइत छथि, कृष्ण केँ अत्यन्त प्रिय होइत छथि।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥१६॥

अनपेक्षः- इच्छा रहित; **शुचिः**- शुद्ध; **दक्षः**- पटु; **उदासीन**- चिन्ता सँ मुक्त; **गतव्यथः**- सब कष्ट सँ मुक्त; **सर्वआरम्भ**- समस्त प्रयत्नक; **परित्यागी**- परित्याग करएवाला; **यः**- जे; **मद्भक्तः**- हमर भक्त; **सः**- ओ; **मे**- हमर; **प्रियः**- अतिशय प्रिय।

हमर एहन भक्त जे सामान्य कार्य कलाप पर आश्रित नहि अछि, जे शुद्ध अछि, दक्ष अछि, चिन्ता रहित अछि, समस्त कष्ट सँ रहित अछि आओर कोनो फलक लेल प्रयत्नशील नहि रहैत, हमरा

अतिशय प्रिय अछि।

तात्पर्यः शुद्ध भक्त कौखन भी एहन वस्तुक लेल प्रयास नहि करैत छथि, जे भक्तिक नियमक प्रतिकूल हो। भक्त केँ धन देल जा सकैत अछि, किन्तु हुनका धनक अर्जित कर लेल संघर्ष नहि करक चाही। भगवत्कृपा सँ यदि हुनका धनक प्राप्ति होइत अछि, तो ओ उद्विग्न नहि होइत अछि। ओ जीवनक समस्त कार्यकलापक सार केँ जानैत छथि, आओर प्रमाणिक शास्त्रमे दृढ़ विश्वास राखैत छथि, अतः भक्त सदैव दक्ष होइत छथि। भक्त कौखन कोनो दलमे भाग नहि लैत छथि अतएव ओ चिन्तामुक्त रहैत छथि। ओ समस्त उपाधि सँ मुक्त भेलाक कारण कौखन व्यथित नहि होइत छथि। ओ जानैत छथि कि हुनका शरीर एक उपाधि अछि, अतएव शारीरिक कष्ट एला पर ओ मुक्त रहैत छथि।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥१७॥

यः– जे; **न**– कहियो नहि; **हृष्यति**– हर्षित होइत अछि; **द्वेष्टि**– शोक करैत छथि; **शोचति**– पचतावा करैत छथि; **काङ्क्षति**– इच्छा करैत छथि; **शुभाशुभ**– शुभ तथा अशुभक; **परित्यागी**– त्याग करएवाला; **भक्तिमान**– भक्त; **यः**– जे; **सः**– ओ; **मे**– हमर; **प्रियः**– प्रिय।

जे न कौखन हर्षित होइत छथि, न शोक करैत छथि, न तो पछतावा करैत छथि, न ही इच्छा करैत छथि तथा शुभ तथा अशुभ दूनू प्रकारक वस्तुक परित्यागक दैत छथि, एहन भक्त हमरा अत्यन्त प्रिय अछि।

तात्पर्यः शुद्ध भक्त भौतिक लाभ सँ न तो हर्षित होइत छथि आओर न हानि सँ दुखी होइत छथि। ओ पुत्र या शिष्यक प्राप्तिक लेल न तो उत्सुक रहैत छथि, न ही ओ नहि मिलला पर दुःखी होइत छथि। ओ अपन कोनो प्रिय वस्तु केँ खो गेला पर ओकरा लेल पछतावा करैत छथि। एहि प्रकार यदि हुनकर अभिप्सितक प्राप्ति नहि भऽ पाबैत तो ओ दुखी नहि होइत छथि। ओ परमेश्वरक प्रसन्नताक लेल पैघ सँ पैघ विपत्ति सह लेल प्रस्तुत रहैत छथि। भक्तिक पालनमे हुनका लेल किछु भी बाधक नहि बनैत। एहन भक्त भगवान् कृष्ण केँ अतिशय प्रिय होइत अछि।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥१८॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥१९॥

समः– समान; **शत्रौ**– शत्रु मे; **च**– तथा; **मित्रे**– मित्र मे; **च**– भी; **तथा**– ओहि प्रकार; **मान**– सम्मान; **अपमानयोः**– अपमान मे; **शीत**– जाड़; **उष्ण**– गर्मी; **सुख**– सुख; **दुःखेषु**– दुःख मे; **समः**– समभाव; **सङ्गविवर्जितः**– समस्त संगति सँ मुक्त; **तुल्य**– समान; **निन्दा**– अपयश; **स्तुतिः**– यश मे; **मौनी**– मौन; **संतुष्टः**– संतुष्ट; **येन केनचित्**– जेना कोनो तरहेँ; **अनिकेतः**– बिना घर–बार केँ; **स्थिरः**– दृढ़; **मतिः**– संकल्प; **भक्तिमान्**– भक्तिमे रत; **मे**– हमर; **प्रियः**– प्रिय; **नरः**– मनुष्य।

जे मित्र तथा शत्रुक लेल समान अछि, जे मान तथा अपमान, शीत तथा गर्मी, सुख तथा दुख, यश तथा अपयशमे समभाव राखैत अछि, जे दूषित संगति सँ सदैव मुक्त रहैत अछि, जे सदैव मौन आओर कोनो भी वस्तु सँ सन्तुष्ट रहैत अछि, जे कोनो प्रकारक घरबारक परवाह नहि करैत अछि, जे ज्ञानमे दृढ़ अछि आओर जे भक्तिमे संलग्न अछि–एहन पुरुष हमरा अत्यन्त प्रिय अछि।

तात्पर्यः भक्त सदैव कुसंगति सँ दूर रहैत छथि। मानव समाजक ई स्वभाव अछि कि कौखन ककरो प्रशंसा कैल जाइत अछि तो कौखन ओकर निन्दा कैल जाइत अछि। लेकिन भक्त कृत्रिम यश तथा अपयश, दुख या सुख सँ ऊपर उठल रहैत छथि। ओ अत्यन्त धैर्यवान होइत छथि। ओ कृष्ण कथाक अतिरिक्त किछु भी नहि बाजैत छथि, अतः ओ मौनी कहल जाइत छथि। मौनी मतलब ई अछि कि ओ अनर्गल आलाप नहि करे। भक्त समस्त परिस्थितिमे सुखी रहैत छथि। कौखन हुनका स्वादिष्ट भोजन भेटैत अछि तो कौखन नहि, किन्तु ओ संतुष्ट रहैत छथि। ओ आवासक सुविधाक चिन्ता नहि करैत छथि। ओ कौखन पेड़क नीचा रहि सकैत छथि तो कौखन अत्यन्त उच्च प्रासादमे, परन्तु ओ एहिमे सँ ककरो प्रति आसक्त नहि रहैत छथि। ओ स्थिर कहलाबैत छथि, किएक तऽ ओ अपन संकल्प तथा ज्ञानमे दृढ़ रहैत छथि। सद्गुणक बिना क्यो

शुद्ध भक्त नहि बनि सकैत अछि। जे भक्त बन चाहैत छथि हुनका सद्गुणक विकास करक चाही। भक्त ज्ञानमे दृढ़ आओर भक्तिमे संलग्न होइत छथि। एहन भक्त भगवान् कृष्ण केँ अतिशय प्रिय होइत छथि। कृष्णभावनामृत (भक्ति)मे संलग्न रहबाक कारण हुनकामे गुण स्वतः ही विकसित भऽ जाइत अछि।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥२०॥

ये- जे; **तु**- लेकिन; **धर्म**- धर्म रुपी; **अमृतम्**- अमृत केँ; **इदम्**- ई; **यथा**- जाहि तरह सँ, जेना; **उक्तम्**- कहल गेलै अछि; **पर्युपासते**- पूर्णतया तत्पर रहैत अछि; **श्रद्दधानाः**- श्रद्धाक संग; **मत् परमाः**- मुझ (हम) परमेश्वर केँ सब किछु मानैत अछि; **भक्ताः**- भक्तजन; **ते**- ओ; **अतीव**- अत्यधिक; **मे**- हमर; **प्रियाः**- प्रिय।

जे एहि भक्तिक अमर पथक अनुशरण करैत अछि, आओर जे हमरे अपन परम लक्ष्य बनाक श्रद्धा सहित पूर्णरुपेण संलग्न रहैत अछि, ओ भक्त हमरा अत्यधिक प्रिय छथि।

तात्पर्यः एहि अध्यायमे भगवान् कृष्ण अपन धाम तक पहुँचैक दिव्य सेवाक विधिक व्याख्या कैलनि अछि। एहन विधि हुनका अत्यन्त प्रिय अछि, आओर एहिमे लागल व्यक्ति केँ ओ स्वीकारक लैत छथि। अर्जुन ई प्रश्न उठौलनि कि जे निराकार ब्रह्मक पथमे लागल अछि, ओ श्रेष्ठ छथि या ओ जे साकार भगवानक सेवामे। भगवान् कृष्ण एकर बहुत स्पष्ट उत्तर देलनि अछि कि आत्म साक्षात्कारक समस्त विधिमे भगवानक भक्ति निस्संदेह सर्वश्रेष्ठ अछि। एहि अध्यायमे परम सत्यक जे निराकार धारणा वर्णित अछि, ओकर संस्तुति ओहि समय तकक लेल गेलै अछि, जाधरि मनुष्य आत्म साक्षात्कारक लेल अपने आपकेँ समर्पित नहिक दैत अछि। दोसर शब्दमे, जाधरि हुनका शुद्ध भक्तिक संगति करक अवसर नहि होइत ताधरि तक निराकारक धारणा लाभप्रद अछि। सौभाग्यवश यदि क्यो शुद्ध भक्तिमे सीधे कृष्ण भावनामृतमे लागए चाहैत अछि तऽ हुनका आत्मसाक्षात्कारक एतेक सोपान नहि पार करए पड़ैत अछि। भगवत्कृपा सँ हुनका सब वस्तु स्वतः सुलभ होइत अछि।

जीवन निर्वाहक लेल कोनो वस्तुक चिन्ता नहि होइत अछि। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक बारहम अध्याय **'भक्तियोग'** पूर्ण भेल।



श्रीकृष्णः शरणं मम

श्रीकृष्ण एव शरणं मम श्रीकृष्ण एव शरणम्।।

गुणमय्येषा न यत्र माया न च जनुरपि मरणम्।
यद्यतयः पश्यन्ति समाधौ परममुदाभरणम्।।१।।
यद्धेतोर्निवहन्ति बुधा ये जगति सदाचरणम्।
सर्वापद्भ्यो विहितं महतां येन समुद्धरणम्।।२।।
भगवति यत्सन्मतिमुद्वहतां हृदयतमोहरणम्।
हरिपरमा यद्भजन्ति सततं निषेव्य गुरूचरणम्।।३।।
असुरकुलक्षतये कृतममरैर्यस्य सदादरणम्।
भुवनतरुं धत्ते यन्निखिलं विविधविषयपर्णम्।।४।।
अवाप्य यद्भूयोऽच्युतभक्ता न यान्ति संसरणम्।
कृष्णलालजीद्विजस्य भूयात्तदधहरस्मरणम्।।५।।

अध्याय-तेरह



प्रकृति, पुरुष तथा चेतना

अर्जुन उवाच

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव॥१॥

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥२॥

अर्जुनः उवाच- अर्जुन कहलखिन; **प्रकृतिम्**- प्रकृति; **पुरुषम्**- भोक्ता; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **क्षेत्रम्**- क्षेत्र, खेत; **क्षेत्र ज्ञम्**- खेत केँ जानवाला; **एतत्**- ई सब; **वेदितुम्**- जानक लेल; **इच्छामि**- इच्छुक छी; **ज्ञानम्**- ज्ञान; **ज्ञेयम्**- ज्ञानक लक्ष्य; **केशव**- हे केशव; **श्रीभगवानुवाच**- भगवान् कहलथिन; **इदम्**- ई; **शरीरम्**- शरीर; **कौन्तेय**- हे कुन्तीपुत्र; **क्षेत्रम्**- खेत; **इति**- एहि प्रकार; **अभिधीयते**- कहावैत अछि; **एतत्**- ई; **यः**- जे; **वेत्ति**- जानैत अछि; **तम्**- ओकरा; **प्राहुः**- कहल जाइत अछि; **क्षेत्रज्ञः**- खेत केँ जानवाला; **इति**- एहि प्रकार; **तत् विदः**- एकरा जानएवालाक द्वारा।

अर्जुन कहलखिन- हे कृष्ण! हम प्रकृति एवं पुरुष (भोक्ता), क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञान एवं ज्ञेयक विषयमे जानैक इच्छुक छी।

श्रीभगवान् कहलथिन-हे कुन्तीपुत्र! ई शरीर क्षेत्र कहलाबैत अछि आओर एहि क्षेत्र केँ जान वाला क्षेत्रज्ञ अछि।

तात्पर्यः अर्जुन प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान तथा ज्ञेयक विषयमे जानैक इच्छुक छथि। जखन ओ एहि सब विषयमे पुछलखिन, तो कृष्ण कहलखिन कि ई शरीर क्षेत्र कहाबैत अछि, आओर एहि शरीर केँ जानवाला क्षेत्रज्ञ अछि। ई शरीर बद्धजीवक लेल कर्म क्षेत्र अछि। बद्धजीव एहि संसारमे बाँधल अछि, आओर ई भौतिक प्रकृति पर अपन प्रभुत्व प्राप्त करक प्रयत्न करैत अछि। एहि प्रकार प्रकृति पर प्रभुत्व दिखाएवक क्षमताक अनुसार ओकरा कर्म क्षेत्र प्राप्त होइत अछि। ई कर्म क्षेत्र शरीर अछि, आओर ई शरीर की अछि? शरीर इन्द्रिय सँ बनल अछि। बद्धजीव इन्द्रियतृप्ति चाहैत अछि, आओर इन्द्रियतृप्ति केँ भोगक क्षमताक अनुसार ही ओकरा शरीर या कर्मक्षेत्र प्रदान कैल जाइत अछि। अतएव बद्धजीवक लेल शरीर क्षेत्र अथवा कर्मक्षेत्र कहाबैत अछि। आब, जे व्यक्ति अपने आपकेँ शरीर मानैत अछि, ओ क्षेत्रज्ञ कहाबैत अछि। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ अथवा शरीर आओर शरीरक ज्ञाता (देही) अन्तर समझि पाएब कठिन नहि अछि। कोनो भी व्यक्ति ई सोचि सकैत अछि कि बाल्यकाल सँ वृद्धवस्था तक ओहिमे अनेक परिवर्तन होइत रहैत अछि, फिर भी ओ व्यक्ति ओतए ही रहैत अछि। एहि प्रकार कर्मक्षेत्रक ज्ञाता तथा वास्तविक कर्म क्षेत्रमे अन्तर अछि। एक बद्धजीव ई जानि सकैत अछि कि ओ अपन शरीर सँ भिन्न अछि। प्रारम्भमे ही बताएल गेल अछि कि जीव शरीरक भीतर अछि आओर शरीर बालक सँ किशोर, किशोर सँ तरुण तथा तरुण सँ वृद्धक रुपमे बदलि जाइत अछि, आओर शरीरधारी जानैत अछि कि शरीर परिवर्तित भऽ रहल अछि। स्वामी स्पष्टतः क्षेत्रज्ञ अछि। कौखन-कौखन हम सोचैत छी **"हम सुखी छी"**, हम पुरुष छी, हम स्त्री छी, हम पशु छी। ई ज्ञाताक शारीरिक उपाधि अछि, लेकिन ज्ञाता शरीर सँ भिन्न होइत अछि। भले ही हम तरह-तरहक वस्तु प्रयोगमे लाबी, जेना कपड़ा आदि। लेकिन हम जानैत छी कि हम एहि वस्तु सँ भिन्न छी। एहि प्रकार थोड़ेक विचार केला पर हम ई भी जानैत छी कि हम शरीर सँ भिन्न छी। हम, अहाँ या अन्य क्यो, जे क्यो शरीर धारण करि राखल अछि, क्षेत्रज्ञ कहाबैत अछि-अर्थात् ओ कर्म क्षेत्रक ज्ञाता

अछि आओर ई शरीर क्षेत्र अछि–साक्षात् कर्म क्षेत्र। प्रथम छह अध्यायमे शरीरक ज्ञाता (जीव) तथा जाहि स्थितिमे भगवान् केँ समझि सकैत छी ओकर वर्णन भेल अछि। आब तेरहम अध्याय सँ आगाँ एकर व्याख्या भेल अछि कि कोन प्रकारेँ जीवात्मा प्रकृतिक सम्पर्कमे आबैत अछि आओर कोन प्रकार कार्य, ज्ञान तथा भक्तिक विभिन्न साधनक द्वारा परमेश्वर ओकर उद्धार करैत छथि। यद्यपि जीवात्मा भौतिक शरीर सँ सर्वथा भिन्न अछि, लेकिन ओ कोन तरहेँ ओहि सँ सम्बद्ध भऽ जाइत अछि, एकरो भी व्याख्या कएल गेल अछि।

श्रीभगवानुवाच

क्षेत्रज्ञम् चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥३॥

क्षेत्रज्ञम्– क्षेत्रक ज्ञाता; **च**– भी; **अपि**– निश्चय ही; **माम्**– हमरा; **विद्धि**– जानू; **सर्व**– समस्त; **क्षेत्रेषु**– शरीर रुपी क्षेत्र मे; **भारत**– हे भरतक पुत्र; **क्षेत्र**– कर्मक्षेत्र (शरीर); **क्षेत्रज्ञयो**:– क्षेत्रक ज्ञाता; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **यत्**– जे; **तत्**– ओ; **मतम्**– अभिमत्; **मम**– हमर।

हे भरतवंशी! अहाँ केँ ज्ञात होमक चाही कि हम समस्त शरीरमे ज्ञाता भी छी आओर एहि शरीर तथा एकर ज्ञाता केँ जानि लेव ज्ञान कहाबैत अछि। एहन हमर अभिमत अछि।

तात्पर्यः वैदिक ग्रन्थमे वर्णन भेल अछि– **क्षेत्राणि हि शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभे। तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते॥** ई शरीर क्षेत्र कहाबैत अछि, आओर शरीरक भीतर एकर स्वामी तथा संग ही परमेश्वरक वास अछि, जे शरीर तथा शरीरक स्वामी दूनूक जान वाला अछि। अतएव हुनका समस्त क्षेत्रक ज्ञाता कहल जाइत अछि। कर्मक्षेत्र, कर्मक ज्ञाता तथा समस्त कर्मक परम ज्ञाताक अन्तर आगाँ बताओल गेल अछि। वैदिक ग्रन्थमे शरीर, आत्मा तथा परमात्माक स्वरुपक सम्यक जानकारी ज्ञान नाम सँ अभिहित कैल जाइत अछि। आत्मा तथा परमात्मा केँ एक मानैत भी पृथक्–पृथक् समझब ज्ञान अछि जे कर्म क्षेत्र तथा कर्मक ज्ञाता केँ नहि समझैत छथि, हुनका पूर्ण ज्ञान नहि होइत। मनुष्य केँ प्रकृति, पुरुष (प्रकृतिक भोक्ता) तथा ईश्वर (ओ ज्ञाता जे प्रकृति

एवं व्यष्टि आत्माक नियामक अछि)क स्थिति समझ पड़ैत अछि। हुनका एहि तीनूक विभिन्न रुपमे कोनो प्रकारक भ्रम नहि करक चाही। ई भौतिक जगत जे कर्मक्षेत्रक रुपमे अछि। प्रकृतिक भोक्ता जीव अछि, आओर एहि दूनूक ऊपर परम नियामक भगवान् छथि।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु।।४।।

तत्– ओ; **क्षेत्रम्**– कर्मक्षेत्र; **यत्**– जे; **च**– भी; **यादृक्**– जेना अछि; **विकारि**– परिवर्तन; **यतः**– जकरा सँ; **सः**– ओ; **यत्**– जे; **प्रभावः**– प्रभाव; **तत्**– ओहि; **समासेन**– संक्षेप मे; **मे**– हमरा सँ; **शृणु**– समझू; सुनू।

आब अहाँ हमरा सँ ई सब संक्षेपमे सुनू कि कर्मक्षेत्र की अछि? ई कोन प्रकार बनल अछि, एहिमे की परिवर्तन होइत अछि, ई कतय सँ उत्पन्न होइत अछि, एहि कर्मक्षेत्र केँ जान वाला के छथि आओर एकर की प्रभाव अछि।

तात्पर्यः भगवान् कर्मक्षेत्र (क्षेत्र) तथा कर्मक्षेत्रक ज्ञाता (क्षेत्रज्ञ)क स्वाभाविक स्थितिक वर्णनक रहला अछि। मनुष्य केँ ई जान पड़ैत अछि कि ई शरीर कोन तरहेँ बनल अछि, ई शरीर कोन पदार्थ सँ बनल अछि, ई ककर नियन्त्रणमे कार्यशील अछि, एहिमे कोन प्रकार परिर्वतन होइत अछि, ई परिवर्तन कतए सँ आबैत अछि, ओ के छथि? आत्माक चरम लक्ष्य की अछि? तथा आत्माक वास्तविक स्वरुप की अछि? मनुष्य केँ आत्मा तथा परमात्मा, हुनकर विभिन्न प्रभाव, हुनकर शक्ति आदिक अन्तर केँ भी जानवाक चाही। यदि ओ भगवान् द्वारा देल गेल वर्णनक आधार पर श्रीमद्भगवद्गीता समझि लिअ तो ई सब बात स्पष्ट भऽ जाएत। लेकिन ध्यान राखक चाही कि प्रत्येक शरीरमे वास कर वाला परमात्मा केँ जीवक स्वरुप न मानि बैठे।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।५।।

ऋषिभिः– बुद्धिमान ऋषि द्वारा; **बहुधा**– अनेक प्रकार सँ; **गीतम्**– वर्णित; **छन्दोभिः**– वैदिक मन्त्र द्वारा; **विविधैः**– नाना प्रकारक; **पृथक्**–

भिन्न भिन्न; **ब्रह्मसूत्र**– वेदान्तक; **पदैः**– नीतिवचन द्वारा; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **हेतु मद्भिः**– कार्य कारण सँ; **विनिश्चितैः**– निश्चित।

विभिन्न वैदिक ग्रन्थमे विभिन्न ऋषि कार्यकलापक क्षेत्र तथा ओहि कार्यकलापक ज्ञाताक ज्ञानक वर्णन कैलनि अछि। एकरा विशेष रुप सँ वेदान्त सूत्रमे कार्यकारण केँ समस्त तर्क समेत प्रस्तुत कैल गेल अछि।

तात्पर्यः पहिनहुँ कहल जा चुकल अछि क्षेत्रक अर्थ कर्मक्षेत्र अछि। क्षेत्रज्ञक दू कोटि अछि–जीवात्मा तथा परम पुरुष। भगवानक शक्तिक प्राकट्य अन्नमय रुपमे होइत अछि, जकर अर्थ अछि अस्तित्वक लेल भोजन (अन्न) पर निर्भरता। ई ब्रह्मक भौतिकवादी अनुभूति अछि। अन्नमे परम सत्यक अनुभूति कैलाक पश्चात् पुनः प्राणमय रुपमे मनुष्य सजीव लक्षण या जीवन रुपमे परम सत्यक अनुभूति करैत अछि। ज्ञानमय रुपमे ई अनुभूति सजीव लक्षण सँ आगाँ बढ़ि कऽ चिन्तन, अनुभव तथा आकाक्षा तक पहुँचैत अछि। तखन ब्रह्मक उच्चतर अनुभूति होइत अछि, जकरा विज्ञानमय रुप कहैत छी, जाहिमे जीवक मन तथा जीवनक लक्षण केँ जीव सँ भिन्न समझल जाइत अछि। एकर पश्चात् परम अवस्था आबैत अछि, जे आनन्दमय अछि, अर्थात् सर्व आनन्दमय प्रकृतिक अनुभूति अछि। एहि प्रकार सँ ब्रह्म अनुभूतिक पाँच अवस्था अछि, जकरा ब्रह्म पुच्छं कहल जाइत अछि। एहिमे सँ प्रथम तीन–अन्नमय, प्राणमय तथा ज्ञानमय–अवस्था जीवक कार्यकलापक क्षेत्र सँ सम्बन्धित होइत अछि। परमेश्वर एहि कार्यकलापक क्षेत्र सँ परे छथि, आओर आनन्दमय छथि। वेदान्त सूत्र भी परमेश्वर केँ **आनन्दमयोऽभ्यासात्** कहिक पुकारैत अछि। भगवान् स्वभाव सँ आनन्दमय छथि। अपन दिव्य आनन्द केँ भोगक लेल ओ विज्ञानमय, प्राणमय, ज्ञानमय तथा अन्नमय रुपमे विस्तार करैत छथि। कार्यकलापक क्षेत्र जीव भोक्ता (क्षेत्रज्ञ) मानल जाइत छथि, किन्तु आनन्दमय ओहि सँ भिन्न होइत अछि। एकर अर्थ ई भेल कि यदि जीव आनन्दमयक अनुगमन करमे सुख मानैत अछि, तो ओ पूर्ण बनि जाइत अछि। क्षेत्रक ज्ञाता (क्षेत्रज्ञ) रुपमे परमेश्वरक आओर ओकर अधीन ज्ञाताक रुपमे जीवक तथा कार्यकलापक क्षेत्र प्रकृतिक ई वास्तविक ज्ञान अछि। ब्रह्मसूत्रमे एहि सत्यक गवेषणा कर पड़त। ब्रह्मसूत्रक नीतिवचन

कार्य–कारणक अनुसार सुन्दर रुपमे व्यवस्थित अछि। प्रथम सूत्र कार्य कलापक क्षेत्र केँ सूचित करैत अछि, दोसर जीव केँ आओर तेसर परमेश्वर केँ, जे विभिन्न जीवक आश्रयतत्त्व अछि। छन्दोभिः शब्द विभिन्न वैदिक ग्रन्थक सूचक अछि। उदाहरणार्थ तैत्तिरीय उपनिषद् जे यजुर्वेदक एक शाखा अछि, प्रकृति जीव तथा भगवानक विषयमे वर्णन करैत अछि।

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥६॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥७॥

महाभूतानि– स्थूल तत्व; **अहङ्कार**– मिथ्या अभिमान; **बुद्धिः**– बुद्धि; **अव्यक्तम्**– अप्रकट; **एव**– निश्यच ही; **च**– भी; **इन्द्रियाणी**– इन्द्रिय; **दशएकम्**– ग्यारह; **पञ्च**– पाँच; **इन्द्रियगोचराः**– इन्द्रियक विषय; **इच्छा**– इच्छा; **द्वेषः**– घृणा; **सुखम्**– सुख; **दुःखम्**– दुख; **सङ्घात**– समूह; **चेतना**– जीवनक लक्षण; **धृतिः**– धैर्य; **एतत्**– ई सब; **क्षेत्रम्**– कर्मक क्षेत्र; **समासेन**– संक्षेप मे; **सविकारम्**– अन्तःक्रियाक सहित; **उदाहृतम्**– उदाहरण स्वरुप कहल गेल।

पंच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त (तीनू गुणक अप्रकट अवस्था) दसो इन्द्रिय तथा मन, पाँच इन्द्रिय विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, संघात, जीवनक लक्षण तथा धैर्य–एहि सब केँ संक्षेपमे कर्मक क्षेत्र तथा ओकर अन्य क्रिया (विकार) कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः वैदिक सूक्त (छान्दस) एवं वेदान्त सूत्रक प्रमाणिक कथनक आधार पर एहि संसारक अवयव केँ एहि प्रकार समझल जा सकैत अछि। पहिने तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ई–पाँच महाभूत अछि। फेर अहंकार, बुद्धि तथा तीनू गुणक अव्यक्त अवस्था आबैत अछि। एकर पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय अछि–नेत्र, कान, नाक, जीभ तथा त्वचा। पुनः पाँच कर्मेन्द्रिय–वाणी, पाँव, हाथ, गुदा, तथा लिंग अछि। तखन एहि इन्द्रियक ऊपर मन होइत अछि, जे भीतर रहलाक कारण अन्तः इन्द्रिय कहल जा सकैत अछि। एहि प्रकार मन समेत कुल ग्यारह इन्द्रिय होइत अछि। पुनः एहि इन्द्रियक पाँच विषय अछि–गंध, स्वाद, रुप, स्पर्श तथा ध्वनि।

एहि तरह एहि चौबीस तत्त्वक समूह कार्यक्षेत्र कहाबैत अछि। यदि क्यो एहि चौबीस विषयक विश्लेषण करे तो ओकरा कार्यक्षेत्र समझिमे आ जाएत। पुनः इच्छा, द्वेष, सुख एवं दुख नामक अन्तः क्रिया (विकार) अछि, जे स्थूल शरीरक पाँच महाभूतक अभिव्यक्ति अछि। चेतना तथा धैर्य द्वारा प्रदर्शित जीवनक लक्षण सूक्ष्म शरीर अर्थात् मन, अहंकार तथा बुद्धिक प्रकाट्य अछि। ई सूक्ष्म तत्त्व भी कर्मक्षेत्रमे सम्मिलित रहैत अछि। पँच महाभूत अहंकारक स्थूल अभिव्यक्ति अछि, जे अहंकारक मूल अवस्था केँ ही प्रदर्शित करैत अछि, जकरा भौतिकवादी बोध या तामस बुद्धि कहल जाइत अछि। ई आओर आगाँ प्रकृतिक तीनू गूणक अप्रकट अवस्थाक सूचक अछि। प्रकृतिक अव्यक्त गुण केँ प्रधान कहल जाइत अछि। भगवद्गीतामे एहि चौबीस तत्त्वक सारांश देल गेल अछि। एकर विस्तार दर्शनशास्त्रमे अछि। शरीर एहि समस्त तत्त्वक अभिव्यक्ति अछि। शरीरमे छह प्रकारक परिवर्तन होइत अछि–ई उत्पन्न होइत अछि, बढ़ैत अछि, टिकैत अछि, सन्तान उत्पन्न करैत अछि आओर तखन ई क्षीण होइत अछि आओर अन्तमे समाप्त भऽ जाइत अछि। अतएव क्षेत्र अस्थायी भौतिक वस्तु अछि, लेकिन क्षेत्रक ज्ञाता क्षेत्रज्ञ एहि सँ भिन्न रहैत अछि।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥८॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥९॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥१०॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥११॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥१२॥

अमानित्वम्– विनम्रता; **अदम्भित्वम्**– दम्भविहीनता; **अहिंसा**– अहिंसा; **क्षान्ति**– सहनशीलता, सहिष्णुता; **आर्यवम्**– सरलता; **आचार्य उपासनम्**– प्रामाणिक गुरुक पास जाएव; **शौचम्**– पवित्रम्; **स्थैर्यम्**– दृढ़ता; **आत्म**

विनिग्रहः– आत्म संयम; **इन्द्रिय अर्थेषु**– इन्द्रियक विषय मे; **वैराग्यम्**– वैराग्य; **अनहंकार**– मिथ्या अभिमान सँ रहित; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी; **जन्म**– जन्म; **मृत्यु**– मृत्यु; **जरा**– बुढ़ापा; **व्याधि**– रोगक; **दुःख**– दुखक; **दोष**– बुराई; **अनुदर्शनम्**– देखैत; **असक्तिः**– बिना आसक्तिक; **अनभिष्वङ्गः**– बिना संगतिक; **पुत्र**– पुत्र; **दार**– स्त्री; **गृह आदिषु**– घर आदि मे; **नित्यम्**– निरंतर; **च**– भी; **समचित्तत्वम्**– समभाव; **इष्ट**– इच्छित; **अनिष्ट**– अवांक्षित; **उपपत्तिषु**– प्राप्ति करिक; **मयि**– हमरा मे; **च**– भी; **अनन्य योगेन**– अनन्य भक्ति सँ; **भक्तिः**– भक्ति; **अव्यभिचारिणी**– बिना व्यवधानक; **विविक्त**– एकान्त; **देश**– स्थानक; **सेवित्वम्**– आकांक्षा करैत; **अरतिः**– अनासक्त भाव सँ; **जन संसदि**– सामान्य लोग केँ; **अध्यात्म**– आत्मा संबन्धी; **ज्ञान**– ज्ञान मे; **नित्यत्वम्**– शाश्वतता; **तत्त्वज्ञान**– सत्यक ज्ञानक; **अर्थ**– हेतु; **दर्शनम्**– दर्शनशास्त्र; **एतत्**– ई सब; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **इति**– एहि प्रकार; **प्रोक्तम्**– घोषित; **अज्ञानम्**– अज्ञान; **यत्**– जे; **अतः**– एहि सँ; **अन्यथा**– अन्य इतर।

विनम्रता, दम्भहीनता, अहिंसा, सरलता, प्रामाणिक गुरुक पास जाएव, पवित्रता, स्थिरता, आत्मसंयम, इन्द्रियतृप्तिक विषयक परित्याग, अहंकारक अभाव, जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा रोगक दोषक अनुभूति, वैराग्य, सन्तान, स्त्री, घर तथा अन्य वस्तुक ममता सँ मुक्ति, अच्छा तथा खराब घटनाक प्रति समभाव, हमरा प्रति निरन्तर अनन्य भक्ति, एकान्त स्थानमे रहैक इच्छा, जन समूह सँ विलगाव, आत्म साक्षात्कारक महत्ता केँ स्वीकारब तथा परम सत्यक दार्शनिक खोज एहि सब केँ हम ज्ञान घोषित करैत छी आओर एकर अतिरिक्त जे भी अछि, ओ सब अज्ञान अछि।

तात्पर्यः देहधारी आत्मा चौबीस तत्त्व सँ बनल आवरण रुप शरीरमे बन्द रहैत अछि, आओर एतय ज्ञानक जाहि प्रक्रियाक वर्णन अछि ओ एहि सँ बाहर निकलैक साधन अछि। ज्ञानक प्रक्रियाक सम्पूर्ण वर्णनमे सँ ग्यारहवाँ श्लोकक प्रथम पंक्ति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अछि– **'मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी'** ज्ञानक प्रक्रियाक अवसान भगवानक अनन्य भक्तिमे होइत अछि। अतएव यदि क्यो भगवानक दिव्य सेवा केँ नहि प्राप्त करि पाबैत या प्राप्त करमे असमर्थ अछि, तो शेष उन्नीस बात

व्यर्थ अछि। लेकिन यदि क्यो पूर्ण कृष्णभावना सँ भक्ति ग्रहण करैत अछि, तो अन्य उन्नीस बात ओकरा अन्दर स्वमेव विकसित भऽ जाइत अछि। श्रीमद्भागवतमे कहल गेलै अछि– **यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वगुणैस्तत्र समासेत सुराः।** जे क्यो भक्तिक अवस्था प्राप्त कऽ लेलनि अछि, हुनकामे ज्ञानक समस्त गुण विकसित भऽ जाइत अछि। पहिने उल्लेख आठम श्लोकमे भेल अछि, जतय गुरु–ग्रहण करक सिद्धान्त अनिवार्य स्पष्ट कैल गेल अछि। एतय धरि कि जे भक्ति स्वीकार करैत अछि, हुनका लेल भी ई अत्यावश्यक अछि। आध्यात्मिक जीवनक शुभारम्भ तखने होइत अछि, जखन प्रमाणिक गुरु ग्रहण कएल जाए। भगवान् श्रीकृष्ण एतय स्पष्ट कहैत छथि कि ज्ञानक ई प्रक्रिया ही वास्तविक मार्ग अछि। एहि सँ परे जे भी विचार कैल जाइत अछि ओ व्यर्थ होइत अछि। एतय ज्ञानक जे रुपरेखा प्रस्तुत कैल गेल अछि ओकर निम्नलिखित रुप सँ विश्लेषण कएल जा सकैत अछि।

विनम्रता– अमानित्वक अर्थ अछि कि मनुष्य केँ, अन्य द्वारा सम्मान पाबैक लेल इच्छुक नहि रहबाक चाही।

अहिंसा– एक सामान्य अर्थ वध नहि करब या शरीर केँ नष्ट नहि करब, लेल जाइत अछि, लेकिन अहिंसाक वास्तविक अर्थ अछि, दोसर केँ विपत्तिमे नहि डालब। देहात्मवृद्धिक कारणेँ सामान्य लोग अज्ञान द्वारा ग्रस्त रहैत अछि आओर निरन्तर भौतिक कष्ट भोगैत रहैत अछि। अतएव जाधरि कोनो लोग केँ आध्यात्मिक ज्ञानक ओर ऊपर नहि उठाबैत, ताधरि ओ हिंसा करैत रहैत अछि।

सहिष्णुता (क्षान्तिः)क अर्थ अछि कि मनुष्य अन्य द्वारा कैल गेल अपमान तथा तिरस्कार केँ सहे। जे आध्यात्मिक ज्ञानक उन्नति करैमे लागल रहैत अछि, ओकरा दोसरक तिरस्कार तथा अपमान सहय पड़ैत छैक। किएक तऽ ई भौतिक स्वभाव अछि। एतय तक कि बालक प्रहलाद केँ भी जे पाँच वर्षक ही छलाह आओर जे आध्यात्मिक ज्ञानक अनुशीलनमे लागल छलाह संकटक सामना करै पड़ल छलनि। आध्यात्मिक ज्ञानक उन्नति करैत, अनेक अवरोध आ सकैत अछि, लेकिन हमरा सब केँ सहिष्णु बनिक संकल्पपूर्वक प्रगति करैत रहबाक चाही।

सरलता (आर्जवम्)क अर्थ अछि कि बिना कोनो कूटनीतिक मनुष्य

एतेक सरल हो कि शत्रु तक सँ वास्तविक सत्यक उद्घाटन करि सके। मनुष्य केँ चाही कि विनम्रता पूर्वक गुरुक पास जाए हुनका अपन समस्त सेवा अर्पित करे, जाहि सँ ओ शिष्य केँ अपन आशीर्वाद दऽ सकथि।

पवित्रता (शौचम्): आध्यात्मिक जीवनमे प्रगति करक लेल पवित्रता अनिवार्य अछि। पवित्रता दू प्रकारक होइत अछि–आन्तरिक तथा बाह्य। बाह्य पवित्रताक अर्थ अछि स्नान करब लेकिन आन्तरिक पवित्रताक लेल निरन्तर कृष्णक चिन्तन तथा हरे कृष्ण मंत्रक कीर्तन करब होइत अछि।

दृढ़ता (स्थैर्यम्): क अर्थ अछि कि आध्यात्मिक जीवनमे उन्नतिक लेल मनुष्य दृढ़ संकल्प हो। एहन संकल्पक बिना मनुष्य ठोस प्रगति नहि कऽ सकैत अछि।

आत्मसंयम (आत्म-विनिग्रहः): क अर्थ अछि कि आध्यात्मिक उन्नतिक पथ पर जे भी बाधक हो, ओकरा स्वीकार नहि करब। मनुष्य केँ एकर अभ्यस्त भऽकऽ एहन कोनो भी वस्तुक त्याग देबक चाही जे आध्यात्मिक उन्नतिक पथक प्रतिकूल हो। ई असली वैराग्य अछि। इन्द्रिय एतेक प्रबल अछि कि ओ सदैव इन्द्रियतृप्तिक लेल उत्सुक रहैत अछि। अनावश्यक मांगक पूर्ति नहि करक चाही। इन्द्रियक ओतबेक ही तृप्ति कैल जाए जाहि सँ आध्यात्मिक जीवनमे आगाँ बढ़बामे अपन कर्तव्यक पूर्ति होइत हो। सबसँ महत्वपूर्ण वशमे नहि आब वला इन्द्रिय जीभ अछि। यदि जीभ पर संयम कऽ लेल गेल तो समझू अन्य सब इन्द्रिय वशीभूत भऽ गेल।

मिथ्या अहंकारक अर्थ अछि, एहि शरीर केँ आत्मा मानव। जखन क्यो ई जानि जाइत अछि कि ओ शरीर नहि, आत्मा छी तो ओ वास्तविक अहंकार केँ प्राप्त होइत अछि। जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधिक स्वीकार करक कष्ट केँ समझवाक चाही। संतान, पत्नी तथा घर ई सब स्नेहक प्राकृतिक वस्तु अछि। लेकिन जखन ई वस्तु सब आध्यात्मिक उन्नतिमे अनुकूल नहि हो, तो एकरा सबहक प्रति आसक्त नहि होमक चाही। श्रीमद्भागवतमे व्याख्या कएल गेल अछि कि आत्माक साक्षात्कार तीन रुपमे कैल जा सकैत अछि– ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्। परम सत्यक साक्षात्कारमे भगवान् पराकाष्ठा होइत अछि। अतएव मनुष्य केँ चाही कि भगवान केँ समझवक पद तक पहुँची आओर भगवानक भक्तिमे लागि

जाए। इहै ज्ञानक पूर्णता अछि।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥१३॥

ज्ञेयं– जानवाक योग्य; **यत्**– जे; **तत्**– ओ; **प्रवक्ष्यामि**– आब हम बताएब; **यत्**– जकरा; **ज्ञात्वा**– जानिक; **अमृतम्**– अमृतक; **अश्नुते**– आश्वादन करैत अछि; **अनादि**– आदि रहित; **मत्परं**– हमरा अधीन; **ब्रह्म**– आत्मा; **न**– न तो; **सत्**– कारण; **तत्**– ओ; **असत्**– कार्य प्रभाव; **उच्चते**– कहल जाइत अछि।

आब हम अहाँ केँ ज्ञेयक विषयमे बताएव, जकरा जानिक अहाँ नित्य ब्रह्मक आस्वादन कऽ सकब। ई ब्रह्म या आत्मा, जे अनादि अछि आओर हमरा अधीन अछि, एहि भौतिक जगतक कार्य-कारण सँ परे स्थित अछि।

तात्पर्यः भगवान् क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञक व्याख्या कैलनि अछि। ओ क्षेत्रज्ञ केँ जानबाक विधिक भी व्याख्या कैलनि। आब ओ ज्ञेयक विषयमे बतब जा रहला अछि–पहिने आत्माक विषयमे, पुनः परमात्माक विषयमे। ज्ञाता अर्थात् आत्मा तथा परमात्मा दूनू ही केँ ज्ञान सँ मनुष्य जीवन–अमृतक आस्वादनक सकैत अछि। जीवक उत्पन्न हेबाक कोनो निश्चित तिथि नहि अछि। न ही कोनो परमेश्वर सँ जीवात्माक प्राकट्यक इतिहास बता सकैत अछि। अतएव ओ अनादि छथि। वैदिक साहित्य सँ पुष्टि होइत अछि– शरीरक ज्ञाता न तो कहियो उत्पन्न होइत अछि, आओर न मरैत अछि। ओ ज्ञान सँ पूर्ण होइत अछि।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥१४॥

सर्वतः– सर्वत्र; **पाणि**– हाथ; **पादम्**– पैर; **तत्**– ओ; **अक्षि**– आँखि; **शिरः**– सिर; **मुखम्**– मुँह; **सर्वतः**– सर्वत्र; **श्रुति मत्**– कान सँ युक्त; **लोके**– संसार मे; **सर्वम्**– हर वस्तु; **आवृत्य**– व्याप्त करिक; **तिष्ठति**– अवस्थित अछि।

हुनकर हाथ, पाँव, आँखि, सिर तथा मुँह एवम् हुनकर कान सर्वत्र अछि। एहि प्रकार परमात्मा सब वस्तुमे व्याप्त भऽकऽ अवस्थित

छथि।

तात्पर्यः जाहि प्रकार सूर्य अपन अनन्त रश्मि केँ विकीर्ण करिक स्थित छथि, ओहि प्रकार परमात्मा या भगवान् भी छथि। ओ अपनेँ सर्वव्यापी रुपमे स्थित रहैत छथि, आओर हुनकामे आदि शिक्षक ब्रह्मा जी सँ लऽकऽ छोट सन चींटी तकक सब जीव स्थित अछि। हुनकर अनन्त सिर, हाथ, पाँव तथा नेत्र अछि आओर अनन्त जीव अछि। ई सब परमात्मामे ही स्थित अछि। अतएव परमात्मा सर्वव्यापक छथि। लेकिन आत्मा ई नहि कहि सकैत अछि कि ओकरा हाथ, पैर तथा नेत्र चारु दिशामे अछि। ई सम्भव नहि अछि। भगवद्गीतामे भगवान् कहैत छथि कि यदि क्यो हुनका पत्र, पुष्प या जल अर्पित करैत अछि, तो ओ ओकरा स्वीकार करैत छथि। एतय भगवानक सर्वशक्तिमत्ता अछि।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥१५॥

सर्व– समस्त; **इन्द्रिय**– इन्द्रियक; **गुण**, **गुणक**; **आभासम्**– मूल श्रोत; **इन्द्रिय**– इन्द्रिय सब सँ; **विवर्जितम्**– विहीन; **असक्तम्**– अनासक्त; **सर्वभृत**– प्रत्येकक पालनकर्ता; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **निर्गुणम्**– गुणविहीन; **गुण भोक्तृ**– गुणक स्वामी; **च**– भी।

परमात्मा समस्त इन्द्रियक मूल स्रोत छथि, फिर भी ओ इन्द्रिय सँ रहित छथि। ओ समस्त जीवक पालनकर्ता भऽकऽ भी समस्त गुणक स्वामी छथि।

तात्पर्यः भगवद्गीता सँ पुष्टि होइत अछि कि जखन भगवान् प्रकट होइत छथि, तो ओ अपन अन्तरंगा शक्ति सँ यथारुपमे प्रकट होइत छथि। ओ भौतिक शक्ति द्वारा कल्मषग्रस्त नहि होइत छथि, किएक तऽ ओ भौतिक शक्तिक भी स्वामी छथि। वैदिक साहित्य सँ हमरा सब केँ पता चलैत अछि कि हुनकर पूरा शरीर आध्यात्मिक अछि। हुनका अपन नित्य स्वरुप होइत अछि, जे सच्चिदानन्द विग्रह अछि। ओ समस्त ऐश्वर्य सँ पूर्ण छथि। ओ समस्त सम्पत्तिक स्वामी छथि आओर समस्त शक्तिक भी स्वामी छथि। ओ सर्वाधिक बुद्धिमान तथा ज्ञान सँ पूर्ण छथि। ओ समस्त जीवक पालक छथि आओर समस्त गतिविधिक साक्षी

छथि। वैदिक साहित्य सँ समझल जा सकैत अछि, परमेश्वर सदैव दिव्य अछि। यद्यपि हमरा हुनक हाथ, पाँव, सिर, मुख नहि दिखाइत, लेकिन ओ होइत छथि आओर जखन हम दिव्य पदक ऊपर उठि जाइत छी, तो हमरा भगवानक स्वरूपक दर्शन होइत अछि। कल्मषग्रस्त इन्द्रियक कारण हम हुनकर स्वरुप केँ देखि नहि पाबैत छी। अतएव निर्विशेषवादी भगवान् केँ नहि समझि पाबैत छी, किएक तऽ ओ भौतिक दृष्टि सँ प्रभावित रहैत छथि।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥१६॥

बहिः– बाहर; **अन्तः**– भीतर; **च**– भी; **भूतानाम्**– जीवक; **अचरम्**– जड़; **चरम्**– जंगम; **एव**– भी; **च**– तथा; **सूक्ष्मत्वात्**– सूक्ष्म भेलाक कारण; **तत्**– ओ; **अविज्ञेयम्**– अज्ञेय; **दूरस्थम्**– दूरस्थित; **अन्तिके**– पास; **च**– तथा।

परम सत्य जड़ तथा जंगम समस्त जीवक बाहर तथा भीतर स्थित अछि। सूक्ष्म भेलाक कारण ओ भौतिक इन्द्रियक द्वारा जानब या देखब सँ परे अछि। यद्यपि ओ अत्यन्त दूर रहैत छथि, किन्तु हमरा सबक निकट भी छथि।

तात्पर्य: वैदिक साहित्य सँ हम जानैत छी कि परम पुरुष नारायण प्रत्येक जीवक बाहर तथा भीतर निवास कर वाला छथि। ओ भौतिक तथा आध्यात्मिक दूनू ही जगतमे विद्यमान रहैत छथि। यद्यपि ओ बहुत दूर छथि फिर भी ओ हमरा सबहक निकट रहैत छथि। हुनका समझबमे हमर भौतिक मन तथा इन्द्रिय असमर्थ अछि। किन्तु जे, भक्तिमे कृष्णभावनामृतक अभ्यास करैत, अपन मन तथा इन्द्रिय केँ शुद्धक लेलक अछि, ओ हुनका निरन्तर देखि सकैत अछि। ब्रह्मसंहितामे एकर पुष्टि भेलै अछि कि परमेश्वरक लेल जाहि भक्तमे प्रेम उपजि चुकल अछि, ओ निरन्तर हुनकर दर्शनक सकैत अछि। भगवद्गीतामे (अध्याय ११/ ५४) एकर पुष्टि भेलै अछि कि हुनका केवल भक्ति द्वारा देखल तथा समझल जा सकैत अछि।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।

भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥१७॥

अविभक्तम्– बिना विभाजनक; **च**– भी; **भूतेषु**– समस्त जीव मे; **विभक्तम्**– बाँटल; **इव**– मानू; **स्थितम्**– स्थित; **भूत भर्तृ**– समस्त जीवक पालक; **तत्**– ओ; **ज्ञेयम्**– जान योग्य; **ग्रसिष्णु**– निगलैत, संहार कर वाला; **प्रभविष्णु**– विकास करैत; **च**– भी।

यद्यपि परमात्मा समस्त जीवक मध्य विभाजित प्रतीत होइत अछि, लेकिन ओ कौखन भी विभाजित नहि होइत अछि। ओ एक रुपमे स्थित अछि। यद्यपि ओ प्रत्येक जीवक पालनकर्ता छथि, लेकिन ई समझवाक चाही कि ओ सबहक संहारकर्ता छथि आओर सब केँ जन्म दैत छथिन्ह।

तात्पर्यः भगवान् सबहक हृदयमे स्थित छथि। तो एकर अर्थ ई नहि कि ओ बँटल छथि? वास्तवमे ओ एक छथि। एतय सूर्यक उदाहरण देल जाइत अछि। सूर्य मध्याह्न समय अपन स्थान पर रहैत छथि, लेकिन यदि क्यो चारु ओर पाँच हजार मीलक दूरी पर धूमे आओर पूछे कि सूर्य कतय छथि, तो सब लोग इहै कहत कि ओ ओकरा सिर पर चमकि रहल अछि। वैदिक साहित्यमे ई उदाहरण ई दिखाबक लेल देल गेलै अछि कि यद्यपि भगवान् अविभाजित छथि, लेकिन एहि प्रकार स्थित छथि मानू विभाजित होइथ। एतबे नहि, वैदिक साहित्यमे ई भी कहल गेलै अछि कि अपन सर्वशक्तिमत्ताक द्वारा एक विष्णु सर्वत्र विद्यमान छथि, जाहि प्रकार अनेक पुरुष केँ एक ही सूर्यक प्रतीति अनेक स्थानमे होइत अछि। यद्यपि परमेश्वर प्रत्येक जीवक पालनकर्ता छथि, किन्तु प्रलयक समय सबहक भक्षण कऽ जाइत छथि। ग्यारह अध्यायमे भगवान् कहैत छथि कि ओ कुरुक्षेत्रमे एकत्र सब योद्धाक भक्षण करै लेल आयल छथि। ओ ई भी कहलनि अछि कि ओ कालक रुपमे सबहक भक्षण करैत छथि। ओ सबहक प्रलयकारी आओर संहारकर्ता छथि।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥१८॥

ज्योतिषाम्– समस्त प्रकाशमान वस्तु मे; **अपि**– भी; **तत्**– ओ; **ज्योतिः**– प्रकाशक श्रोत; **तमसः**– अंधकार; **परम्**– परे; **उच्यते**– कहाबैत अछि;

ज्ञानम्– ज्ञान; **ज्ञेयम्**– जान योग्य; **ज्ञानगम्यम्**– ज्ञान द्वारा पहुँचय योग्य; **हृदि**– हृदय मे; **सर्वस्य**– सब; **विष्ठितम्**– स्थित।

ओ समस्त प्रकाशमान वस्तुक प्रकाशस्रोत छथि। ओ भौतिक अंधकार सँ परे छथि, आओर अगोचर छथि। ओ ज्ञान छथि, ज्ञेय छथि आओर ज्ञानक लक्ष्य छथि। ओ सबहक हृदयमे स्थित छथि।

तात्पर्यः परमात्मा ही सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सनक प्रकाशमान वस्तुक प्रकाशस्रोत छथि। वैकुण्ठ राज्यमे सूर्य या चन्द्रमाक आवश्यकता नहि पड़ैत अछि किएक तऽ ओतय परमात्माक ज्योति तो अछि। भौतिक जगतमे भगवानक आध्यात्मिक तेज भौतिक तत्त्व सँ ढ़कल रहैत अछि। अतएव एहि जगतमे हमरा सूर्य, चन्द्र, बिजली आदिक प्रकाशक आवश्यकता पड़ैत अछि। वैदिक साहित्य पुष्टि करैत अछि कि ब्रह्म घनीभूत दिव्य ज्ञान अछि। जे वैकुण्ठ लोक जेवाक इच्छुक अछि, हुनका परमेश्वर द्वारा ज्ञान प्रदान कैल जाइत अछि, जे प्रत्येक हृदयमे स्थित अछि। मुक्तिक इच्छुक केँ चाही कि ओ भगवानक शरणमे जाय। जतए धरि परम ज्ञानक लक्ष्यक सम्बन्ध अछि, वैदिक साहित्यमे पुष्टि होइत अछि– **तमैव विदित्वाति मृत्युमेतु** हुनका जानि लेबाक बाद ही जन्म तथा मृत्युक परिधि केँ लाँघल जा सकैत अछि। (श्वेताश्वतर उपनिषद्)।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते॥१९॥

इति– एहि प्रकार; **क्षेत्रम्**– कर्मक क्षेत्र (शरीर); **तथा**– भी; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **ज्ञेयम्**– जान योग्य; **च**– भी; **उक्तम्**– कहल गेलै; **समासतः**– संक्षेप मे; **मत् भक्तः**– हमर भक्त; **एतत्**– ई सब; **विज्ञाय**– जानिक; **मत्–भावाय**– हमर स्वभाव केँ; **उपपद्यते**– प्राप्त करैत अछि।

एहि प्रकार हम कर्म क्षेत्र (शरीर), ज्ञान तथा ज्ञेयक संक्षेपमे वर्णन कयलहुँ अछि। एकरा केवल हमर भक्त ही ठीक तरह समझि सकैत अछि आओर एहि तरहेँ हमर स्वभाव केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः भगवान् शरीर, ज्ञान तथा तथा ज्ञेयक संक्षेपमे वर्णन कैलनि अछि। ई ज्ञान तीन वस्तुक अछि– ज्ञाता, ज्ञेय तथा जानबाक विधि। ई तीनू मिलि केँ विज्ञान कहाबैत अछि। पूर्णज्ञान भगवानक अनन्य भक्तक द्वारा

प्रत्यक्षतः समझल जा सकैत अछि। अन्य एकरा समझि पाबमे असमर्थ रहैत अछि। आब हम सारांश रुपमे कहि सकैत छी कि श्लोक ६ तथा ७ महाभूतानि सँ लक चेतना धृतिः तक भौतिक तत्त्व तथा जीवनक लक्षणक किछु अभिव्यक्तिक विश्लेषण भेल अछि। ई सब मिलिक शरीर अथवा कार्यक्षेत्रक निर्माण करैत अछि, तथा श्लोक ८ सँ लक १२ तक अमानित्वम् सँ लक तत्त्वज्ञानार्थ तक कार्य क्षेत्रक दूनू प्रकारक ज्ञाता, अर्थात् आत्मा तथा परमात्माक ज्ञानक विधिक वर्णन भेल अछि। श्लोक १३ सँ १८मे **अनादि मत्परम्** सँ लऽकऽ **हृदि सर्वस्व विष्ठितम्** तक जीवात्मा तथा परमात्माक वर्णन अछि। एहि प्रकार तीन बातक वर्णन भेल अछि–कर्म क्षेत्र (शरीर), जानैक विधि तथा आत्मा एवं परमात्मा। एतय एकर विशेष उल्लेख भेलै अछि कि भगवानक अनन्य भक्त ही एहि तीनू वस्तु केँ ठीक सँ समझि सकैत छथि। अतएव एहने भक्तक लेल भगवद्गीता अत्यन्त लाभप्रद अछि। ओ ही परम लक्ष्य, अर्थात् परमेश्वर कृष्णक स्वभाव केँ प्राप्तक सकैत अछि। दोसर शब्दमे, केवल भक्त ही भगवद्गीता केँ समझि सकैत अछि आओर वांछित फल प्राप्तक सकैत छथि अन्य लोग नहि।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥२०॥

प्रकृति– भौतिक प्रकृति केँ; **पुरुषम्**– जीव केँ; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **विद्धि**– जानू; **अनादी**– आदि रहित; **उभौ**– दूनू; **अपि**– भी; **विकारान्**– विकार केँ; **गुणान्**– प्रकृतिक तीनू गुण; **सम्भवान्**– उत्पन्न।

प्रकृति तथा जीव केँ अनादि समझबाक चाही। हुनकर विकार तथा गुण प्रकृतिजन्य अछि।

तात्पर्यः एहि अध्यायक ज्ञान सँ मनुष्य शरीर (क्षेत्र) तथा शरीरक ज्ञाता (जीवात्मा तथा परमात्मा दूनू) केँ जानि सकैत छी। शरीर क्रियाक्षेत्र अछि आओर प्रकृति सँ निर्मित अछि। शरीरक भीतर बद्ध तथा ओकर कार्यक भोग कर वाला आत्मा ही पुरुष या जीव अछि। ओ ज्ञाता छथि आओर हुनकर अतिरिक्त भी दोसर ज्ञाता होइत अछि, जे परमात्मा अछि। निस्सन्देह ई समझब चाही कि परमात्मा तथा आत्मा एक ही भगवानक

विभिन्न अभिव्यक्ति अछि। जीवात्मा हुनकर शक्ति अछि आओर परमात्मा हुनकर साक्षात् अंश (स्वांश) अछि। प्रकृति तथा जीव दूनू ही नित्य अछि। तात्पर्य ई अछि कि ओ सृष्टिक पहिने सँ विद्यमान अछि। ई भौतिक अभिव्यक्ति परमेश्वरक शक्ति सँ अछि। आओर ओहि प्रकारेँ जीव भी अछि। किन्तु जीव श्रेष्ठ शक्ति अछि। जीव तथा प्रकृति एहि ब्रह्माण्डक उत्पन्न भेलाक पूर्व सँ ही विद्यमान अछि। प्रकृति तो महाविष्णुमे लीन भऽ गेल आओर जखन एकर आवश्यकता पड़ल तो ओ महत् तत्त्वक द्वारा प्रकट भेल। एहि प्रकार जीव भी हुनकर भीतर रहैत अछि, आओर चूँकि ओ बद्ध अछि, अतएव ओ परमेश्वरक सेवा कर सँ विमुख अछि। एहि कारण हुनका वैकुण्ठ लोकमे प्रविष्ट हुअ नहि देल जाइत अछि। लेकिन प्रकृति केँ व्यक्ति भेला पर एकरा भौतिक जगतमे पुनः कर्म कर आओर वैकुण्ठ लोकमे प्रवेश करक तैयारी करैक अवसर देल जाइत अछि। एहि भौतिक सृष्टिक इहै रहस्य अछि। शास्त्रमे भगवानक वचन अछि कि जे लोग प्रकृति द्वारा आकृष्ट अछि, जो कठिन जीवन संघर्षक रहल अछि। लेकिन एहि किछु श्लोकक वर्णन सँ ई निश्चित समझि लिअ हैत कि तीनू गुणक द्वारा उत्पन्न विकार प्रकृतिक ही उपज अछि। जीवक समस्त विकार तथा प्रकार शरीरक कारण अछि। एतय तक आत्माक सम्बन्ध अछि, सब जीव एक सँ अछि।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥२१॥

कार्य– कार्य; **कारण**– कारणक; **कर्तृत्वे**– सृजनक मामला मे; **हेतुः**– कारण; **प्रकृतिः**– प्रकृति; **उच्यते**– कहल जाइत अछि; **पुरुषः**– जीवात्मा; **सुख**– सुख; **दुःखानाम्**– दुखक; **भोक्तृत्वे**– भोग मे; **हेतुः**– कारण; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

प्रकृति समस्त भौतिक कारण तथा कार्य (परिणाम)क हेतु कहल जाइत अछि आओर जीव (पुरुष) एहि संसारमे विविध सुख-दुखक भोगक कारण कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः जीवमे शरीर एवं इन्द्रियक विभिन्न अभिव्यक्ति प्रकृतिक कारण अछि। कुल मिला केँ ८४ लाख भिन्न-भिन्न योनि अछि आओर

ई सब प्रकृतिजन्य अछि। जीव केँ विभिन्न इन्द्रिय सुख सँ ई योनि मिलैत अछि। जे एहि प्रकार एहि शरीर या ओहि शरीरमे रहैक इच्छा करैत अछि। जखन ओकरा विभिन्न शरीर प्राप्त होइत अछि, तो ओ विभिन्न प्रकारक सुख तथा दुख भोगैत अछि। ओकर भौतिक सुख-दुख ओकर शरीरक कारण होइत अछि, स्वयं ओकर कारण नहि। एक प्रकारक शरीर प्राप्त भेला पर ओ प्रकृतिक वशमे भऽ जाइत अछि, किएक तऽ शरीर, पदार्थ भेलाक कारण, प्रकृतिक नियमानुसार कार्य करैत अछि। ओहि समय शरीरमे एहन शक्ति नहि कि ओ ओहि नियम केँ बदलि सकै। यदि जीव केँ पशुक शरीर प्राप्त भऽ गेल तो ओकरा पशुक भाँति आचरण करब होइत अछि। यदि जीव केँ देवताक शरीर प्राप्त हो जाइत अछि, तो ओकरा अपन शरीरक अनुसार कार्य कर होइत अछि। इहै प्रकृतिक नियम अछि। लेकिन समस्त परिस्थितिमे परमात्मा जीवक संग रहैत छथि। वेदमे (मुण्डक उपनिषद्) एकर व्याख्या एहि प्रकार कएल गेल अछि। **''द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः''** परमेश्वर जीव पर एतेक दयालु छथि कि ओ सदा जीवक संग रहैत छथि आओर सब परिथितिमे परमात्मा रूपमे विद्यमान रहैत छथि।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥२२॥

पुरुषः-जीव; **प्रकृतिस्थः**- भौतिक शक्तिमे स्थित भऽकऽ; **हि**- निश्चय ही; **भुङ्क्ते**- भोगैत अछि; **प्रकृतिजान्**- प्रकृति सँ उत्पन्न; **गुणान्**- गुणक; **गुण-सङ्गः**- प्रकृतिक गुणक संगति; **अस्य**- जीवक; **सत्-असत्**- अच्छा तथा बुरा; **योनि**- जीवनक योनि; **जन्मसु**- जन्ममे।

एहि प्रकार जीव प्रकृतिक तीनू गुणक भोग करैत प्रकृतिमे ही जीवन व्यतीत करैत अछि। ई ओहि प्रकृतिक संग ओकर संगतिक कारण अछि। एहि तरह ओकरा उत्तम तथा अधम योनि मिलैत अछि।

तात्पर्यः दोसर अध्यायमे बताओल गेल अछि कि जीव एक शरीरक त्याग कऽ दोसर शरीर ओहि प्रकार धारण करैत अछि, जाहि प्रकार कोनो वस्त्र बदलैत अछि। वस्त्रक परिवर्तन एहि संसारक प्रति आसक्तिक कारण अछि। जाधरि जीव एहि मिथ्या प्राकट्य पर मुग्ध रहैत अछि,

ताधरि ओकरा निरन्तर देहान्तरण करए पड़ैत अछि। प्रकृति पर प्रभुत्व जताबक इच्छाक फलस्वरूप ओ एहन प्रतिकूल परिस्थितिमे फँसैत रहैत अछि। भौतिक इच्छाक वशीभूत भऽ ओकरा कहियो देवताक रूपमे तो कौखन मनुष्यक रूपमे, कहियो पशु, कहियो पक्षी, कहियो कीड़ा, कहियो जल–जन्तु, कहियो संत–पुरूष तो कहियो खटमलक रूपमे जन्म लिअ पड़ैत छैक। ई क्रम चलैत रहैत अछि आओर प्रत्येक परिस्थितिमे जीव अपना केँ स्वामी मानैत अछि, जखन कि ओ प्रकृतिक वशमे होइत अछि। एतै बताओल गेल अछि कि जीव कोन प्रकारें विभिन्न शरीर केँ प्राप्त करैत अछि। ई प्रकृतिक विभिन्न संगतिक कारण अछि। अतएव एहि गुण सँ ऊपर उठि कऽ दिव्य पद पर स्थिति होमक चाही। इहै कृष्णभावनामृत कहाबैत अछि। कृष्णभावनामृतमे स्थित हुए बिना भौतिक चेतना मनुष्य केँ एक शरीर सँ दोसरमे देहान्तरण करक लेल बाध्य करैत रहैत अछि, किएक तऽ अनादि काल सँ ओकरामे भौतिक आकांक्षा व्याप्त अछि। लेकिन ओकरा एहि श्रवण विचार केँ बदलए पड़त। ई परिवर्तन प्रमाणिक स्रोत सँ सुनि कऽ ही लाओल जा सकैत अछि। एकर सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अर्जुन छथि, जे कृष्ण सँ ईश्वर–विज्ञानक श्रवण करैत छथि। यदि जीव एहि विधि केँ अपना लिए तऽ प्रकृति पर प्रभुत्व जतेबाक चिर–अभिलषित आकांक्षा समाप्त भऽ जायत, आओर क्रमशः जेना–जेना ओ प्रभुत्व जताबक इच्छा केँ कम करैत जाएत, तेना–तेना ओकरा आध्यात्मिक सुख मिलैत रहत। एक वैदिक मंत्रमे कहल गेलै अछि कि जेना–जेना जीव भगवानक संगति सँ विद्वान बनैत जाइत अछि, तेना–तेना ओहि अनुपातमे ओ आनन्दमय जीवनक आस्वादन करैत अछि।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥२३॥

उपद्रष्टा– साक्षी; **अनुमन्ता**– अनुमति दिअवाला; **च**– भी; **भर्ता**– स्वामी; **भोक्ता**– परम भोक्ता; **महाईश्वरः**– परमेश्वर; **परम्–आत्मा**– परमात्मा; **इति**– भी; **च**– तथा; **अपि**– निस्सन्देह; **उक्तः**– कहल गेलै अछि; **देहे**– शरीरमे; **अस्मिन्**– एहि; **पुरुषः**– भोक्ता; **परः**– दिव्य।

तो भी एहि शरीरमे एक अन्य भोक्ता अछि, जे ईश्वर छथि, परम स्वामी छथि आओर साक्षी तथा अनुमति दिअबलाक रूपमे

विद्यमान छथि आओर जे परमात्मा कहाबैत छथि।

तात्पर्यः एतै कहल गेलै अछि कि जीवात्माक संग निरन्तर रहबला परमात्मा परमेश्वरक प्रतिनिधि अछि। ओ सामान्य जीव नहि अछि। चूँकि अद्वैतवादी चिन्तक शरीरक ज्ञाता केँ एक मानैत छथि, अतएव हुनका विचार सँ परमात्मा तथा जीवात्मामे कोनो अन्तर नहि अछि। एकर स्पष्टीकरण करक लेल भगवान् कहैत छथि कि ओ प्रत्येक शरीरमे परमात्मा रूपमे विद्यमान छथि। ओ जीवात्मा सँ भिन्न छथि, ओ पर छथि, दिव्य छथि। जीवात्मा कोनो विशेष क्षेत्रक कार्य केँ भोगैत अछि, लेकिन परमात्मा कोनो सीमित भोक्ताक रूपमे या शारीरिक कर्ममे भाग लिअबलाक रूपमे विद्यमान नहि रहैत, अपितु ओ साक्षी, अनुमति दाता तथा परम भोक्ताक रूपमे स्थित रहैत छथि। ओकर नाम परमात्मा अछि, आत्मा नहि। ओ दिव्य अछि। अतः ओ बिल्कुल स्पष्ट अछि कि आत्मा तथा परमात्मा भिन्न-भिन्न अछि। परमात्माक हाथ-पैर सर्वत्र होइत अछि, लेकिन जीवात्माक एना नहि होइत अछि। चुँकि परमात्मा परमेश्वर छथि, अतएव ओ अन्दर सँ जीवक भौतिक भोगक आकांक्षा पूर्तिक अनुमति दैत अछि। परमात्माक अनुमतिक बिना जीवात्मा किछु भी नहि कऽ सकत। जीव मुक्त अछि आओर भगवान् भोक्ता या पालक छथि। जीव अनन्त अछि आओर भगवान् ओहि सबमे भिन्न रूपमे निवास करैत छथि। तथ्य ई अछि कि प्रत्येक जीव परमेश्वरक नित्य अंश अछि आओर दूनू भिन्न रूपमे घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित अछि। लेकिन जीवमे परमेश्वरक आदेशक अस्वीकार करक, प्रकृति पर प्रभुत्व जतेबाक उद्देश्य सँ स्वतंत्रतापूर्वक कर्म करक प्रकृति पाओल जाइत अछि। चुँकि ओकरामे ई प्रवृत्ति होइत अछि, अतएव ओ परमेश्वरक तटस्था शक्तिमे स्थित भऽ सकैत अछि। जाधरि ओ भौतिक शक्ति द्वारा बद्ध रहैत अछि, ताधरि परमेश्वर मित्र रूपमे परमात्माक तरह ओकर भीतर रहैत अछि, जाहि सँ ओकरा आध्यात्मिक शक्तिमे वापस लऽ जा सकए। भगवान् ओकरा आध्यात्मिक शक्तिमे वापस लऽ जेबाक लेल सदैव उत्सुक रहैत छथि, लेकिन अपन अल्प स्वतंत्रताक कारण जीव निरन्तर आध्यात्मिक प्रकाशक संगति ठुकराबैत अछि। स्वतंत्रताक ई दुरूपयोग ही बद्ध प्रकृतिमे ओकर भौतिक संघर्षक कारण अछि। अतएव भगवान् निरन्तर बाहर तथा भीतर सँ आदेश दैत

रहैत अछि। बाहर सँ ओ भगवद्गीताक रूपमे उपदेश दैत छथि आओर भीतर सँ ओ जीव केँ ई विश्वास दिलाबैत छथि कि भौतिक क्षेत्रमे ओकर कार्यकलाप वास्तविक सुखक लेल अनुकूल नहि अछि। हुनकर वचन अछि– एकरा त्याग दिअ आओर हमरा प्रति श्रद्धा करू। तखने अहाँ सुखी हैब। एहि प्रकार जे बुद्धिमान व्यक्ति परमात्मामे अथवा भगवान्मे श्रद्धा राखैत अछि ओ सच्चिदानन्दमय जीवनक ओर प्रगति करैत अछि।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते॥२४॥

यः– जे; **एवम्**– एहि प्रकार; **वेत्ति**– जानैत अछि; **पुरुषम्**– जीव केँ; **प्रकृतिम्**– प्रकृति केँ; **च**– तथा; **गुणैः**– प्रकृतिक गुणक; **सह**– संग; **सर्वथा**– सब तरह सँ; **वर्तमानः**– स्थित भऽकऽ; **अपि**– क बावजूद; **न**– कहियो नहि; **सः**– ओ; **भूयः**– पुनः; **अभिजायते**– जन्म लैत अछि।

जे व्यक्ति प्रकृति, जीव तथा प्रकृतिक गुणक अन्तः क्रिया सँ सम्बन्धित एहि विचार धारा केँ समझि लैत अछि, ओकरा मुक्तिक प्राप्ति सुनिश्चित अछि। ओकर वर्तमान स्थिति चाहे जेहन हो, एतय ओकर पुनर्जन्म नहि हैत।

तात्पर्यः प्रकृति, परमात्मा, आत्मा तथा एकर अन्तः सम्बन्धक स्पष्ट जानकारी भऽ गेला पर मनुष्य मुक्त हेवाक अधिकारी बनैत अछि, आओर ओ एहि भौतिक प्रकृतिमे लौटक लेल बाध्य हुए बिना, वैकुण्ठ वापस चलि जेवाक अधिकारी बनि जाइत अछि। ई ज्ञानक फल अछि। इहै ज्ञान समझैक लेल होइत अछि कि दैवयुग सँ जीव एहि संसारमे आबि गिर जाइत अछि।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥२५॥

ध्यानेन– ध्यानक द्वारा; **आत्मनि**– अपन भीतर; **पश्यन्ति**– देखैत अछि; **केचित्**– किछु लोग; **आत्मानम्**– परमात्मा केँ; **आत्मना**– मन सँ; **अन्ये**– अन्य लोग; **साङ्ख्येन**– दार्शनिक विवेचना द्वारा; **योगेन**– योग पद्धतिक द्वारा; **कर्म योगेन**– निष्काम कर्मक द्वारा; **च**– भी; **अपरे**– अन्य।

किछु लोग परमात्मा केँ ध्यानक द्वारा अपन भीतर देखैत अछि,

तो दोसर लोग ज्ञानक अनुशीलन द्वारा आओर किछु एहन छथि जे निष्काम कर्मयोग द्वारा देखैत छथि।

तात्पर्यः भगवान् अर्जुन केँ बतबैत छथि कि जतए धरि मनुष्य द्वारा आत्म साक्षात्कारक खोजक प्रश्न अछि, बद्धजीवक दू श्रेणी अछि। जे लोग नास्तिक अज्ञेयवादी तथा संशयवादी अछि, ओ आध्यात्मिक ज्ञान सँ विहीन अछि। किन्तु अन्यलोग, जे आध्यात्मिक जीवन सम्बन्धी अपन ज्ञानक प्रति श्रद्धावान छथि, ओ आत्मदर्शी भक्त, दार्शनिक तथा निष्काम कर्मयागी कहबैत छथि। जे लोग सदैव अद्वैतवादक स्थापना कर चाहैत अछि, हुनको भी गणना नास्तिक एवं अजेयवादीमे कैल जाइत अछि। दोसर शब्दमे, केवल भगवत्भक्त ही आध्यात्मिक ज्ञान केँ प्राप्त होइत छथि, किएक तऽ ओ समझैत छथि कि एहि प्रकृतिक भी परे वैकुण्ठ–लोक तथा भगवान् छथि, जकर विस्तार परमात्माक रुपमे प्रत्येक व्यक्तिमे भेल अछि आओर जे सर्वव्यापी छथि।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥२६॥

अन्ये– अन्य लोग; **तु**– लेकिन; **एवम्**– एहि प्रकार; **अजानन्तः**– आध्यात्मिक ज्ञान सँ रहित; **श्रुत्वा**– सुनिक; **अन्येभ्यः**– अन्य सँ; **उपासते**– पूजा करब प्रारम्भ कऽ दैत अछि; **ते**– ओ; **अपि**– भी; **च**– तथा; **अतितरन्ति**– पारक जाइत अछि; **एव**– निश्चय ही; **मृत्युम्**– मृत्युकमार्ग; **श्रुतिपरायणाः**– श्रवण विधिक प्रति रुचि राखएवाला।

एहनो भी लोग अछि जे यद्यपि आध्यात्मिक ज्ञान सँ अवगत नहि होइत पर अन्य सँ परम पुरुषक विषयमे सुनिक हुनकर पूजामे लागि जाइत अछि। ई लोग भी प्रमाणिक पुरुषमे श्रवण करक मनोवृत्ति भेलाक कारण जन्म तथा मृत्युक पथ केँ पार करि जाइत छथि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे श्रवण विधि पर विशेष रुप सँ बल देल गेलै अछि, आओर ई सर्वथा उपयुक्त अछि। यद्यपि सामान्य व्यक्ति तथाकथित दार्शनिकक भाँति प्रायः समर्थ नहि होइत अछि, लेकिन प्रमाणिक व्यक्ति सँ श्रद्धापूर्वक श्रवण करला सँ एहि भवसागर केँ पार करिक भगवद्धाम वापस जाएमे हुनका सहायता मिलतैन। आधुनिक जगतमे कृष्णभावनामृतक

उपदेश करवाला चैतन्य महाप्रभु श्रवण विधि पर अत्यधिक बल देने छलथि, किएक तऽ यदि सामान्य व्यक्ति प्रामाणिक श्रोत सँ केवल श्रवण करे, तो ओ प्रगति करि सकैत अछि।

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ॥२७॥

यावत्– जे भी; **सञ्जायते**– उत्पन्न होइत अछि; **किञ्चित्**– किछु भी; **सत्त्वम्**– अस्तित्व; **स्थावर**– अचर; **जङ्गमम्**– चर; **क्षेत्र**– शरीरक; **क्षेत्रज्ञ**– शरीरक ज्ञाता केँ; **संयोगात्**– संयोग (जुड़ने) सँ; **तत् विद्धि**– अहाँ ओकरा जानू; **भरत ऋषभ**– हे भरतवंशमे श्रेष्ठ।

हे भरतवंशमे श्रेष्ठ! ई जानि लिअ कि चर तथा अचर जे भी अहाँ केँ अस्तित्वमे दिखाई दऽ रहल अछि, ओ कर्मक्षेत्र तथा क्षेत्रक ज्ञाताक संयोग मात्र अछि।

तात्पर्य: एहि श्लोकमे ब्रह्माण्डक सृष्टिक भी पूर्व सँ अस्तित्वमे रहवाली प्रकृति तथा जीव दूनूक व्याख्या कैल गेल अछि। जे किछु भी उत्पन्न कैल जाइत अछि, ओ जीव तथा प्रकृतिक संयोग मात्र होइत अछि। वृक्ष, पर्वत आदि अनेक अभिव्यक्ति अछि, जे गतिशील नहि अछि। एकर संग ही एहन अनेक वस्तु अछि, जे गतिशील अछि आओर ई सब भौतिक प्रकृति तथा परा प्रकृति अर्थात् जीवक संयोग मात्र अछि। परा प्रकृति, जीवक स्पर्श बिना किछु भी उत्पन्न नहि भऽ सकैत अछि। भौतिक प्रकृति तथा आध्यात्मिक प्रकृतिक सम्बन्ध निरन्तर चलि रहल अछि आओर ई संयोग परमेश्वर द्वारा सम्पन्न करायल जा सकैत अछि। अतएव ओ ही परा तथा अपरा प्रकृतिक नियामक अछि। अपरा प्रकृति हुनका द्वारा सृष्टि अछि आओर परा प्रकृति ओहि अपरा प्रकृतिमे राखल जाइत अछि। एहि प्रकार सब कार्य तथा अभिव्यक्ति घटित होइत अछि।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥२८॥

समम्– समभाव सँ; **सर्वेषु**– समस्त; **भूतेषु**– जीव मे; **तिष्ठन्तम्**– वास करैत हुए; **परमईश्वरम्**– परमात्मा केँ; **विनश्यत्सु**– नाशवान; **अविनश्यन्तम्**– नाश रहित; **यः**– जे; **पश्यति**– देखैत अछि; **सः**– ओ;

पश्यति– वास्तवमे देखैत अछि।

जे परमात्मा केँ समस्त शरीरमे आत्माक संग देखैत अछि आओर जे ई समझैत अछि कि एहि नश्वर शरीरक भीतर न तो आत्मा, न ही परमात्मा कौखन भी विनष्ट होइत अछि, ओहे वास्तवमे देखैत अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति सत्संगति सँ तीन वस्तु केँ–शरीर, शरीरक स्वामी या आत्मा तथा आत्माक मित्र केँ–एक संग संयुक्त देखैत अछि, वही सच्चा ज्ञानी अछि। जाधरि आध्यात्मिक विषयक वास्तविक ज्ञाताक संगति नहि मिलैत, ताधरि एहि तीनू वस्तु केँ नहि देख सकत। जाहि लोग केँ एहन संगति नहि होइत, ओ अज्ञानी अछि, ओ केवल शरीर केँ देखैत अछि, आओर जखन ई शरीर विनष्ट भऽ जाइत अछि, तो समझैत अछि कि सब किछु नष्ट भऽ गेल। लेकिन वास्तविकता ई नहि अछि। शरीर केँ विनष्ट भेलो पर आत्मा तथा परमात्माक अस्तित्व बनल रहैत अछि आओर ओ अनेक विविध चर तथा अचर रुपमे सदैव जाइत रहैत अछि। प्रत्येक दशामे परमात्मा तथा आत्मा दूनू रहि जाइत अछि। ओ विनष्ट नहि होइत छथि। जे एहि प्रकार देख सकैत अछि, ओहे वास्तवमे देखि सकैत अछि कि की घटित भऽ रहलै अछि।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥२९॥

समम्– समान रुप सँ; **पश्यन्**– देखैत; **हि**– निश्चय ही; **सर्वत्र**– सब जगह; **समवस्थितम्**– समान रुप सँ स्थित; **ईश्वरम्**– परमात्मा केँ; **न**– नहि; **हिनस्ति**– नीचा गिरैत अछि; **आत्मना**– मन सँ; **आत्मानम्**– आत्मा केँ; **ततः**– तखन; **याति**– पहुँचैत अछि; **पराम्**– दिव्य; **गतिम्**– गन्तव्य केँ।

जे व्यक्ति परमात्मा केँ सर्वत्र तथा प्रत्येक जीवमे समान रुप सँ वर्तमान देखैत छथि, ओ अपन मनक द्वारा अपने आपकेँ भ्रष्ट नहि करैत छथि। एहि प्रकार ओ दिव्य गन्तव्य केँ प्राप्त होइत छथि।

तात्पर्यः सामान्यतया मन इन्द्रियतृप्ति कारी कार्यमे लीन रहैत अछि, लेकिन जखन ओहे मन परमात्माक ओर उन्मुख होइत अछि, तो मनुष्य

आध्यात्मिक ज्ञानमे आगाँ बढ़ि जाइत अछि।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति॥३०॥

प्रकृत्या– प्रकृति द्वारा; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी; **कर्माणि**– कार्य; **क्रियमाणानि**– सम्पन्न कैल गेल; **सर्वशः**– सब प्रकार सँ; **यः**– जे; **पश्यति**– देखैत अछि; **तथा**– भी; **आत्मानम्**– अपने आप केँ; **अकर्तारम्**– अकर्ता; **सः**– ओ; **पश्यति**– देखैत अछि।

जे ई देखैत अछि कि सब कार्य शरीर द्वारा सम्पन्न कएल जाइत अछि, जकर उत्पत्ति प्रकृति सँ भेलै अछि, आओर जे देखैत अछि कि आत्मा किछु भी नहि करैत, ओहे यथार्थमे देखैत अछि।

तात्पर्यः ई शरीर परमात्माक निर्देशानुसार प्रकृति द्वारा बनाएल गेल अछि आओर मनुष्यक शरीरक जतेक भी कार्य सम्पन्न होइत अछि, ओ हुनका द्वारा नहि कयल जाइत अछि। मनुष्य जे भी करैत अछि, चाहे सुखक लेल करे य दुखक लेल, ओ शारीरिक रचनाक कारण ओकरा कर लेल बाध्य होइत अछि। लेकिन आत्मा एहि शारीरिक कार्य सँ विलग रहैत अछि। ई शरीर मनुष्य केँ पूर्व इच्छाक अनुसार प्राप्त होइत अछि। इच्छाक पूर्तिक लेल शरीर मिलैत अछि, जाहि सँ ओ इच्छानुसार कार्य करैत अछि। एक तरह सँ शरीर एक यन्त्र अछि, जकरा परमेश्वर इच्छाक पूर्तिक लेल निर्मित कैलनि अछि। इच्छाक कारण ही मनुष्य दुख या सुख पाबैत अछि। जखन जीवमे ई दिव्यदृष्टि उत्पन्न भऽ जाइत अछि, तऽ ओ शारीरिक कार्य सँ पृथक् भऽ जाइत अछि। जकरामे एहन दृष्टि आबि जाइत अछि, ओहे वास्तविक द्रष्टा छथि।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥३१॥

यदा– जखन; **भूत**– जीवक; **पृथक् भावम्**– पृथक् स्वरुप केँ; **एक स्थम्**– एक स्थान पर; **अनुपश्यति**– कोनो अधिकारीक माध्यम सँ देखैक प्रयास करैत अछि; **ततः एव**– तत्पश्चात्; **च**– भी; **विस्तारम्**– विस्तार केँ; **ब्रह्म**– परब्रह्म; **समपद्यते**– प्राप्त करैत अछि; **तदा**– ओहि समय।

जखन विवेकवान् व्यक्ति विभिन्न भौतिक शरीरक कारणेँ विभिन्न

स्वरुप केँ देखब बन्दक दैत अछि, आओर ओ देखैत अछि कि कोन प्रकार सँ जीव सर्वत्र फैलल अछि, तो ओ ब्रह्म-बोध केँ प्राप्त होइत छथि।

तात्पर्यः जखन मनुष्य ई देखैत अछि कि विभिन्न जीवक शरीर ओहि जीवक विभिन्न इच्छाक कारण उत्पन्न भेल अछि आओर ओ आत्मा सँ कोनो तरह सम्बद्ध नहि अछि, तो ओ वास्तवमे देखैत अछि। देहात्मबुद्धिक कारण हम ककरो देवता, ककरो मुनष्य, पशु आदिक रुपमे देखैत छी। ई भौतिक दृष्टि अछि, वास्तविक दृष्टि नहि अछि। ई भौतिक भेदभाव देहात्मबुद्धिक कारण अछि। भौतिक शरीरक विनाशक बाद आत्मा एक रहैत अछि। इहै आत्मा भौतिक प्रकृतिक सम्पर्क सँ विभिन्न प्रकारक शरीर धारण करैत अछि। जखन क्यो एकरा देख पाबैत अछि, तो ओकरा आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त होइत अछि। एहि प्रकार जे मनुष्य, पशु, ऊँच-नीच आदिक भेदभाव सँ मुक्त भऽ जाइत अछि, ओकर चेतना शुद्ध भऽ जाइत अछि।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥३२॥

अनादित्वात्- नित्यताक कारण; **निर्गुणत्वात्**- दिव्य भेला सँ; **परम**- भौतिक प्रकृति सँ परे; **आत्मा**- आत्मा; **अयम्**- ई; **अव्ययः**- अविनाशी; **शरीरस्थः**- शरीरमे वास कर वाला; **अपि**- यद्यपि; **कौन्तेय**- हे कुन्तीपुत्र; **न करोति**- किछु नहि करता; **न लिप्यते**- न ही लिप्त होइत अछि।

शाश्वत दृष्टिसम्पन्न लोग ई देखि सकैत अछि कि अविनाशी आत्मा दिव्य, शाश्वत तथा गुण सँ अतीत अछि। हे अर्जुन! भौतिक शरीरक संग सम्पर्क होइत भी आत्मा न तो किछु करैत अछि न लिप्त होइत अछि।

तात्पर्यः एना प्रतीत होइत अछि कि जीव उत्पन्न होइत अछि, किएक तऽ शरीरक जन्म होइत अछि। लेकिन वास्तवमे जीव शाश्वत अछि, ओ उत्पन्न नहि होइत अछि आओर शरीरमे स्थित रहिक भी, ओ दिव्य तथा शाश्वत रहैत अछि। ओ विनष्ट नहि कैल जा सकैत अछि। ओ स्वभाव सँ आनन्दमय अछि। ओ कोनो भौतिक कार्यमे प्रवृत्त नहि होइत।

अतएव भौतिक शरीरक संग ओकर सम्पर्क भेलो सँ जे कार्य सम्पन्न होइत अछि, ओ ओकरा लिप्त नहि कऽ पाबैत अछि।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥३३॥

यथा– जाहि प्रकार; **सर्व गतम्**– सर्वव्यापी; **सौक्ष्म्यात्**– सूक्ष्म भेलाक कारण; **आकाशम्**– आकाश; **न**– कहियो नहि; **उपलिप्यते**– लिप्त होइत अछि; **सर्वत्र**– सब जगह; **अवस्थितः**– स्थित; **देहे**– शरीर मे; **तथा**– ओहि प्रकार; **आत्मा**– आत्मा, स्वः; **उपलिप्यते**– लिप्त होइछ।

यद्यपि आकाश सर्वव्यापी अछि, किन्तु अपन सूक्ष्म प्रकृतिक कारण, कोनो वस्तु सँ लिप्त नहि होइत अछि। एहि तरहेँ ब्रह्मदृष्टिमे स्थित आत्मा, शरीरमे स्थित रहितो भी शरीर सँ लिप्त नहि होइत अछि।

तात्पर्यः वायु जल, कीचड़, मल तथा अन्य वस्तुमे प्रवेश करैत अछि, फिर भी ओ कोनो वस्तुमे लिप्त नहि होइत अछि। एहि प्रकार सँ जीव विभिन्न प्रकारक शरीरमे स्थित भऽकऽ अपन सूक्ष्म प्रकृतिक कारण ओहि सँ पृथक् बनल रहैत अछि। अतः एहि भौतिक आँखि सँ ई देख पाइब असम्भव अछि कि जीव कोन प्रकार एहि शरीरक सम्पर्कमे अछि आओर शरीरक विनष्ट भऽ गेला पर ओ ओहि सँ विलग भऽ जाइत अछि। कोनो भी वैज्ञानिक एकरा निश्चित नहि कऽ सकलाह।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥३४॥

यथा– जाहि प्रकार; **प्रकाशयति**– प्रकाशित करैत अछि; **एकः**– एक; **कृत्स्नं**– सम्पूर्ण; **लोकम्**– ब्रह्माण्ड केँ; **इमम्**– एहि; **रविः**– सूर्य; **क्षेत्रम्**– एहि शरीर केँ; **क्षेत्री**– आत्मा; **तथा**– ओहि तरह; **कृत्स्नम्**– समस्त; **प्रकाशयति**– प्रकाशित करैत अछि; **भारत**– हे भरतपुत्र।

हे भरतपुत्र! जाहि प्रकार सूर्य अकेले एहि समस्त ब्रह्माण्ड केँ प्रकाशित करैत अछि, ओहि प्रकार शरीरक भीतर स्थित एक आत्मा सम्पूर्ण शरीर केँ चेतना सँ प्रकाशित करैत अछि।

तात्पर्यः चेतनाक सम्बन्धमे अनेक मत अछि। एतय भगवद्गीतामे सूर्य तथा धूपक उदाहरण देल गेल अछि। जाहि प्रकार सूर्य एक स्थान पर

स्थित रहि कऽ ब्रह्माण्ड केँ आलोकित करैत छथि, ओहि तरहेँ आत्मा रुप सूक्ष्म कण शरीरक हृदयमे स्थित रहिक चेतना द्वारा सम्पूर्ण शरीर केँ आलोकित करैत अछि। एहि प्रकार चेतना ही आत्माक प्रमाण अछि, जाहि तरह धूप या प्रकाश सूर्यक परिस्थितिक प्रमाण होइत अछि। जखन शरीरमे आत्मा वर्तमान रहैत अछि, तो सम्पूर्ण शरीरमे चेतना रहैत अछि। किन्तु जखने शरीर सँ आत्मा चलि जाइत अछि, तखने चेतना लुप्त भऽ जाइत अछि। एकरा बुद्धिमान् व्यक्ति सुगमता सँ समझि सकैत छथि। अतएव चेतना पदार्थक संयोग सँ नहि बनल अछि। ओ जीवक लक्षण अछि। जीवक चेतना यद्यपि गुणात्मक रुप सँ परम चेतना सँ अभिन्न अछि, किन्तु परम नहि अछि, किएक तऽ एक शरीरक चेतना दोसर शरीर सँ सम्बन्धित नहि होइत अछि। लेकिन परमात्मा, जे आत्माक सखा रुपमे समस्त शरीरमे स्थित अछि, समस्त शरीरक प्रति सचेष्ट रहैत अछि। परमचेतना तथा व्यष्टि चेतनामे इहै अन्तर अछि।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥३५॥

क्षेत्र- शरीर; **क्षेत्रज्ञयोः**- शरीरक स्वामीक; **एवम्**- एहि प्रकार; **अन्तरम्**- अन्तर केँ; **ज्ञान चक्षुषा**- ज्ञानक दृष्टि सँ; **भूत**- जीवक; **प्रकृति**- प्रकृति सँ; **मोक्षम्**- मोक्ष केँ; **च**- भी; **ये**- जे; **विदुः**- जानैत अछि; **यान्ति**- प्राप्त होइत अछि; **ते**- ओ; **परम्**- परब्रह्म केँ।

जे लोग ज्ञानक चक्षु (दृष्टि) सँ शरीर तथा शरीरक ज्ञाताक अन्तर केँ देखैत अछि आओर भव-बन्धन सँ मुक्तिक विधि केँ भी जानैत अछि, हुनका परमलक्ष्य प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः एहि तेरहम अध्यायक तात्पर्य यही अछि कि मनुष्य केँ शरीर, शरीरक स्वामी तथा परमात्माक अन्तर केँ समझव चाही। हुनका श्लोक ८ सँ लऽकऽ १२ तकमे वर्णित मुक्तिक विधि जानव चाही। तखने ओ परमगति केँ प्राप्त भऽ सकैत अछि। श्रद्धालु केँ चाही कि सर्वप्रथम ओ ईश्वरक श्रवण करक लेल सत्संगति करथि, आओर धीरे-धीरे प्रबुद्ध बनथि। यदि गुरु स्वीकारक लेल जाए तो पदार्थ तथा आत्माक अन्तर केँ समझल जा सकैत अछि आओर ओहे अग्रिम आत्म साक्षात्कारक लेल,

शुभारम्भ बनि जाइत अछि। गुरु अनेक प्रकारक उपदेश सँ अपन शिष्य केँ देहात्मबुद्धि सँ मुक्त होमक शिक्षा दैत छथि। उदाहरणार्थ–भगवद्गीतामे कृष्ण अर्जुन केँ भौतिक बात सब सँ मुक्ति होमक लेल शिक्षा दैत छथि।

सारांशः मनुष्य ई तो समझि सकैत अछि ई शरीर पदार्थ अछि आओर ई चौबीस तत्त्वमे विश्लेषित कैल जा सकैत अछि। शरीर स्थूल अभिव्यक्ति अछि आओर मन तो मनोवैज्ञानिक प्रभाव सूक्ष्म अभिव्यक्ति अछि। जीवनक लक्ष्य एही तत्त्वक अन्तः क्रिया (विकार) अछि, किन्तु एहि सँ भी ऊपर आत्मा आ परमात्मा अछि। आत्मा तथा परमात्मा दू छथि। ई भौतिक जगत आत्मा तथा चौबीस तत्त्वक संयोग सँ कार्यशील अछि। जे सम्पूर्ण भौतिक जगतक एहि रचना केँ आत्मा तथा तत्त्वक संयोग सँ भेल मानैत अछि आओर परमात्माक स्थिति केँ भी देखैत अछि। ओहे वैकुण्ठलोक जेबाक अधिकारी बनि पावैत अछि। ई सब बात चिन्तन तथा साक्षात्कारक अछि। मनुष्य केँ चाही कि गुरुक सहायता सँ एहि अध्याय केँ ठीक–ठीक समझि लेथि।

हे भरत! जेना एक सूर्य समस्त लोक केँ प्रकाशित करैत अछि ओहिना ही क्षेत्रज्ञ समस्त क्षेत्र व क्षेत्रज्ञक भेद तथा जीवक प्रकृति देखिक मोक्षकक उपाय जानि लैत अछि, ओ परम पद केँ पाबि लैत छथि। एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक तेरहम अध्याय **''प्रकृति, पुरुष तथा चेतना''** पूर्ण भेल।



अध्याय-चौदह



प्रकृतिक तीन गुण

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानं मानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥१॥

श्रीभगवानुवाच- भगवान् कहलथिन; **परम्**- दिव्य; **भूयः**- पुनः, फेर; **प्रवक्ष्यामि**- कहब; **ज्ञानानाम्**- समस्त ज्ञानक; **ज्ञानम्**- ज्ञान; **उत्तमम्**- सर्वश्रेष्ठ; **यत्**- जकरा सँ; **ज्ञात्वा**- जानिक; **मुनयः**- मुनि लोग; **सर्वे**- समस्त; **पराम्**- दिव्य; **सिद्धिम्**- सिद्धि केँ; **इतः**- एहि संसार सँ; **गताः**- प्राप्त कैलक।

भगवान् कहलथिन- आब हम अहाँ सँ समस्त ज्ञानमे सर्वश्रेष्ठ एहि परम ज्ञान पुनः कहब, जकरा जानि लेला पर समस्त मुनि परम सिद्धि प्राप्त कैलनि अछि।

तात्पर्यः सातम अध्याय सँ लऽकऽ बारहम अध्याय तक श्रीकृष्ण परम सत्य भगवान् विस्तार सँ बतबैत छथि। आब भगवान् स्वयं अर्जुन केँ आओर आगाँ ज्ञान दऽ रहल छथिन। यदि क्यो एहि अध्याय केँ दार्शनिक चिन्तन द्वारा ठीक-ठीक समझि लिए तो ओकरा भक्तिक ज्ञान भऽ जाएत। तेरहम अध्यायमे ई स्पष्ट बताएल जा चुकल अछि कि

विनयपूर्वक ज्ञानक विकास करैत भवबन्धन सँ छूटल जा सकैत अछि। ई भी बताएल गेल अछि कि प्रकृतिक गुणक संगतिक फलस्वरुप ही जीव एहि भौतिक जगतमे बद्ध अछि। आब एहि अध्यायमे भगवान् स्वयं बताबैत छथि कि ओ प्रकृतिक गुण कोन-कोन सँ अछि, ओ कोन प्रकार क्रिया करैत अछि, कोन तरह बाँधैत अछि आओर कोन प्रकार मोक्ष प्रदान करैत अछि। एहि अध्यायमे जाहि ज्ञानक प्रकाश कैल गेल अछि ओकरा पूर्ववर्ती अध्यायमे देल गेल ज्ञान सँ श्रेष्ठ बताएल गेल अछि। एहि ज्ञान कें प्राप्त करिक अनेक मुनि लोग सिद्धि प्राप्त कैलन अछि आओर ओ वैकुण्ठ लोकक भागी भेलथि अछि। आब भगवान् ओहे ज्ञान कें आओर ठीक ढंग सँ बता रहला अछि। ई ज्ञान एखन धरि बताएल गेल समस्त ज्ञानयोग सँ कहीं अधिक श्रेष्ठ अछि आओर एकरा जानि लेला पर अनेक लोग कें सिद्धि प्राप्त भेल अछि।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥२॥

इदम्- एहि; **ज्ञानम्**- ज्ञान कें; **उपाश्रित्य**- आश्रय बनाक; **मम**- हमर; **साधर्म्यम्**- समान प्रकृति कें; **आगताः**- प्राप्त करिक; **सर्गे अपि**- सृष्टिमे भी; **न**- कहियो नहि; **उपजायन्ते**- उत्पन्न होइत अछि; **प्रलये**- प्रलय मे; **न**- न तो; **व्यथन्ति**- विचलित होइत अछि।

एहि ज्ञानमे स्थिर भऽकऽ मनुष्य हमर सनक दिव्य प्रकृति (स्वभाव) कें प्राप्तक सकैत अछि। एहि प्रकार स्थित भऽ गेला पर ओ न तो सृष्टिक समय उत्पन्न होइत अछि आओर न प्रलयक समय विचलित होइत अछि।

तात्पर्यः पूर्ण दिव्य ज्ञान प्राप्तक लेवाक बाद मनुष्य भगवान् सँ गुणात्मक समता प्राप्तक लैत अछि आओर जन्म-मरणक चक्र सँ मुक्त भऽ जाइत अछि। लेकिन जीवात्माक रुपमे ओकर ओ स्वरुप समाप्त नहि होइत अछि। वैदिक ग्रन्थ सँ ज्ञात होइत अछि कि जे मुक्तात्मा वैकुण्ठ जगतमे पहुँच चुकल अछि, ओ निरन्तर परमेश्वरक चरणकमलक दर्शन करैत हुनकर दिव्य प्रेमाभक्तिमे लागल रहैत अछि। अतएव मुक्तिक बाद भी भक्तक अपन निजी स्वरुप नहि समाप्त होइत अछि।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥३॥

मम– हमर; **योनिः**– जन्मस्रोत; **महत्**– सम्पूर्ण भौतिक जगत्; **ब्रह्म**– परम; **तस्मिन्**– ओहि मे; **गर्भम्**– गर्भ; **दधामि**– उत्पन्न करैत छी; **अहं**– हम; **सम्भवः**– सम्भावना; **सर्व-भूतानाम्**– समस्त जीवक; **ततः**– तत्पश्चात्; **भवति**– होइत अछि; **भरत**– हे भरत पुत्र।

हे भरत पुत्र! ब्रह्म नामक समग्र भौतिक वस्तु जन्मक श्रोत्र अछि आओर हम एहि ब्रह्म केँ गर्भस्थ करैत छी, जाहि सँ समस्त जीवक जन्म सम्भव होइत अछि।

तात्पर्यः ई संसारक व्याख्या अछि–जे किछु घटित होइत अछि ओ क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (आत्मा)क संयोग सँ होइत अछि। प्रकृति एवं जीवक ई संयोग स्वयं भगवान् द्वारा समस्त बनाएल जाइत अछि। महत्तत्त्व ही समग्र ब्रह्माण्डक सम्पूर्ण कारण अछि आओर भौतिकक समग्र वस्तु, जाहिमे प्रकृतिक तीनू गुण रहैत अछि, कहियो–कहियो ब्रह्म कहलाबैत अछि। परम पुरुष एहि समग्र वस्तु केँ गर्भस्थ करैत छथि, जाहि सँ असंख्य ब्रह्माण्ड सम्भव भऽ सके। वैदिक साहित्य (मुण्डक उपनिषद्)मे एहि समग्र वस्तु केँ ब्रह्म कहल गेल अछि। महापुरुष ओहि ब्रह्म केँ जीवक बीजक संग गर्भस्थ करैत अछि। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि चौबीस तत्त्व भौतिक शक्ति अछि आओर ओ भौतिक प्रकृतिक अवयव अछि। जेना कि सातम अध्यायमे बता चुकला अछि कि एहि सँ परे एक अन्य परा प्रकृति–जीव होइत अछि। भगवानक इच्छा सँ ई परा–प्रकृति भौतिक (अपरा) प्रकृति मिला दैत अछि, जकरा बाद एहि भौतिक प्रकृति सँ समस्त जीव उत्पन्न होइत अछि।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥४॥

सर्व योनिषु– समस्त योनि मे; **कौन्तये**– हे कुन्तीपुत्र; **मूर्तयः**– स्वरुप; **सम्भवन्ति**– प्रकट होइत अछि; **याः**– जे; **तासाम्**– ओहि सब मे; **ब्रह्म**– परम; **महत्योनि**– जन्मश्रोत्र; **अहं**– हम; **बीजप्रदः**– बीजप्रदाता; **पिता**– पिता।

हे कुन्तीपुत्र! अहाँ ई समझि लिअ कि समस्त प्रकारक जीव-योनि एहि भौतिक प्रकृतिमे जन्म द्वारा सम्भव अछि आओर हम ओकर बीज-प्रदाता पिता छी।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे स्पष्ट बताएल गेल अछि कि भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जीवक आदि पिता छथि। सब जीव भौतिक प्रकृति तथा आध्यात्मिक प्रकृतिक संयोग अछि। एहन जीव केवल एहि लोकमे ही नहि, अपितु प्रत्येक लोकमे, एतय तक कि सर्वोच्च लोकमे भी, जतय ब्रह्म आसीन अछि, भेटैत अछि। जीव सर्वत्र अछि-पृथ्वी, जल तथा अग्निक भीतर भी जीव अछि। ई सब-जीव माता भौतिक प्रकृति तथा बीज प्रदाता कृष्णक द्वारा प्रकट होइत अछि।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥५॥

सत्त्वम्- सतोगुण; **रजः**- रजोगुण; **तमः**- तमोगुण; **इति**- एहि प्रकार; **गुणाः**- गुण; **प्रकृति**- भौतिक प्रकृति सँ; **सम्भवाः**- उत्पन्न; **निबध्नन्ति**- बाँधैत अछि; **महाबाहो**- हे बलिष्ठ भुजा वाला; **देहे**- एहि शरीर मे; **देहिनम्**- जीव केँ; **अव्ययम्**- अविनाशी।

भौतिक प्रकृति तीन गुण सँ युक्त अछि। ई अछि-सतो, रजो तथा तमोगुण। हे महाबाहु अर्जुन! जखन शाश्वत जीव प्रकृतिक संसर्गमे आबैत अछि, तो ओ एहि गुण सँ बँध जाइत अछि।

तात्पर्यः दिव्य भेलाक कारण जीव केँ एहि भौतिक प्रकृति सँ किछु भी लेना देना नहि अछि। तइयो भौतिक जगत् द्वारा बद्ध भऽ गेलाक कारण ओ प्रकृतिक तीनू गुणक जादूक वशीभूत भऽकऽ कार्य करैत अछि। चूँकि जीव केँ प्रकृतिक विभिन्न अवस्थाक अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारक शरीर भेटल अछि, अतएव ओ ओहि प्रकृतिक अनुसार कर्म करक लेल प्रेरित होइत अछि। इहै अनेक प्रकारक सुख-दुखक कारण अछि।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥६॥

तत्र- ओतय; **सत्त्वं**- सतोगुण; **निर्मलत्वात्**- भौतिक जगतमे शुद्धतम भेलाक कारण; **प्रकाशकम्**- प्रकाशित करैत; **अनामयम्**- कोनो पापकर्मक

बिना; **सुख**– सुखक; **सङ्गेन**– संगतिक द्वारा; **बध्नाति**– बँधैत अछि; **ज्ञान**– ज्ञानक; **सङ्गेन**– संगति सँ; **च**– भी; **अनघ**– हे पाप रहित।

हे निष्पाप! सतोगुण अन्य गुणक अपेक्षा अधिक शुद्ध भेलाक कारण प्रकाश प्रदान करवाला आओर मनुष्य केँ सब पाप कर्म सँ मुक्त करएवाला अछि। जे लोग एहि गुणमे स्थित होइत अछि, ओ सुख तथा ज्ञानक भाव सँ बँध जाइत अछि।

तात्पर्यः भगवद्गीताक एहि अध्यायमे एकर वर्णन भेल अछि कि ओ (जीव) कोन तरहेँ अलग-अलग प्रकार सँ बद्ध अछि। सर्वप्रथम सतोगुण पर विचार कैल गेल अछि। एहि जगत्मे सतोगुण विकसित करक लाभ ई होइत अछि कि मनुष्य अन्य बद्धजीवक तुलनामे अधिक चतुर भऽ जाइत अछि। सतोगुणी पुरुष केँ भौतिक कष्ट ओतेक पीड़ित नहि करैत आओर ओकरामे भौतिक ज्ञानक प्रगति करक सूझ होइत अछि। एकर प्रतिनिधि ब्राह्मण छथि, जे सतोगुणी मानल जाइत अछि। सुखक ई भाव एहि विचारक कारण अछि कि सतोगुणमे पापकर्म सँ मुक्त रहल जाइत अछि। वास्तवमे वैदिक साहित्यमे ई कहल गेलै अछि कि सतोगुणक अर्थ ही अछि अधिक ज्ञान तथा सुखक अधिकाधिक अनुभव। समस्त कठनाई ई अछि कि जखन मनुष्य सतोगुणमे स्थित होइत अछि, तो ओकरा एहन अनुभव होइत अछि कि ओ ज्ञानमे आगाँ अछि आओर अन्यक अपेक्षा श्रेष्ठ अछि। एहि प्रकार ओ बध भऽ जाइत अछि। एहि सँ हुनका भौतिक सुखक अनुभूति होइत अछि। अतएव ओ सतोगुणमे रहिक कर्म करक प्रति आकृष्ट होइत अछि। जाधरि एहि प्रकार कर्म करैक रहक आकर्षण बनल रहैत अछि, ताधरि हुनका कोनो न कोनो प्रकारक शरीर धारण कर पड़ैत अछि। एहि प्रकार हुनका मुक्तिक कोनो सम्भावना नहि रहि जाइत। ओ बारम्बार जन्म मृत्युक ओही दोषमे बँधैत रहैत अछि। लेकिन माया मोहक कारण ओ सोचैत अछि कि एहि प्रकारक जीवन आनंदप्रद अछि।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥७॥

रजो– रजोगुण; **राग आत्मकम्**– आकांक्षा या काम सँ उत्पन्न; **विद्धि**–

जानू; **तृष्णा**– लोभ सँ; **सङ्ग**– संगति सँ; **समुद्भवम्**– उत्पन्न; **तत्**– ओ; **निबन्धनाति**– बाँधैत अछि; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **कर्मसङ्गेन**– सकाम कर्मक संगति सँ; **देहिनम्**– देहधारी केँ।

हे कुन्तीपुत्र! रजोगुणक उत्पत्ति असीम आकांक्षा तथा तृष्णा सँ होइत अछि आओर एहि कारण सँ देहधारी जीव सकाम कर्म सँ बँध जाइत अछि।

तात्पर्यः रजोगुणक विशेषता अछि, पुरुष तथा स्त्रीक पारस्परिक आकर्षण। स्त्री पुरुषक प्रति आओर पुरुष स्त्रीक प्रति आकर्षित होइत अछि। ई रजोगुण कहाबैत अछि। जखन एहि रजोगुणमे वृद्धि भऽ जाइत अछि, तो मनुष्य भौतिक भोगक लेल लालायित होइत अछि। ओ इन्द्रियतृप्ति चाहैत अछि। एहि इन्द्रियतृप्तिक लेल रजोगुणी मनुष्य समाजमे सम्मान चाहैत अछि आओर सुन्दर सन्तान, स्त्री तथा घर सहित सुखी परिवार चाहैत अछि। ई सब रजोगुणक प्रतिफल अछि। जाधरि मनुष्य एकर लालसा करैत रहैत अछि ताधरि ओकरा कठिन परिश्रम कर पड़ैत अछि। अतएव समस्त संसार ही न्यूनाधिक रुप सँ रजोगुणी अछि। मनुष्य अपन कर्मफल सँ सम्बद्ध भऽकऽ संसारिक कर्म सँ बँध जाइत अछि।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥८॥

तमः– तमोगुण; **तु**– लेकिन; **अज्ञान जम्**– अज्ञान सँ उत्पन्न; **विद्धि**– जानू; **मोहनम्**– मोह; **सर्वदेहिनाम्**– समस्त देहधारी जीवक; **प्रमाद**– पागलपन; **आलस्य**– आलस; **निद्राभिः**– नींद द्वारा; **तत**– ओ; **निबध्नाति**– बँधैत अछि; **भरत**– हे भरतपुत्र।

हे भरतपुत्र! अहाँ जानि लिअ कि अज्ञान सँ उत्पन्न तमोगुण समस्त देहधारी जीवक मोह अछि। एहि गुणक प्रतिफल पागलपन (प्रमाद), आलस तथा नींद अछि, जे वद्धजीव केँ बाँधैत अछि।

तात्पर्यः तमोगुण देहधारी जीवक अत्यन्त विचित्र गुण अछि। ई सतोगुणक सर्वथा विपरीत अछि। सतोगुणमे ज्ञानक विकास सँ मनुष्य ई जानि सकैत अछि कि के की छी? लेकिन तमोगुण तो एकर सर्वथा विपरीत होइत अछि। जे भी तमोगुणक फेरमे पड़ैत अछि, ओ पागल

भऽ जाइत अछि आओर पागल पुरुष ई नहि समझैत अछि कि कोन के छी। ओ प्रगति करक बजाय अधोगति केँ प्राप्त होइत अछि। वैदिक साहित्यमे तमोगुणक परिभाषा एहि प्रकार देल गेल अछि–अज्ञानक वशीभूत भेला पर कोनो मनुष्य कोनो वस्तु केँ यथारुपमे नहि समझि पाबैत अछि। तमोगुणमे लिप्त व्यक्तिक एक अन्य गुण ई भी अछि कि ओ आवश्यकता सँ अधिक सूतैत अछि। एहन व्यक्ति सदैव निराश प्रतीत होइत अछि आओर भौतिक द्रव्य तथा निद्राक प्रति व्यसनी बनि जाइत अछि। ई अछि तमोगुणी व्यक्तिक लक्षण।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत॥९॥

सत्त्वं– सतोगुण; **सुखे**– सुख मे; **सञ्जयति**– बाँधैत अछि; **रजः**– रजोगुण; **कर्मणि**– सकाम कर्म मे; **भारत**– हे भरतपुत्र; **ज्ञानम्**– ज्ञान केँ; **आवृत्य**– ढ़किक; **तु**– लेकिन; **तमः**– तमोगुण; **प्रमोद**– पागलपन मे; **सञ्जयति**– बाँधैत अछि; **उत**– एहन कहल गेलै अछि।

हे भरतपुत्र! सतोगुण मनुष्य केँ सुख सँ बाँधैत अछि। रजोगुण सकाम कर्म सँ बाँधैत अछि आओर तमोगुण मनुष्य केँ ज्ञान केँ ढ़किक ओकरा पागलपन सँ बाँधैत अछि।

तात्पर्यः सतोगुणी पुरुष अपन कर्म या बौद्धिक वृत्ति सँ ओहि तरह सन्तुष्ट रहैत अछि जाहि प्रकार दार्शनिक, वैज्ञानिक अपन अपन विद्यामे निरन्तर रहिक सन्तुष्ट रहैत अछि। रजोगुणी व्यक्ति सकाम कर्ममे लागि सकैत अछि, ओ यथासम्भव धन प्राप्त करिक ओकरा उत्तम कार्यमे व्यय करैत अछि। लेकिन तमोगुणी तो ज्ञान केँ, ढ़कि लैत अछि। तमोगुणमे रहिक मनुष्य जे भी करैत अछि, ओ न तो ओकरा लेल, न ककरो अन्यक लेल हितकर होइत अछि।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥१०॥

रजः– रजोगुण; **तमः**– तमोगुण केँ; **च**– भी; **अभिभूय**– पार करिक; **सत्त्वं**– सतोगुण; **तमः**– तमोगुण; **भवति**– प्रधान बनैत अछि; **भारत**– हे भरतपुत्र; **एव**– ओहि तरह; **तमः**– तमोगुण; **सत्त्वम्**– सतोगुण केँ; **रजः**–

रजोगुण; **तथा**– एहि प्रकार।

हे भरतपुत्र! कौखन-कौखन सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण केँ परास्त करिक प्रधान बनैत अछि तो कौखन रजोगुण सतो तथा तमोगुण केँ परास्तक दैत अछि आओर कौखन एहनो होइत अछि कि तमोगुण सतो तथा रजोगुण केँ परास्त करि दैत अछि। एहि प्रकार श्रेष्ठताक लेल निरन्तर स्पर्धा चलैत रहैत अछि।

तात्पर्यः जखन रजोगुणक प्रधान होइत अछि, तो सतो तथा तमोगुण परास्त भऽ जाइत अछि। जखन सतोगुण प्रधान होइत अछि तो रजो तथा तमोगुण परास्त भऽ जाइत अछि। जखन तमोगुण प्रधान होइत अछि तो रजो तथा सतो गुण परास्त भऽ जाइत अछि। ई प्रतियोगिता निरन्तर चलैत रहैत अछि। अतएव जे कृष्णभावनामृतमे वास्तवमे उन्नति करक इच्छुक अछि, हुनका एहि तीनू गुण केँ लाँघ पड़ैत अछि। विशिष्ट कार्य केँ देखिक ही समझल जा सकैत अछि कि कोन व्यक्ति कोन गुणमे स्थिति अछि।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥११॥

सर्वद्वारेषु– सब दरवाजा मे; **देहे अस्मिन्**– एहि शरीर मे; **प्रकाशः**– प्रकाशित करक गुण; **उपजायते**– उत्पन्न होइत अछि; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **यदा**– जखन; **तदा**– ओहि समय; **विद्यात्**– जानू; **विवृद्धम्**– बढ़ल भेल; **सत्त्वम्**– सतोगुण; **इति उत**– एहन कहल गेलै अछि।

सतोगुणक अभिव्यक्ति केँ तखने अनुभव कैल जा सकैत अछि, जखन शरीरक सब द्वार ज्ञानक प्रकाश सँ प्रकाशित होइत अछि।

तात्पर्यः शरीरमे नौ द्वार अछि–दू आँखि, दू कान, दू नथुने (नाक), मुँह, गुदा तथा उपस्थ। जखन प्रत्येक द्वार सत्त्व केँ लक्षण सँ दीपित भऽ जाय, तो समझ चाही कि हुनकामे सतोगुण विकसित भऽ चुकल अछि। सतोगुणमे सब वस्तु अपन सही स्थितिमे दिखाइत अछि, सही सही सुनाई पड़ैत अछि आओर सही ढंग सँ ओहि वस्तुक स्वाद मिलैत अछि। मनुष्यक अन्तः तथा बाह्य शुद्ध भऽ जाइत अछि। प्रत्येक द्वारमे सुखक लक्षण उत्पन्न दिखाइत अछि आओर इहै स्थिति होइत अछि सत्त्वगुणक।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥१२॥

लोभः– लोभ; **प्रवृत्तिः**– कार्य; **आरम्भः**– उद्यम; **कर्मणाम्**– कर्म सँ; **अशमः**– अनियन्त्रित; **स्पृहा**– इच्छा; **रजसि**– रजोगुण मे; **एतानि**– ई सब; **जायन्ते**– प्रकट होइत अछि।; **विवृद्धे**– अधिकता भेला पर; **भरत-ऋषभ**– हे भरतवंशमे प्रमुख।

हे भरतवंशमे प्रमुख! जखन रजोगुणमे वृद्धि भऽ जाइत अछि, तो अत्यधिक आसक्ति, सकाम कर्म, गहन उद्यम तथा अनियन्त्रित इच्छा एवम् लालसाक लक्षण प्रकट होइत अछि।

तात्पर्यः रजोगुणी व्यक्ति कौखन भी पहिने सँ प्राप्त पद सँ संतुष्ट नहि होइत अछि, ओ अपन पद बढ़व लेल लालायित रहैत अछि। ओ इन्द्रियतृप्तिक लेल अत्यधिक लालसा विकसितक लैत अछि। ओकरामे इन्द्रियतृप्तिक कोनो सीमा नहि अछि। ओ सदैव अपन परिवारक बीच तथा अपन घरमे रहिक इन्द्रियतृप्ति करैत रहैत चाहैत अछि। एकर कोनो अन्त नहि अछि। ई सब लक्षण केँ रजोगुणक विशेषता मानबाक चाही।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥१३॥

अप्रकाशः– अँधेरा; **अप्रवृत्तिः**– निष्क्रियता; **च**– तथा; **प्रमादः**– पागलपन; **मोहः**– मोह; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी; **तमसि**– तमोगुण; **एतानि**– ई सब; **जायन्ते**– प्रकट होइत अछि; **विवृद्धे**– बढ़ि गेला पर; **कुरुनन्दन**– हे कुरुपुत्र।

जखन तमोगुणमे वृद्धि भऽ जाइत अछि, तो हे कुरुपुत्र! अँधेरा, जड़ता, प्रमत्तता तथा मोहक प्राकट्य होइत अछि।

तात्पर्यः जतय प्रकाश नहि होइत अछि, ओतय ज्ञान अनुपस्थित रहैत अछि। तमोगुणी व्यक्ति कोनो नियममे बँधिक कार्य नहि करैत अछि। ओ अकारण ही अपन सनकक अनुसार कार्य कर चाहैत अछि। यद्यपि ओकरामे कार्य क्षमता होइत अछि, किन्तु ओ परिश्रम नहि कर चाहैत अछि। ई मोह कहाबैत अछि। यद्यपि चेतना रहैत अछि, लेकिन जीवन निष्क्रिय रहैत अछि। ई तमोगुणक लक्षण अछि।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते॥१४॥

यदा– जखन; **सत्त्वे**– सतोगुण मे; **प्रवृद्धे**– बढ़ि गेला पर; **तु**– लेकिन; **प्रलयम्**– संहार, विनाश केँ; **याति**– जाइत अछि; **देहभृत**– देहधारी; **तदा**– ओहि समय; **उत्तमविदाम्**– ऋषिक; **लोकान्**– लोक केँ; **अमलान्**– शुद्ध; **प्रतिपद्यते**– प्राप्त करैत अछि।

जखन क्यो सतोगुणमे मरैत अछि, तो हुनका महर्षिक विशुद्ध उच्चतर लोकक प्राप्ति होइत अछि।

तात्पर्यः सतोगुणी व्यक्ति ब्रह्मलोक या जनलोक जेना उच्च लोक केँ प्राप्त करैत अछि आओर ओतय दैवी सुख भोगैत छथि। भौतिक जगतमे अशुद्धि अछि, लेकिन सतोगुण सर्वाधिक शुद्ध रुप अछि। विभिन्न जीवक लेल विभिन्न प्रकारक लोक अछि। जे लोग सतोगुणीमे मरैत छथि, ओ ओहि लोक केँ जाइत छथि, जतय महर्षि तथा महान भक्तगण रहैत छथि।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥१५॥

रजसि– रजोगुण मे; **प्रलयम्**– प्रलय केँ; **गत्वा**– प्राप्त करिक; **कर्म सङ्गिषु**– सकाम कर्मीक संगति मे; **जायते**– जन्म लैत अछि; **तथा**– ओहि प्रकार; **प्रालीनः**– विलीन भऽकऽ; **तमसि**– अज्ञान मे; **मूढ़ योनिषु**– पशुयोनि मे; **जायते**– जन्म लैत अछि।

जखन क्यो रजोगुणमे मरैत अछि, तो ओ सकाम कर्मीक बीचमे जन्म ग्रहण करैत अछि आओर जखन क्यो तमोगुणमे मरैत अछि, तो ओ पशुयोनिमे जन्म धारण करैत अछि।

तात्पर्यः किछु लोगक विचार अछि कि एक बेर मनुष्य जीवन केँ प्राप्त करिक आत्मा कहियो नीचा नहि गिरैत अछि। ई ठीक नहि अछि। एहि श्लोकक अनुसार, यदि क्यो तमोगुणी बनि जाइत अछि, तो ओ मृत्युक बाद पशुयोनि केँ प्राप्त होइत अछि। ओतय सँ मनुष्य केँ विकास प्रक्रम द्वारा पुनः मनुष्य जीवन तक आब पड़ैत अछि। अतएव जे लोग मनुष्य जीवनक विषयमे सचमुच चिन्तित अछि हुनका सतोगुणी बनबाक चाही तथा नीक संगतिमे रहिक गुणक लाँधिक कृष्णभावनामृतमे स्थित होमक

चाही। इहै मनुष्य जीवनक लक्ष्य अछि। अन्यथा एकर कोनो निश्चितता (गारंटी) नहि कि मनुष्य केँ पुनः मनुष्य योनि प्राप्त हो।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥१६॥

कर्मणः– कर्मक; **सुकृतस्य**– पुण्य; **आहुः**– कहल गेलै अछि; **सात्त्विकम्**– सात्त्विक; **निर्मलम्**– विशुद्ध; **फलम्**– फल; **रजसः**– रजोगुणक; **तु**– लेकिन; **दुःखम्**– दुख; **अज्ञानम्**– व्यर्थ; **तमसः**– तमोगुण सँ; **फलम्**– फल।

पुण्यकर्मक फल शुद्ध होइत अछि आओर सात्त्विक कहाबैत अछि। लेकिन रजोगुणमे सम्पन्न कर्मक फल दुख होइत अछि आओर तमोगुणमे कैल गेल कर्म मूर्खतामे प्रतिफलित होइत अछि।

तात्पर्यः सतोगुणमे कैल गेल पुण्यकर्मक फल शुद्ध होइत अछि, अतएव ओ मुनिगण, जे समस्त मोह सँ मुक्त अछि, सुखी रहैत अछि। लेकिन रजोगुणमे कएल कर्म दुखक कारण बनैत अछि। भौतिक सुखक लेल जे भी कार्य कएल जाइत अछि, ओकर विफल निश्चित अछि। भगवद्गीताक कथन अछि कि रजोगुणक अधीन भऽकऽ जे भी कर्म कएल जाइत अछि, ओहिमे निश्चित रुप सँ महान कष्ट भोग पड़ैत अछि। एहि सँ मानसिक तुष्टि भऽ सकैत अछि कि हम ई मकान बनबेलहुँ या एतेक धन कमेलहुँ, लेकिन ई कोनो वास्तविक सुख नहि अछि। जतए धरि तमोगुणक सम्बन्ध अछि, कर्ता केँ किछु ज्ञान नहि रहैत, अतएव ओकर समस्त कार्य ओहि समय दुखदायक होइत अछि आओर बादमे ओकरा पशु जीवनमे जा पड़ैत अछि। पशु जीवन सदैव दुखमय अछि, यद्यपि मायाक वशीभूत भऽकऽ एकरा समझि नहि पाबैत अछि। पशुक वध भी तमोगुणक कारण अछि।

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥१७॥

सत्वात्– सतोगुण सँ; **सञ्जायते**– उत्पन्न होइत अछि; **ज्ञान**– ज्ञान; **रजसः**– रजोगुण सँ; **लोभः**– लोभ, लालच; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी; **प्रमाद**– पागलपन; **मोहौ**– मोह; **तमसः**– तमोगुण सँ; **भवतः**– होइत

अछि; **अज्ञानम्**– अज्ञान।

सतोगुण सँ वास्तविक ज्ञान उत्पन्न होइत अछि, रजोगुण सँ लोभ उत्पन्न होइत अछि आओर तमोगुण सँ अज्ञान, प्रमाद आओर मोह उत्पन्न होइत अछि।

तात्पर्यः कृष्णभावनामृतक माध्यम सँ समाजमे सतोगुण विकसित हैत। सतोगुण विकसित भऽ गेला पर लोग वस्तु केँ असली रूपमे देखि सकत। तमोगुणमे रहएवाला लोग पशुतुल्य होइत अछि आओर ओ वस्तु केँ स्पष्ट रूपमे नहि देखि पाबैत अछि। वास्तविक ज्ञानक शिक्षा नहि मिललाक कारण ओ अनुत्तरदायी बनि जाइत अछि। एहि उच्छृंखलता केँ रोकक लेल जनतामे सतोगुण उत्पन्न कर वाली शिक्षा देव आवश्यक अछि। सतोगुणमे शिक्षित भेला पर लोग सुखी एवं सम्पन्न भऽ सकैत अछि।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥१८॥

उर्ध्वम्– ऊपर; **गच्छन्ति**– जाइत अछि; **सत्त्व-स्था**– जे सतोगुणमे स्थित अछि; **मध्ये**– मध्य मे; **तिष्ठन्ति**– निवास करैत अछि; **राजसाः**– रजोगुणी; **जघन्य**– गर्हित; **गुण**– गुण; **वृत्तिस्थाः**– जकर वृत्ति या व्यवसाय; **अधः**– नीचा, निम्न; **गच्छति**– जाइत अछि; **तामसाः**– तमोगुणी लोग।

सतोगुणी व्यक्ति क्रमशः उच्चलोक केँ ऊपर जाइत अछि, रजोगुणी एहि पृथ्वीमे रहि जाइत अछि आओर जे अत्यन्त गर्हित तमोगुणमे स्थित अछि, ओ नीच नरक लोक केँ जाइत अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे तीनू गुणक कर्मक फल केँ स्पष्ट रुप सँ बताएल गेल अछि। जीवमे जाहि मात्रामे सतोगुणक विकास होइत अछि, ओकरे अनुसार ओकरा विभिन्न स्वर्ग लोकमे भेजल जाइत अछि। सर्वोच्च लोक, सत्यलोक या ब्रह्मलोक अछि जतय एहि ब्रह्माण्डक प्रधान व्यक्ति, ब्रह्मा जी निवास करैत छथि। रजोगुण मिश्रित होइत अछि। ई सतो तथा तमो गुणक मध्यमे होइत अछि। मनुष्य सदैव शुद्ध नहि होइत अछि, लेकिन यदि ओ पूर्णतया रजोगुणी हो, तो ओ एहि पृथ्वी पर केवल राजा या धनी व्यक्तिक रुपमे रहैत अछि। लेकिन गुणक मिश्रण होइत रहला सँ ओ नीचा भी जा सकैत अछि। एहि पृथ्वी पर रजो या तमोगुणी

लोग बलपूर्वक कोनो मशीनक द्वारा उच्चतर लोकमे नहि पहुँच सकैत अछि। तमोगुणी तथा रजोगुणी लोगक लेल सतोगुणीक सुअवसर अछि आओर ओ कृष्णभावनामृत विधि सँ प्राप्त भऽ सकैत अछि। लेकिन जे ई सुअसवरक लाभ नहि उठाबैत अछि, ओ निम्नतर गुणमे बनल रहत।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥१९॥

न– नहि; **अन्यम्**– दोसर; **गुणेभ्यः**– गुणक अतिरिक्त; **कर्तारम्**– कर्ता; **यदा**– जखन; **द्रष्टा**– देखवाला; **अनुपश्यति**– ठीक सँ देखैत अछि; **गुणेभ्यः**– गुण सँ; **च**– तथा; **परम्**– दिव्य; **वेत्ति**– जानैत अछि; **मत-भावम्**– हमर स्वभाव केँ; **सः**– ओ; **अधिगच्छति**– प्राप्त होइत अछि।

जखन क्यो ई बढ़ियाँ तरह जानि लैत अछि कि समस्त कार्यमे प्रकृतिक तीनू गुणक अतिरिक्त अन्य कोनो कर्ता नहि होइत अछि, आओर जखन ओ परमेश्वर केँ जानि लैत अछि, जे एहि तीनू गुण सँ परे अछि तो ओ हमर दिव्य स्वभाव केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः जीव विभिन्न कर्मक कर्ता नहि होइत अछि ओकरा बाध्य भऽकऽ कर्म करए पड़ैत अछि किएक तऽ ओ विशेष प्रकारक शरीरमे स्थित रहैत अछि, जकर संचालन प्रकृतिक कोनो गुण सँ होइत अछि। मनुष्य केँ जाधरि कोनो आध्यात्मिक मान्यता प्राप्त व्यक्तिक सहायता नहि मिलैत अछि ताधरि ओ ई नहि समझि सकैत कि ओ वास्तवमे कतय स्थित अछि। प्रमाणिक गुरुक संगति सँ ओ अपन वास्तविक स्थिति समझि सकैत अछि, आओर ओ पूर्ण कृष्णभावनाभावितमे स्थिर भऽ सकैत अछि। एहन व्यक्ति कौखन भी प्रकृतिक गुणक चमत्कार सँ नियन्त्रित नहि होइत अछि। सातम अध्यायमे बताएल गेल अछि कि जे कृष्ण भगवानक शरणमे जाइत अछि, ओ प्रकृतिक कार्य सँ मुक्त भऽ जाइत अछि।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

गुणान्– गुण केँ; **एतान्**– एहि सब; **अतीत्य**– लाँघिक; **त्रीन्**– तीन;

देही– देहधारी; **देह**– शरीर; **समुद्भवान्**– उत्पन्न; **जन्म**– जन्म; **मृत्यु**– मृत्यु; **जरा**– बुढ़ापाक; **दु:खै:**– दुख सँ; **विमुक्त:**– मुक्त; **अमृतम्**– अमृत; **अश्नुते**– भोगैत अछि।

जखन देहधारी जीव भौतिक शरीर सँ सम्बद्ध एहि तीनू गुण केँ लाँघमे समर्थ होइत अछि, तो ओ जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा ओकर कष्ट सँ मुक्त भऽ सकैत अछि, आओर एहि जीवनमे अमृतक भोग करि सकैत अछि।

तात्पर्य: यद्यपि मनुष्य एहि भौतिक शरीरक भीतर रहैत अछि, लेकिन अपन आध्यात्मिक ज्ञानक उन्नतिक द्वारा ओ प्रकृतिक गुणक प्रभाव सँ मुक्त भऽ सकैत अछि। ओ एहि शरीरमे आध्यात्मिक जीवनक सुखोपभोगक सकैत अछि, किएक तऽ एहि शरीरक बाद हुनका वैकुण्ठ जेनाई निश्चित अछि। लेकिन ओ एहि शरीरमे आध्यात्मिक सुख उठा सकैत अछि। जखन मनुष्य प्रकृतिक गुणक प्रभाव सँ मुक्त भऽ जाइत अछि, तो ओ भक्तिमे प्रविष्ट होइत अछि।

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते॥२१॥

अर्जुनः उवाय– अर्जुन कहलखिन; **कैः**– कोन (किन); **लिङ्गैः**– लक्षण सँ; **त्रीन्**– तीनू; **गुणान्**– गुण केँ; **एतान्**– ई सब; **अतीतः**– लाँघल; **भवति**– अछि; **प्रभो**– हे प्रभु; **किम्**– की (क्या); **आचारः**– आचरण; **कथम्**– कोना; **च**– भी; **एतान्**– ई सब; **त्रीन्**– तीनू; **गुणान्**– गुण केँ; **अतिवर्तते**– लाँघैत अछि।

अर्जुन पूछलखिन:–हे भगवन्! जे एहि तीनू गुण सँ परे अछि, ओ कोन लक्षणक द्वारा जानल लाइत अछि? ओकर आचरण केहन होइत अछि? आओर ओ प्रकृतिक गुण केँ कोन प्रकार लाँघैत अछि?

तात्पर्यः एहि श्लोकमे अर्जुनक प्रश्न अत्यन्त उपयुक्त अछि। ओ ओहि पुरुषक लक्षण जानव चाहैत छथि जे भौतिक गुण केँ लाँघि लेलक अछि। सर्वप्रथम ओ एहन दिव्य पुरुषक लक्षणक विषयमे जिज्ञासा करैत

छथि कि क्यो कोना समझतै कि ओ प्रकृतिक गुणक प्रभाव केँ लाँघि चुकल अछि। हुनकर दोसर प्रश्न अछि कि एहन व्यक्ति कोन प्रकारेँ रहैत अछि आओर ओकर कार्यकलाप की अछि? की ओ नियमित होइत अछि, या अनियमित? फेर अर्जुन ओहि साधनक विषयमे पूछैत छथि, जाहि सँ ओ दिव्य स्वभाव (प्रकृति) प्राप्त करि सकथि। ओ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अछि। अर्जुन द्वारा पूछल गेल ई सब प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अछि आओर भगवान् ओकर जवाब दैत छथिन।

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥२२॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येवं योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥२३॥
समदु:खसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥२४॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः सा उच्यते॥२५॥

श्रीभगवानु उवाचः– भगवान् कहलथिन; **प्रकाशम्**– प्रकाश; **च**– तथा; **प्रवृत्तिम**– आसक्ति; **मोहम्**– मोह; **एव च**– भी; **पाण्डव**– हे पाण्डुपुत्र; **न द्वेष्टि**– घृणा नहि करैत; **सम्प्रवृत्तानि**– यद्यपि विकसित भेला पर; **न निवृत्तानि**– न ही विकास केँ रुकला पर; **काङ्क्षति**– चाहैत अछि; **उदासीनवत्**– निरपेक्षक भाँति; **आसीनः**– स्थित; **गुणैः**– गुणक द्वारा; **यः**– जे; **न**– नहि; **विचाल्यते**– विचलित होइत अछि; **गुणाः**– गुण; **वर्तन्ते**– कार्यशील होइत अछि; **इति एवम्**– एहि प्रकार जानैत; **यः**– जे; **अवतिष्ठति**– रहैत आएल अछि; **इङ्गते**– हिलैत डोलैत अछि; **सम**– समान; **दु:ख**– दुख; **सुखः**– सुख मे; **स्वस्थः**– अपनेमे स्थित; **सम**– समान रुप सँ; **लोष्ट**– माटिक ढेला; **अश्म**– पत्थर; **काञ्चनः**– सोना; **तुल्यः**– समभाव; **प्रिय**– प्रिय; **अप्रियः**– अप्रिय केँ; **धीरः**– धीर; **तुल्य**– समान; **निन्दा**– बुराई; **आत्मसंस्तुति**– अपन प्रशंसा मे; **मान**– सम्मान; **अपमानयोः**– अपमान मे; **तुल्यः**– समान; **मित्र**– मित्र; **अरि**– शत्रुक;

पक्षयोः– पक्षक, दल केँ; **सर्व**– सब केँ; **आरम्भ**– प्रयत्न, उद्यम; **परित्यागी**– त्याग करएवला; **गुणातीतः**– प्रकृतिक गुण सँ परे; **सः**– ओ; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

भगवान् कहलथिन–हे पाण्डुपुत्र! जे प्रकाश, आसक्ति तथा मोहक उपस्थित भेला पर न तो ओकरा सँ घृणा करैत अछि आओर न तो लुप्त भऽ जेवा पर ओकर इच्छा करैत अछि, जे भौतिक गुणक एहि समस्त प्रतिक्रिया सँ निश्चल तथा अविचलित रहैत अछि आओर ई जानिक केवल गुण ही क्रियाशील अछि, उदासीन तथा दिव्य बनल रहैत अछि, जे अपने आपमे स्थित अछि आओर सुख तथा दुख केँ एक समान मानैत अछि, जे मिट्टीक ढ़ेला, पत्थर एवं स्वर्णक टुकड़ा केँ समान दृष्टि सँ देखैत अछि, जे अनुकूल तथा प्रतिकूलक प्रति समान बनल रहैत अछि, जे धीर अछि आओर प्रशंसा तथा बुराई, मान तथा अपमानमे समान भाव सँ रहैत अछि, जे शत्रु तथा मित्रक संग समान व्यवहार करैत अछि आओर जे समस्त भौतिक कार्यक परित्यागक देलक अछि, एहन व्यक्ति केँ प्रकृतिक गुण सँ अतीत कहैत अछि।

तात्पर्यः अर्जुन भगवान् कृष्ण सँ तीन प्रश्न केलखिन आओर भगवान् क्रमशः एक एकक उत्तर देलथिन। एहि श्लोकमे कृष्ण पहिने ई संकेत कैरत छथि कि जे व्यक्ति दिव्य पद पर स्थित अछि, ओ न तो ककरो सँ ईर्ष्या करैत अछि आओर न कोनो वस्तुक लेल लालायित रहैत अछि। जखन कोनो जीव एहि संसारमे भौतिक शरीर सँ युक्त भऽकऽ रहैत अछि, तो ई समझबाक चाही कि ओ प्रकृतिक तीनू गुणमे से कोनो एकक वशमे अछि। जखन ओ एहि शरीर सँ बाहर भऽ जाइत अछि, तो ओ प्रकृतिक गुण सँ छूटि जाइत अछि। लेकिन जाधरि ओ शरीर सँ बाहर नहि आवि जाइत अछि, ताधरि ओकरा उदासीन रहवाक चाही। ओकरा भगवानक भक्तिमे लागि जेवाक चाही जाहि सँ भौतिक देह सँ ओकर ममत्व स्वतः विस्मृत भऽ जाए। जखन मनुष्य भौतिक शरीरक प्रति सचेत रहैत अछि तो ओ केवल इन्द्रियतृप्तिक लेल कर्म करैत अछि, लेकिन जखन ओ अपन चेतना कृष्णमे स्थानान्तरित कऽ दैत अछि तो इन्द्रियतृप्ति स्वतः रुकि जाइत अछि। मनुष्य केँ एहि भौतिक शरीरक आवश्यकता

नहि रहि जाइत अछि आओर न ओकरा एहि भौतिक शरीरक आदेशक पालन करक आवश्यकता रहि जाइत अछि। शरीरक भौतिक गुण कार्य करत, लेकिन आत्मा एहन कार्य सँ पृथक् रहत। ओ न तो शरीरक भोग चाहैत अछि, न ओहि सँ बाहर जाएब चाहैत अछि। एहि प्रकार दिव्य पद पर स्थित भक्त स्वयमेव मुक्त भऽ जाइत अछि।

अगिला प्रश्न दिव्यपद पर आसीन व्यक्तिक व्यवहारक सम्बन्धमे अछि। भौतिक पद पर स्थित व्यक्ति शरीर कें मिलएवला तथाकथित मान तथा अपमान सँ प्रभावित होइत अछि, लेकिन दिव्य पद पर आसीन व्यक्ति कौखन एहन मिथ्या मान तथा अपमान सँ प्रभावित नहि होइत अछि। ओ कृष्णभावनामृतमे रहि कऽ अपन कर्तव्य निवाहैत अछि आओर एकर चिन्ता नहि करैत कि क्यो व्यक्ति ओकर सम्मान करैत अछि या अपमान ओ समभाव वाला होइत अछि आओर सब वस्तुक समान धरातल पर देखैत अछि। हुनका सामाजिक तथा राजनीतिक विषय तनिक भी प्रभावित नहि कऽ पाबैत, किएक तऽ ओ क्षणिक उथल-पुथल तथा उत्पातक स्थिति सँ अवगत रहैत छथि। ओ अपना लेल कोनो प्रकारक प्रयास नहि करैत अछि। एहन आचरण सँ मनुष्य वास्तवमे दिव्य पद पर स्थित भऽ सकैत अछि।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥२६॥

माम्- हमर; **च**- भी; **यः**- जे व्यक्ति; **अव्यभिचारेण**- बिना विचलित भेने; **भक्तियोगेन**- भक्ति सँ; **सेवते**- सेवा करैत अछि; **सः**- ओ; **गुणान्**- प्रकृतिक गुण कें; **समतीत्य**- लाँघिक; **एतान्**- एहि सब; **ब्रह्म-भूयाय**- ब्रह्म पद तक ऊपर उठल; **कल्पते**- भऽ जाइत अछि।

जे समस्त परिस्थितिमे अविचलित भाव सँ पूर्ण भक्तिमे प्रवृत्त होइत अछि, ओ तुरन्त ही प्रकृतिक गुण कें लाँघि जाइत अछि आओर एहि प्रकार ब्रह्मक स्तर तक पहुँच जाइत अछि।

तात्पर्यः ई श्लोक अर्जुनक तृतीय प्रश्नक उत्तर स्वरुप अछि। प्रश्न अछि-दिव्य स्थित प्राप्त करक साधन की अछि? ई भौतिक जगत् प्रकृतिक गुणक चमत्कारक अन्तर्गत कार्यक रहल अछि। मनुष्य कें गुणक कर्म

सँ विचलित नहि होमक चाही। अपन चेतना केँ कृष्णकार्यमे लगावे। कृष्णकार्य भक्तियोगक नाम सँ विख्यात अछि, जाहिमे सदैव कृष्णक लेल कार्य करब होइत अछि। कृष्णक असंख्य अंश अछि। जे कृष्ण केँ कोनो भी रुप या हुनकर पूर्णांशिक सेवामे प्रवृत्त होइत अछि, ओकरा दिव्य पद पर स्थित समझबाक चाही। कृष्णक सब रुप पूर्णतया दिव्य आओर सच्चिदानन्द स्वरुप अछि। ईश्वरक एहन रुप सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञ होइत अछि आओर ओहिमे समस्त दिव्य गुण पायल जाइत अछि। जाहि प्रकार सोनाक कण सोनाक खानक अंश अछि। एहि प्रकार जीव अपन आध्यात्मिक स्थितिमे सोनाक समान या कृष्णक समान ही गुण वाला होइत अछि। किन्तु व्यष्टित्वक अन्तर बनल रहैत अछि अन्यथा भक्तियोगक प्रश्न ही नहि उठत। भक्तियोगक अर्थ अछि कि भगवान् छथि, भक्त अछि तथा भगवान् आओर भक्तक बीच प्रेमक आदान-प्रदान चलैत रहैत अछि। अतएव भगवान्मे आओर भक्तमे दू व्यक्तिक व्यष्टित्व वर्तमान रहैत अछि। दिव्य स्तर पर स्थित भक्त ही क्यो भगवानक सेवाक सकैत अछि। वैदिक साहित्यमे कहल गेलै अछि कि गुणात्मक रुप सँ मनुष्य केँ ब्रह्म सँ एकाकार भऽ जेवाक चाही। लेकिन ब्रह्मत्व प्राप्त करला पर मनुष्य व्यष्टि आत्माक रुपमे अपन शाश्वत ब्रह्म-स्वरुप नहि खोबैत अछि।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥२७॥

ब्रह्मणः- निराकार ब्रह्मज्योतिक; **हि**- निश्चय ही; **प्रतिष्ठा**- आश्रय; **अहम्**- हम छी; **अमृतस्य**- अमर्त्यक; **अव्ययस्य**- अविनाशीक; **शाश्वतस्य**- शाश्वतक; **च**- तथा; **धर्मस्य**- स्वभाविक स्थिति (स्वरुप) क; **सुखस्य**- सुखक; **एकान्तिकस्य**- चरम, अन्तिम; **च**- भी।

हम ही ओहि निराकार ब्रह्मक आश्रय छी, जे अमर्त्य, अविनाशी तथा शाश्वत अछि आओर चरम सुखक स्वभाविक पद अछि।

तात्पर्यः ब्रह्मक स्वरुप अछि अमरता, अविनाशिता, शाश्वता तथा सुख। ब्रह्म तो दिव्य साक्षात्कारक शुभारम्भ अछि। परमात्मा एहि दिव्य साक्षात्कारक मध्य या द्वितीय अवस्था अछि आओर भगवान् परम सत्यक

चरम साक्षात्कार अछि। अतएव परमात्मा तथा निराकार ब्रह्म दूनू ही परम पुरुषक भीतर रहैत अछि। सातम अध्यायमे बताएल गेल अछि कि प्रकृति परमेश्वरक अपरा शक्तिक अभिव्यक्ति अछि। भगवान् एहि अपरा प्रकृतिमे परा प्रकृति कैँ गर्भस्थ करैत छथि आओर भौतिक प्रकृतिक लेल ई आध्यात्मिक स्पर्श अछि। जखन एहि प्रकृति द्वारा बद्धजीव आध्यात्मिक ज्ञानक अनुशीलन कर आरम्भ करैत अछि, तो ओ एहि भौतिक जगतक पद सँ ऊपर उठ लागैत अछि आओर क्रमशः परमेश्वरक ब्रह्मबोध तक उठि जाइत अछि। ब्रह्मबोधक प्राप्ति आत्म-साक्षात्कारक दिशामे प्रथम अवस्था अछि। एहि अवस्थामे ब्रह्म-भूत व्यक्ति भौतिक पद कैँ पार करि जाइत अछि, लेकिन ओ ब्रह्म साक्षात्कारमे पूर्णता प्राप्त नहि करि पाबैत अछि। यदि ओ चाहति तो ब्रह्म पद पर बनल रहि सकैत छथि आओर धीरे-धीरे परमात्माक साक्षात्कार कैँ आओर फिर भगवानक साक्षात्कार प्राप्त भऽ सकैत छथि। परमेश्वर छह ऐश्वर्य सँ पूर्ण छथि आओर जखन भक्त निकट पहुँचैत अछि तो एहि छह ऐश्वर्यक आदान-प्रदान होइत अछि। राजाक सेवक लगभग राजाक ही समान पदक भोग करैत अछि। एहि प्रकारक शाश्वत सुख, अविनाशी सुख तथा शाश्वत जीवन भक्तिक संग-संग चलैत अछि। भक्तिमे प्रवृत्त व्यक्तिमे ई पहिले सँ ही प्राप्त रहैत अछि।

सारांशः जीव यद्यपि स्वभाव सँ ब्रह्म होइत अछि, लेकिन ओहिमे भौतिक जगत् पर प्रभुत्व जमाबैक इच्छा रहैत अछि, जाहि कारण ओ नीचा गिर जाइत अछि। अपन स्वभाविक स्थितिमे जीव तीनू गुण सँ परे होइत अछि। लेकिन प्रकृतिक संसर्ग सँ ओ अपन तीनू गुण-सतो, रजो तथा तमोगुणमे बँधि जाइत अछि। एहि तीनू गुणक संसर्गक कारण ओकरामे भौतिक जगत् पर प्रभुत्व जताबैक इच्छा होइत अछि। पूर्ण कृष्णभावनामृतमे भक्तिमे प्रवृत्त भेला पर ओ तुरन्त दिव्य पद कैँ प्राप्त होइत अछि आओर ओकरामे प्रकृति कैँ वशमे करक जे अवैध इच्छा अछि, ओ दूर भऽ जाइत अछि। अतएव भक्तक संगति करिक भक्तिक नौ विधि- श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदिक अभ्यास करक चाही। धीरे-धीरे एहन संगति सँ मनुष्यक प्रभुता जतेवाक इच्छा समाप्त भऽ जाइत आओर ओ भगवानक दिव्य प्रेमाशक्तिमे दृढ़तापूर्वक स्थित भऽ सकत। भगवानक

भक्ति अतीव सरल अछि। मनुष्य केँ चाही कि भगवानक सेवामे लगे, भगवानक लीलास्थलक दर्शन करे, भगवानक विभिन्न कार्यकलाप आओर हुनकर भक्तक संग प्रेम विनिमयक बारेमे पढ़े, हरे राम, हरे कृष्णक दिव्य ध्वनिक कीर्तन करे आओर भगवानक आविर्भाववला दिनमे उपवास करे। एना केला सँ मनुष्य समस्त भौतिक गतिविधि सँ विरक्त भऽ जाइत। एहि प्रकार जे व्यक्ति अपना केँ ब्रह्मबोध (ब्रह्म ज्योति)क विभिन्न प्रकारमे स्थितक सकैत अछि, ओ गुणात्मक रुपमे भगवानक तुल्य छथि।

एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक चौदहम अध्याय ''**प्रकृतिक तीन गुण**'' पूर्ण भेल।



चतुःश्लोकी

सदा सर्वात्मभावेन भजनीयो व्रजेश्वरः।
करिष्यति स एवास्मदैहिकं पारलौकिकम्॥१॥

अन्याश्रयो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः।
स्वकीये स्वात्मभावश्च कर्तव्यः सर्वथा सदा॥२॥

सदा सर्वात्मना कृष्णः सेव्यः कालादिदोषनुत्।
तद्भक्तेषु च निर्दोषभावेन स्थेयमादरात्॥३॥

भगवत्येव सततं स्थापनीयं मनः स्वयम्।
कालोऽयं कठिनोऽपि श्रीकृष्णभक्तान्न बाधते॥४॥

अध्याय-पन्द्रह



पुरुषोत्तम योग

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥१॥

श्रीभगवान् उवाच– भगवान् कहलथिन; **ऊर्ध्व मूलम्**– ऊपरक ओर जड़ि; **अधः**– नीचाक ओर; **शाखम्**– शाखाएँ; **अश्वत्थम्**– उश्वत्थ वृक्ष केँ; **प्राहुः**– कहल गेलै अछि; **अव्ययम्**– शाश्वत; **छन्दांसि**– वैदिक स्त्रोत; **यस्य**– जकर; **पर्णानि**– पत्ता; **यः**– जे क्यो; **तम्**– ओकरा; **वेद**– जानैत अछि; **सः**– ओ; **वेदवित्**– वेदक ज्ञाता।

भगवान् कहलथिन–कहल जाइत अछि कि एक शाश्वत अश्वत्थ वृक्ष अछि, जकर जैड़ तो ऊपरक ओर आओर शाखा सब नीचाक ओर तथा पत्ता वैदिक स्तोत्र अछि। जे क्यो एहि वृक्ष केँ जानैत अछि, ओ वेदक ज्ञाता अछि।

तात्पर्यः भक्तियोगक महत्ताक विवेचनाक बाद ई पूछल जा सकैत अछि– वेदक की प्रयोजन अछि? एहि अध्यायमे बताएल गेल अछि कि वैदिक अध्ययनक प्रयोजन कृष्ण केँ समझब अछि। अतएव जे कृष्णभावनाभावित छथि, जे भक्तिमे रत छथि, ओ वेद केँ पहिने सँ

जानैत छथि। एहि भौतिक जगत्क बन्धनक तुलना अश्वत्थक वृक्ष सँ कैल गेल अछि। जे व्यक्ति सकाम कर्ममे लागल अछि, ओकरा लेल एहि वृक्षक कोनो अन्त नहि अछि। ओ एक शाखा सँ दोसरमे आओर दोसर सँ तेसरमे घूमैत रहैत छथि। एहि जगत् रुपी वृक्षक कोनो अन्त नहि अछि आओर जे एहि वृक्षमे आसक्त अछि, ओकरा मुक्तिक कोनो सम्भावना नहि अछि। वैदिक स्तोत्र, जे आत्मोन्नतिक लेल अछि, ओ ही एहि वृक्षक पत्ता अछि। एहि वृक्षक जैड़ ऊपरक ओर बढ़ैत अछि, किएक तऽ ओ एहि ब्रह्माण्डक सर्वोच्चलोक सँ प्रारम्भ होइत अछि, जतय ब्रह्म स्थित अछि। यदि क्यो एहि मोह रुपी अविनाशी वृक्ष केँ समझि लैत अछि, तो ओ एहि सँ बाहर निकलि सकैत अछि। एहि अध्यायक प्रारम्भमे संसार सँ आसक्ति तोड़ैक विधिक वर्णन भेल अछि। एहि संसारक जैड़ ऊपर केँ बढ़ैत अछि। एकर अर्थ अछि कि ब्रह्माण्डक सर्वोच्चलोक सँ पूर्ण भौतिक पदार्थ सँ ई प्रक्रिया शुरु होइत अछि। ओतहि सँ समस्त ब्रह्ममाण्डक विस्तार होइत अछि, जाहिमे अनेक लोक ओकर शाखा रुपमे होइत अछि। एकर फल जीवक कर्मक फलक अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षक द्योतक अछि। ई वृक्ष वास्तविक वृक्षक प्रतिबिम्ब भेलाक कारण वास्तविक प्रतिरुप अछि। आध्यात्मिक जगतमे सब किछु अछि। ब्रह्म केँ निर्विशेषवादी एहि भौतिक वृक्षक मूल मानैत अछि आओर सांख्य दर्शनक अनुसार एहि मूल सँ पहिने प्रकृति, पुरुष आओर तीन गुण निकलैत अछि आओर पुनः पाँच स्थूल तत्त्व (पंच महाभूत), फेर दस इन्द्रिय (दशेन्द्रिय), मन आदि। एहि प्रकार ओ समस्त संसार केँ चौबीस तत्त्वमे विभाजित करैत अछि। यदि ब्रह्म समस्त अभिव्यक्तिक केन्द्र अछि, तो एक प्रकार सँ ई भौतिक जगत १८० अंश (गोलादि)मे अछि आओर दोसर १८० अंश (गोलार्द्ध)मे आध्यात्मिक जगत अछि। चूँकि ई भौतिक जगत उल्टा प्रतिबिम्ब अछि, अतः आध्यात्मिक जगतमे भी एहि प्रकारक विभिन्नता होमक चाही। प्रकृति परमेश्वरक बहिरंगा शक्ति अछि आओर पुरुष साक्षात् परमेश्वर छथि। चूँकि ई अभिव्यक्ति भौतिक अछि, अतः क्षणिक अछि, प्रतिबिम्ब भी क्षणिक होइत अछि, किएक तऽ कौखन ई दिखैत अछि आओर कौखन नहि दिखाइत अछि। परन्तु ई श्रोत जतय सँ ई प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित होइत अछि, शाश्वत

अछि। वेदक उद्देश्य, भगवान् स्वयं प्रकट कैलन अछि आओर ओ अछि एहि प्रतिबिम्बित वृक्ष केँ काटि केँ आध्यात्मिक जगतक वास्तविक वृक्ष केँ प्राप्त करब।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥२॥

अधः– नीचा; **च**– तथा; **ऊर्ध्वम्**– ऊपरक ओर; **प्रसृताः**– फैलल; **तस्य**– ओकर; **शाखाः**– शाखा; **गुण**– प्रकृति गुण द्वारा; **प्रवृद्धाः**– विकसित; **विषय**– इन्द्रियविषय; **प्रवालाः**– टहनी; **अधः**– नीचाक ओर; **मूलानि**– जड़ि केँ; **अनुसन्ततानि**– विस्तृत; **कर्म**– कर्म करक लेल; **अनुबन्धीनि**– बँधा; **मनुष्य लोके**– मानव समाजक जगत मे।

एहि वृक्षक साखा ऊपर तथा नीचा फैलल अछि आओर प्रकृतिक तीन गुण द्वारा पोषित अछि। एकर टहनी इन्द्रियविषय अछि। एहि वृक्षक जैड़ नीचाक ओर भी जाइत अछि, जे मानव समाजक सकाम कर्म सँ बाँधल अछि।

तात्पर्यः अश्वत्थ वृक्षक एतय आओर भी व्याख्या कैल गेल अछि। एकर शाखा चतुर्दिक फैलल अछि। निचला भागमे जीवक विभिन्न योनि अछि यथा मनुष्य, पशु, घोड़ा, गाय, कुत्ता तथा बिल्ली आदि। ई सब वृक्षक शाखाक निचला भागमे स्थित अछि। लेकिन ऊपर का भागमे जीवक उच्चयोनि अछि–यथा देव, गन्धर्व तथा अन्य बहुत रास उच्चतर योनि। जाहि प्रकार सामान्य वृक्षक पोषण जल सँ होइत अछि, ओहि प्रकार ई वृक्ष प्रकृतिक तीन गुण द्वारा पोषित होइत अछि। कौखन–कौखन हम देखैत छी कि जलाभाव सँ कोनो–कोनो भूखण्ड वीरान भऽ जाइत अछि, तो कोनो खण्ड लहलहाइत अछि, एहि प्रकार जतय प्रकृतिक कोनो विशेष गुणक आनुपातिक आधिक्य होइत अछि, ओतय ओकर अनुरुप जीवक योनि प्रकट होइत अछि। वृक्षक टहनी इन्द्रिय विषय अछि। विभिन्न गुणक विकास सँ हम विभिन्न प्रकारक इन्द्रियक विकास करैत छी आओर एहि इन्द्रियक द्वारा हम विभिन्न इन्द्रिय विषयक भोग करैत छी।

शाखाक सिरे इन्द्रिय अछि–यथा कान, नाक, आँखि आदि। जे विभिन्न इन्द्रियविषयक भोगमे आसक्त अछि। टहनी शब्द, रुप, स्पर्श आदि इन्द्रिय विषय अछि। सहायक तऽ जैड़ राग तथा द्वेष अछि, जे विभिन्न प्रकारक कष्ट तथा इन्द्रिय भोगक विभिन्न रुप अछि। धर्म–अधर्मक प्रवृत्ति एकरे गौण जैड़ सँ उत्पन्न भेल मानल जाइत अछि, जे चारु दिशामे फैलल अछि। वास्तविक जैड़ तो ब्रह्मलोकमे अछि, किन्तु अन्य जैड़ मर्त्यलोकमे अछि। जखन मनुष्य उच्चलोकमे पुण्यकर्मक फल भोगि चूकैत अछि, तो ओ एहि धरा पर उतरैत अछि आओर उन्नतिक लेल सकाम कर्मक नवीनीकरण करैत अछि। ई मनुष्यलोक कर्मक्षेत्र मानल जाइत अछि।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥३॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥४॥

न– नहि; **रुपम्**– रुप; **अस्य**– एहि वृक्षक; **इह**– एहि संसार मे; **तथा**– भी; **उपलभ्यते**– अनुभव कैल जा सकैत अछि; **न**– कहियो नहि; **अन्तः**– अन्त; **च**– भी; **आदिः**– प्रारम्भ; **सम्प्रतिष्ठा**– नीव; **अश्वत्थम्**– अश्वत्थ वृक्ष केँ; **एनम्**– एहि; **सुविरुढ़**– अत्यन्त दृढ़ता सँ; **मूलम्**– जड़िवाला; **असङ्ग शस्त्रेण**– विरक्तिक हथियार सँ; **दृढ़ेन**– दृढ़; **छित्वा**– काटिक; **ततः**– तत्पश्चात्; **पदम्**– स्थिति केँ; **तत्**– ओहि; **परिमार्गितव्यम्**– खोजक चाही; **यस्मिन्**– जतय; **गताः**– जाक; **न**– कहियो नहि; **निवर्तन्ति**– वापस आबैत अछि; **भूयः**– पुनः; **तम्**– ओकरा; **एव**– ही; **आद्यम्**– आदि; **पुरुषम्**– भगवानक; **प्रपद्ये**– शरणमे जाइत छी; **यतः**– जाहि मे; **प्रवृत्तिः**– प्रारम्भ; **प्रसृता**– विस्तीर्ण; **पुराणी**– अत्यन्त पुरान।

एहि वृक्षक वास्तविक स्वरुपक अनुभव एहि जगतमे नहि कएल जा सकैत अछि। क्यो भी नहि समझि सकैत अछि एकर आदि कतय अछि, अन्त कहाँ अछि या एकर आधार कहाँ अछि? लेकिन

मनुष्य केँ चाही कि एहि दृढ़ मूल बला वृक्ष केँ विरक्तिक शस्त्र सँ काटि गिराए। तत्पश्चात् ओकरा एहन स्थानक खोज करक चाही जतय जा कऽ लौटए नहि पड़े आओर ओहि भगवानक शरण ग्रहणक लेल जाए, जाहि सँ अनादि काल सँ प्रत्येक वस्तुक सूत्रपात तथा विस्तार होइत आएल अछि।

तात्पर्यः आब ई स्पष्ट कहि देल गेल अछि कि एहि अश्वत्थ वृक्षक वास्तविक स्वरुप केँ एहि भौतिक जगतमे नहि समझल जा सकैत अछि। चूँकि एकर जैड़ ऊपरक ओर अछि, अतः वास्तविक वृक्षक विस्तार विरुद्ध दिशामे होइत अछि। जखन वृक्षक भौतिक विस्तारमे क्यो फँसि जाइत अछि तो ओकरा न तो ई पता चल पाबैत अछि कि ई कतेक दूर तक फैलल अछि आओर न ओ एहि वृक्षक शुभारम्भ केँ देखि पावैत अछि। तइयो मनुष्य केँ कारणक खोज करए पड़ैत अछि। हम अमुक पिताक पुत्र छी जे अमुकक पुत्र अछि आदि का एहि प्रकार अनुसंधान केला सँ मनुष्य केँ ब्रह्मा प्राप्त होइत अछि, जिनका गर्भोदकशायी विष्णु उत्पन्न कैलनि अछि। एहि प्रकार अन्ततः भगवान् तक पहुँचल जा सकैत अछि, जतय समस्त गवेषणाक अन्त भऽ जाइत अछि। विषय भोगक आसक्ति तथा भौतिक प्रकृति पर प्रभुता अत्यन्त प्रबल होइत अछि। अतएव प्रामाणिक शास्त्र पर आधारित आत्मज्ञानक विवेचना द्वारा विरक्ति सीखक चाही आओर ज्ञानी पुरुष सँ श्रवण करक चाही। भक्तक संगतिमे रहिक एहन विवेचना सँ भगवानक प्राप्ति होइत अछि। कृष्णक शरण ग्रहण करैत ही मनुष्य स्वतः एहि भौतिक विस्तार सँ अलग भऽ जाइत अछि।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥५॥

निः– रहित; **मान**– झूठ प्रतिष्ठा; **मोहाः**– मोह; **जित**– जीत लेलक अछि; **सङ्ग**– संगतिक; **दोषाः**– त्रुटि; **अध्यात्म**– आध्यात्मिक ज्ञान मे; **नित्याः**– शाश्वत मे; **विनिवृत्त**– विलग; **कामाः**– काम सँ; **द्वन्द्वैः**– द्वैत सँ; **विमुक्ताः**– मुक्त; **सुख दुःख**– सुख तथा दुख; **संज्ञैः**– नामक; **गछन्ति**– प्राप्त करैत अछि; **अमूढ़ाः**– मोह रहित; **पदम्**– पद, स्थान केँ; **अव्ययम्**–

शाश्वत; **तत्**- ओहि।

जे झूठ प्रतिष्ठा, मोह तथा कुसंगति सँ मुक्त अछि, जे शाश्वत तत्त्व केँ समझैत अछि, जे भौतिक काम केँ नष्टक देने अछि, जे सुख तथा दुखक द्वन्द्व सँ मुक्त अछि आओर जे मोह रहित भक्त परम पुरुषक शरणागत होम जानैत अछि, ओ ओहि शाश्वत राज्य केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति एहि संसारमे सदैव सम्मानक आशा राखैत अछि, ओकरा लेल भगवानक शरणागत हैव कठिन अछि। अहंकार तो मोहक कारण होइत अछि, किएक तऽ यद्यपि मनुष्य एतय आबैत अछि, किछु काल तक रहैत अछि आओर पुनः चलि जाइत अछि, तो भी मूर्खतावश ई समझि बैठैत अछि कि ओहे एहि संसारक स्वामी अछि। एहि तरह ओ समस्त परिस्थिति केँ जटिल बना दैत अछि, आओर सदैव कष्ट उठाबैत रहैत अछि। सम्पूर्ण संसार एहि भ्रान्तिधारणाक अन्तर्गत आगाँ बढ़ैत अछि। लोग सोचैत अछि ई भूमि या पृथ्वी मानव समाजक अछि आओर ओ भूमि केँ विभाजन एहि मिथ्या धारण सँ करि राखने अछि कि एकर स्वामी छी। जखन मनुष्य एहि प्रकारक भ्रान्तधारणा सँ मुक्त भऽ जाइत अछि, तो ओ पारिवारिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्नेह सँ उत्पन्न कुसंगति सँ मुक्त भऽ जाइत अछि। ई त्रुटि पूर्ण संगति ही एहि संसार सँ बाँध वाली अछि। एहि अवस्थाक बाद ओकरा आध्यात्मिक ज्ञान विकसित कर होइत अछि। ओकरा एहन ज्ञानक अनुशीलन करक चाही कि वास्तव ओकर की छियै आओर की नहि अछि। जखन वस्तुक सही ज्ञान भऽ जाइत अछि तो ओ सुख-दुख, हर्ष-विषाद सनक द्वन्द्व सँ मुक्त भऽ जाइत अछि। ओ ज्ञान सँ परिपूर्ण भऽ जाइत आओर तखन भगवानक शरणागत बनव सम्भव भऽ जाइत अछि।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥६॥

न- नहि; **तत्**- ओ; **भासयते**- प्रकाशित होइत अछि; **सूर्यः**- सूर्य; **शशाङ्कः**- चन्द्रमा; **न**- न तो; **पावकः**- अग्नि, बिजली; **यत्**- जतय; **गत्वा**- जाक; **न**- कहियो नहि; **निर्वतन्ते**- वापस आबैत अछि; **तत्-धाम**-

ओ धाम; **परमम्**– परम; **मम**– हमर।

ओ हमर परम धाम न तो सूर्य या चन्द्रक द्वारा प्रकाशित होइत अछि आओर न अग्नि या बिजली सँ। जे लोक ओतय पहुँचि जाइत अछि, ओ एहि भौतिक जगतमे फेर सँ लौटि कऽ नहि आबैत अछि।

तात्पर्यः एतय आध्यात्मिक जगत् अर्थात् भगवान् कृष्णक धामक वर्णन भेल अछि, जकरा कृष्णलोक या गोकुल वृन्दावन कहल जाइत अछि। चिन्मय आकाशमे न तो सूर्यप्रकाशक आवश्यकता अछि, न चन्द्र प्रकश अथवा अग्नि या बिजलीक, किएक तऽ समस्त लोक स्वयं प्रकाशित अछि। एहि ब्रह्माण्डमे केवल एक लोक, सूर्य एहन छथि जे स्वयं प्रकाशित छथि। लेकिन आध्यात्मिक आकाशमे सब लोक स्वयं प्रकाशित छथि। चमचमैत तेज सँ चमकीला आकाश बनैत अछि, जकरा ब्रह्मज्योति कहैत अछि। वस्तुतः ई तेज गोलोक वृन्दावन सँ निकलैत अछि। एहि तेजक एक अंश महत् तत्त्व अर्थात् भौतिक जगत सँ आच्छादित रहैत अछि। एकर अतिरिक्त ज्योतिर्मय आकाशक अधिकांश भाग तो आध्यात्मिक लोक सँ पूर्ण अछि, जकरा वैकुण्ठ कहल जाइत अछि आओर जाहिमे सँ गोलोक वृन्दावन प्रमुख अछि। जाधरि जीव एहि अंधकारमय जगतमे रहैत अछि ताधरि ओ बद्ध अवस्थामे होइत अछि। जखने ओ एहि भौतिक जगत् रुपी मिथ्या, विकृत वृक्ष केँ काटिक आध्यात्मिक आकाशमे पहुँचैत अछि, तखने ओ मुक्त भऽ जाइत अछि। जखन ओ एतय वापस नहि आबैत अछि। एहि बद्ध जीवनमे जीव अपना केँ भौतिक जगत्क स्वामी मानैत अछि लेकिन मुक्त अवस्थामे ओ आध्यात्मिक राज्यमे प्रवेश करैत अछि आओर परमेश्वरक पार्षद बनि जाइत अछि। ओतय ओ सच्चिदानन्दमय जीवन बितबैत अछि।

श्रीभगवानुवाच

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥७॥

मम– हमर; **एव**– निश्चय ही; **अंशः**– सूक्ष्म कण; **जीवलोके**– बद्ध जीवनक संसार मे; **जीवभूतः**– बद्धजीव; **सनातनः**– शाश्वत; **मनः**– मन;

षष्ठानि– छह; **इन्द्रियाणि**– इन्द्रिय समेत; **प्रकृति**– भौतिक प्रकृति मे; **स्थानि**– स्थित; **कर्षति**– संघर्ष करैत।

एहि बद्ध जगतमे सब जीव हमर शाश्वत अंश अछि। बद्ध जीवनक कारण ओ छवो इन्द्रिय सँ घोर संघर्षक रहल अछि, जाहिमे मन भी सम्मिलित अछि।

तात्पर्यः जीव परमेश्वरक सनातन रुप सँ सूक्ष्म अंश अछि। एना नहि अछि कि बद्ध जीवनमे ओ एक व्यष्टित्व धारण करैत अछि आओर मुक्त अवस्थामे ओ परमेश्वर सँ एकाकार भऽ जाइत अछि। ओ सनातनक अंश रुप अछि। वेद वचनक अनुसार परमेश्वर अपन आपकेँ असंख्य रुपमे प्रकट करिक विस्तार करैत अछि, जाहिमे सँ व्यक्तिगत विस्तार विष्णु तत्त्व कहाबैत अछि आओर गौण विस्तार जीव कहाबैत अछि। दोसर शब्दमे, विष्णुतत्त्व निजी विस्तार (स्वांश) अछि आओर जीव विभिन्नांश (प्रथकीकृत अंश) अछि। अपन स्वांश द्वारा ओ भगवान् राम, नृसिंह देव, विष्णुमूर्ति तथा वैकुण्ठलोकक प्रधान देवक रुपमे प्रकट होइत छथि। विभिन्नांश अर्थात् जीव, सनातन सेवक होइत अछि। भगवानक स्वांश सदैव विद्यमान रहैत अछि। एहि प्रकार जीवक विभिन्नांशक अपन स्वरुप होइत अछि। परमेश्वरक विभिन्नांश भेलाक कारण जीवमे भी हुनकर आंशिक गुण पायल जाइत अछि, जाहिमे सँ स्वतंत्रता एक अछि। प्रत्येक जीवक आत्मा रुपमे, अपन व्यष्टित्व आओर सूक्ष्म स्वातंत्र्य होइत अछि। एहि स्वातंत्र्यक दुरुपयोग सँ जीवबद्ध बनैत अछि, आओर ओकर सही उपयोग सँ ओ मुक्त बनैत अछि। दूनू ही अवस्थामे ओ भगवानक समान ही सनातन होइत अछि। मुक्त अवस्थामे ओ एहि भौतिक अवस्था सँ मुक्त रहैत अछि आओर भगवानक दिव्य सेवामे निरत रहैत अछि।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥८॥

शरीरम्– शरीर केँ; **यत्**– जाहि; **अवाप्नोति**– प्राप्त करैत अछि; **यत्**– जाहि; **च**– तथा; **अपि**– भी; **उत्क्रामति**– त्यागैत अछि; **ईश्वरः**– शरीरक स्वामी; **गृहीत्वा**– ग्रहण करिक; **एतानि**– एहि सबहक; **संयति**– चलि जाइत अछि; **वायुः**– वायु; **गन्धान्**– महक केँ; **इव**– सदृश; **आशयात्**–

श्रोत सँ।

एहि संसारमे जीव अपन देहात्मबुद्धि केँ एक शरीरसँ दोसरमे ओहि तरह लऽ जाइत अछि, जाहि तरह वायु सुगन्धि केँ लऽ जाइत अछि। एहि प्रकार ओ एक शरीर धारण करैत अछि आओर पुनः एकरा त्यागक दोसर शरीर धारण करैत अछि।

तात्पर्यः एतय जीव केँ ईश्वर अर्थात् अपन शरीरक नियामक कहल गेलै अछि। यदि ओ चाहे तो अपन शरीर केँ त्यागि कऽ उच्चतर योनिमे जा सकैत अछि आओर चाहे तो निम्म योनिमे जा सकैत अछि। मृत्युक समय ओ जेहन चेतना बनेने रहैत अछि, ओहे ओकरा दोसर शरीर तक लऽ जाइत अछि। यदि ओ पशु जकाँ चेतना बनावैत अछि, तो ओकरा पशुक शरीर प्राप्त होइत अछि। यदि ओ अपन चेतना दैवी गुणमे स्थित करैत अछि, तो ओकरा देवताक स्वरुप प्राप्त होइत अछि। आओर यदि ओ कृष्णभावनामृतमे होइत छथि, तो ओ आध्यात्मिक जगत्मे कृष्णलोक केँ जाइत छथि, जतय हुनकर सान्निध्य कृष्ण सँ होइत अछि। ई दावा मिथ्या अछि कि एहि शरीर केँ नाश भेला पर सब किछु समाप्त भऽ जाइत अछि। आत्मा एक शरीर सँ दोसर शरीरमे देहान्तर कैरत अछि आओर वर्तमान शरीर तथा वर्तमान कार्यकलाप ही अगिला शरीरक आधार बनैत अछि। कर्मक अनुसार भिन्न शरीर प्राप्त होइत अछि आओर समय एला पर ओ शरीर त्याग पड़ैत अछि। सूक्ष्म शरीर, जे अगिला शरीरक बीज वहन करैत अछि, अगिला जीवनमे दोसर शरीर निर्माण करैत अछि। एक शरीर सँ दोसर शरीरमे देहान्तरक प्रक्रिया जीवन संघर्ष कहावैत अछि।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥९॥

श्रोत्रम्– कान; **चक्षुः**– आँखि; **स्पर्शनम्**– स्पर्श; **च**– भी; **रसनम्**– जीभ; **घ्राणम्**– सूँघक शक्ति; **एव**– भी; **च**– तथा; **अधिष्ठाय**– स्थित भऽकऽ; **मनः**– मन; **च**– भी; **अयम्**– ई; **विषयान्**– इन्द्रियविषय केँ; **उपसेवते**– भोग करैत अछि।

एहि प्रकार दोसर स्थूल शरीर धारण करिक जीव विशेष प्रकारक कान, आँखि, जीभ, नाक तथा स्पर्श इन्द्रिय (त्वचा) प्राप्त

करैत अछि, जे मनक चारु ओर संपुंजित अछि। एहि प्रकार ओ इन्द्रियविषयक एक विशिष्ट समुच्चयक भोग करैत अछि।

तात्पर्य: जीव केँ अपन चेतनाक मुताबिक अगिला जन्मक शरीर प्राप्त होइत अछि, जकरा ओ भोग करैत अछि। चेतना मूलतः जलक समान विमल होइत अछि, लेकिन यदि जलमे रंग मिला दैत छी, तो ओकर रंग बदलि जाइत अछि। एहि प्रकार चेतना भी शुद्ध अछि किएक तऽ आत्मा शुद्ध अछि लेकिन भौतिक गुणक संगतिक अनुसार चेतना बदलैत जाइत अछि। यदि चेतना कोनो भौतिक प्रवृत्ति सँ मिश्रित भऽ जाइत अछि तो अगिला जन्ममे ओहने शरीर मिलैत अछि। ई आवश्यक नहि अछि कि ओकरा मनुष्य शरीर प्राप्त हो या चौरासी लाख योनिमे सँ कोनो भी रुप प्राप्तक सकैत अछि।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥१०॥

उत्क्रामन्तम्– शरीर त्यागैत; **स्थितम्**– शरीरमे रहैत; **वा अपि**– अथवा; **भुञ्जानम्**– भोग करैत; **वा**– अथवा; **गुण अन्वितम्**– प्रकृतिक गुणक अधीन; **विमूढ़ा**– मूर्ख व्यक्ति; **न**– कहियो नहि; **अनुपश्यन्ति**– देख सकैत अछि; **पश्यन्ति**– देखि सकैत अछि; **ज्ञानचक्षुषः**– ज्ञान रुपी आँखिवला।

मूर्ख न तो समझि पाबैत अछि कि जीव कोन प्रकार अपन शरीर त्यागि सकैत अछि, न ही ओ ई समझि पाबैत अछि कि प्रकृतिक गुणक अधीन ओ कोन तरहक शरीरक भोग करैत अछि। लेकिन जकर आँखि ज्ञानमे प्रशिक्षित होइत अछि ओ ई सब देखि सकैत अछि।

तात्पर्य: ज्ञान चक्षुषः शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अछि। बिना ज्ञान केँ क्यो न तो ई समझि सकैत अछि कि जीव एहि शरीर केँ कोन प्रकार त्यागैत अछि, न ही ई कि ओ अगिला जन्ममे केहन शरीर धारण कर जा रहल अछि, अथवा ई कि ओ विशेष प्रकारक शरीरमे किएक जा रहल अछि। एहि लेल पर्याप्त ज्ञानक आवश्यकता होइत अछि, जकरा प्रमाणिक गुरु सँ भगवद्गीता तथा अन्य एहने ग्रन्थसँ सुनि कऽ समझल जा सकैत अछि। जे एहि बातक समझबक लेल प्रशिक्षित अछि, ओ

भाग्यशाली अछि। जिनका आध्यात्मिक ज्ञान भऽ चुकल अछि, ओ देखैत छथि कि आत्मा शरीर सँ भिन्न अछि आओर ई अपन शरीर बदलि कैँ विभिन्न प्रकार सँ भोगैत रहैत अछि। एहन ज्ञान सँ युक्त व्यक्ति समझि सकैत अछि कि एहि संसारमे बद्धजीव कोन प्रकार कष्ट भोगि रहल अछि। हुनका एहि सँ निकलिक कृष्णभावनाभावित भऽकऽ आध्यात्मिक लोकमे जेवाक लेल अपना कैँ मुक्त करक चाही।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः॥११॥

यतन्तः- प्रयास करैत; **योगिनः**- अध्यात्मवादी योगी; **च**- भी; **एनम्**- एकरा; **पश्यन्ति**- देख सकैत अछि; **आत्मनि**- अपना मे; **अवस्थितम्**- स्थित; **यतन्तः**- प्रयास करैत; **अपि**- यद्यपि; **अकृत आत्मनः**- आत्म साक्षात्कार सँ विहीन; **न**- नहि; **एनम्**- एकरा; **पश्यन्ति**- देखैत अछि; **अचेतसः**- अविकसित मनवाला, अज्ञानी।

आत्म-साक्षात्कार कैँ प्राप्त प्रयत्नशील योगीजन ई सब स्पष्ट रुप सँ देखि सकैत अछि। लेकिन जकर मन विकसित नहि अछि आओर जे आत्मसाक्षात्कार कैँ प्राप्त नहि अछि, ओ प्रयत्न करिक भी ई नहि देखि पाबैत कि की भऽ रहल अछि।

तात्पर्यः अनेक योगी आत्म-साक्षात्कारक पथ पर होइत छथि, लेकिन जे आत्म-साक्षात्कार कैँ प्राप्त नहि अछि, ओ ई नहि देखि पाबैत अछि जीवक शरीरमे कोना-कोना परिवर्तन भऽ रहल अछि। जे सचमुच योग पद्धतिमे रमैत अछि आओर जिनका आत्मा, जगत् तथा परमेश्वरक अनुभूति भऽ चुकल अछि, ओहने व्यक्ति आत्माक देहान्तरक सब बात समझि पावैत अछि। दोसर शब्दमें, जे भक्तियोगी छथि ओ ही समझि सकैत छथि कि कोन प्रकार सँ सब किछु घटति होइत अछि।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।१२॥

यत्- जे; **आदित्य गतम्**- सूर्य प्रकाशमे स्थित; **तेजः**- तेज; **जगत्**- सारा संसार; **भासयते**- प्रकाशित होइत अछि; **अखिलम्**- सम्पूर्ण; **यत्**- जे; **चन्द्रमसि**- चन्द्रमा मे; **च**- भी; **अग्नौ**- अग्नि मे; **तत्**- ओ; **तेजः**-

तेज; **विद्धि**– जानू; **मामकम्**– हमरा सँ।

सूर्यक तेज, जे सम्पूर्ण विश्वक अंधकार केँ दूर करैत अछि, हमरा सँ ही निकलैत अछि। चन्द्रमा तथा अग्निक तेज भी हमरा सँ ही उत्पन्न अछि।

तात्पर्य: एहि श्लोक सँ हम समझि सकैत छी कि सूर्य सम्पूर्ण सौर मंडल केँ प्रकाशितक रहल अछि। ब्रह्माण्ड अनेक अछि, लेकिन प्रत्येक ब्रह्माण्डमे केवल एक सूर्य अछि। गीताक दसम अध्याय (१०/२१) मे कहल गेलै अछि कि चन्द्रमा भी एक नक्षत्र अछि। सूर्यक प्रकाश परमेश्वरक आध्यात्मिक आकाशमे आध्यात्मिक तेजक कारण अछि। सूर्योदयक संग ही मनुष्यक कार्यकलाप प्रारम्भ भऽ जाइत अछि। सूर्योदय, अग्नि तथा चन्द्रमाक चाँदनी जीव केँ अत्यन्त सुहावन लागैत अछि। हुनकर सहायताक बिना कोनो जीव नहि रहि सकैत अछि। अतएव यदि मनुष्य ई जानि लिअ कि सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमाक प्रकाश एवं तेज भगवान् श्रीकृष्ण सँ उद्‌भूत भऽ रहल अछि तो ओकरामे कृष्णभावनामृतक सूत्रपात भऽ रहल अछि। बद्धजीवमे कृष्णभावनामृत जगाबएवला इहै कतिपय विचार अछि।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥१३॥

गाम्– लोक मे; **आविश्य**– प्रवेश करिक; **च**– भी; **भूतानि**– जीव केँ; **धारयामि**– धारण करैत छी; **अहम्**– हम; **ओजसा**– अपन शक्ति सँ; **पुष्णामि**– पोषण करैत छी; **च**– तथा; **औषधीः**– वनस्पतिक; **सर्वाः**– समस्त; **सोमः**– चन्द्रमा; **भूत्वा**– वनिक; **रस आत्मकः**– रस प्रदान करए वाला।

हम प्रत्येक लोकमे प्रवेश करैत छी आओर हमर शक्ति सँ समस्त लोक अपन कक्षामे स्थित रहैत अछि। हम चन्द्रमा बनिक समस्त वनस्पति केँ जीवन-रस प्रदान करैत छी।

तात्पर्य: ब्रह्मसंहितामे विवेचना कैल गेलै अछि कि परमेश्वरक एक अंश, परमात्मा, लोकमे, ब्रह्माण्डमे, जीवमे तथा अणु तकमे प्रवेश करैत अछि। अतएव हुनकर प्रवेश केला सँ प्रत्येक वस्तु ठीक सँ दिखाइत

अछि। जखन आत्मा होइत अछि तो जीवित मनुष्य पानीमे तैर सकैत अछि। लेकिन जखन जीवित स्फुलिंग एहि देह सँ निकलि जाइत अछि आओर शरीर मृत भऽ जाइत अछि तो शरीर डूबि जाइत अछि। निस्सन्देह सड़लाक बाद ई शरीर तिनका तथा अन्य वस्तुक समान तैरैत अछि। एहि प्रकार ई समस्त लोक शून्यमे तैर रहल अछि आओर ई सब हुनकामे भगवानक परमशक्तिक प्रवेशक कारण अछि। हुनकर शक्ति प्रत्येक लोक केँ ओहि तरह थामे रहैत अछि, जाहि प्रकार धूल केँ मुटठी। मुट्ठीमे बन्द रहला पर धूल केँ गिरक भय नहि रहैत, लेकिन जखने धूल केँ वायुमे फेंक देल जाइत अछि, तो ओ नीचा गिर जाइत अछि। ओहि प्रकार सब लोक वास्तवमे भगवानक विराट रुपक मुट्ठीमे बाँधल अछि। हुनकर बल तथा शक्ति सँ समस्त चर तथा अचर वस्तु अपन अपन स्थान पर टिकल अछि। मानव समाज भगवानक कृपा सँ काम करैत अछि, सुख सँ रहैत अछि। प्रत्येक वस्तु चन्द्रमाक प्रभाव सँ परमेश्वरक द्वारा स्वादिष्ट बनैत अछि।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।१४।।

अहम्– हम; **वैश्वानरः**– पाचक– अग्निक रुपमे हमर पूर्ण अंश; **भूत्वा**– वनिक; **प्राणिनाम्**– समस्त जीवक; **देहम्**– शरीर मे; **आश्रितः**– स्थित; **प्राण**– उच्छवास, निश्वास; **अपान**– श्वास; **समायुक्तः**– संतुलन राखैत; **पचामि**– पचबैत छी; **अन्नम्**– अन्न केँ; **चतुः विधम्**– चारि प्रकारक।

हम समस्त जीवक शरीरमे पाचन अग्नि (वैश्वानर) छी आओर हम श्वास-प्रश्वास (प्राण वायु)मे रहि कऽ चारि प्रकारक अन्न केँ पचबैत छी।

तात्पर्यः आयुर्वेद शास्त्रक अनुसार आमाशय (पेट)मे अग्नि होइत अछि, जे ओतय पहुँचैते भोजन केँ पचा दैत अछि। जखन ई अग्नि प्रज्ज्वलित नहि रहैत अछि तऽ भूख नहि जागैत अछि आओर जखन ई अग्नि ठीक रहैत अछि, तऽ भूख लागैत अछि। वेदान्त शास्त्रमे भी एकर पुष्टि भेलै अछि। **'शब्दाभिभ्योऽन्तः प्रतिष्ठानाच्च'**– भगवान् शब्दक भीतर, शरीरक भीतर, वायुक भीतर तथा एतय धरि तक कि पाचन

शक्तिक रुपमे आमाशयमे भी उपस्थित छथि। अन्न चारि प्रकारक होइत अछि–किछु निगलल जाइत अछि (पेय), किछु चबायल जाइत अछि (भोज्य), किछु चाटल जाइत अछि (लेह्य), तथा किछु चूसल जाइत अछि (चोष्य)। भगवान् सब प्रकार अन्नक पाचक शक्ति छथि।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टोमत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

सर्वस्य– समस्त प्राणी; **च**– तथा; **अहम्**– हम; **हृदि**– हृदय मे; **सन्निविष्टः**– स्थित; **मत्तः**– हमरा मे; **स्मृतिः**– स्मरण शक्ति; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **अपोहनम्**– विस्मृति; **वेदैः**– वेदक द्वारा; **च**– भी; **सर्वैः**– समस्त; **अहम्**– हम छी; **एव**– निश्चय ही; **वेद्यः**– जान योग्य, ज्ञेय; **वेदान्त कृत**– वेदान्तक संकलनकर्ता; **वेदवित्**– वेदक ज्ञाता; **एव**– निश्चय ही; **च**– तथा; **अहम्**– हम।

हम प्रत्येक जीवक हृदयमे आसीन छी आओर हमरा सँ ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृत होइत अछि। हम ही वेदक द्वारा जानवाक योग्य छी। निस्सन्देह हम वेदान्तक संकलनकर्ता तथा समस्त वेदक जानबला छी।

तात्पर्यः परमेश्वर परमात्मा रुपमे प्रत्येक जीवक हृदयमे स्थित छथि आओर हुनके कारण सब कर्म प्रेरित होइत अछि। जीव अपन विगत जीवनक सब बात विसरि जाइत अछि, लेकिन ओकरा परमेश्वरक निर्देशानुसार कार्य करक होइत अछि, जे ओकर समस्त कर्मक साक्षी अछि। भगवान् न केवल सर्वव्यापी छथि, अपितु ओ प्रत्येक हृदयमे अन्तर्यामी भी छथि। ओ विभिन्न कर्म फल प्रदान करवाला छथि। ओ न केवल निराकार ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्माक रुपमे पूजनीय छथि, अपितु ओ वेदक अवतारक रुपमे भी पूजनीय छथि। वेद लोग कें सही दिशा बतबैत अछि, जाहि सँ समुचित ढंग सँ अपन जीवन ढ़ालि सके आओर भगवानक धाम कें वापस जा सके। वेद भगवान् कृष्ण विषयक ज्ञान प्रदान करैत अछि आओर अपन अवतार व्यासदेवक रुपमे कृष्ण ही वेदान्तसूत्रक संकलनकर्ता छथि। एहि श्लोकमे वेदक प्रयोजन, वेदक ज्ञान तथा वेदक लक्ष्यक स्पष्टतः परिभाषित कैल गेल अछि।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

द्वौ– दू; **इमौ**– ई; **पुरुषौ**– जीव; **लोके**– संसार मे; **क्षरः**– च्युत; **च**– तथा; **अक्षरः**– अच्युत; **एव**– निश्चय ही; **सर्वाणि**– समस्त; **भूतानि**– जीव केँ; **कुटस्थः**– एकत्व मे; **अक्षरः**– अच्युत; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

जीव दू प्रकारक अछि–च्युत तथा अच्युत। भौतिक जगत्मे प्रत्येक जीव च्युत (क्षर) होइत अछि आओर आध्यात्मिक जगत्मे प्रत्येक जीव अच्युत (अक्षर) कहाबैत अछि।

तात्पर्यः भगवान् अपन व्यासदेव अवतारमे ब्रह्मसूत्रक संकलन कैलनि अछि। भगवान् एतय वेदसूत्रक विषयवस्तुक सार संक्षेप देलनि अछि। भगवान् कृष्णक कथानुसार जीवक दू श्रेणी अछि। च्युत (क्षर) तथा अच्युत (अक्षर)। जीव भगवानक सनातन पृथक्कीकृत अंश (विभिन्नांश) अछि। जखन ओकर संसर्ग भौतिक जगत् सँ होइत अछि तो ओ जीवभूत कहाबैत अछि। जीव च्युत अछि, लेकिन जे जीव परमेश्वर सँ एकत्व स्थापितक लैत अछि ओ अच्युत कहाबैत अछि। भौतिक जगत्मे जीव छह परिवर्तन सँ गुजरैत अछि–जन्म, वृद्धि, अस्तित्व, प्रजनन, क्षय तथा विनाश। ई भौतिक शरीरक परिवर्तन अछि। लेकिन आध्यात्मिक जगतमे शरीर परिवर्तन नहि होइत अछि, ओतय न जरा अछि, न जन्म आओर न मृत्यु। ओ सब एकावस्थामे रहैत अछि।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥१७॥

उत्तमः– श्रेष्ठ; **आत्मा**– आत्मा; **इति**– एहि प्रकार; **उदाहृत**– कहल जाइत अछि; **यः**– जे; **लोक**– ब्रह्माण्डक; **त्रयम्**– तीन विभाग मे; **आविष्य**– प्रवेश करिक; **विभिर्ति**– पालन करैत अछि; **अव्ययः**– अविनाशी; **ईश्वरः**– भगवान्।

एहि दूनूक अतिरिक्त, एक परमपुरुष आत्मा अछि, जे साक्षात् अविनाशी भगवान् छथि आओर तीनू लोकमे प्रवेश करि कऽ पालनक रहला अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकक भाव कठोपनिषद् तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्मे उत्यन्त सुन्दर ढंग सँ व्यक्त भेल अछि। ओतय ई कहल गेलै अछि असंख्य जीवक नियन्ता, जाहिमे सँ किछु बद्ध अछि आओर किछु मुक्त अछि, एक परम पुरुष छथि जे परमात्मा छथि। उपनिषद्क श्लोक **'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्'**। सारांश ई अछि कि बद्ध तथा मुक्त दूनू प्रकारक जीवमे सँ एक परम पुरुष भगवान् होइत छथि, जे ओहि सबहक पालन करैत छथि आओर ओकरा ओकर कर्मक अनुसार भोगक सुविधा प्रदान करैत छथि। ओ भगवान् परमात्मा रुपमे सबहक हृदयमे स्थित छथि। जे बुद्धिमान व्यक्ति हुनका समझि सकैत अछि, ओहे पूर्ण शान्ति लाभक सकैत अछि, अन्य क्यो नहि।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥१८॥

यस्मात्- चूँकि; **क्षरम्**- च्युत; **अतीतः**- दिव्य; **अहम्**- हम छी; **अक्षरात्**- अक्षर सँ परे; **अपि**- भी; **च**- तथा; **उत्तम**- सर्वश्रेष्ठ; **अतः**- अतएव; **अस्मि**- हम छी; **लोके**- संसार मे; **वेदे**- वैदिक साहित्य मे; **च**- तथा; **प्रथितः**- विख्यात; **पुरुष उत्तमः**- परम पुरुषक रुपमे।

चूँकि हम क्षर तथा अक्षर दूनू सँ परे छी आओर चूँकि हम सर्वश्रेष्ठ छी, अतएव हम एहि जगतमे तथा वेदमे पुरुषक रुपमे विख्यात छी।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण सँ बढ़ि कऽ क्यो नहि अछि। न तो बद्धजीव न मुक्त जीव। अतएव ओ पुरुषोत्तम छथि। आब ई स्पष्ट भऽ गेल अछि कि जीव तथा भगवान् व्यष्टि अछि। हिनकर व्यक्तित्वमे सदैव श्रेष्ठता तथा निम्नता बनल रहैत अछि। शरीर सँ निकलि कऽ परम आत्माक प्रवेश निराकार ब्रह्म ज्योतिमे होइत अछि। तखन ओ अपन एहि आध्यात्मिक स्वरुपमे बनल रहैत अछि। ई परमआत्मा ही परम पुरुष कहाबैत अछि। परम पुरुष अपन आध्यात्मिक तेज प्रकट करैत तथा प्रसारित करैत रहैत छथि आओर इहै परम प्रकाश अछि।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥१९॥

यः- जे; **माम्**- हमरा; **एवम्**- एहि प्रकार; **असम्मूढ़ः**- संशयरहित;

जानाति– जानैत अछि; **पुरुषोत्तमम्**– भगवान्; **सः**– ओ; **सर्ववित्**– सब किछु जानएवाला; **भजति**– भक्ति करैत अछि; **माम्**– हमरा; **सर्व भावेन्**– सब प्रकार सँ; **भारत**– हे भरतपुत्र।

जे क्यो भी हमरा संशय रहित भऽकऽ पुरुषोत्तम भगवानक रुपमे जानैत अछि, ओ सब किछु जान वाला अछि। अतएव हे भरतपुत्र! ओ व्यक्ति हमर पूर्ण भक्तिमे रत होइत अछि।

तात्पर्यः यदि क्यो व्यक्ति पूर्ण कृष्णभावनामृतमे रत अछि, अर्थात् भगवानक भक्ति करैत अछि, तो ई समझव चाही कि ओ समस्त वैदिक ज्ञान समझि लेलक अछि। वैष्णव परम्परामे कहल गेलै अछि कि यदि क्यो कृष्णभक्तिमे लागल रहैत अछि, तो ओकरा भगवान् केँ जानवक लेल अन्य आध्यात्मिक विधिक आवश्यकता नहि रहैत अछि। भगवानक भक्ति करक कारण ओ पहिने सँ लक्ष्य तक पहुँचल रहैत अछि। ओ ज्ञान ही समस्त प्रारम्भिक विधि केँ पारक चुकल होइत अछि। लेकिन यदि क्यो लाखों जन्म तक चिन्तन केला पर भी एहि लक्ष्य पर नहि पहुँचि पाबैत अछि कि श्रीकृष्ण ही भगवान् छथि आओर हुनकर ही शरण करक चाही, तो ओकर अनेक जन्मक चिन्तन व्यर्थ जाइत अछि। भगवद्गीतामे पग–पग पर एहि तथ्य पर बल देल गेल अछि कि भगवान् कृष्ण ही परमपुरुषक स्वरुप छथि। भगवान् केँ पुरुषोत्तम रुपमे जानएवाला सब वस्तुक ज्ञाता अछि अतः सीधे कृष्णभावनामृतमे लागि जेवाक चाही।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

इति– एहि प्रकार; **गुह्यतमम्**– सर्वाधिक गुप्त; **शास्त्रम्**– शास्त्र; **इदम्**– ई; **उक्तम्**– प्रकट कैल गेल अछि; **मया**– हमरा द्वारा; **अनघ**– हे पाप रहित; **एतत्**– ई; **बुद्ध्वा**– समझिक; **बुद्धिमान्**– बुद्धिमान्; **स्यात्**– भऽ जाइत अछि; **कृत कृत्यः**– अपन प्रयत्नमे परम पूर्ण; **च**– तथा; **भारत**– हे भरतपुत्र।

हे अनघ! ई वैदिक शास्त्रक सर्वाधिक गुप्त अंश अछि, जकरा हम आब प्रकट कैलहुँ अछि। जे क्यो एकरा समझैत अछि, ओ बुद्धिमान भऽ जाइत आओर ओकर प्रयास पूर्ण होयत।

तात्पर्यः जाहि अनघ शब्द सँ अर्जुन केँ सम्बोधित कएल गेल अछि, ओ सार्थक अछि। अनघ अर्थात हे **'निष्पाप'**क अर्थ अछि कि जाधरि मनुष्य समस्त पापकर्म सँ मुक्त नहि भऽ जाइत, ता तक भगवान् कृष्ण केँ समझि पायब कठिन अछि। ओकरा समस्त कल्मष, समस्त पापकर्म सँ मुक्त होम पड़ैत अछि, तखने ओ समझि सकैत अछि। लेकिन भक्ति एतेक शुद्ध तथा शक्तिमान् होइत अछि कि एकबेर भक्तिमे प्रवृत्त भेला पर मनुष्य स्वतः निष्पाप भऽ जाइत अछि। भक्ति आध्यात्मिक ज्ञानक एक विधि अछि। जतय कतौ भी भक्ति होइत अछि, ओतय भौतिक कल्मष नहि रहि सकैत अछि। भगवद् भक्ति तथा स्वयं भगवान् एक छथि किएक तऽ दूनू आध्यात्मिक अछि। भक्ति परमेश्वरक अन्तरंगा शक्तिक भीतर होइत अछि। भगवान् सूर्यक समान अछि आओर अज्ञान अंधकार अछि। जतय सूर्य विद्यमान छथि, ओतय अंधकारक प्रश्न ही नहि उठैत अछि। भगवान् एतय स्पष्ट कैलनि अछि कि इहै सब शास्त्रक सार अछि आओर भगवान् एकरा जाहि रुपमे कहलथिन अछि ओकरा ओहे रुपमे समझब चाही। एहि तरह मनुष्य बुद्धिमान तथा दिव्य ज्ञानमे पूर्ण भऽ जाएत। दोसर शब्दमे, भगवानक एहि दर्शन केँ समझब तथा हुनकर दिव्य सेवामे प्रवृत्त भेला सँ प्रत्येक व्यक्ति प्रकृतिक गुणक समस्त कल्मष सँ मुक्त भऽ सकैत अछि।

सारांशः भगवान् कहलनि अछि– संसार अश्वत्थ वृक्ष (पीपल)क समान अछि, जकर पुरुष रुप जड़ि ऊपर अछि आओर चराचर शाखा नीचा अछि। वेद एकर पत्ता अछि, जे ई जानैत अछि, ओहे वेदक ज्ञाता अछि। एकर शाखा ऊपर फैलल अछि। सत्व, रज, तमोगुण एकर रस वाहिनी नस अछि, एहि सँ एकर पालन होइत अछि। शब्द रुप आदि एकर डाली अछि। पाछाँ कर्म रुपमे हुअवला एकर जड़ि नीचा मनुष्य लोकमे आओर भी नीचा चलि जाइत अछि। पर अश्वत्थक ई रुप एकर आदि अन्त आओर आकार संसारी प्राणीक ध्यानमे नहि आबैत, तथापि एकर जड़ि गहरी अछि। अहिना एहि वृक्ष केँ वैराग्य रुपी दृढ़ शस्त्र सँ काटि कऽ ओ स्थान ढूंढक चाही, जतए सँ पुनः लौटए नहि पड़ैत आओर संगहि ई विचारवाक चाही कि जाहिमे ई पुरातन प्रवृत्ति उत्पन्न भेल अछि, ओही आदि पुरुषक हम शरण छी। अहंकार आओर मोह

रहित, संगदोष केँ जीतवाला, आत्मज्ञान सँ निरत, सब कामना सँ दूर, सुख–दुख नामक द्वन्द्व पदार्थ सँ मुक्त एहन ज्ञानी पुरुष शाश्वत पद केँ पाबैत अछि। जकरा सूर्य–चन्द्र या अग्नि प्रकाशित नहि करैत ओहे हमर परमधाम अछि। ओतय जाक लौटनाइ नहि होइत अछि। भगवान् कहैत छथि–जे तेज सूर्य, चन्द्रमा आओर अग्निमे वर्तमान अछि आओर जगत् केँ प्रकाशित करैत अछि ओकरा हमरे ही तेज मानू। हम ही पृथ्वीमे प्रवेशक अपन तेज सँ समस्त भूत केँ धारण करैत छी आओर एहिमे भरल चन्द्रमाक रुपमे हम ही सब औषधिक पोषण करैत छी। हम जठराग्नि भऽकऽ प्राणीक देहमे प्रविष्ट छी आओर प्राणवायु, अपानवायु सँ संयुक्त भऽकऽ चारु प्रकार (भक्ष्य, भोज्य, चोष्प, लेह्य) सँ भोजन कैल प्राणीक अन्न केँ पचबैत छी। समस्त प्राणीक हृदय कमलमे निवास करैत छी। सब वेदक जानब योग्य हम ही छी। वेदान्तक कर्ता आओर वेदक ज्ञानी हमही छी। एहि संसारमे क्षर (च्युत) अक्षर (अच्युत) ई दूनू पुरुष हमही छी। हम क्षर आओर अक्षरमे उत्कृष्ट छी। एहि कारण सँ लोक आओर वेदमे पुरुषोत्तम नाम विख्यात छी। हे भरतपुत्र! जे उत्तम ज्ञानीजन एहि प्रकार सँ हमरा पुरुषोत्तम जानैत अछि ओ सब किछु जानैत अछि आओर सर्वतोभावेद हमर ही स्मरण करैत अछि। हे भारत! शास्त्रक गुह्य भेद केँ जे हम कहलहुँ अछि, जानिक बुद्धिमान पुरुष कृत–कृत्य होइत अछि। एहि अध्यायमे पुरुषोत्तम योगक विवेचना भेल अछि। एहि प्रकार श्रीमद्‌भगवद्‌गीताक पन्द्रहम अध्याय **‘पुरुषोत्तम योग’** पूर्ण भेल।



अध्याय-सोलह



दैवी तथा आसुरी स्वभाव

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥१॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥२॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥३॥

श्रीभगवानुवाच– भगवान् कहलथिन; **अभयम्**– निर्भयता; **सत्त्व संशुद्धि**– अपन अस्तित्वक शुद्धि; **ज्ञान**– ज्ञान मे; **योग**– संयुक्त हेवाक; **व्यवस्थितिः**– स्थिति; **दानम्**– दान; **दमः**– मनक निग्रह; **च**– तथा; **यज्ञः**– यज्ञक सम्पन्नता; **च**– तथा; **स्वाध्यायः**– वैदिक ग्रन्थक अध्ययन; **तपः**– तपस्या; **आर्यवम्**– सरलता; **अहिंसा**– अहिंसा; **सत्यम्**– सत्यता; **अक्रोधः**– क्रोध सँ मुक्ति; **त्यागः**– त्याग; **शान्तिः**– मनः शान्ति; **अपैषुनम्**– छिद्रान्वेषण सँ अरुचि; **दया**– करुणा; **भूतेषु**– समस्त जीवक प्रति; **आलोलुप्त्वम्**– लोभ सँ मुक्ति; **मार्दवम्**– भद्रता; **ह्वीः**– लज्जा; **अचापलम्**– संकल्प; **तेजः**– तेज, बल; **क्षमा**– क्षमा; **धृतिः**– धैर्य; **शौचम्**– पवित्रता; **अद्रोहः**–

ईर्ष्या सँ मुक्ति; **न**– नहि; **अतिमानिता**– सम्मानक आशा; **भवन्ति**– अछि; **सम्पदम्**– गुण; **दैवीम्**– दिव्य स्वभाव; **अभिजातस्य**– उत्पन्न भेलाक; **भारत**– हे भरतपुत्र।

भगवान् कहलथिन– हे भरतपुत्र! निर्भयता, आत्मशुद्धि, आध्यात्मिक ज्ञानक अनुशीलन, दान, आत्मसंयम, यज्ञपरायणता वेदाध्ययन, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्यता, क्रोधविहीनता, त्याग, शान्ति, छिद्रान्वेषणमे अरुचि समस्त जीव पर करुणा, लोभविहीनता, भद्रता, लज्जा, संकल्प, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, ईर्ष्या तथा सम्मानक अभिलाषा सँ मुक्ति–ई सब दिव्यगुण अछि, जे दैवी प्रकृति सँ सम्पन्न देवतुल्य पुरुषमे पाओल जाइत अछि।

तात्पर्यः वैदिक अनुष्ठानक अनुसार, सतोगुणमे कैल गेल समस्त कार्य मुक्तिपथमे प्रगति करक लेल शुभ मानल जाइत अछि आओर एहन कार्य केँ दैवी प्रकृति कहल जाइत अछि। जे लोग एहि दैवी प्रकृतिमे स्थित होइत अछि, ओ मुक्तिक पथ पर अग्रसर होइत अछि। एकर विपरीत ओहि लोगक लेल, जे रजो तथा तमोगुणमे रहिक कार्य करैत अछि, मुक्तिक कोनो सम्भावना नहि रहैत अछि। ओकरा या तो मनुष्यक तरह एहि भौतिक जगतमे रह होइत अछि या पुनः ओ पशुयोनिमे या एहि सँ भी निम्न योनिमे अवतरित होइत अछि। एहि सोलहवाँ अध्यायमे भगवान् दैवी प्रकृति तथा ओकर गुण एवं आसुरी प्रकृति तथा ओकर गुणक समान रुप वर्णन करैत छथि। ओ एहि गुणक लाभ तथा हानिक भी वर्णन करैत छथि।

एतय वर्णित छब्बीस गुण–निर्भयता, आत्मशुद्धि, आध्यात्मिक ज्ञानक अनुशीलन, दान, आत्मसंयम, यज्ञपरायणता, वेदाध्ययन, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्यता, क्रोधविहीनता, त्याग, शान्ति, छिद्रान्वेषणमे अरुचि, समस्त जीव पर करुणा, लोभविहीनता, भद्रता, लज्जा, संकल्प, तेज, क्षमा, क्रोध, पवित्रता, ईर्ष्या तथा सम्मानक अभिलाषा सँ मुक्ति ई सब दिव्यगुण अछि, जे दैवी प्रकृति सँ सम्पन्न देवतुल्य पुरुषमे पायल जाइत अछि। वर्णाश्रमधर्मक अनुसार एकर आचरण होमक चाही। सारांश ई अछि कि भले ही भौतिक परस्थिति शोचनीय हो, यदि सब वर्णक लोग एहि दिव्यगुणक अभ्यास करै, तो क्रमशः आध्यात्मिक अनुभूतिक सर्वोच्च

पद तक उठि सकैत अछि।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥४॥

दम्भः– अहंकार; **दर्पः**– घमण्ड; **अभिमानः**– गर्व; **च**– भी; **क्रोधः**– क्रोध, तामस; **पारुष्यम्**– निष्ठुरता; **एव**– निश्चय ही; **च**– तथा; **अज्ञानम्**– अज्ञान; **अभिजातस्य**– उत्पन्न भेलाक; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **सम्पदम्**– गुण; **आसुरीम्**– आसुरी प्रकृति।

हे पृथापुत्र! दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता तथा अज्ञान-ई आसुरी स्वभाववलाक गुण अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे नरकक राजमार्गक वर्णन अछि। आसुरी स्वभाववला लोग धर्म तथा आत्मविद्याक प्रगतिक आडम्बर रच चाहैत अछि, भले ही ओ ओकर सिद्धान्तक पालन नहि करैत हो। ओ सदैव कोनो शिक्षा या प्रचुर सम्पत्तिक अधिकारी भेलाक घमण्ड करैत अछि। ओ चाहैत अछि कि अन्य लोग हुनक पूजा करै आओर सम्मान, दिखाबे, भले ही ओ सम्मानक योग्य न हो। ओ छोट-छोट बात पर क्रुद्ध भऽ जाइत अछि आओर नम्रता सँ नहि व्यवहार करैत अछि। ओ ई हो नहि जानैत अछि की करक चाही आओर की नहि कर चाही। ओ अपन इच्छानुसार सब कार्य करैत अछि। ओ कोनो प्रमाण केँ नहि मानैत अछि। ओ ई आसुरीगुण तखने सँ प्राप्त करैत अछि जखन ओ अपन माताक गर्भमे होइत अछि आओर जेना-जेना ओ बढ़ैत अछि, तेना-तेना ई अशुभगुण प्रकट होइत अछि। ई वर्णित छह गुण- दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता, तथा अज्ञान आसुरी स्वभावक गुण अछि।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव॥५॥

दैवी– दिव्य; **सम्पत्**– सम्पत्ति; **विमोक्षाय**– मोक्षक लेल; **निबन्धाय**– बन्धनक लेल; **आसुरी**– आसुरी गुण; **मता**– मानल जाइत अछि; **मा**– मत; **शुचः**– चिन्ता करु; **सम्पदम्**– सम्पत्ति; **दैवीम्**– दिव्य; **अभिजातः**– उत्पन्न; **असि**– हो; **पाण्डव**– हे पाण्डुपुत्र।

दिव्यगुण मोक्षक लेल अनुकूल अछि आओर आसुरी गुण बन्धन

दिएबाक लेल। हे पाण्डुपुत्र! अहाँ चिन्ता नहि करु, किएक तऽ अहाँ दैवी गुण सँ युक्त भक्त जन्म लेलहुँ अछि।

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण अर्जुन केँ ई कहिक प्रोत्साहित करैत छथि कि ओ आसुरी गुणक संग नहि जन्मला अछि। युद्धमे सम्मिलित हैव आसुरी नहि अछि, किएक तऽ ओ हुनक गुण-दोष पर विचारक रहल छलाह। ओ ई विचारक रहल छलाह कि भीष्म तथा द्रोण सनक प्रतिष्ठित महापुरुषक वध कयल जाए या नहि, अतएव ओ न तो क्रोधक वशीभूत भऽकऽ कार्य कऽ रहल छलाह, न झूठ प्रतिष्ठा या निष्ठुरताक अधीन भऽकऽ। अतः ओ आसुरी स्वभावक नहि छलाह। क्षत्रीयक लेल शत्रु पर वाण बरसाएव दिव्य मानल जाइत अछि आओर एहन कर्तव्य सँ विमुख हैव आसुरी अछि। अतएव अर्जुनक लेल शोक (सन्ताप) करक कोनो कारण नहि छल। जे क्यो भी जीवनक विभिन्न आश्रमक विधानक पालन करैत अछि, ओ दिव्य पद पर स्थित होइत छथि।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु॥६॥

द्वौ- दू; **भूतसर्गौ**- जीवक सृष्टि; **लोके**- संसार मे; **अस्मिन्**- एहि; **दैवः**- दैवी; **आसुरः**- आसुरी; **एव**- निश्चय ही; **च**- तथा; **विस्तरशः**- विस्तार सँ; **प्रोक्तः**- कहल गेलै; **आसुरम्**- आसुरी; **पार्थ**- हे पृथापुत्र; **मे**- हमरा सँ; **शृणु**- सुनु।

हे पृथापुत्र! एहि संसारमे सृजित प्राणी दू प्रकारक अछि-दैवी तथा आसुरी। हम पहिने ही विस्तार सँ अहाँ केँ दैवीगुण बतला चुकलहुँ अछि। आब हमरा सँ आसुरी गुणक विषयमे सुनु।

तात्पर्यः अर्जुन केँ ई कहिक कि ओ दैवीगुण सँ सम्पन्न भऽकऽ जन्मल छथि, भगवान् कृष्ण आब हुनका आसुरी गुण बतबैत छथिन्ह। एहि संसारमे वद्धजीव दू श्रेणीमे बँटल अछि। जे जीव दिव्यगुण सँ सम्पन्न होइत अछि, ओ नियमित जीवन बितबैत अछि, अर्थात् ओ शास्त्र एवं विद्वानक द्वारा बताएल आदेशानुसार चलैत अछि। मनुष्य केँ चाही कि प्रमाणिक शास्त्रक अनुसार ही कर्तव्य निभाए, ई प्रकृति दैवी कहाबैत अछि। जे शास्त्रविहित विधान केँ नहि मानैत आओर अपन सनकक

अनुसार कार्य करैत रहैत अछि, ओ आसुरी कहाबैत अछि। शास्त्रक विधिविधानक प्रति आज्ञाभाव ही एकमात्र कसौटी अछि, अन्य नहि। वैदिक साहित्यमे उल्लेख अछि कि देवता तथा असुर दूनू ही प्रजापति सँ उत्पन्न भेलथि, अन्तर एतबेक ही अछि कि एक श्रेणीक लोग वैदिक आदेश केँ मानैत अछि आओर दोसर नहि मानैत अछि।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥७॥

प्रवृत्तिम्– ठीक सँ कर्म करब; **च**– भी; **निवृत्तिम्**– अनुचित ढंग सँ कर्म नहि करब; **च**– तथा; **जनाः**– लोग; **न**– कहियो नहि; **विदुः**– जानैत; **आसुराः**– आसुरी गुणक; **शौचम्**– पवित्रता; **न**– न तो; **अपि**– भी; **आचारः**– आचरण; **सत्यम्**– सत्य; **तेषु**– ओहि मे; **विद्यते**– होइत अछि।

जे आसुरी अछि, ओ ई नहि जानैत अछि कि की करक चाही, आओर की नहि करक चाही। ओकरामे न तो पवित्रता, न उचित आचरण आओर न ही सत्य पायल जाइत अछि।

तात्पर्यः प्रत्येक सभ्य मानव समाजमे किछु आचार-संहिता होइत अछि, जकरा आरम्भ सँ पालन करक होइत अछि। विशेषतया आर्यगण, जे वैदिक सभ्यता केँ मानैत अछि आओर अत्यन्त सभ्य मानल जाइत अछि, ओकर पालन करैत अछि। किन्तु जे शास्त्रीय आदेश केँ नहि मानैत, ओ असुर समझल जाइत अछि। अतः एतय कहल गेलै अछि कि असुरगण न तो शास्त्रीय नियम केँ जानैत अछि, न ओकरामे एकरा पालन करक प्रवृत्ति पायल जाइत अछि। ओहिमे सँ अधिकांश एहि नियम केँ नहि जानैत अछि आओर जे थोड़े जानैत अछि, ओकरामे ई पालन करबाक प्रवृत्ति नहि होइत अछि। ओकरा न तो वैदिक आदेशमे कोनो श्रद्धा होइत अछि न हि ओकर अनुसार कार्य करक इच्छुक होइत अछि। असुरगण न तो बाहर सँ, न भीतर सँ स्वच्छ होइत अछि। असुरगण कोनो एहन उपदेश ग्रहण नहि करैत, जे समाजक लेल अच्छा हो। चूँकि ओ महर्षिक अनुभव तथा हुनका द्वारा निर्धारित विधि-विधानक पालन नहि करैत अछि अतएव आसुरी लोगक सामाजिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय अछि।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।

अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।।८।।

असत्यम्- मिथ्या; **अप्रतिष्ठम्**- आधार रहित; **ते**- ओ; **जगत्**- दृश्य जगत्; **आहु:**- कहैत अछि; **अनीश्वरम्**- बिना नियामकक; **अपरस्पर**- बिना कारणक; **सम्भूतम्**- उत्पन्न; **किम्-अन्यत्**- अन्य कोनो कारण नहि; **काम हैतुकम्**- केवल कामक कारण।

ओ कहैत छथि कि ई जगत् मिथ्या अछि, एकर कोनो आधार नहि अछि, आओर एकर नियमन कोनो ईश्वर द्वारा नहि होइत अछि। हुनक कहब अछि कि ओ कामेच्छा सँ उत्पन्न होइत अछि आओर कामक अतिरिक्त कोनो अन्य कारण नहि अछि।

तात्पर्य: आसुरी लोग ई निष्कर्ष निकालैत अछि कि ई जगत् मायाजाल अछि। एकर न कोनो कारण अछि, न कार्य, न नियामक, न कोनो प्रयोजन-हर वस्तु मिथ्या अछि। हुनक कहब अछि कि ई दृश्य जगत् आकस्मिक भौतिक क्रिया तथा प्रतिक्रियाक कारण अछि। ओ ई नहि जानैत छथि कि ईश्वर कोनो प्रयोजन सँ एहि, संसारक रचना कैलनि अछि। हुनकर अपन सिद्धान्त अछि कि ई संसार अपने आप उत्पन्न भेल अछि आओर ई विश्वास करक कोनो कारण अछि कि एकरा पाछाँ कोनो ईश्वरक हाथ अछि। दरअसल असुर केँ संसारक सृष्टिक विषयमे पूरा पूरा ज्ञान नहि अछि। हुनकर अनुसार शास्त्रक कोनो एक व्याख्या दोसर व्याख्याक ही समान अछि किएक तऽ ओ शास्त्रीय आदेशक मानक ज्ञानमे विश्वास नहि राखैत अछि।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।।९।।

एताम्- एहि; **दृष्टिम्**- दृष्टि केँ; **अवष्टभ्य**- स्वीकार करिक; **नष्ट**- खोक; **आत्मनः**- अपने आप; **अल्पबुद्धयः**- अल्पज्ञानी; **प्रभवन्ति**- फूलैत फलैत अछि; **उग्रकर्माणः**- कष्टकारक कर्म मे प्रवृत्त; **क्षयाय**- विनाशक लेल; **जगतः**- संसारक; **अहितः**- अनुपयोगी।

एहन निष्कर्षक अनुगमन करैत आसुरी लोग, जे आत्म-ज्ञान खो देलक अछि आओर जे बुद्धिहीन अछि, एहन अनुपयोगी एवं भयावह कार्यमे प्रवृत्त होइत अछि जे संसारक विनाश करक लेल

होइत अछि।

तात्पर्यः आसुरी लोग एहन कार्यमे व्यस्त रहैत अछि जाहि सँ संसारक विनाश भऽ जाए। भगवान् एतय कहैत छथि कि ओ कम बुद्धि बला (अल्पज्ञ) अछि। भौतिकवादी, जकरा ईश्वरक कोनो बोध नहि होइत अछि, सोचैत रहैत अछि कि ओ प्रगति कऽ रहल अछि। लेकिन भगवद्गीताक अनुसार ओ बुद्धिहीन तथा समस्त विचार सँ शुन्य होइत अछि। ओ एहि भौतिक जगतक अधिक सँ अधिक भोगक प्रयत्न करैत अछि। अतएव इन्द्रियतृप्तिक लेल ओ किछु न किछु नया आविष्कार करैत रहैत अछि। एहन भौतिक अवतार केँ मानव सम्यताक विकास मानल जाइत अछि, लेकिन एकर दुष्परिणाम ई होइत अछि कि लोग अधिकाधिक हिंसक तथा क्रूर होइत जाइत अछि। ई श्लोक नाभिकीय अस्त्रक आविष्कारक पूर्ण सूचना दैत अछि, जकर आई सम्पूर्ण विश्व केँ, गर्व अछि। कौखन, कोनो क्षण युद्ध आरम्भ भऽ सकैत अछि आओर ई परमाणु हथियार विनाशलीला उत्पन्नक सकैत अछि। एतय एकर संकेत कैल गेल अछि, ईश्वरक प्रति अविश्वासक कारण ही एहन हथियारक आविष्कार मानव समाजमे कएल जाइत अछि ओ संसारक शान्ति तथा स्वतंत्रताक लेल नहि होइत अछि।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥१०॥

कामम्– काम, विषय भोगक; **आश्रित्य**– शरण लऽकऽ; **दुष्पूरं**– अपूरणीय, अतृप्त; **दम्भ**– गर्व; **मान**– झूठ प्रतिष्ठाक; **मद अन्विताः**– मद मे चूर; **मोहात्**– मोह सँ; **गृहीत्वा**– ग्रहण करिक; **असत्**– क्षणभंगुर; **ग्राहान्**– वस्तु केँ; **प्रवर्तन्ते**– फलैत फुलैत अछि; **अशुचि**– अपवित्र; **व्रताः**– व्रत लिअवाला।

कहियो नहि संतुष्ट हुअवाला कामक आश्रय लऽकऽ तथा गर्व एवं मिथ्या प्रतिष्ठामे डूबल आसुरी लोग एहि तरह मोहग्रस्त भऽकऽ सदैव क्षणभंगुर वस्तुक द्वारा अपवित्र कर्मक व्रत लेने रहैत अछि।

तात्पर्यः एतय आसुरी मनोवृत्तिक वर्णन भेल अछि। असुरमे काम कौखन तृप्त नहि होइत अछि। ओ भौतिक भोगक लेल अपन अतृप्त

इच्छा बढ़बैत चलि जाइत अछि। यद्यपि ओ क्षणभंगुर वस्तु केँ स्वीकार करकक कारणेँ सदैव चिन्तामग्न रहैत अछि, तो भी ओ मोहवश एहन कार्य करैत जाइत अछि। ओ दू वस्तुक ओर अधिकाधिक आकृष्ट होइत अछि–कर्म भोग तथा सम्पत्ति संचय। आसुरी लोग मद्य, स्त्री, द्यूतक्रीड़ा तथा मांसाहारक प्रति आसक्त रहैत अछि जे अपवित्र आदत अछि। दर्प अहंकार सँ प्रेरित भऽकऽ ओ एहन धार्मिक सिद्धान्त बनबैत अछि जकर अनुमति वैदिक आदेश नहि दैत अछि। यद्यपि एहन आसुरी लोग उत्यन्त निन्दनीय होइत अछि, लेकिन संसारमे कृत्रिम साधन सँ एहन लोगक झूठा सम्मान कैल जाइत अछि। यद्यपि ओ नरकक ओर बढ़ैत जाइत अछि, लेकिन ओ अपना केँ बहुत पैघ मानैत अछि।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥११॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥१२॥

चिन्ताम्– भय तथा चिन्ताक; **अपरिमेयाम्**– अपार; **च**– तथा; **प्रलय अन्ताम्**– मरणकाल धरि; **उपाश्रिताः**– शरणागत; **काम उपभोग**– इन्द्रियतृप्ति; **परमाः**– जीवनक परम लक्ष्य; **एतावत्**– एतेक; **इति**– एहि प्रकार; **निश्चिताः**– निश्चित करि कऽ; **आशा पाश**– आशा रुपी बन्धन; **शतैः**– सैकड़ोंक द्वारा; **बद्धाः**– बाँधल; **काम**– काम; **क्रोध**– क्रोधमे; **परायणाः**– सदैव स्थित; **ईहन्ते**– इच्छा करैत अछि; **भोग**– इन्द्रियभोग; **अर्थम्**– क निमित्त; **अन्यायेन**– अवैध रुप सँ; **अर्थ**– धनक; **संचयान्**– संग्रह।

हुनका विश्वास अछि कि इन्द्रियक तृष्टि ही मानव सभ्यताक मूल आवश्यकता अछि। एहि प्रकार मरणकाल तक हुनका अपार चिन्ता होइत रहैत अछि। ओ लाखों इच्छाक जालमे बँधिक तथा काम आओर क्रोधमे लीन भऽकऽ इन्द्रियतृप्तिक लेल अवैध ढंग सँ धन संग्रह करैत अछि।

तात्पर्यः आसुरी लोग मानैत अछि कि इन्द्रियक भोग ही जीवनक चरणलक्ष्य अछि आओर ओ आमरण एहि विचारधारा केँ धारण केने रहैत

अछि। ओ मृत्युक बाद जीवनमे विश्वास नहि करैत अछि। जीवनक लेल हुनकर कोनो योजनाक अन्त नहि होइत अछि आओर ओ एकक बाद एक योजना बनाबैत रहैत अछि, जे कहियो समाप्त नहि होइत अछि। आसुरी मनुष्य, जे ईश्वर या अपना अन्दरमे स्थित परमात्मामे श्रद्धा नहि राखैत, केवल इन्द्रियतृप्तिक लेल सब प्रकारक पाप कर्म करैत रहैत अछि। ओ नहि जानैत अछि कि ओकरा हृदयक भीतर एक साक्षी अछि। परमात्मा प्रत्येक जीवात्माक कार्य केँ देखैत रहैत अछि। जेना कि उपनिषद्‌मे कहल गेलै अछि कि एक वृक्ष पर दू पक्षी बसैल अछि। एक पक्षी कर्म करैत टहनीमे लागल सुख–दुख रुपी फल केँ भोग रहल अछि आओर दोसर ओकर साक्षी अछि। लेकिन आसुरी मनुष्य केँ न तो वैदिक शास्त्रक ज्ञान अछि, न कोनो श्रद्धा अछि। अतएव ओ इन्द्रियभोगक लेल किछु भी करक लेल अपना केँ स्वतंत्र मानैत अछि, ओकरा परिणामक परवाह नहि रहैत अछि।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥१३॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥१४॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥१५॥

इदम्– ई; **अद्य**– आई(आज); **मया**– हमरा द्वारा; **लब्धम्**– प्राप्त; **इमम्**– एकरा; **प्राप्स्ये**– प्राप्त करब; **मनः रथम्**– इच्छित; **अस्ति**– अछि; **अपि**– भी; **मे**– हमर; **भविष्यति**– भविष्यमे बढ़ि जाएत; **पुनः**– फेर; **धनम्**– धन; **असौ**– ओ; **मया**– हमर; **हतः**– मारल गेल; **शत्रुः**– शत्रु; **हनिष्ये**– मारब; **च**– भी; **अपरान्**– अन्य सब केँ; **अपि**– निश्चय ही; **ईश्वरः**– प्रभु, स्वामी; **अहं**– हम; **भोगी**– भोक्ता; **सिद्ध**– सिद्ध; **अहं**– हम; **बलवान्**– शक्तिशाली; **सुखी**– प्रसन्न; **आढ्य**– धनी; **अभिजनवान्**– कुलीन सम्बन्धी सँ घिरल; **अस्मि**– हम छी; **कः**– के; **अन्य**– दोसर; **अस्ति**– अछि; **सदृशः**– समान; **मया**– हमरा द्वारा; **यक्ष्ये**– हम यज्ञ करब; **दास्यामि**– दान देव; **मोदिष्य**– आमोद प्रमोद मानव; **इति**– एहि प्रकार; **अज्ञान**– अज्ञानतावश; **विमोहिताः**– मोहग्रस्त।

आसुरी व्यक्ति सोचैत अछि, आई हमरा पास एतेक धन अछि आओर अपन योजना सँ हम आओर अधिक धन कमाएव। एहि समय हमरा पास एतेक अछि किन्तु भविष्यमे ई बढ़िक आओर अधिक भऽ जाइत। ओ हमर शत्रु अछि आओर हम ओकरा मारि देलियै अछि आओर हमर अन्य शत्रु भी मारि देल जाइत। हम समस्त वस्तुक स्वामी छी, हम भोक्ता छी। हम सिद्ध, शक्तिमान् तथा सुखी छी। हम सबसँ धनी छी आओर हमरा आसपास हमर कुलीन सम्बन्धी अछि। क्यो अन्य हमरा समान शक्तिमान् तथा सुखी नहि अछि। हम यज्ञ करब, दान देव आओर एहि तरह आनन्द मनाएब। एहि प्रकार एहन व्यक्ति अज्ञानवश मोहग्रस्त होइत रहैत अछि।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥१६॥

अनेक– कतेको; **चित्त**– चिन्ता सँ; **विभ्रान्ताः**– उद्विग्न; **मोह**– मोह मे; **जाल**– जाल सँ; **समावृताः**– घेरल; **प्रसक्ताः**– आसक्त; **काम भोगेषु**– इन्द्रियतृप्ति मे; **पतन्ति**– गिर जाइत अछि; **नरके**– नरक मे; **अशुचौ**– उपवित्र।

एहि प्रकार अनेक चिन्ता सँ उद्विग्न भऽकऽ तथा मोहजालमे बँधि कऽ ओ इन्द्रियभोगमे अत्यधिक आसक्त भऽ जाइत अछि आओर नरकमे गिरैत अछि।

तात्पर्यः आसुरी व्यक्ति धन अर्जित करक इच्छाक कोनो सीमा नहि जानैत अछि। ओ पहिने सँ अपन अधिकृत सम्पत्ति यथा भूमि, परिवार, घर तथा अन्य पूँजी पर मुग्ध रहैत अछि आओर ओहिमे वृद्धिक लेल सदैव योजना बनाबैत रहैत अछि। आसुरी व्यक्ति अपना शक्ति पर विश्वास करैत अछि, कर्मक नियम पर नहि। ओ सोचैत अछि कि ई चीज आकस्मिक अछि आओर ओकरे सामर्थ्यक फलस्वरुप अछि। एहन आसुरी मनुष्यक प्रतियोगितामे जे भी सामने आवैत अछि, ओ ओकर शत्रु बनि जाइत अछि। शत्रुता पहिने मनुष्यक बीच, फिर परिवारक बीच तखन समाजक बीच। सामान्यतया एहन व्यक्ति स्वयं केँ ईश्वर मानैत अछि।

आसुरी व्यक्तिक उपदेश अछि–ईश्वर सँ दूर रहू, ईश्वर पर विश्वास नहि करु। अपना मनोनुकुल काज करु। ई सब मोहजाल अछि। एहि जालमे मछलीक भाँति फँसिक मनुष्य नरकमे गिड़ैत अछि।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥१७॥

आत्म सम्भाविताः– अपना केँ श्रेष्ठ मानएवाला; **स्तब्धाः**– घमंडी; **धन मान**– धन तथा झूठ प्रतिष्ठाक; **मद**– मद मे; **अन्विताः**– लीन; **यजन्ते**– यज्ञ करैत अछि; **नाम**– नाम मात्रक लेल; **यज्ञैः**– यज्ञक द्वारा; **ते**– ओ; **दम्भेन**– घमण्ड सँ; **अवधि पूर्वकम्**– विधि विधानक पालन केने बिना।

अपना केँ श्रेष्ठ मानवाला तथा सदैव घमण्ड करै वाला, सम्पत्ति तथा मिथ्या प्रतिष्ठा सँ मोहग्रस्त लोग कोनो विधि विधानक पालन नहि करैत कहियो कहियो नाम मात्रक लेल बड़े ही गर्वक संग यज्ञ करैत अछि।

तात्पर्यः वास्तवमे एहि संसार सँ विरक्त हुअवला पर अनेक प्रतिबन्ध होइत अछि। लेकिन ई असुर एहि प्रतिबन्धक परवाह नहि करैत अछि। ओ सोचैत अछि जे भी मार्ग बना लेल जाय, ओहे अपन मार्ग अछि। ओकरा समक्ष आदर्श मार्ग जेना कोनो वस्तु नहि, जाहि पर चलल जाय। एतय अविधिपूर्वकम् शब्द पर बल देल गेलै अछि जकर अर्थ अछि विधि–विधानक परवाह नहि करैत, ई सब बात सदैव अज्ञान तथा मोहक कारण होइत अछि।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥१८॥

अहङ्कारम्– मिथ्या अभिमान; **बलम्**– बल; **दर्पम्**– घमण्ड; **कामम्**– काम, विषयभोग; **क्रोधम्**– क्रोध; **च**– भी; **संश्रिताः**– शरणागत, आश्रय लैत; **माम्**– हमरा; **आत्म**– अपन; **पर**– पराया; **देहेषु**– शरीर मे; **प्रद्विषन्तः**– निन्दा करैत; **अभ्यसूयकाः**– ईर्ष्यालु।

मिथ्या अहंकार, बल, दर्प, काम तथा क्रोध सँ मोहित भऽकऽ आसुरी व्यक्ति अपन शरीरमे तथा अन्यक शरीरमे स्थित भगवान् सँ ईर्ष्या आओर वास्तविक धर्मक निन्दा कर लागैत अछि।

तात्पर्यः आसुरी व्यक्ति भगवानक श्रेष्ठताक विरोधी भेलाक कारण शास्त्रमे विश्वास करब पसन्द नहि करैत अछि। ओ शास्त्र एवं भगवानक अस्तित्व एहि दूनू सँ ही ईर्ष्या करैत अछि। ओ प्रत्येक कार्यमे अपना केँ स्वतंत्र तथा शक्तिमान मानैत अछि। ओ सोचैत अछि कि कोनो भी शक्ति, बल या सम्पत्तिमे ओकर समता नहि कऽ सकत, अतः ओ चाहे जाहि तरह सँ कर्म करे, ओकरा क्यो नहि रोकि सकत। यदि ओकर क्यो शत्रु ओकर ऐन्द्रिय कार्य सँ आगाँ बढ़ै सँ रोकैत अछि तो ओ ओकरा अपन शक्ति सँ छिन्न-भिन्न करक योजना बनबैत अछि।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥१९॥

तान्- ओहि; **अहम्**- हम; **द्विषतः**- ईर्ष्यालु; **क्रूरान्**- शरारती लोग केँ; **संसारेषु**- भवसागर मे; **नर अधमान्**- अधम मनुष्य केँ; **क्षिपामि**- डालैत छी; **अजस्रम्**- सदैव; **अशुभान्**- अशुभ; **आसुरीषु**- आसुरी; **एव**- निश्चय ही; **योनिषु**- गर्भ मे।

जे लोग ईर्ष्यालु या क्रूर अछि आओर नराधम अछि, ओकरा हम निरन्तर विभिन्न आसुरी योनिमे, भवसागरमे डालैत रहैत छी।

तात्पर्यः एहि श्लोक सँ स्पष्ट इंगित भेल कि कोनो जीव केँ कोनो विशेष शरीरमे राखक परमेश्वरक केँ विशेष अधिकार प्राप्त अछि। श्रीमद् भागवतक तृतीय स्कन्धमे कहल गेलै अछि कि मृत्युक बाद जीव केँ माताक गर्भमे राखल जाइत अछि, जतए उच्च शक्तिक निरीक्षणमे विशेष प्रकारक शरीर प्राप्त होइत अछि। इहै कारण अछि कि संसारमे जीवक एतेक योनि प्राप्त होइत अछि- यथा पशु, कीट, मनुष्य आदि। आसुरी योनिवाला मनुष्य सदैव काम सँ पूरित रहैत अछि, सदैव उग्र, घृणास्पद तथा अपवित्र होइत अछि। जंगलक अनेक शिकारी मनुष्य आसुरी योनि सँ सम्बन्धित मानल जाइत अछि।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥२०॥

आसुरीम्- आसुरी; **योनिम्**- योनि केँ; **आपन्नाः**- प्राप्त भेल; **मूढ़ाः**- मूर्ख; **जन्मनि जन्मनि**- जन्मजन्मान्तर मे; **माम्**- हमरा; **अप्राप्य**- पेने

बिना; **एव**– निश्चय ही; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **ततः**– तत्पश्चात्; **यान्ति**– जाइत अछि; **अधमाम्**– अधम, निन्दित; **गतिम्**– गन्तव्य केँ।

हे कुन्तीपुत्र! एहन व्यक्ति आसुरी योनिमे बारम्बार जन्म ग्रहण करैत कहियो भी हमरा तक पहुँच नहि पाबैत अछि। ओ धीरे-धीरे अत्यन्त अधम गति केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः ई विख्यात अछि कि ईश्वर अत्यन्त दयालु छथि, लेकिन ओ असुर पर कहियो भी दया नहि करैत छथि। आसुरी लोग केँ जन्मजन्मान्तर तक ओकरे सनक (समान) असुरक गर्भमे राखल जाइत अछि आओर ईश्वरक कृपा प्राप्त नहि भेला सँ ओकर अध:पतन होइत रहैत अछि जाहि सँ ओकरा कुत्ता, बिल्ली तथा सूगर जकाँ शरीर भटैत अछि। कहियो-कहियो परमेश्वर असुरक बध करैत छथि, लेकिन ई वध भी ओकरा लेल कल्याणकारी होइत अछि। वैदिक साहित्य सँ पता चलैत अछि कि जाहि ककरो वध परमेश्वर द्वारा होइत अछि तँ ओकरा मोक्ष भेटैत अछि।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।२१॥

त्रिविधं– तीन प्रकारक; **नरकस्य**– नकरक ; **इदम्**– ई; **द्वारम्**– द्वार; **नाशनम्**– विनाशकरी; **आत्मनः**– आत्माक; **कामः**– काम; **क्रोधः**– क्रोध; **तथा**– आओर; **लोभः**– लोभ; **तस्मात्**– अतएव; **एतत्**– एहि; **त्रयम्**– तीनू केँ; **त्यजेत्**– त्याग देबाक चाही।

एहि नरकक तीन द्वार अछि-काम, क्रोध तथा लोभ। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति केँ चाही कि एकरा त्याग दिए किएक तऽ एहि सँ आत्माक पतन होइत अछि।

तात्पर्यः मनुष्य अपन काम केँ तुष्ट कर चाहैत अछि, किन्तु जखन ओकरा पूरा नहि करि पाबैत तो क्रोध तथा लोभ उत्पन्न होइत अछि। जे बुद्धिमान मनुष्य आसुरी योनिमे नहि खसए चाहैत अछि ओकरा चाही कि ओ एहि तीनू शत्रु (काम, क्रोध तथा लोभ)क परित्याग करि दिए किएक तऽ ई आत्माक हनन एहि हद तक करि दैत अछि कि एहि भवबन्धन सँ मुक्तिक सम्भावना नहि रहि जाइत अछि।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥२२॥

एतैः- एहि सँ; **विमुक्तः**- मुक्त भऽकऽ; **कौन्तेय**- हे कुन्तीपुत्र; **तमः द्वारैः**- अज्ञानक द्वार सँ; **त्रिभिः**- तीन प्रकारक; **नरः**- व्यक्ति; **आचरति**- करैत अछि; **आत्मनः**- अपना लेल; **श्रेयः**- मंगल, कल्याण; **ततः**- तत्पश्चात्; **याति**- जाइत अछि; **पराम्**- परम; **गतिम्**- गन्तव्य केँ।

हे कुन्तीपुत्र! जे व्यक्ति एहि तीनू नरक-द्वार सँ बचि पाबैत अछि, ओ आत्मसाक्षात्कारक लेल कल्याणकारी कार्य करैत अछि आओर एहि प्रकार क्रमशः परम गति केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः मनुष्य केँ मानव जीवनक तीन शत्रु- काम, क्रोध तथा लोभ सँ अत्यन्त सावधान रहक चाही। जे व्यक्ति जते ही एहि तीनू सँ मुक्त हैत, ओते ओकर जीव शुद्ध हेतै। तखन ओ वैदिक साहित्यमे आदिष्ट विधि-विधानक पालनक सकत। एहि प्रकार मानव-जीवनक विधि-विधानक पालन करैत ओ अपने आप केँ धीरे-धीरे आत्म साक्षात्कारक पद पर प्रतिष्ठित कऽ सकैत अछि। ओकर मुक्तिमे कोनो सन्देह नहि रहि जाइत।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥२३॥

यः- जे; **शास्त्र विधिम्**- शास्त्रक विधि केँ; **उत्सृज्य**- त्यागक; **वर्तते**- करैत रहैत अछि; **कामकारतः**- कामक वशीभूत भऽकऽ मनमानी ढ़ंग सँ; **न**- कहियो नहि; **सः**- ओ; **सिद्धिम्**- सिद्धि केँ; **अवाप्नोति**- प्राप्त करैत अछि; **सुखम्**- सुख केँ; **पराम्**- परम; **गतिम्**- सिद्ध अवस्था केँ।

जे शास्त्रक आदेशक अवहेलना करैत अछि आओर मनमाने ढ़ंग सँ कार्य करैत अछि, ओकरा न तो सिद्धि, न सुख, न ही परमगतिक प्राप्ति भऽ पाबैत अछि।

तात्पर्यः जेना कि पहिने चर्चा भऽ चुकल अछि मानव समाजक विभिन्न आश्रम तथा वर्णक लेल शास्त्र विधि देल गेल अछि। प्रत्येक व्यक्ति केँ एहि विधि-विधानक पालन करक चाही। यदि क्यो एकर पालन नहिक काम, क्रोध आओर लोभवश स्वेच्छा सँ कार्य करैत अछि

तो ओकरा जीवनमे कहियो सिद्धि नहि प्राप्त भऽ सकैत अछि। अतएव मनुष्य केँ चाही कि अपने आप केँ कृष्णभावनामृत तथा भक्तिक पदक ऊपर लऽ जाए। तखने ओ परम सिद्धावस्था केँ प्राप्तक सकैत अछि, अन्यथा नहि। जे व्यक्ति जानि-बूझि कऽ नियमक अतिक्रमण करैत अछि, ओ कामक वशमे भऽकऽ कर्म करैत अछि। ओ जानैत अछि एना नहि करक चाही लेकिन पुनः एहन कार्य करैत अछि। एकरा स्वेच्छाचार कहल जाइत अछि। स्वेच्छाचारी व्यक्ति अवश्य ही भगवान् द्वारा दण्डित होइत अछि। एहन व्यक्ति केँ मनुष्य जीवनक सिद्धि प्राप्ति नहि हो पाबैत अछि। मनुष्य जीवन तऽ अपने आपकेँ शुद्ध बनक लेल अछि, किन्तु जे व्यक्ति विधि-विधानक पालन नहि करैत अछि, ओ अपना केँ न तो शुद्ध बना सकैत अछि, न ही वास्तविक सुख प्राप्त कऽ सकैत अछि।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥२४॥

तस्मात्- इसलिए; **शास्त्रम्**- शास्त्र; **प्रमाणम्**- प्रमाण; **ते**- अहाँक; **कार्य**- कर्तव्य; **अकार्य**- निषिद्ध कर्म; **व्यवस्थितौ**- निश्चित कर मे; **ज्ञात्वा**- जानिक; **शास्त्र**- शास्त्रक; **विधान**- विधान; **उक्तम्**- कहल गेलै अछि; **कर्म**- कर्म; **कर्तुम्**- कर; **इह**- एहि संसार मे; **अर्हसि**- अहाँ केँ चाही।

अतएव मनुष्य केँ ई जानब चाही कि शास्त्रक विधानक अनुसार की कर्तव्य अछि आओर की अकर्तव्य अछि। ओकरा एहि विधि-विधान केँ जानि कऽ कर्म करक चाही जाहि सँ ओ क्रमशः ऊपर उठि सकए।

तात्पर्यः पन्द्रहम अध्यायमे कहल जा चुकल अछि-वेदक सब विधि-विधान कृष्ण केँ जानबक लेल अछि। यदि क्यो भगवद्गीता सँ कृष्ण केँ जानि लैत अछि आओर भक्तिमे प्रवृत्त भऽकऽ कृष्णभावनामृत केँ प्राप्त होइत अछि, तो ओ वैदिक साहित्य द्वारा प्रदत्त ज्ञानक चरम सिद्धि तक पहुँच जाइत अछि।

सारांशः मानव समाजमे समस्त पतनक मुख्य कारण भागवतविद्याक नियमक प्रति द्वेष अछि। ई मानव जीवनक सर्वोच्च कमजोरी अछि। अतएव भगवानक भौतिक शक्ति अर्थात् माया त्रयतापक रुपमे हमरा

सदैव कष्ट दैत रहैत अछि। ई भौतिक शक्तिक तीनू गुण सँ बनल अछि। एकरा पूर्व कि भगवानक ज्ञानक मार्ग खुले, मनुष्य केँ कम सँ कम सतोगुण तक ऊपर उठ होइत अछि। सतोगुण तक उठे बिना ओ रजो तथा तमोगुणमे रहैत अछि, जे आसुरी जीवनक कारणस्वरुप अछि। रजो तथा तमोगुणी व्यक्ति शास्त्र, पवित्र मनुष्य तथा भगवान् केँ समुचित ज्ञानक हँसी उड़ाबैत अछि। ओ गुरुक आदेश केँ उल्लंघन करैत अछि आओर शास्त्रक विधानक परबाह नहि करैत अछि। ओ भक्तिक महिमाक श्रवण करिक भी ओकरा प्रति आकृष्ट नहि होइत। एहि प्रकार ओ अपन उन्नतिक अपन निजी मार्ग बनबैत अछि। मानव समाजक ई कतिपय दोष अछि, जकर कारणेँ आसुरी जीवन बितब पड़ैत अछि, किन्तु यदि उपयुक्त तथा प्रमाणिक गुरुक मार्गदर्शन प्राप्त भऽ जाइत अछि, तो ओकर जीवन सफल भऽ जाइत अछि किएक तऽ गुरु उच्चपदक ओर उन्नतिक मार्ग दिखा सकैत छथि। अतएव जे शास्त्रक तात्पर्य केँ वास्तवमे समझैत अछि, ओ भाग्यशाली मानल जाइत अछि। शास्त्रक विधानक पालन केने बिना क्यो सिद्धि प्राप्त नहि कऽ सकैत अछि।

एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक सोलहम अध्याय **''दैवी तथा आसुरी स्वभाव''** पूर्ण भेल।



अध्याय-सत्रह



श्रद्धाक विभाग

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥१॥

अर्जुन उवाच- अर्जुन कहलखिन; **ये**- जे; **शास्त्र विधिम्**- शास्त्रक विधान केँ; **उत्सृज्य**- त्यागक; **यजन्ते**- पूजा करैत अछि; **श्रद्धया**- पूर्ण श्रद्धा सँ; **अन्विताः**- युक्त; **तेषाम्**- हुनकर; **निष्ठा**- श्रद्धा; **तु**- लेकिन; **का**- कोन, केहन; **कृष्ण**- हे कृष्ण ; **सत्त्वम्**- सतोगुणी; **आहो**- अथवा अन्य; **रजः**- रजोगुणी; **तमः**- तमोगुणी।

अर्जुन कहलखिन-हे कृष्ण! जे लोग शास्त्रक नियमक पालन नहि करिक अपन कल्पनाक अनुसार पूजा करैत अछि, ओकर स्थिति केहन अछि? ओ सतोगुणी अछि, रजोगुणी अछि या तमोगुणी?

तात्पर्यः चतुर्थ अध्यायक उन्तालीसम श्लोक (४/३९)मे कहल गेलै अछि कि कोनो विशेष प्रकारक पूजामे निष्ठावान व्यक्ति क्रमशः ज्ञानक अवस्था केँ प्राप्त होइत अछि आओर शान्ति तथा सम्पन्नताक सर्वोच्च सिद्धावस्था तक पहुँचैत अछि। सोलहम अध्यायमे ई निष्कर्ष निकलैत अछि कि जे शास्त्रक नियमक पालन नहि करता, ओ असुर अछि आओर

जे निष्ठापूर्वक एहि नियमक पालन करैत अछि, ओ देव अछि। आब यदि क्यो एहन निष्ठावान व्यक्ति हो, जे एहन कतिपय नियमक पालन करैत हो, जकर शास्त्रमे उल्लेख नहि हो, तो ओकर स्थिति की होएत? अर्जुनक एहि सन्देहक स्पष्टीकरण कृष्ण द्वारा भेनाइ अछि। की ओ लोग जे कोनो व्यक्ति केँ ओहि पर कोनोक रुपमे श्रद्धा दिखाबैत अछि, सतो, रजो या तमोगुणमे पूजा करैत अछि? की एहन व्यक्ति केँ जीवनक सिद्धावस्था प्राप्त भऽ पाबैत अछि? जे लोग शास्त्रक विधि-विधानक पालन नहि करैत अछि, किन्तु जकरा कोन पर श्रद्धा अछि आओर जे देवी-देवता तथा मनुष्यक पूजा करैत अछि, की ओकरा सफलता प्राप्त होइत अछि? अर्जुन एहि प्रश्न सब केँ श्रीकृष्ण सँ पूछि रहल छथि।

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥२॥

श्रीभगवान् उवाच- भगवान् कहलथिन; **त्रि विधा**- तीन प्रकारक; **भवति**- होइत अछि; **श्रद्धा**- श्रद्धा; **देहिनाम्**- देहधारीक; **सा**- ओ; **स्व-भाव-जा**- प्रकृतिक गुणक अनुसार; **सात्त्विकी**- सतोगुणी; **राजसी**- रजोगुणी; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **तामसी**- तमोगुणी; **च**- तथा; **इति**- एहि प्रकार; **ताम्**- ओकरा; **शृणु**- हमरा सँ सुनू।

भगवान् कहलथिन-देहधारी जीव द्वारा अर्जित गुणक अनुसार ओकर श्रद्धा तीन प्रकारक भऽ सकैत अछि-सतोगुणी, रजोगुणी अथवा तमोगुणी। आब एकरा विषयमे हमरा सँ सुनू।

तात्पर्यः जे लोग शास्त्रक विधि-विधान केँ जानैत अछि, लेकिन आलस्य या कार्यविमुखतावश एकर पालन नहि करैत, ओ प्रकृतिक गुण द्वारा शासित होइत अछि। ओ अपन सतोगुणी, रजोगुणी या तमोगुणी पूर्वकर्मक अनुसार एक विशेष प्रकारक स्वभाव प्राप्त करैत अछि। विभिन्न गुणक संग जीवक संगति शाश्वत चलैत रहैत अछि। चूँकि जीव प्रकृतिक संसर्गमे रहैत अछि, अतएव ओ प्रकृतिक गुणक अनुसार ही विभिन्न प्रकारक मनोवृत्ति अर्जित करैत अछि। लेकिन यदि क्यो प्रमाणिक गुरुक संगति करैत अछि आओर ओकर तथा शास्त्रक विधि-विधानक पालन

करैत अछि, तो ओकर ई मनोवृत्ति बदलि सकैत अछि। प्रकृतिक कोनो गुण विशेषमे अन्धविश्वास सँ ही व्यक्ति सिद्धि नहि प्राप्तक सकैत अछि। ओकरा प्रमाणिक गुरुक संगतिमे रहि कऽ बुद्धिपूर्वक बात पर विचार करक चाही। तखन ओ उच्चतर गुणक स्थिति कें प्राप्त भऽ सकैत अछि।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥३॥

सत्त्व अनुरुपा– अस्तित्वक अनुसार; **सर्वस्य**– सबहक; **श्रद्धा**– निष्ठा; **भवति**– भऽ जाइत अछि; **भारत**– हे भरतपुत्र; **मयः**– सँ युक्त; **अयम्**– ई; **पुरुषः**– जीवात्मा; **यः**– जे; **यत्**– जकरा भेला सँ; **श्रद्धः**– श्रद्धा; **सः**– एहि प्रकार; **एव**– निश्चय ही; **सः**– ओ।

हे भरतपुत्र! विभिन्न गुणक अन्तर्गत अपने अपन अस्तित्वक अनुसार मनुष्य एक विशेष प्रकारक श्रद्धा विकसित करैत अछि। अपना द्वारा अर्जित गुणक अनुसार ही जीवक विशेष श्रद्धा सँ युक्त कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः श्रद्धा मूलतः सतोगुण सँ उत्पन्न होइत अछि। मनुष्यक श्रद्धा कोनो देवता, कोनो कृत्रिम ईश्वर या मनोधर्ममे भऽ सकैत अछि, लेकिन प्रबल श्रद्धा सात्त्विक कार्य सँ उत्पन्न होइत अछि। किन्तु भौतिक बद्धजीवनमे कोनो भी कार्य पूर्णतया शुद्ध नहि होइत अछि। ओ सब मिश्रित होइत अछि। ओ शुद्ध सात्त्विक नहि होइत अछि। शुद्ध सत्त्व दिव्य होइत अछि। शुद्ध सत्त्वमे रहिक मनुष्य भगवानक वास्तविक स्वभाव कें समझि सकैत अछि। जाधरि श्रद्धा पूर्णतया सात्त्विक नहि होइत, ताधरि ओ प्रकृतिक कोनो भी गुण सँ दूषित भऽ सकैत अछि। प्रकृतिक दूषित गुण हृदय तक फैल जाइत अछि। अतएव कोनो विशेष गुणक सम्पर्कमे रहिक हृदय जाहि स्थितिमे होइत अछि, ओकरे अनुसार श्रद्धा स्थापित होइत अछि। धार्मिक श्रद्धाक विभिन्नताक कारण ही पूजा भी भिन्न-भिन्न प्रकारक होइत अछि।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥४॥

यजन्ते– पूजैत अछि; **सात्त्विकाः**– सतोगुण मे स्थित लोग; **देवान्**–

देवतागण केँ; **यक्ष रक्षांसि**– असुरगण केँ; **राजसाः**– रजोगुण मे स्थित लोग; **प्रेतान्**– मृतकक आत्मा केँ; **भूत गणान्**– भूत केँ; **च**– तथा; **अन्ये**– अन्य; **यजन्ते**– पूजैत अछि; **तामसाः**– तमोगुण मे स्थित; **जनाः**– लोग सब।

सतोगुणी व्यक्ति देवता केँ पूजैत अछि, रजोगुणी यक्ष या राक्षसक पूजा करैत अछि आओर तमोगुणी व्यक्ति भूत-प्रेत केँ पूजैत अछि।

तात्पर्यः शास्त्रक अनुसार केवल भगवान् ही पूजनीय छथि। लेकिन जे शास्त्रक आदेश सँ अभिज्ञ नहि, या हुनका पर श्रद्धा नहि राखैत, ओ अपन गुण–स्थितिक अनुसार विभिन्न वस्तुक पूजा करैत अछि। जे लोग सतोगुणी छथि, ओ सामान्यतया देवताक पूजा करैत छथि। एहि देवतामे ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवता यथा इन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य सम्मिलित छथि। देवता कई छथि। सतोगुणी लोग कोनो विशेष अभिप्राय सँ कोनो विशेष देवताक पूजा करैत छथि। एहि प्रकार जे रजोगुणी अछि, ओ यक्ष–राक्षसक पूजा करैत अछि। ओहि प्रकार जे रजोगुणी तथा तमोगुणी होइत अछि, ओ सामान्यतया कोनो प्रबल मनुष्य केँ ईश्वरक रुपमे चुनि लैत अछि ओ सोचैत अछि कि क्यो भी व्यक्ति ईश्वरक भाँति पूजल जा सकैत अछि आओर फल एक सन हैत।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥५॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥६॥

अशास्त्र– जे शास्त्र मे नहि अछि; **विहितम्**– निर्देशित; **घोरम्**– अन्यक लेल हानिप्रद; **तप्यन्ते**– तप करैत अछि; **ये**– जे लोग; **तपः**– तपस्या; **जनाः**– लोग; **दम्भ**– घमण्ड; **अहंकार**– अहंकार सँ; **संयुक्ताः**– प्रवृत्त; **काम**– काम; **राग**– आसक्तिक; **बल**– बलपूर्वक; **अन्विताः**– प्रेरित; **कर्षयन्तः**– कष्ट दैत अछि; **शरीर स्थम्**– शरीरक भीतर स्थित; **भूत ग्रामम्**– भौतिक तत्त्वक संयोग; **अचेतसः**– भ्रमित मनोवृत्ति वाला; **माम्**– हमरा; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **अन्तः**– भीतर; **शरीर स्थम्**– शरीर मे स्थित; **तान्**– ओकरा; **विद्धि**– जानू; **आसुर–निश्चयान्**– असुर।

जे लोग दम्भ तथा अहंकार सँ अभिभूत भऽकऽ शास्त्र विरुद्ध कठोर तपस्या आओर व्रत करैत अछि, जे काम तथा आसक्ति द्वारा प्रेरित होइत अछि ओ मूर्ख अछि तथा जे शरीरक भौतिक तत्त्व केँ तथा शरीरक भीतर स्थित परमात्मा केँ कष्ट पहुँचाबैत अछि ओ असुर कहल जाइत अछि।

तात्पर्य: भगवद्गीताक अनुसार जे लोग एहन तपस्या जकर शास्त्रमे वर्णित नहि अछि, करैत अछि, ओ निश्चित रुप सँ आसुरी अछि। जकर कार्य शास्त्रविरुद्ध अछि आओर सामान्य व्यक्तिक हितमे नहि अछि। वास्तवमे ओ लोग गर्व, अहंकार, काम तथा भौतिक भोगक प्रति आसक्तिक कारणेँ करैत अछि। एहन कार्य सँ न केवल शरीरक ओहि तत्त्वक विक्षोभ होइत अछि जाहि सँ शरीर बनल अछि, अपितु शरीरक भीतर निवास कऽ रहल परमात्मा केँ भी कष्ट पहुँचाबैत अछि। शास्त्रमे तो आध्यात्मिक उन्नतिक लेल उपवास करक संस्तुति अछि, कोनो अन्य सामाजिक उद्देश्यक लेल नहि। अत: सामान्य मानसिक स्थितिवला पुरुष केँ शास्त्रक आदेशक पालन करक चाही। जे एहन स्थितिमे नहि अछि ओ शास्त्रक उपेक्षा तथा अवज्ञा करैत अछि आओर तपस्याक अपन विधि निर्मित कऽ लैत अछि। भगवान् एहन लोग केँ आसुरी व्यक्तिक ओतए जन्म लेवाक लेल बाध्य करैत छथि।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥७॥

आहार:– भोजन; **तु**– निश्चय; **अपि**– भी; **सर्वस्य**– हर एकक; **त्रिविध:**– तीन प्रकारक; **भवति**– होइत अछि; **प्रिय:**– प्यारा; **यज्ञ:**– यज्ञ; **तप:**– तपस्या; **तथा**– आओर; **दानम्**– दान; **तेषाम्**– हुनकर; **भेदम्**– अन्तर; **इमम्**– ई; **शृणु**– सुनू।

एतय धरि तक कि प्रत्येक व्यक्ति जे भोजन पसन्द करैत अछि, ओ भी प्रकृतिक गुणक अनुसार तीन प्रकारक होइत अछि। इहै बात यज्ञ, तपस्या तथा दानक लेल भी सत्य अछि। आब एकर भेदक विषयमे सुनू।

तात्पर्य: प्रकृतिक भिन्न-भिन्न गुणक अनुसार भोजन, यज्ञ, तपस्या

आओर दानमे भेद होइत अछि। ओ सब एक सन नहि होइत अछि। जे लोग ई समझि सकैत अछि कि कोन गुणमे की–की करक चाही, ओ वास्तवमे बुद्धिमान छथि। जे लोग सब प्रकारक यज्ञ, भोजन या दान केँ एक सन मानिक ओहिमे अन्तर नहि कर पाबैत अछि ओ अज्ञानी छथि।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥८॥

आयुः– जीवनकाल; **सत्त्व**– अस्तित्व; **बल**– बल; **आरोग्य**– स्वास्थ्य; **सुख**– सुख; **प्रीति**– संतोष; **विवर्धनाः**– बढ़बैत; **रस्याः**– रस सँ युक्त; **स्निग्धाः**– चिकना; **स्थिराः**– सहिष्णु; **हृद्या**– हृदय केँ भाववाला; **आहाराः**– भोजन; **सात्त्विक**– सतोगुणी; **प्रियाः**– अच्छा लागएवाला।

जे भोजन सात्त्विक व्यक्ति केँ प्रिय होइत अछि, ओ आयु बढ़ाव वाला, जीवन केँ शुद्ध करवाला तथा बल, स्वास्थ्य, सुख तथा तृप्ति प्रदान करएवाला होइत अछि। एहन भोजन रसमय, स्निग्ध, स्वास्थ्यप्रद तथा हृदय केँ भाववाला होइत अछि।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥९॥

कटु– कड़ुआ, तीत; **अम्ल**– खट्टा; **लवण**– नमकीन; **अतिउष्ण**– अत्यन्त गरम; **तीक्ष्ण**– चटपटा; **रुक्ष**– शुष्क; **विदाहिनः**– जलावएवाला; **आहारा**– भोजन; **राजसस्य**– रजोगुणीक; **इष्टाः**– रुचिकर; **दुःख**– दुख; **शोक**– शोक; **आमय**– रोग; **प्रदाः**– उत्पन्न करएवाला।

अत्यधिक तिक्त, खट्टा, नमकीन, गरम, चटपटा, शुष्क तथा जलन उत्पन्न कर वाला भोजन, रजोगुणी व्यक्ति केँ प्रिय होइत अछि। एहन भोजन दुःख, शोक तथा रोग उत्पन्न करैवाला होइत अछि।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥१०॥

यातयामम्– भोजन केला सँ तीन घंटा पूर्व पकायल गेल; **गत्–रसम**– स्वाद रहित; **पूति**– दुर्गंधयुक्त; **पर्युषितम्**– बिगड़ल; **च**– भी; **यत्**– जे; **उच्छिष्टम्**– अन्यक जूठन; **अपि**– भी; **च**– तथा; **अमेध्यम्**– अस्पृश्य;

भोजनम्– भोजन; **तामस**– तमोगुणी केँ; **प्रियम्**– प्रिय।

खेबा सँ तीन घंटा पूर्व पकायल गेल, स्वादहीन, वियोजित एवं सड़ल, जूठा तथा अस्पृश्य वस्तु सँ युक्त भोजन ओहि लोग केँ प्रिय होइत अछि जे तामसी होइत अछि।

तात्पर्यः भोजनक उद्देश्य आयु केँ बढ़ेनाई, मस्तिष्क केँ शुद्ध करब तथा शरीर केँ शक्ति पहुँचाएव अछि। एकर इहै एकमात्र उद्देश्य अछि। प्राचीन कालमे विद्वान पुरुष एहन भोजन चूनैत छलाह जे स्वास्थ्य तथा आयु केँ बढ़ववाला हो। ई भोजन सतोगुणी व्यक्ति केँ अत्यन्त प्रिय होइत अछि। राजस भोजन कटु, बहुत लवणीय या अत्यधिक गर्म, चटपटा होइत अछि। ओ आमाशयक श्लेष्मा केँ घटाक रोग उत्पन्न करैत अछि। तामसी भोजन अनिवार्यतः वासी होइत अछि। खेला सँ तीन घंटा पूर्व बनल कोनो भी भोजन (भगवान् केँ अर्पित प्रसाद केँ छोड़ि कऽ) तामसी मानल जाइत अछि। बिगड़लाक कारण ओहि सँ दुर्गंध आबैत अछि। जाहि सँ तामसी लोग प्रायः आकृष्ट होइत अछि, किन्तु सात्त्विक पुरुष ओहि सँ मुख मोड़ि लैत अछि। भगवद्गीतामे परमेश्वर कहैत छथि कि ओ सब्जी, आँटा तथा दूधक बनल वस्तु भक्तिपूर्वक भेंट केला पर स्वीकार करैत छथि। **''पत्रं, पुष्पं फलं तोयम्''**। निस्सन्देह भक्ति तथा प्रेम ही प्रमुख वस्तु अछि, जकरा भगवान् स्वीकार करैत छथि। कोनो भी भोजन, जे शास्त्रीय ढंग सँ तैयार कएल जाइत अछि आओर भगवान् केँ अर्पित कैल जाइत अछि, ग्रहण कएल जा सकैत अछि, भले ही ओ कतबो ही घंटा पूर्व किएक नहि तैयार भेल हो, किएक तऽ एहन भोजन दिव्य होइत अछि। अतएव भोजन केँ रोगानुरोधक, खाद्य तथा सब मनुष्यक लेल रुचिकर बनाबक लेल सर्वप्रथम भगवान् केँ अर्पित करक चाही।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदिष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥११॥

अफल आकाङ्क्षिभिः– फलक इच्छा सँ रहित; **यज्ञः**– यज्ञ; **विधि दिष्टः**– शास्त्रक निर्देशानुसार; **यः**– जे; **इज्यते**– सम्पन्न कएल जाइत अछि; **यष्टव्यम्**– सम्पन्न कएल जेवाक चाही; **एव**– निश्चय ही; **इति**– एहि प्रकार; **मनः**– मन सँ; **समाधाय**– स्थिर करिक; **सः**– ओ;

सात्त्विकः– सतोगुणी।

यज्ञमे ओहे यज्ञ सात्त्विक होइत अछि, जे शास्त्रक निर्देशानुसार कर्तव्य समझिक ओहि लोगक द्वारा कएल जाइत अछि, जे फलक इच्छा नहि करैत अछि।

तात्पर्यः सामान्यतया यज्ञ कोनो प्रयोजन सँ कएल जाइत अछि। लेकिन एतय बताओल गेल अछि कि यज्ञ बिना कोनो इच्छाक सम्पन्न कएल जेवाक चाही। प्रत्येक सभ्य नागरिकक कर्तव्य अछि कि ओ शास्त्रक आदेश पालन करे आओर भगवान् केँ नमस्कार करे।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।१२।।

अभिसन्धाय– इच्छा करि कऽ; **तु**– लेकिन; **फलम्**– फल केँ; **दम्भ**– घमण्ड; **अर्थम्**– कऽ लेल; **अपि**– भी; **च**– तथा; **एव**– निश्चय ही; **यत्**– जे; **इज्यते**– कएल जाइत अछि; **भरत श्रेष्ठ**– हे भरतवंशमे प्रमुख; **तम्**– ओहि; **यज्ञम्**– यज्ञ केँ; **विद्धि**– जानू; **राजसम्**– रजोगुणी।

लेकिन हे भरतश्रेष्ठ! जे यज्ञ कोनो भौतिक लाभक लेल या गर्ववश कएल जाइत अछि, ओकरा अहाँ राजसी जानू।

तात्पर्यः कौखन–कौखन स्वर्गलोक पहुचवाक या कोनो भौतिक लाभक लेल यज्ञ तथा अनुष्ठान कएल जाइत अछि। एहन यज्ञ या अनुष्ठान राजसी मानल जाइत अछि।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।।१३।।

विधि हीनम्– शास्त्रीय निर्देशक बिना; **असृष्ट अन्नम्**– प्रसाद वितरण केने बिना; **मंत्रहीनम्**– वैदिक मंत्रक उच्चारण केने बिना; **अदक्षिणम्**– पुरोहित केँ दक्षिणा दिये बिना; **श्रद्धा**– श्रद्धा; **विरहितम्**– विहीन; **यज्ञम्**– यज्ञ केँ; **तामसम्**– तामसी; **परिचक्षते**– मानल जाइत अछि।

जे यज्ञ शास्त्रक निर्देशक अवहेलना करिक, प्रसाद वितरण केने बिना, वैदिक मंत्रक उच्चारण केने बिना, पुरोहित केँ दक्षिणा दिये बिना तथा श्रद्धाक बिना सम्पन्न कएल जाइत अछि, ओ

तामसी मानल जाइत अछि।

तात्पर्यः तमोगुणमे श्रद्धा वास्तवमे अश्रद्धा अछि। कौखन–कौखन लोग कोनो देवताक पूजा धन अर्जित करक लेल करैत अछि आओर पुनः ओ एहि धनक शास्त्रक निर्देशक अवहेलना करिक मनोरंजनमे व्यय करैत अछि। एहन धार्मिक अनुष्ठान केँ सात्त्विक नहि मानल जाइत अछि। ई तामसी होइत अछि। एहि सँ तामसी प्रवृत्ति उत्पन्न होइत अछि आओर मानव समाज केँ कोनो लाभ नहि पहुँचैत अछि।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥१४॥

देव– परमेश्वर; **द्विज**– ब्राह्मण; **गुरु**– गुरु; **प्राज्ञः**– तथा पूज्य व्यक्तिक; **पूजनम्**– पूजा; **शौचम्**– पवित्रता; **आर्जवम्**– सरलता; **ब्रह्मचर्यम्**– ब्रह्मचर्य; **अहिंसा**– अहिंसा; **च**– भी; **शारीरम्**– शरीर सम्बन्धी; **तपः**– तपस्या; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

परमेश्वर, ब्राह्मण, गुरु, माता–पिता जेना गुरुजनक पूजा करब तथा पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य आओर अहिंसा ही शारीरिक तपस्या अछि।

तात्पर्यः भगवान् एतय तपस्याक भेद बतबैत छथि। सर्वप्रथम ओ शारीरिक तपस्याक वर्णन करैत छथि। मनुष्य केँ चाही कि ओ ईश्वर या देव, योग्य ब्राह्मण, गुरु तथा माता–पिता जेना गुरुजन या वैदिक ज्ञानमे पारंगत व्यक्ति केँ प्रणाम करी या प्रणाम करब सीखे। हिनका सबहक समुचित आदर करक चाही। ओकरा चाही कि अतिरिक्त तथा बाह्य रुपमे अपना केँ शुद्ध करक अभ्यास करे आओर आचरणमे सरल बनब सीखे। ओ एहन कार्य नहि करे, जे शास्त्र–सम्मत न हो। ओ वैवाहिक जीवनक अतिरिक्त मैथूनमे रत नहि हो, किएक तऽ शास्त्रमे केवल विवाहमे ही मैथूनक अनुमति अछि, अन्यथा नहि। ई ब्रह्मचर्य कहाबैत अछि। ई सब शारीरिक तपस्या अछि।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥१५॥

अनुद्वेग करम्– क्षुब्ध नहि कर वाला; **वाक्यम्**– शब्द; **सत्यम्**–

सच्चा; **प्रिय**– प्रिय; **हितम्**– लाभप्रद; **च**– भी; **यत्**– जे; **स्वाध्याय**– वैदिक अध्ययनक; **अभ्यसनम्**– अभ्यास; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **वाक्‌-मयम्**– वाणीक; **तप**– तपस्या; **उच्यते**– कहल गेलै अछि।

सच्चा, भाववाला, हितकर तथा अन्य केँ क्षुब्ध नहि करै वाला वाक्य(शब्द) बाजब आओर वैदिक साहित्यक नियमित पारायण करब, इहै वाणीक तपस्या अछि।

तात्पर्यः मनुष्य केँ एहन नहि बजबाक चाही कि दोसरक मन क्षुब्ध भऽ जाए। आध्यात्मिक क्षेत्रमे बजबाक विधि ई अछि कि जे भी कहल जाए ओ शास्त्र सम्मत हो। ओकरा तुरन्त ही अपन कथनक पुष्टिक लेल शास्त्रक प्रमाण देमक चाही। एकर संग-संग ओ बात सुनमे अतिप्रिय लागव चाही। एहन विवेचना सँ मनुष्य केँ सर्वोच्च लाभ आओर मानव समाजक उत्थान भऽ सकैत अछि। वैदिक साहित्यक विपुल भण्डार अछि आओर एकर अध्ययन करबाक चाही। इहै वाणीक तपस्या अछि।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥१६॥

मनः प्रसादः– मनक तुष्टि; **सौम्यत्वम्**– अन्यक प्रति कपट भाव सँ रहित; **मौनम्**– गम्भीरता; **आत्म**– अपन; **विनिग्रहः**– नियंत्रण, संयम्; **भाव**– स्वभावक; **संशुद्धिः**– शुद्धीकरण; **इति**– एहि प्रकार; **एतत्**– ई; **तपः**– तपस्या; **मानसम्**– मनक; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

संतोष, सरलता, गम्भीरता, आत्मसंयम एवं जीवनक शुद्धि ई सब मनक तपस्या अछि।

तात्पर्यः मन केँ संयमित बनेबक अर्थ अछि, ओकरा इन्द्रिय तृप्ति सँ विलग करब। ओकरा एहि तरह प्रशिक्षित करबाक चाही जाहि सँ ओ सदैव परोपकारक विषयमे सोचे। मनक लेल सर्वोत्तम प्रशिक्षित विचारक श्रेष्ठता अछि। मनुष्य केँ कृष्णभावनामृत सँ विचलित नहि होमक चाही। आओर इन्द्रियभोग सँ सदैव बचक चाही। अपन स्वभाव केँ शुद्ध बनाएव कृष्णभावनाभावित होएव अछि। इन्द्रियभोगक विचार सँ मन केँ अलग राखिक ही मनक तुष्टि प्राप्त कएल जा सकैत अछि। हम इन्द्रियभोगक बारेमे जतेक सोचैत छी ओतेक ही मन अतृप्त होइत रहैत अछि। अतः

मनुष्य केँ अपन व्यवहारमे निष्कपट होमक चाही आओर एहि तरह ओकरा अपन जीवन (भाव) केँ शुद्ध बनेबाक चाही। ई सब गुण मनक तपस्याक अन्तर्गत आबैत अछि।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥१७॥

श्रद्धया– श्रद्धा समेत; **परया**– दिव्य; **तप्तम्**– कएल गेल; **तपः**– तप; **तत्**– ओ; **त्रि विधम्**– तीन प्रकाक; **नरैः**– मनुष्य द्वारा; **अफल–आकाङ्क्षिभिः**– फलक इच्छा नहि करएवाला; **युक्तैः**– प्रवृत्त; **सात्त्विकम्**– सतोगुण मे; **परिचक्षते**– कहल जाइत अछि।

भौतिक लाभक इच्छा नहि करएवाला तथा केवल परमेश्वरमे प्रवृत्त मनुष्य द्वारा दिव्य श्रद्धा सँ सम्पन्न ई तीन प्रकारक तपस्या सात्विक तपस्या कहाबैत अछि।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।१८॥

सत्कार– आदर; **मान**– सम्मान; **पूजा**– पूजा; **अर्थम्**– क लेल; **तपः**– तपस्या; **दम्भेन**– घमण्ड सँ; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **यत्**– जे; **क्रियते**– कएल जाइत अछि; **तत्**– ओ; **इह**– एहि संसार मे; **प्रोक्तम्**– कहल जाइत अछि; **राजसम्**– रजोगुणी; **चलम्**– चलायमान; **अध्रुवम्**– क्षणिक।

जे तपस्या दम्भपूर्वक तथा सम्मान, सत्कार एवं पूजा करेवाक लेल सम्पन्न कएल जाइत अछि ओ राजसी (रजोगुणी) कहाबैत अछि। ई न तो स्थायी होइत अछि न शाश्वत।

तात्पर्यः कौखन–कौखन तपस्या एहि लेल कएल जाइत अछि कि लोग आकर्षित हो तथा ओहि सँ सत्कार, सम्मान तथा पूजा मिलि सके। रजोगुणी लोग अपन अधीनस्थ सँ पूजा करबाबैत अछि आओर ओकरा सँ चरण धुलवाक धन चढ़वाबैत अछि। तपस्या करक बहाने एहन कृत्रिम आयोजन राजसी मानल जाइत अछि। एकर फल क्षणिक होइत अछि, ओ किछु समय तक रहैत अछि। ओ कहियो स्थायी नहि होइत अछि।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।

परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्।१९॥

मूढ़– मूर्ख; **ग्राहेण**– प्रयत्न सँ; **आत्मनः**– अपने ही; **यत्**– जे; **पीडया**– उत्पीडन द्वारा; **क्रियते**– कैल जाइत अछि; **तपः**– तपस्या; **परस्य**– अन्य केँ; **उत्सादन अर्थम्**– विनाश करक लेल; **वा**– अथवा; **तत्**– ओ; **तामसम्**– तमोगुणी; **उदाहृतम्**– कहल जाइत अछि।

मूर्खतावश आत्म उत्पीडनक लेल या अन्य केँ विनष्ट कर या हानि पहुँचाबैक लेल जे तपस्या कयल जाइत अछि ओ तामसी कहाबैत अछि।

तात्पर्यः मूर्खतापूर्ण तपस्याक एहन अनेक दृष्टान्त अछि जेना कि हिरण्यकशिपु सनक असुर अमर बनब तथा देवताक वध कर लेल कठिन तपस्या केलक। ओ ब्रह्मा सँ एहने ही वस्तु मांगलक छल, लेकिन अन्तमे ओ भगवान् द्वारा मारल गेल। कोनो असम्भव वस्तुक लेल तपस्या करब निश्चय ही तामसी तपस्या अछि।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।२०॥

दातव्यम्– देव योग्य; **इति**– एहि प्रकार; **यत्**– जे; **दानम्**– दान; **दीयते**– देल जाइत अछि; **अनुपकारिणे**– प्रत्युपकारक भावनाक बिना; **देशे**– उचित स्थान मे; **काले**– उचित समय मे; **च**– भी; **पात्रे**– उपयुक्त व्यक्ति केँ; **च**– तथा; **तत्**– ओ; **दानम्**– दान; **सात्त्विकम्**– सतोगुणी, सात्त्विक; **स्मृतम्**– मानल जाइत अछि।

जे दान कर्तव्य समझि केँ, कोनो प्रत्युपकारक आशाक बिना, समुचित काल तथा स्थानमे आओर योग्य व्यक्ति केँ देल जाइत अछि, ओ सात्त्विक मानल जाइत अछि।

तात्पर्यः वैदिक साहित्यमे एहन व्यक्ति केँ दान देवाक संस्तुति अछि, जे आध्यात्मिक कार्यमे लागल हो। अविचारपूर्ण ढंग सँ दान देवाक संस्तुति नहि अछि। आध्यात्मिक सिद्धि केँ सदैव ध्यानमे राखल जाइत अछि। अतएव कोनो तीर्थ स्थानमे, सूर्य या चन्द्रग्रहणक समय मासान्तमे योग्य ब्राह्मण अथवा वैष्णव (भक्त) केँ या मंदिरमे दान देवाक संस्तुति अछि। कौखन–कौखन निर्धन केँ दान करुणावश देल जाइत अछि।

लेकिन यदि निर्धन दान देवाक योग्य (पात्र) नहि होइत अछि तो ओहि सँ आध्यात्मिक प्रगति नहि होइत अछि। दोसर शब्दमे, वैदिक साहित्यमे अविचारपूर्ण दानक संस्तुति नहि अछि।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्।२१॥

यत्– जे; **तु**– लेकिन; **प्रति**– उपकार; **अर्थम्**– बदलामे पाबक उद्देश्य सँ; **फलम्**– फल केँ; **उद्दिश्य**– इच्छा करि कऽ; **वा**– अथवा; **पुनः**– फेर; **दीयते**– देल जाइत अछि; **च**– भी; **परिक्लिष्टम्**– पश्चात्तापक संग; **तत्**– ओ; **दानम्**– दान केँ; **राजसम्**– रजोगुणी; **स्मृतम्**– मानल जाइत अछि।

किन्तु जे दान प्रत्युपकारक भावना सँ या कर्मफलक इच्छा सँ या अनिच्छापूर्वक कएल जाइत अछि, जो रजोगुणी (राजस) कहाबैत अछि।

तात्पर्यः दान कहियो स्वर्ग जेबाक लेल देल जाइत अछि तो कौखन अत्यन्त कष्ट सँ तथा कौखन एहि पश्चात्तापक संग कि **"हम एतेक व्यय एहि तरह किएक कैलहुँ"**? कौखन अपन वरिष्ठजनक दवाबमे अबि कऽ भी दान देल जाइत अछि, एहन दान रजोगुणमे देल गेल मानल जाइत अछि। अतएव केवल सात्त्विक दानक संस्तुति कएल गेल अछि।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥२२॥

अदेश– अशुद्ध स्थान; **काले**– अशुद्ध समय मे; **यत्**– जे; **दानम्**– दान; **अपात्रेभ्यः**– अयोग व्यक्ति केँ; **च**– भी; **दीयते**– देल जाइत अछि; **असत्-कृतम्**– सम्मानक बिना; **अवज्ञातम्**– समुचित ध्यान देने बिना; **तत्**– ओ; **तापसम्**– तमोगुणी; **उदाहृतम्**– कहल जाइत अछि।

जे दान कोनो अपिवित्र स्थानमे, अनुचित समयमे, कोनो अयोग्य व्यक्ति केँ या बिना समुचित ध्यान तथा आदर सँ देल जाइत अछि, ओ तामसी कहलाबैत अछि।

तात्पर्यः एतय मद्यपान तथा द्यूतक्रीड़ामे व्यसनीक लेल दान देवाक प्रोत्साहन नहि देल गेल अछि। एहि तरहक दान तामसी अछि। एहन

दान लाभदायक नहि होइत अछि वरन एहि सँ पापी पुरुष केँ प्रोत्साहन भेटैत अछि। एहि प्रकार यदि बिना सम्मान तथा ध्यान देने कोनो उपयुक्त व्यक्ति केँ दान देल जाए तो ओ भी तामसी अछि।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥२३॥

ॐ– परमक सूचक; **तत्**– ओ; **सत्**– शाश्वत्; **इति**– एहि प्रकार; **निर्देशः**– संकेत; **ब्रह्मणः**– ब्रह्मक; **त्रिविधः**– तीन प्रकारक; **स्मृतः**– मानल जाइत अछि; **ब्राह्मणाः**– ब्राह्मण लोग; **तेन**– ओहि सँ; **वेदाः**– वैदिक साहित्य; **च**– भी; **यज्ञाः**– यज्ञ; **विहिताः**– प्रयुक्त; **पुरा**– आदिकाल मे।

सृष्टिक आदिकाल सँ ॐ तत् सत् ई तीन शब्द परब्रह्म केँ सूचित करक लेल प्रयुक्त कैल जाइत रहल अछि। ई तीनू सांकेतिक अभिव्यक्ति ब्राह्मण द्वारा वैदिक मंत्रक उच्चारण करैत समय तथा ब्रह्म केँ संतुष्ट करक लेल यज्ञक समय प्रयुक्त होइत छल।

तात्पर्यः ई बताएल जा चुकल अछि कि तपस्या, यज्ञ, दान तथा भोजनक तीन–तीन भेद अछि–सात्त्विक, राजस तथा तामस। लेकिन चाहे ई उत्तम हो, मध्यम हो या निम्न हो, ई सब बद्ध तथा भौतिक गुण सँ कलुषित अछि। किन्तु जखन ई ब्रह्म–ऊँ तत् सत् केँ लक्ष्य करिक कएल जाइत अछि तो आध्यात्मिक उन्नतिक साधन बनि जाइत अछि। ऊँ तत् सत् ई तीन शब्द विशेष रुपमे परम सत्य भगवानक सूचक अछि। वैदिक मंत्रमे ऊँ शब्द सदैव रहैत अछि। जे व्यक्ति शास्त्रक विधानक अनुसार कर्म नहि करैत, ओकरा परब्रह्मक प्राप्ति नहि होइत अछि। भले ही क्षणिक फल प्राप्त भऽ जाए, लेकिन ओकरा परमगति प्राप्त नहि भऽ पाबैत अछि। तात्पर्य ई अछि कि दान, यज्ञ तथा तप केँ सतोगुणमे रहिक करक चाही। रजो तथा तमोगुणमे सम्पन्न केला पर निश्चित रुप सँ निम्न कोटिक होइत अछि। ऊँ तत् सत्क उच्चारण परमेश्वरक पवित्र नामक संग कैल जाइत अछि। ई तीन शब्द वैदिक मंत्र सँ लेल जाइत अछि। **ॐ इत्येतद्ब्रह्मणो नेदिष्ठं** नाम (ऋग्वेद) प्रथम लक्ष्यक सूचक अछि। पुनः तत् त्वमसि (छान्दोग्य उपनिषद्) दोसर लक्ष्यक सूचक अछि। तथा सद् एवम् सौम्य (छान्दोग्य उपनिषद्) तृतीय लक्ष्यक सूचक

अछि। ई तीनू मिलि कऽ ॐ तत् सत् भऽ जाइत अछि। आदिकालमे जखन प्रथम जीवात्मा ब्रह्मा जी यज्ञ केने छलाह तो एहि तीनू शब्दक द्वारा भगवान् केँ लक्षित केने छलाह। अतः एहि मंत्रक अत्यधिक महत्त्व अछि। भगवद्गीताक अनुसार कोनो भी कार्य ॐ तत् सत्क लेल अर्थात भगवानक लेल कएल जेबाक चाही। जखन क्यो एहि तीनू शब्द द्वारा तप, दान तथा यज्ञ सम्पन्न करैत अछि तो ओ कृष्णभावनामृतमे कार्य करैत अछि।

तस्माद् ॐ इत्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्।२४॥

तस्मात्– अतएव; **ॐ**– ओम् सँ प्रारम्भ करिक; **इति**– एहि प्रकार; **उदाहृत्य**– संकेत करिक; **यज्ञ**– यज्ञ; **दान**– दान; **तपः**– तपक; **क्रिया**– क्रिया; **प्रवर्तन्ते**– प्रारम्भ होइत अछि; **विधान उक्ताः**– शास्त्रीय विधानक अनुसार; **सततम्**– सदैव; **ब्रह्म वादिनाम्**– अध्यात्मवादी या योगीक।

अतएव योगीजन ब्रह्मक प्राप्तिक लेल शास्त्रीय विधिक अनुसार यज्ञ, दान तथा तपक समस्त क्रियाक शुभारम्भ सदैव ॐ सँ करैत छथि।

तात्पर्यः ॐ तद् विष्णोः परमं पदम् (ऋग्वेद)। विष्णुक चरणकमल परम भक्तिक आश्रय अछि। भगवानक लेल सम्पन्न हर एक क्रिया समस्त कार्यक्षेत्रक सिद्धि निश्चित कऽ दैत अछि।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥२५॥

तत्– ओ; **इति**– एहि प्रकार; **अनभिसन्धाय**– बिना इच्छा केने; **फलम्**– फल; **यज्ञ**– यज्ञ; **तपः**– तपक; **क्रियाः**– क्रिया; **दान**– दानक; **क्रियाः**– क्रिया; **च**– भी; **विविधाः**– विभिन्न; **क्रियन्ते**– कएल जाइत अछि; **मोक्षकाङ्क्षिभिः**– मोक्ष चाहवलाक द्वारा।

मनुष्य केँ चाही कि कर्मफलक इच्छा केने बिना विभिन्न प्रकारक यज्ञ, तप तथा दान केँ तत् शब्द कहिक सम्पन्न करे। एहन दिव्य क्रियाक उद्देश्य भव-बन्धन सँ मुक्त भेनाई अछि।

तात्पर्यः आध्यात्मिक पद तक उठक लेल मनुष्य केँ चाही कि कोनो

लाभक निमित्त कर्म नहि करे। समस्त कार्य भगवानक परमधाम वापस जेवाक उद्देश्य सँ कएल जाए, जे परम उपलब्धि अछि।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥२६॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥२७॥

सतभावे– ब्रह्मक स्वभावक अर्थ मे; **साधुभावे**– भक्तक स्वभावक अर्थ मे; **च**– भी; **सत्**– सत् शब्द; **इति**– एहि प्रकार; **एतत्**– ई; **प्रयुज्यते**– प्रयुक्त कैल जाइत अछि; **प्रशस्ते**– प्रमाणिक; **कर्मणि**– कर्म मे; **तथा**– भी; **सत् शब्द**– सत् शब्दः; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **युज्यते**– प्रयुक्त कएल जाइत अछि; **यज्ञे**– यज्ञ मे; **तपसि**– तपस्या मे; **दाने**– दान मे; **च**– भी; **स्थितिः**– स्थिति; **सत्**– ब्रह्म; **च**– तथा; **उच्चते**– उच्चारण कएल जाइत अछि; **कर्म**– कार्य; **च**– भी; **एव**– निश्चय ही; **तत्**– ओ; **अर्थीयम्**– क लेल; **अभिघीयते**– कहल जाइत अछि।

परम सत्य भक्तिमय यज्ञक लक्ष्य अछि आओर ओ सत् शब्द सँ अभिहित कएल जाइत अछि। हे पृथापुत्र! एहन यज्ञक सम्पन्नकर्ता भी सत् कहाबैत अछि, जाहि प्रकार यज्ञ, तप तथा दानक समस्त कर्म भी जे परमपुरुष केँ प्रसन्न करक लेल सम्पन्न कएल जाइत अछि, सत् अछि।

तात्पर्यः प्रशस्ते कर्मणि अर्थात् **''नियत कर्तव्य''** सूचित करैत अछि कि वैदिक साहित्यमे एहन अनेक क्रिया निर्धारित अछि, जे गर्भाधान सँ लऽकऽ मृत्यु तक संस्कारक रुपमे अछि। एहन संस्कार जीवक परम मुक्तिक लेल होइत अछि। एहन समस्त क्रियाक समय ॐ तत् सत् उच्चारण करक संस्तुति कयल जाइत अछि। सद्भाव तथा साधुभाव आध्यात्मिक स्थितिक सूचक अछि। कृष्णभावनामृतमे कर्म करब सत् अछि आओर जे व्यक्ति कृष्णभावनामृतक कार्यक प्रति सचेष्ट रहैत अछि, ओ साधु कहाबैत अछि। श्रीमद्भागवतमे कहल गेलै अछि कि भक्तक संगति सँ आध्यात्मिक विषय स्पष्ट भऽ जाइत अछि। बिना सत्संगक दिव्य ज्ञान उपलब्ध नहि भऽ पाबैत अछि। ककरो भी दीक्षित करैत समय ॐ तत्

सत् शब्दक उच्चारण कयल जाइत अछि। एहि प्रकार सब प्रकारक यज्ञ करैत समय ॐ तत् सत् या ब्रह्म ही चरम लक्ष्य होइत अछि। एहि प्रकार ॐ तत् सत् शब्द समस्त कार्य केँ पूरा करक लेल कई प्रकार सँ प्रयुक्त कयल जाइत अछि।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥२८॥

अश्रद्धया– श्रद्धारहित; **हुतम्**– यज्ञ मे आहुति कएल गेल; **दत्तम्**– प्रदत्त; **तपः**– तपस्या; **तप्तम्**– सम्पन्न; **कृतम्**– कएल गेल; **च**– भी; **यत्**– जे; **असत्**– झूठ; **इति**– एहि प्रकार; **उच्यते**– कहल जाइत अछि; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **न**– कहियो नहि; **तत्**– ओ; **प्रेत्य**– मरि कऽ; **न उ**– न तो; **इह**– एहि जीवन मे।

हे पार्थ! श्रद्धाक बिना यज्ञ, दान या तपक रुपमे जे भी कएल जाइत अछि, ओ नश्वर अछि। ओ असत् कहाबैत अछि आओर एहि जन्म तथा अगिला जन्म दूनूमे ही व्यर्थ जाइत अछि।

तात्पर्यः चाहे यज्ञ हो, दान हो या तप हो बिना आध्यात्मिक लक्ष्यक व्यर्थ रहैत अछि। एतय एहि श्लोकमे ई घोषित कैल गेल अछि कि एहन कार्य कुत्सित अछि। सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमे भगवान्मे श्रद्धाक संस्तुति कएल गेल अछि। एहन श्रद्धा तथा समुचित मार्ग दर्शनक बिना कोनो फल नहि मिल सकैत अछि। समस्त वैदिक आदेशक पालनक चरम लक्ष्य भगवान् कृष्ण जानव अछि। एहि सिद्धान्तक पालन केने बिना क्यो सफल नहि भऽ सकैत अछि। अतः सर्वश्रेष्ठ मार्ग इहै अछि कि मनुष्य प्रारम्भ सँ ही कोनो प्रमाणिक गुरुक मार्गदर्शनमे कृष्णभावनामृतमे काज करे। सब प्रकार सँ सफल होमक इहै मार्ग अछि।

श्रद्धा विभागक संक्षिप्त संदेश

ॐ तत् आओर सत् ई तीन बह्मक नाम अछि। एहि सँ आदिकालमे ब्रह्म, वेद आओर यज्ञ बनल अछि। एहि सँ ही ज्ञानी पुरुष यज्ञ, दान आओर तप आदि शास्त्रोक्त क्रियाएँ ओंकार (ॐ) उच्चारणक संग करैत छथि। मुमुक्ष जन फल केँ इच्छा नहि करिक सत् शब्दक उच्चारणक यज्ञ, तप आओर दान करैत छथि। भगवान्कृष्ण कहैत अछि– हे अर्जुन!

सत् शब्दक उच्चारण सद्भाव तथा साधुभावमे कयल जाइत अछि तथा मंगलादि वैवाहिक कर्ममे भी सत् शब्दक उच्चारण कएल जाइत अछि। यज्ञ, तप आओर दानमे जे निष्ठा अछि ओकरा सत् कहल जाइत अछि। ईश्वर प्राप्ति अर्थ जे कर्म अछि ओ भी सत् कहलाबैत अछि। हे पार्थ! श्रद्धा सँ रहित दान, तप आओर अन्य कर्म जे कएल जाइत अछि ओ असत् कहाबैत अछि। ओ न एहि लोकमे न परलोकमे हितकारी अछि। प्रमाणिक गुरुक मार्गदर्शनमे प्रशिक्षण प्राप्त करक चाही। तखने ककरो ब्रह्ममे श्रद्धा भऽ सकैत अछि। जखन काल क्रम सँ श्रद्धा परिपक्व होइत अछि, तो एकरा ईश्वर प्रेम कहल जाइत अछि। इहै प्रेम समस्त जीवक परम लक्ष्य अछि। अतएव मनुष्य केँ चाही कि सीधे कृष्णभावनामृत ग्रहण करे। एहि अध्यायक इहै संदेश अछि।

एहि प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताक सत्रहम अध्याय **''श्रद्धाक विभाग''** पूर्ण भेल।



श्रीसरस्वतीस्तोत्रम्

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा।।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं।
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।

अध्याय-अठारह



उपसंहार-सन्यासक सिद्धि

अर्जुन उवाच

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन॥१॥

अर्जुन उवाच- अर्जुन कहलखिन; **संन्यासस्य**- संन्यास (त्याग)क; **महाबाहो**- हे बलशाली भुजावला; **तत्त्वम्**- सत्य केँ; **इच्छामि**- चाहैत छी; **वेदितुम**- जानव; **त्यागस्य**- त्याग (संन्यास)क; **च**- भी; **हृषीकेश**- हे इन्द्रियक स्वामी; **पृथक्**- भिन्न रुप सँ; **केशि-निषूदन**- हे केशी असुरक संहर्ता।

अर्जुन कहलखिन हे महाबाहु! हम त्यागक उद्देश्य जानबाक इच्छुक छी आओर हे केशिनिषूदन, हे हृषीकेश! हम त्यागमय जीवन (संन्यास आश्रम)क भी उद्देश्य जानए चाहैत छी।

तात्पर्य: वास्तवमे भगवद्गीता सत्रह अध्यायमे ही समाप्त भऽ जाइत अछि। अठारहम अध्याय तो पूर्वविवेचित विषयक पूरक संक्षेप अछि। प्रत्येक अध्यायमे भगवान् बल दऽकऽ कहैत छथि कि भगवानक सेवा ही जीवनक परम लक्ष्य अछि। एहि विषय केँ एहि अठारहम अध्यायमे ज्ञानक परम गुह्य मार्ग केँ रुपमे संक्षेपमे बताएल गेल अछि। प्रथम छह

अध्यायमे भक्तियोग पर बल देल गेल अछि– **योगिनामपि सर्वेषाम्...** समस्त योगीमे सँ जे योगी अपन अन्तरमे सदैव हमर (भगवान्) चिन्तन करैत अछि, ओ सर्वश्रेष्ठ अछि। अगिला छह अध्यायमे शुद्ध भक्ति, ओकर प्रकृति तथा कार्यक विवेचन अछि। अन्तक छह अध्यायमे ज्ञान, वैराग्य अपरा तथा परा प्रकृतिक कार्य आओर भक्तिक वर्णन अछि। निष्कर्ष रुपमे ई कहल गेलै अछि कि समस्त कार्य केँ परमेश्वर सँ युक्त होमक चाही, जे ॐ तत् सत् शब्द सँ प्रकट होइत अछि आओर ई शब्द परम पुरुष विष्णुक सूचक अछि। जाहि प्रकार द्वितीय अध्यायमे सम्पूर्ण विषयवस्तुक प्रस्तावना (सार)क वर्णन अछि, ओहि प्रकार अठारहम अध्यायमे समस्त उपदेशक सारांश अछि। एहिमे त्याग (वैराग्य) तथा त्रिगुणातीत दिव्य पथक प्राप्ति केँ ही जीवनक लक्ष्य बताएल गेल अछि। अर्जुन भगवद्गीताक दू विषयक स्पष्ट अन्तर जानवक इच्छुक छथि–ई अछि त्याग तथा सन्यास। अतएव ओ एहि दूनू शब्दक अर्थक जिज्ञासा कऽ रहला अछि। एहि श्लोकमे परमेश्वर केँ सम्बोधित करक लेल प्रयुक्त हृषीकेश तथा केशिनिषूदन– ई दूनू शब्द महत्त्वपूर्ण अछि। हृषीकेश कृष्ण छथि– समस्त इन्द्रियक स्वामी। केशिनिषूदन भी कृष्ण छथि– केशी असुरक संहर्ता। केशी अत्यन्त दुर्जेय असुर छल जकर बध कृष्ण कैलनि। आब अर्जुन चाहैत छथि कि हुनकर संशय रुपी असुरक बध करथि।

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥२॥

श्रीभगवान् उवाच– भगवान् कहलथिन; **काम्यानाम्**– काम्यकर्मक; **कर्मणाम्**– कर्मक; **न्यासम्**– त्याग; **संन्यासम्**– संन्यास; **कवयः**– विद्वानजन; **विदुः**– जानैत छथि; **सर्व**– समस्त; **कर्म**– कर्मक; **फल**– फल; **त्यागम्**– त्यागि केँ; **प्राहुः**– कहैत छथि; **त्यागम्**– त्याग; **विचक्षणाः**– अनुभवी।

भगवान् कहलथिन–भौतिक इच्छा पर आधारित कर्मक परित्याग केँ विद्वान लोग संन्यास कहैत छथि, आओर समस्त कर्मक फल

त्याग केँ बुद्धिमान लोग त्याग कहैत छथि।

तात्पर्यः कर्मफलक आकांक्षा सँ कैल गेल कर्मक त्याग करक चाही। इहै भगवद्गीताक उपदेश अछि। परन्तु आध्यात्मिक ज्ञानमे उन्नति या हृदयक शुद्धिक लेल कयल गेल यज्ञक परित्याग करब उचित नहि अछि।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे॥३॥

त्याज्यम्– त्याजनीय; **दोषवत्**– दोषक समान; **इति**– एहि प्रकार; **एके**– एक समूहक; **कर्म**– कर्म; **प्राहुः**– कहैत अछि; **मनीषिणः**– महान चिन्तक; **यज्ञ**– यज्ञ; **दान**– दान; **तपः**– तपस्याक; **न**– कहियो नहि; **त्याज्यम्**– त्यागक चाही; **इति**– एहि प्रकार; **च**– तथा; **अपरे**– अन्य।

किछु विद्वान घोषित करैत छथि कि समस्त प्रकारक सकाम कर्म केँ दोषपूर्ण समझिक त्याग देबाक चाही। किन्तु अन्य विद्वान मानैत छथि कि यज्ञ, दान तथा तपस्याक कर्म केँ कहियो नहि त्यागक चाही।

तात्पर्यः वैदिक साहित्यमे एहन अनेक कर्म अछि जकरा विषयमे मतभेद अछि। उदाहरणार्थ, ई कहल जाइत अछि कि यज्ञमे पशु मारल जा सकैत अछि, तइयो किछुक मत अछि कि पशुहत्या पूर्णतया निषिद्ध अछि। यद्यपि वैदिक साहित्यमे पशु वधक संस्तुति भेल अछि, लेकिन पशु केँ मारल गेल नहि मानल जाइत अछि। ई बलि पशुक नवीन जीवन प्रदान करक लेल होइत अछि। कहियो–कहियो यज्ञमे मारल गेल पशु केँ नवीन पशु जीवन प्राप्त होइत अछि, तो कहियो ओ पशु तत्क्षण मनुष्य योनि केँ प्राप्त भऽ जाइत अछि। लेकिन एहि सम्बन्धमे महात्मामे मतभेद अछि। किछुक कहब अछि कि पशुहत्या नहि होमक चाही आओर किछु कहैत छथि कि विशेषयज्ञ (बलि)क लेल ई शुभ अछि। आब यज्ञ कर्म विषयक विभिन्न मतक स्पष्टिकरण भगवान् स्वयं कऽ रहला अछि।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः॥४॥

निश्चयम्– निश्चय केँ; **शृणु**– सुनु; **मे**– हमर; **तत्र**– ओतए; **त्यागे**– त्यागक विषय मे; **भरत सत् तम**– हे भरत श्रेष्ठ; **त्यागः**– त्याग; **हि**–

निश्चय ही; **पुरुष व्याघ्र**– हे मनुष्य मे बाघ; **त्रिविधः**– तीन प्रकारक; **सम्प्रकीर्तितः**– घोषित कएल जाइत अछि।

हे भरतश्रेष्ठ! आब त्यागक विषयमे हमर निर्णय सुनु! हे नरशार्दूल! शास्त्रमे त्याग तीन तरह बताएल गेल अछि।

तात्पर्यः यद्यपि त्यागक विषयमे विभिन्न प्रकारक मत अछि, लेकिन परम पुरुष श्रीकृष्ण अपन निर्णय दऽ रहला अछि, जकरा अन्तिम मानल जेवाक चाही। निःसन्देह सब वेद भगवानक द्वारा प्रदत्त विभिन्न विधान (नियम) अछि। एतय भगवान् कृष्ण साक्षात् उपस्थित छथि, अतएव हुनकर वचन केँ अन्तिम मानि लेबाक चाही। भगवान् कहैत छथि कि भौतिक प्रकृतिक तीन गुणमे सँ जाहि गुणमे त्याग कएल जाइत अछि, ओहि प्रकारक अनुसार त्यागक प्रकार समझब चाही।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥५॥

यज्ञ– यज्ञ; **दान**– दान; **तपः**– तपक; **कर्म**– कर्म; **न**– कहियो नहि; **त्याज्यम्**– त्यागक योग्य; **कार्यम्**– करक चाही; **एव**– निश्चय ही; **तत्**– हुनका; **यज्ञः**– यज्ञ; **दानम्**– दान; **तपः**– तप; **च**– भी; **पावनानि**– शुद्ध करएवाला; **मनीषिणाम्**– महात्माक लेल।

यज्ञ, दान तथा तपस्याक कर्म कऽ कहियो परित्याग नहि करक चाही, ओकरा अवश्य सम्पन्न करक चाही। निःसन्देह यज्ञ, दान तथ तपस्या महात्मा केँ भी शुद्ध बनबैत अछि।

तात्पर्यः योगी केँ चाही कि मानव समाजक लेल कर्म करथि। मनुष्य केँ आध्यात्मिक जीवन तक ऊपर उठाबक लेल अनेक संस्कार (पवित्र कर्म) अछि। उदाहरणार्थ, विवाहोत्सव एक यज्ञ मानल जाइत अछि। ई विवाह यज्ञ कहाबैत अछि। की एक संन्यासी, जे अपन पारिवारिक सम्बन्ध त्यागक संन्यासक लेलथि अछि, विवाहोत्सव केँ प्रोत्साहन देथि? भगवान् कहैत छथि कि क्यो भी यज्ञ जे मानव कल्याणक लेल हो, ओकरा कहियो भी नहि परित्याग होमक चाही। विवाह-यज्ञ मानव मन केँ संयमित करक लेल अछि, जाहि सँ आध्यात्मिक प्रगतिक लेल ओ शान्त बनि सकय। सब यज्ञ परमेश्वरक प्राप्तिक लेल अछि। अतएव

निम्नतर अवस्था मे यज्ञक परित्याग नहि करक चाही। एहि प्रकार दान हृदयक शुद्धि (संस्कार)क लेल अछि। यदि दान सुपात्र केँ देल जाइत अछि, तो एहि सँ आध्यात्मिक जीवनमे प्रगति होइत अछि। जेना कि पहिले वर्णन कएल जा चुकल अछि।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥६॥

एतानि– ई सब; **अपि**– निश्चय ही; **तु**– लेकिन; **कर्माणि**– कार्य; **सङ्गम्**– संगति केँ; **त्यक्त्वा**– त्यागकर; **फलानि**– फल केँ; **च**– भी; **कर्तव्यानि**– कर्तव्य समझि कऽ करक चाही; **इति**– एहि प्रकार; **मे**– हमर; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **निश्चितम्**– निश्चित; **मतम्**– मत; **उत्तमम्**– श्रेष्ठ।

एहि समस्त कार्य केँ कोनो प्रकारक आसक्ति या फलक आशाक बिना सम्पन्न करक चाही। हे पृथापुत्र! एकरा कर्तव्य समझि कऽ सम्पन्न करक चाही। इहै हमर अन्तिम मत अछि।

तात्पर्यः यद्यपि सब यज्ञ शुद्ध करएवाला अछि, लेकिन मनुष्य केँ एहन कार्य सँ कोनो फलक इच्छा नहि करक चाही। दोसर शब्दमे, जीवनमे जतेक सब यज्ञ भौतिक उन्नतिक लेल अछि, ओकर परित्याग करक चाही। लेकिन जाहि यज्ञ सँ मनुष्यक अस्तित्व शुद्ध हो आओर जे आध्यात्मिक स्तर तक उठावए वाला हो, ओकर कहियो बन्द नहि करक चाही। श्रीमद्भागवतमे भी ई कहल गेलै अछि, कि जाहि कार्य सँ भगवद्भक्तिक लाभ हो, ओकरा स्वीकार कऽ लेबाक चाही। इहै धर्मक सर्वोच्च कसौटी अछि। भगवद्भक्त केँ एहन कोनो भी कर्म, यज्ञ या दान केँ स्वीकार करक चाही, जे भगवद्भक्ति करएमे सहायक हो।

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥७॥

नियतस्य– नियत, निर्दिष्ट (कार्य)क; **तु**– लेकिन; **संन्यासः**– संन्यास, त्याग; **कर्मणः**– कर्मक; **न**– कहियो नहि; **उपपद्यते**– योग्य होइत अछि; **मोहात्**– मोहवश; **तस्य**– ओकर; **परित्यागः**– त्याग देव; **तामसः**– तमोगुणी; **परिकीर्तितः**– घोषित कएल जाइत अछि।

निर्दिष्ट कर्तव्य केँ भी कौखन नहि त्यागक चाही। यदि क्यो मोहवश अपन नियत कर्मक परित्यागक दैत अछि, तो एहन त्याग तामसी कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः जे कार्य भौतिक तुष्टिक लेल कएल जाइत अछि, ओकरा अवश्य ही त्याग दी, लेकिन जाहि कार्य सँ आध्यात्मिक उन्नति हो, यथा भगवान् केँ भोग अर्पित करब, पुनः प्रसाद ग्रहण करब, हुनकर संस्तुति कएल जाइत अछि।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्॥८॥

दुःखम्– दुःखी; **इति**– एहि प्रकार; **एव**– निश्चय ही; **यत्**– जे; **कर्म**– कार्य; **काय**– शरीरक लेल; **क्लेश**– कष्टक; **भयात्**– भय सँ; **त्यजेत्**– त्याग दैत अछि; **सः**– ओ; **कृत्वा**– करिक; **राजसम्**– रजोगुण मे; **त्यागम्**– त्याग; **न**– नहि; **एव**– निश्चय ही; **त्याग**– त्याग; **फलम्**– फल केँ; **लभते**– प्राप्त करैत अछि।

जे व्यक्ति नियत कर्म केँ कष्टप्रद समझिक या शारीरिक क्लेशक भय सँ त्याग दैत अछि, ओकरा लेल कहल जाइत अछि कि ओ ई त्याग रजोगुणमे केलक अछि। एना केला सँ कहियो त्यागक उच्चफल प्राप्त नहि होइत अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति कृष्णभावनामृत केँ प्राप्त अछि, ओकरा एहि भय सँ अर्थोपार्जन बन्द नहि करबाक चाही कि ओ सकाम कर्मक रहल अछि। यदि क्यो कार्यक कमायल धन केँ कृष्णभावनामृतमे लगबैत अछि या यदि क्यो प्रातःकाल जल्दी उठिक दिव्य कृष्णभावनामृत केँ अग्रसर करैत अछि, तो ओकरा चाही कि ओ डरि कऽ या ई सोचि कऽ ई कार्य कष्टप्रद अछि, ओकरा त्यागी नहि। एहन त्याग राजसी होइत अछि। राजसी कर्मक फल सदैव दुखद होइत अछि।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव
स त्यागः सात्त्विको मतः॥९॥

कार्यम्– करणीय; **इति**– इस प्रकार; **एव**– निःसंदेह; **यत्**– जे; **कर्म**–

कर्म; **नियतम्**- निर्दिष्ट; **क्रियते**- कएल जाइत अछि; **अर्जुन**- हे अर्जुन; **सङ्गम्**- संगति, संग; **त्यक्त्वा**- त्यागक; **फलम्**- फल; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **सः**- ओ; **त्यागः**- त्याग; **सात्त्विकः**- सात्त्विक, सतोगुणी; **मतः**- हमरा मत सँ।

हे अर्जुन! जखन मनुष्य नियत कर्तव्य केँ करणीय मानिक करैत अछि आओर समस्त भौतिक संगति तथा फलक आसक्ति केँ त्याग दैत अछि तो ओकर त्याग सात्त्विक कहाबैत अछि।

तात्पर्यः नियत कर्म एहि मनोभाव सँ कएल जेवाक चाही। मनुष्य केँ फलक प्रति अनासक्त भऽकऽ कर्म करक चाही। ओकरा कर्मक गुण सँ विलग भऽ जेबाक चाही। जे व्यक्ति कृष्णभावनामृतमे रहि कऽ कारखानामे कार्य करैत अछि, ओ न तो कारखानाक कार्य सँ अपना केँ जोड़ैत अछि न हि कारखानाक श्रमिक सँ। ओ तो मात्र कृष्णक लेल कार्य करैत अछि। आओर जखन ओ एकर फल कृष्ण केँ अर्पणक दैत अछि, तो ओ दिव्य स्तर पर कार्य करैत अछि।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥१०॥

न- नहि; **द्वेष्टि**- घृणा करैत अछि; **अकुशलम्**- अशुभ; **कर्म**- कर्म; **कुशले**- शुभ मे; **न**- न तो; **अनुषज्जते**- आसक्त होइत अछि; **त्यागी**- त्यागी; **सत्त्व**- सतोगुण मे; **समाविष्टः**- लीन; **मेधावी**- बुद्धिमान; **छिन्न**- छिन्न भेल; **संशयः**- समस्त संशय या सन्देह।

सतोगुणीमे स्थित बुद्धिमान त्यागी, जे न तो अशुभ कर्म सँ घृणा करैत अछि, न शुभकार्य सँ लिप्त होइत अछि, ओ कर्मक विषयमे कोनो संशय नहि राखैत अछि।

तात्पर्यः कृष्णभावनामृत व्यक्ति या सतोगुणी व्यक्ति न तो कोनो व्यक्ति सँ घृणा करैत अछि, न अपन शरीर केँ कष्ट दिअवला कोनो बात सँ। ओ उपयुक्त स्थान पर तथा उचित समय पर बिना डरे अपन कर्तव्य करैत अछि। एहन व्यक्ति केँ, जे आध्यात्म केँ प्राप्त अछि, सर्वाधिक बुद्धिमान तथा अपन कर्ममे संशयरहित मानबाक चाही।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।

यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥११॥

न– नहि; **हि**– निश्चय ही; **देहभृता**– देहधारी द्वारा; **शक्यम्**– सम्भव अछि; **त्यक्तुम्**– त्यागक लेल; **कर्माणि**– कर्म; **अशेषतः**– पूर्णतया; **यः**– जे; **तु**– लेकिन; **कर्म**– कर्मक; **फल**– फलक; **त्यागी**– त्याग कर वाला; **सः**– ओ; **इति**– एहि प्रकार; **अभिधीयते**– कहाबैत अछि।

निस्सन्देह कोनो भी देहधारी प्राणीक लेल समस्त कार्यक परित्यागक पाएव असम्भव अछि। लेकिन जे कर्मफलक परित्याग करैत अछि, ओ वास्तवमे त्यागी कहाबैत अछि।

तात्पर्यः भगवद्गीतामे कहल गेलै अछि–कि मनुष्य कौखन भी कर्मक त्याग नहि कऽ सकैत अछि। अतएव जे कृष्णक लेल कर्म करैत अछि आओर कर्मफल केँ भोगैत नहि अछि तथा जे कृष्ण केँ सब किछु अर्पित करैत अछि, ओहे वास्तविक त्यागी अछि।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

अनिष्टम्– नरक ल जेवा वाला; **इष्टम्**– स्वर्ग ल जेवा वाला; **मिश्रम्**– मिश्रित; **च**– तथा; **त्रिविधम्**– तीन प्रकारक; **कर्मणः**– कर्मक; **फलम्**– फल; **भवति**– होइत अछि; **अत्यागिनाम्**– त्याग नहि करएवाला केँ; **प्रेत्य**– मरलाक बाद; **न**– नहि; **तु**– लेकिन; **संन्यासिनाम्**– सन्यासीक लेल; **क्वचित्**– कोनो समय, कहियो।

जे त्यागी नहि अछि, ओकरा लेल इच्छित (इष्ट), अनिच्छित (अनिष्ट) तथा मिश्रित–ई तीन प्रकारक कर्मफल मृत्युक बाद मिलैत अछि। लेकिन जे संन्यासी छथि, हुनका एहन फलक सुख–दुख नहि भोगए पड़ैत अछि।

तात्पर्यः जे कृष्णभावनामय व्यक्ति कृष्णक संग अपन सम्बन्ध केँ जानैत कर्म करैत अछि, ओ सदैव मुक्त रहैत अछि। अतएव हुनका मृत्युक पश्चात् अपन कर्मफलक सुख–दुख नहि भोगए पड़ैत अछि।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥१३॥

पञ्च- पाँच; **एतानि**- ई; **महाबाहो**- हे महाबाहु; **कारणानि**- कारण; **निबोध**- जानू; **मे**- हमरा सँ; **साङ्ख्ये**- वेदान्त मे; **कृत-अन्ते**- निष्कर्ष रुप मे; **प्रोक्तानि**- कहल गेलै अछि; **सिद्धये**- सिद्धिक लेल; **सर्व**- समस्त; **कर्मणाम्**- कर्मक।

हे महाबाहु अर्जुन! वेदान्तक अनुसार समस्त कार्यक पूर्तिक लेल पाँच कारण अछि। आब अहाँ ई हमरा सँ सुनु।

तात्पर्यः चरम नियन्त्रण परमात्मामे निहित अछि। जेना कि भगवद्गीतामे कहल गेलै अछि- **"सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः"** ओ प्रत्येक व्यक्ति केँ ओकर पूर्वकर्मक स्मरण करा कऽ कोनो-न-कोनो कार्यमे प्रवृत्त करैत रहैत अछि आओर जे कृष्णभावनाभावित कर्म अन्तर्यामी भगवानक निर्देशानुसार कएल जाइत अछि, ओकर फल न तो एहि जीवनमे, न ही मृत्युक पश्चात् मिलैत अछि।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥१४॥

अधिष्ठानम्- स्थान; **तथा**- आओर; **कर्ता**- करवाला; **करणम्**- उपकरण यन्त्र (इन्द्रिय); **च**- तथा; **पृथक विधम्**- विभिन्न प्रकारक; **विविधाः**- नाना प्रकारक; **च**- तथा; **पृथक्**- पृथक-पृथक; **चेष्टाः**- प्रयास; **देवम्**- परमात्मा; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **अत्र**- एतय; **पञ्चमम्**- पाँचम।

कर्मक स्थान (शरीर), कर्ता, विभिन्न इन्द्रिय, अनेक प्रकारक चेष्टा तथा परमात्मा-ई पाँच कर्मक कारण अछि।

तात्पर्यः अधिष्ठानम् शब्द शरीरक लेल आएल अछि। शरीरक भीतर आत्मा कर्म करैत अछि, जाहि सँ कर्मफल होइत अछि। अतएव ई कर्ता कहाबैत अछि। आत्मा ही ज्ञाता तथा कर्ता अछि, एकर उल्लेख श्रुतिमे अछि- **"एष हि द्रष्टा स्त्रष्टा (प्रश्न उपनिषद्)"**। वेदान्त सूत्रमे भी ज्ञोऽताएव तथा कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् श्लोकमे एकर पुष्टि होइत अछि। कर्मक उपकरण इन्द्रिय अछि आओर आत्मा एहि इन्द्रियक द्वारा विभिन्न कर्म करैत अछि। प्रत्येक कर्मक लेल पृथक चेष्टा होइत अछि। लेकिन सब कार्यकलाप परमात्माक इच्छा पर निर्भर करैत अछि, जे प्रत्येक हृदयमे मित्र रुपमे आसीन अछि। परमेश्वर परम कारण छथि। अतएव जे एहि

परिस्थितिमे अन्तर्यामी परमात्माक निर्देशक अन्तर्गत कृष्णभावनामय भऽकऽ कर्म करैत अछि, ओ कोनो कर्म सँ नहि बँधैत। जे पूर्ण कृष्णभावनामय अछि, ओ अन्ततः अपन कर्मक लेल उत्तरदायी नहि होइत। सब किछु भगवान् पर निर्भर अछि।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः॥१५॥

शरीर- शरीर सँ; **वाक्**- वाणी सँ; **मनोभिः**- मन सँ; **यत्**- जे; **कर्म**- कर्म; **प्रारभते**- प्रारम्भ करैत अछि; **नरः**- व्यक्ति; **न्याय्यम्**- उचित न्यायपूर्ण; **वा**- अथवा; **विपरीतम्**- (न्याय) विरुद्ध ; **वा**- अथवा; **पञ्च**- पाँच; **एते**- ई सब; **तस्य**- ओकर; **हेतवः**- कारण।

मनुष्य अपन शरीर, मन या वाणी सँ जे भी उचित या अनुचित कर्म करैत अछि, ओ एहि पाँच कारणक फलस्वरुप होइत अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे न्याय (उचित) तथा विपरीत (अनुचित) शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अछि। सही कार्य शास्त्रमे निर्दिष्ट निर्देशक अनुसार कएल जाइत अछि आओर अनुचित कार्यमे शास्त्रीय आदेशक अवहेलना कएल जाइत अछि। किन्तु जे भी कार्य (कर्म) कएल जाइत अछि, ओकरा पूर्णताक लेल एहि पाँच कारणक आवश्यकता पड़ैत अछि।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

तत्र- ओतय; **एवम्**- एहि प्रकार; **सति**- भऽकऽ; **कर्तारम्**- कर्ता; **आत्मानम्**- स्वयंक; **केवलम्**- केवल; **तु**- लेकिन; **यः**- जे; **पश्यति**- देखैत अछि; **अकृत-बुद्धित्वात्**- कुबुद्धिक कारण; **न**- कहियो नहि; **सः**- ओ; **पश्यति**- देखैत अछि; **दुर्मतिः**- मूर्ख।

अतएव जे एहि पाँचो कारण केँ नहि मानि कऽ अपने आप केँ ही एकमात्र कर्ता मानैत अछि, ओ निश्चय ही बहुत बुद्धिमान नहि होइत अछि, आओर वस्तु केँ सही रुपमे नहि देख सकैत अछि।

तात्पर्यः मूर्ख व्यक्ति ई नहि समझैत अछि कि परमात्मा ओकरा अन्दरमे मित्र रुपमे बैसल अछि आओर ओकर कर्मक संचालन कऽ रहल अछि। यद्यपि स्थान कर्ता, चेष्टा तथा इन्द्रिय भौतिक कारण अछि,

लेकिन अन्तिम (मुख्य) कारण तऽ स्वयं भगवान् छथि। अतएव मनुष्य केँ चाही कि केवल चारि भौतिक कारण केँ ही न देखे, अपितु परम सक्षम कारण केँ भी देखल जाय। जे परमेश्वर केँ नहि देखैत अछि, ओ स्वयं केँ ही कर्ता मानैत अछि।

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१७॥

यस्य– जकर; **न**– नहि; **अहङ्कृतः**– मिथ्या अहंकारक; **भावः**– स्वभाव; **बुद्धिः**– बुद्धि; **यस्य**– जकर; **न**– कहियो नहि; **लिप्यते**– आसक्त होइत अछि; **हत्वा**– मारिक; **अपि**– भी; **सः**– ओ; **इमान्**– एहि; **लोकान्**– संसार केँ; **न**– कहियो नहि; **हन्ति**– मारैत अछि; **न**– कहियो नहि; **निबध्यते**– बद्ध होइत अछि।

जे मिथ्या अहंकार सँ प्रेरित नहि अछि, जकर बुद्धि बाँधल नहि अछि, ओ एहि संसारमे मनुष्य केँ मारैत हुए भी नहि मारैत अछि। न ही ओ अपन कर्म सँ बाँधल होइत अछि।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे भगवान् अर्जुन के बताबैत छथि कि युद्ध नहि करक इच्छा अहंकार सँ उत्पन्न होइत अछि। अर्जुन स्वयं केँ कर्ता मानि बैठल छलाह, लेकिन ओ अपन भीतर तथा बाहर परम (परमात्मा)क निर्देश पर विचार नहि केने छलाह। यदि क्यो ई नहि जाने कि कोनो परम निर्देश भी अछि, तो ओ कर्म किएक करे? लेकिन जे व्यक्ति कर्मक उपकरण केँ, कर्ता रुपमे अपना केँ तथा परम निर्देशकक रुपमे परमेश्वर केँ मानैत अछि, ओ प्रत्येक कार्य केँ पूर्ण करमे सक्षम अछि। एहन व्यक्ति कहियो मोहग्रस्त नहि होइत अछि। जीवमे व्यक्तिगत कार्यकलाप तथा ओकर उत्तरदायित्वक उदय मिथ्या अहंकार सँ तथा ईश्वरविहीनता या कृष्णभावनामृतक अभाव सँ होइत अछि। जे व्यक्ति कृष्णभावनामृतमे परमात्मा या भगवानक आदेशानुसार कर्म करैत अछि, ओ बध करैत हुए भी बध नहि करैत अछि। न ही ओ कहियो एहन बधक फल भोगैत अछि। जखन कोनो सैनिक अपन श्रेष्ठ अधिकारीक आज्ञा सँ बध करैत अछि तो ओकरा दण्डित नहि कएल जा सकैत अछि।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।

करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः॥१८॥

ज्ञानम्– ज्ञान; **ज्ञेयम्**– ज्ञानक लक्ष्य (जानबाक योग्य); **परिज्ञाता**– जानवला; **त्रिविधा**– तीन प्रकारक; **कर्म**– कर्मक; **चोदना**– प्रेरणा (अनुप्रेरणा); **करणम्**– इन्द्रिय; **कर्म**– कर्म; **कर्ता**– कर्ता; **इति**– एहि प्रकार; **त्रिविधः**– तीन प्रकारक; **कर्म**– कर्मक; **सङ्ग्रहः**– संग्रह; संचय।

ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता–ई तीनू कर्म केँ प्रेरणा दिअवाला कारण अछि। इन्द्रिय (करण), कर्म तथा कर्ता–ई तीन कर्मक संघटक अछि।

तात्पर्यः दैनिक कार्यक लेल तीन प्रकारक प्रेरणा अछि–ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता। कर्मक उपकरण (करण), स्वयं कर्म तथा कर्ता–ई तीनू कर्मक संघटक कहाबैत अछि। कोनो भी मनुष्य द्वारा कएल गेल कोनो कर्ममे इहे तत्त्व होइत अछि। कर्म कर सँ पूर्व किछु न किछु प्रेरणा होइत अछि। जखन प्रेरणा होइत अछि आओर जखन कर्ता होइत अछि, तो इन्द्रियक सहायता सँ, जाहिमे मन भी कर्म सम्मिलित होइत अछि। आओर जे समस्त इन्द्रियक केन्द्र अछि, वास्तविक कर्म सम्पन्न होइत अछि। कोनो कर्मक समस्त संघटक केँ कर्म संग्रह कहल जाइत अछि।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥

ज्ञानम्– ज्ञान; **कर्म**– कर्म; **च**– भी; **कर्ता**– कर्ता; **त्रिधा**– तीन प्रकारक; **एव**– निश्चय ही; **गुणभेदतः**– प्रकृतिक विभिन्न गुणक अनुसार; **प्रोच्यते**– कहल जाइत अछि; **गुण-सङ्ख्याने**– विभिन्न गुणक रुप मे; **यथावत्**– जाहि रुप मे अछि ओहि मे; **शृणु**– सुनु; **तानि**– ओहि सब मे; **अपि**– भी।

प्रकृतिक तीन गुणक अनुसार ही ज्ञान, कर्म तथा कर्ताक तीन-तीन भेद अछि। आब अहाँ हमरा सँ एकरा सुनु।

तात्पर्यः चौदहम अध्यायमे प्रकृतिक तीनू गुणक विस्तार सँ वर्णन भऽ चुकल अछि। ओहि अध्यायमे कहल गेलै अछि कि सतोगुण प्रकाशक होइत अछि, रजोगुण भौतिकवादी तथा तमोगुण आलस्य तथा प्रमादक प्रेरक होइत अछि। प्रकृतिक सब गुण बन्धनकारी अछि, ओ मुक्तिक साधन नहि अछि। एतए तक कि सतोगुणमे भी मनुष्य बद्ध रहैत अछि।

सत्रहम अध्यायमे विभिन्न प्रकारक मनुष्य द्वारा विभिन्न गुणमे रहिक कएल जाए वाला विभिन्न प्रकारक पूजाक वर्णन कएल गेल अछि। एहि श्लोकमे भगवान् कहैत छथि कि ओ तीनू गुणक अनुसार विभिन्न प्रकारक ज्ञान, कर्ता तथा कर्मक विषयमे बताब चाहैत छथि।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥

सर्वभूतेषु– समस्त जीव मे; **येन**– जाहि सँ; **एकम्**– एक; **भावम्**– स्थिति; **अव्ययम्**– अविनाशी; **ईक्षते**– देखैत अछि; **अविभक्तम्**– अविभाजित; **विभक्तेषु**– अनन्त विभागमे बँटला मे; **तत्**– ओहि; **ज्ञानम्**– ज्ञान केँ; **विद्धि**– जानू; **सात्त्विकम्**– सतोगुणी।

जाहि ज्ञान सँ अनन्त रुपमे विभक्त समस्त जीवमे एक ही अविभक्त आध्यात्मिक प्रकृति देखल जाइत अछि, ओकरा ही अहाँ सात्त्विक जानू।

तात्पर्यः जे व्यक्ति हर जीवमे, चाहे ओ देवता हो, मनुष्य हो, पशु–पक्षी हो या जल–जन्तु अथवा पौधा हो, एक ही आत्मा केँ देखैत अछि, ओकरा सात्त्विक ज्ञान प्राप्त रहैत अछि। समस्त जीवमे एक ही आत्मा अछि, यद्यपि पूर्व कर्मक अनुसार ओकर शरीर भिन्न–भिन्न अछि। जेना कि सातम अध्यायमे वर्णन भेल अछि, प्रत्येक शरीमे जीवनी शक्तिक अभिव्यक्ति परमेश्वरक पराप्रकृतिक कारण होइत अछि। ओहि एक परा प्रकृति ओहि जीवनी शक्तिमे प्रत्येक शरीर केँ देखब सात्त्विक दर्शन अछि। ई जीवनी शक्ति अविनाशी अछि। भले ही संसार विनाशशील हो। एहन निराकार ज्ञान आत्म साक्षात्कारक एक पहलू अछि।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥२१॥

पृथक्त्वेन– विभाजनक कारण; **तु**– लेकिन; **यत्**– जे; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **नाना भावान्**– अनेक प्रकारक अवस्था केँ; **पृथक् विधान**– विभिन्न; **वेत्ति**– जानैत अछि; **सर्वेषु**– समस्त; **भूतेषु**– जीव मे; **तत्**– ओहि; **ज्ञानम्**– ज्ञान केँ; **विद्धि**– जानू; **राजसम्**– राजसी।

जाहि ज्ञान सँ क्यो मनुष्य विभिन्न शरीरमे भिन्न-भिन्न प्रकारक

जीव देखैत अछि, ओकरा अहाँ तामसी जानु।

तात्पर्यः ई धारणा कि भौतिक शरीर ही जीव अछि आओर शरीरक विनष्ट भेला पर चेतना भी नष्ट भऽ जाइत अछि, राजसी ज्ञान अछि। एहि ज्ञानक अनुसार एक शरीर दोसर शरीर सँ भिन्न अछि, किएक तऽ ओहिमे चेतनाक विकास भिन्न प्रकार सँ होइत अछि, अन्यथा चेतना केँ प्रकट कर वाला पृथक् आत्मा नहि रहए। शरीर स्वयं आत्मा अछि आओर शरीर सँ परे कोनो पृथक् आत्मा नहि अछि। एहि ज्ञानक अनुसार चेतना अस्थायी अछि। या ई कि पृथक आत्मा नहि होइत, एक सर्वव्यापी आत्मा अछि, जे ज्ञान सँ पूर्ण अछि आओर ई शरीर क्षणिक अज्ञानताक प्रकाश अछि। या ई कि एहि शरीरक परे विशेष जीवात्मा या परम आत्मा नहि अछि। ई सब धारणा रजोगुण सँ उत्पन्न अछि।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥२२॥

यत्– जे; **तु**– लेकिन; **कृतस्नवत्**– पूर्ण रुप सँ; **एकस्मिन्**– एक; **कार्ये**– कार्य मे; **सक्तम्**– आसक्त; **अहैतुकम्**– बिना हेतुक; **अतत्त्व-अर्थ-वत्**– वास्तविकताक ज्ञान सँ रहित; **अल्पम्**– अति तुच्छ; **च**– तथा; **तत्**– ओ; **तामसम्**– तमोगुणी; **उदाहृतम्**– कहल जाइत अछि।

ओ ज्ञान, जाहि सँ मनुष्य कोनो एक प्रकारक कार्य केँ, जे अति तुच्छ हो, सब किछु मानिक, सत्य केँ जानने बिना ओहिमे लिप्त रहैत अछि, तामसी कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः सामान्य मनुष्यक ज्ञान सदैव तामसी होइत अछि, किएक तऽ प्रत्येक बद्धजीव तमोगुणमे ही उत्पन्न होइत अछि। जे व्यक्ति शास्त्रीय आदेशक माध्यम सँ ज्ञान अर्जित नहि करैत, ओकर ज्ञान शरीर तक ही सीमित रहैत अछि। हुनका लेल धन ही ईश्वर अछि आओर ज्ञानक अर्थ शारीरिक आवश्यकताक तुष्टि अछि। एहन ज्ञानक परम सत्य सँ कोनो सम्बन्ध नहि होइत अछि। ई बहुत किछु साधारण पशुक ज्ञान यथा खाएब, सूतब तथा रक्षा करबक ज्ञान जेना अछि। एहन ज्ञान केँ एतय तमोगुण सँ उत्पन्न बताएल गेल अछि। दोसर शब्दमे, एहि शरीर सँ परे आत्मा सम्बन्धी ज्ञान सात्त्विक ज्ञान कहाबैत अछि। जाहि ज्ञान सँ

लौकिक तर्क तथा चिन्तन (मनोधर्म) द्वारा नाना प्रकारक सिद्धान्त तथा बाद जनम ले ओ राजसी आओर शरीर केँ सुखमय बनेने राखए वाला ज्ञान केँ तामसी कहल जाइत अछि।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥२३॥

नियतम्– नियमित; **सङ्ग रहितम्**– आसक्ति रहित; **अराग द्वेषतः**– राग द्वेष सँ रहित; **कृतम्**– कएल गेल; **अफल प्रेप्सुना**– फलक इच्छा सँ रहित बलाक द्वारा; **कर्म**– कर्म; **यत्**– जे; **तत्**– ओ; **सात्त्विकम्**– सतोगुणी; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

जे कर्म नियमित अछि आओर जे आसक्ति, राग या द्वेष सँ रहित कर्मफलक चाहक बिना कएल जाइत अछि, ओ सात्त्विक कहाबैत अछि।

तात्पर्यः विभिन्न आश्रम तथा समाजक वर्णक आधार पर शास्त्रमे संस्तुत वृत्तिपरक कर्म, जे अनासक्त भाव सँ अथवा स्वामित्वक अधिकारक बिना, प्रेम–घृणा भावरहित परमात्मा केँ प्रसन्न करक लेल आसक्ति या अधिकारक भावनाक बिना कृष्णभावनामृतमे कएल जाइत अछि, सात्त्विक कहाबैत अछि।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्॥२४॥

यत्– जे; **तु**– लेकिन; **कामईप्सुना**– फलक इच्छा राख वलाक द्वारा; **कर्म**– कर्म; **स अहङ्कारेण**– अहंकार सहित; **वा**– अथवा; **पुनः**– फेर; **क्रियते**– कयल जाइत अछि; **बहुल आयासम्**– कठिन परिश्रम सँ; **तत्**– ओ; **राजसम्**– राजसी; **उदाहृतम्**– कहल जाइत अछि।

लेकिन जे कार्य अपन इच्छा पूर्तिक निमित्त प्रयास पूर्वक एवम् मिथ्या अहंकारक भाव सँ कएल जाइत अछि, ओ रजोगुणी कहल जाइत अछि।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते॥२५॥

अनुबन्धम्– भावी बन्धनक; **क्षयम्**– विनाश; **हिंसाम्**– अन्य केँ कष्ट; **अनपेक्ष्य**– परिणाम पर विचार केने बिना; **च**– भी; **पौरुषम्**– सामर्थ्य केँ; **मोहात्**– मोह सँ; **आरभ्यते**– प्रारम्भ कएल जाइत अछि; **कर्म**– कर्म; **यत्**– जे; **तत्**– ओ; **तामसम्**– तामसी; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

जे कर्म मोहवश शास्त्रीय आदेशक अवहेलना करिक तथा भावी बन्धनक परवाह केने बिना या हिंसा अथवा अन्य केँ, दुःख पहुँचावक लेल कएल जाइत अछि, ओ तामसी कहाबैत अछि।

तात्पर्यः मनुष्य केँ अपन कर्मक लेखा राज्य केँ अथवा परमेश्वरक दूत केँ, जकरा यमदूत कहैत छियै, देमए पड़ैत अछि। उत्तरदायित्वहीन कर्म विनाशकारी अछि, किएक तऽ एहि सँ शास्त्रीय आदेशक विनाश होइत अछि। ई प्रायः हिंसा पर आधारित होइत अछि आओर अन्य जीवक लेल दुखदायी होइत अछि। उत्तरदायित्व सँ हीन एहन कर्म अपन निजी अनुभवक आधार पर कयल जाइत अछि। ई मोह कहाबैत अछि। एहन समस्त मोहग्रस्त कर्म तमोगुणक फलस्वरुप होइत अछि।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते॥२६॥

मुक्त सङ्गः– सतस्त भौतिक संसर्ग सँ मुक्त; **अनहम्वादी**– मिथ्या अहंकार सँ रहित; **धृति**– संकल्प; **उत्साह**– उत्साह सहित; **समन्वितः**– योग्य; **सिद्धि**– सिद्धि; **असिद्ध्योः**– विफलता मे; **निर्विकारः**– बिना परिवर्तनक; **कर्ता**– कर्ता; **सात्त्विकः**– सतोगुणी; **उच्यते**– कहल जाइत अछि।

जे व्यक्ति भौतिक गुणक संसर्गक बिना अहंकार रहित, संकल्प तथा उत्साहपूर्वक अपन कर्म करैत अछि आओर सफलतामे अविचलित रहैत अछि, ओ सात्त्विककर्ता कहाबैत अछि।

तात्पर्यः कृष्णभावनामय व्यक्ति सदैव प्रकृतिक गुण सँ अतीत होइत अछि। हुनका अपना पर सौंपल कर्मक परिणामक कोनो आकांक्षा नहि रहैत अछि किएक तऽ ओ मिथ्या अहंकार तथा घमण्ड सँ परे होइत छथि। तइयो कार्यक पूर्ण भेला तक ओ सदैव उत्साह सँ पूर्ण रहैत छथि। हुनका हुअवला कष्टक कोनो चिन्ता नहि होइत अछि, ओ सदैव उत्साहपूर्ण रहैत अछि। ओ सफलता या विफलताक परवाह नहि करैत,

ओ सुख-दुखमे समभाव रहैत छथि। एहन कर्ता सात्त्विक अछि।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः॥२७॥

रागी- अत्यधिक आसक्त; **कर्मफल**- कर्म फलक; **प्रेप्सुः**- इच्छा करैत; **लुब्धः**- लालची; **हिंसा आत्मकः**- सदैव ईर्ष्यालु; **अशुचिः**- अपवित्र; **हर्ष-शोक-अन्वितः**- हर्ष तथा शोक सँ युक्त; **कर्ता**- एहन कर्ता; **राजसः**- रजोगुणी; **परिकीर्तितः**- घोषित कएल जाइत अछि।

जे कर्ता कर्म तथा कर्म फलक प्रति आसक्त भऽकऽ फलक भोग कर चाहैत अछि तथा जे लोभी, सदैव ईर्ष्यालु, अपवित्र आओर सुखःदुख सँ विचलित हुअवला अछि, ओ तामसी कहल जाइत अछि।

तात्पर्यः मनुष्य सदैव कोनो कार्य प्रति या फलक प्रति इसलिए अत्यधिक आसक्त रहैत अछि, किएक तऽ ओ भौतिक पदार्थ, घर-बार, पत्नी तथा पुत्रक प्रति अत्यधिक अनुरक्त होइत अछि। एहन व्यक्ति जीवनमे ऊपर उठैक आकांक्षा नहि राखैत अछि। ओ एहि संसार केँ यथासम्भव आराम देह बनबएमे ही व्यस्त रहैत अछि। सामान्यतः ओ अत्यन्त लोभी होइत अछि आओर सोचैत अछि कि ओकरा द्वारा प्राप्त कएल गेल प्रत्येक वस्तु स्थायी अछि आओर कहियो नष्ट नहि हैत। एहन व्यक्ति अन्य सँ ईर्ष्या करैत अछि आओर इन्द्रियतृप्तिक लेल कोनो भी अनुचित कार्यक सकैत अछि। अतएव एहन व्यक्ति अपवित्र होइत अछि आओर ओ एकर चिन्ता नहि करैत कि ओकर अर्जित धन शुद्ध अछि या अशुद्ध। यदि ओकर कार्य सफल भऽ जाइत अछि तो ओ अत्यधिक प्रसन्न आओर असफल भेला पर अत्यधिक दुखी होइत अछि। रजोगुणी कर्ता एहने होइत अछि।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥२८॥

अयुक्तः- शास्त्रक आदेश केँ न मानएवला; **प्राकृतः**- भौतिकवादी; **स्तब्धः**- हठी; **शठः**- कपटी; **नैष्कृतिकः**- अन्यक अपमान कर मे पटु; **अलसः**- आलसी; **विषादी**- खिन्न; **दीर्घ सूत्री**- ऊँघि ऊँघिक काम

करएवाला, देर लगाववाला; **च**- भी; **कर्ता**- कर्ता; **तामसः**- तमोगुणी; **उच्यते**- कहाबैत अछि।

जे कर्ता सदा शास्त्रक आदेशक विरुद्ध कार्य करैत रहैत अछि, जे भौतिकवादी, हठी, कपटी तथा अन्यक अपमान करएमे पटु होइत अछि तथा जे आलसी, सदैव खिन्न तथा काम करएमे दीर्घसूत्री अछि, ओ तमोगुणी कहाबैत अछि।

तात्पर्यः शास्त्रीय आदेशमे हमरा सब केँ पता चलैत अछि कि हमरा कोन सा काम करक चाही आओर कोन सा नहि करक चाही। जे लोग शास्त्रक आदेशक अवहेलना करिक अकरणीय कार्य करैत अछि, प्रायः भौतिकवादी होइत अछि। ओ प्रकृतिक गुणक अनुसार कार्य करैत अछि, शास्त्रक आदेशानुसार नहि। एहन कर्ता भद्र नहि होइत अछि आओर सामान्यतया सदैव कपटी(धूर्त) तथा दोसरक अपमान कर वाला होइत अछि। ओ अत्यन्त आलसी होइत अछि। अतएव ओ खिन्न रहैत अछि, जे काज एक घंटामे निपटि सकैत अछि ओकरा ओ वर्षों तक घसीटैत रहैत अछि–ओ दीर्घसूत्री होइत अछि। एहन कर्ता तमोगुणी होइत अछि।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय॥२९॥

बुद्धेः- बुद्धिक; **भेदम**- अन्तर; **धृतेः**- धैर्यक; **च**- भी; **एव**- निश्चय ही; **गुणतः**- गुणक द्वारा; **त्रिविधम्**- तीन प्रकारक; **शृणु**- सुनु; **प्रोच्यमानम्**- जेना हमरा द्वारा कहल गेल अछि; **अशेषेण**- विस्तार सँ; **पृथक्त्वेन**- भिन्न प्रकार सँ; **धनञ्जय**- हे सम्पत्तिक विजेता।

हे धनञ्जय! आब हम प्रकृतिक तीनू गुणक अनुसार अहाँ केँ विभिन्न प्रकारक बुद्धि तथा धृतिक विषयमे विस्तार सँ बताएव। अहाँ एकरा सुनु।

तात्पर्यः ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाताक व्याख्या प्रकृतिक गुणक अनुसार तीन–तीन पृथक् विभागमे करक बाद आब भगवान् कर्ताक बुद्धि तथा ओकर संकल्प (धैर्य)क विषयमे ओहि प्रकार सँ बता रहल छथि।

प्रवत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥३०॥

प्रवृत्तिम्- कर्म केँ; **च**- भी; **निवृत्तिम्**- अकर्म केँ; **च**- तथा; **कार्य**- करणीय; **अकार्ये**- अकरणीय मे; **भय**- भय; **अभये**- निडरता मे; **बन्धम्**- बन्धन; **मोक्षम्**- मोक्ष; **च**- तथा; **या**- जे; **वेत्ति**- जानैत अछि; **बुद्धि**- बुद्धि; **सा**- ओ; **पार्थ**- हे पृथापुत्र; **सात्त्विकी**- सतोगुणी।

हे पृथापुत्र! ओ बुद्धि सतोगुणी अछि, जाहि द्वारा मनुष्य ई जानैत अछि कि की करणीय अछि आओर की नहि अछि, ककरा सँ डर चाही आओर ककरा सँ नहि, कोन बाँधएवाला अछि आओर कोन मुक्ति देमएवाला अछि।

तात्पर्यः शास्त्रक निर्देशानुसार कर्म करक केँ या ओहि कर्म केँ करब जकरा करक चाही, प्रवृत्ति कहैत अछि। जाहि कार्यक एहि तरह निर्देश नहि होइत ओ नहि करक चाही। जे व्यक्ति शास्त्रक निर्देश केँ नहि जानैत, ओ कर्म तथा ओकर प्रतिक्रियामे बँध जाइत अछि। जे बुद्धि अच्छा बुराक भेद बतबैत अछि ओ सात्त्विकी अछि।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥३१॥

यया- जकरा द्वारा; **धर्मम्**- धर्म केँ; **अधर्मम्**- अधर्म केँ; **च**- तथा; **कार्यम्**- करणीय; **च**- भी; **अकार्यम्**- अकरणीय केँ; **एव**- निश्चय ही; **अयथावत्**- अधूरा ढंग सँ; **प्रजानाति**- जानैत अछि; **बुद्धिः**- बुद्धि; **सा**- ओ; **पार्थ**- हे पृथापुत्र; **राजसी**- रजोगुणी।

हे पृथापुत्र! जे बुद्धि धर्म तथा अधर्म, करणीय तथा अकरणीय कर्ममे भेद नहि करि पाबैत, ओ राजसी अछि।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥३२॥

अधर्मम्- अधर्म केँ; **धर्मम्**- धर्म; **इति**- एहि प्रकार; **या**- जे; **मन्यते**- सोचैत अछि; **तमसा**- भ्रम सँ; **आवृता**- अच्छादित ग्रस्त; **सर्व-अर्थान्**- सब वस्तु केँ; **विपरीतान्**- उल्टा दिशा मे; **च**- भी; **बुद्धिः**- बुद्धि; **सा**- ओ; **पार्थ**- हे पृथापुत्र; **तामसी**- तमोगुण सँ युक्त।

जे बुद्धि मोह तथा अंधकारक वशीभूत भऽकऽ अधर्म केँ धर्म

आओर धर्म केँ अधर्म मानैत अछि आओर सदैव विपरीत दिशामे प्रयत्न करैत अछि, हे पार्थ! ओ तामसी अछि।

तात्पर्यः तामसी बुद्धि केँ जाहि दिशामे काम करक चाही ओहि सँ सदैव उल्टा दिशामे काम करैत अछि। ओ ओहि धर्म केँ स्वीकारैत अछि, जे वास्तवमे धर्म नहि अछि आओर वास्तविक धर्म केँ ठुकराबैत अछि। अज्ञानी मनुष्य महात्मा केँ सामान्य व्यक्ति मानैत अछि आओर सामान्य व्यक्ति केँ महात्मा स्वीकार करैत अछि। ओ सत्य केँ असत्य तथा असत्य केँ सत्य मानैत अछि। ओ समस्त कार्यमे कुपथ ग्रहण करैत अछि, अतएव ओकर बुद्धि तामसी होइत अछि।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३३॥

धृत्या- संकल्प, धृति द्वारा; **यया**- जाहि मे; **धारयते**- धारण करैत अछि; **मनः**- मन केँ; **प्राण**- प्राण; **इन्द्रिय**- इन्द्रिय केँ; **क्रियाः**- कार्यकलाप केँ; **योगेन**- योगाभ्यास द्वारा; **अव्यभिचारिण्या**- तोड़े बिना, निरन्तर; **धृतिः**- धृति; **सा**- ओ; **पार्थ**- हे पृथापुत्र; **सात्त्विकी**- सात्त्विक।

हे पृथापुत्र! जे अटूट अछि, जकरा योगाभ्यास द्वारा अचल रहि कऽ धारण कएल जाइत अछि आओर जे एहि प्रकार मन, प्राण तथा इन्द्रियक कार्यकलाप केँ वशमे राखैत अछि, ओ धृति सात्त्विक अछि।

तात्पर्यः योग परमात्मा केँ जानैक साधन अछि। जे व्यक्ति मन, प्राण तथा इन्द्रिय केँ परमात्मामे एकग्र करिक दृढ़तापूर्वक ओहिमे स्थित रहैत अछि, ओहे कृष्णभावनामे तत्पर रहैत अछि। एहन धृति सात्त्विक होइत अछि। अव्यभिचारिण्या शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अछि किएक तऽ ई सूचित करैत अछि कि कृष्णभावनामृतमे तत्पर मनुष्य कौखन कोनो दोसर कार्य द्वारा विचलित नहि होइत अछि।

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्‌गेन फलाकाङ्‌क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥३४॥

यया- जाहि सँ; **तु**- लेकिन; **धर्म**- धार्मिकता; **काम**- इन्द्रियतृप्ति; **अर्थान्**- आर्थिक विकास केँ; **धृत्या**- संकल्प या धृति सँ; **धारयते**-

धारण करैत अछि; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **प्रसङ्गेन**– आसक्तिक कारण; **फल-आकांक्षी**– कर्मफलक इच्छा करएवाला; **धृतिः**– संकल्प या धृति; **सा**– ओ; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **राजसी**– रजोगुणी।

लेकिन हे अर्जुन! जाहि धृति सँ मनुष्य धर्म, अर्थ तथा कामक फलमे लिप्त रहैत अछि, ओ राजसी अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति धार्मिक या आर्थिक कार्यमे कर्मफलक सदैव आकांक्षी होइत अछि, जकर एकमात्र इच्छा इन्द्रियतृप्ति होइत अछि, तथा जकर मन, जीवन तथा इन्द्रिय एहि प्रकार संलग्न रहैत अछि, ओ रजोगुणी होइत अछि।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥३५॥

यया– जाहि सँ; **स्वप्नम्**– स्वप्न; **भयम्**– भय; **शोकम्**– शोक; **विषादम्**– विषाद, खिन्नता; **मदम्**– मोह केँ; **एव**– निश्चय ही; **च**– भी; **न**– कहियो नहि; **विमुञ्चति**– त्यागैत अछि; **दुर्मेधा**– दुर्बुद्धि; **धृतिः**– धृति; **सा**– ओ; **पार्थ**– हे पृथापुत्र; **तामसी**– तमोगुणी।

हे पार्थ! जे धृति स्वप्न, भय, शोक, विषाद तथा मोहक परे नहि जाइत, एहन दुर्बुद्धिपूर्ण धृति तामसी अछि।

तात्पर्यः एहि सँ ई अर्थ नहि निकालवाक चाही कि सतोगुणी मनुष्य स्वप्न नहि देखैत अछि। एतय स्वप्नक अर्थ अति निद्रा अछि। स्वप्न हमेशा आबैत अछि, चाहे ओ सात्त्विक हो, राजसी हो, या तामसी। स्वप्न तो प्राकृतिक घटना अछि। लेकिन जे अपना केँ अधिक निद्रा सँ नहि बचा पावैत, जे भौतिक वस्तु केँ भोगक गर्व सँ नहि बचा पावैत, ओ सदैव संसार पर प्रभुत्व जताबक स्वप्न देखैत रहैत अछि आओर जिनकर प्राण, मन तथा इन्द्रिय एहि प्रकार लिप्त रहैत अछि, ओ तामसी धृतिबला कहल जाइत अछि।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥३६॥

सुखम्– सुख; **तु**– लेकिन; **इदानीम्**– आब; **त्रिविधं**– तीन प्रकारक; **शृणु**– सुनु; **मे**– हमरा मे; **भरत ऋषभ**– हे भरतश्रेष्ठ; **अभ्यासात्**–

अभ्यास सँ; **रमते**– भोगैत अछि; **यत्र**– जत; **दु:ख**– दुखक; **अन्तम्**– अन्त; **च**– भी; **निगच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

हे भरतश्रेष्ठ! आब हमरा सँ तीन प्रकारक सुखक विषयमे सुनु जकरा द्वारा बद्धजीव भोग करैत अछि आओर जकरा द्वारा कहियो-कहियो दु:खक अन्त भऽ जाइत अछि।

तात्पर्य: बद्धजीव भौतिक सुख भोगि कऽ बारम्बार चेष्टा करैत अछि। एहि प्रकार ओ चर्वित चर्वण करैत अछि। लेकिन कहियो–कहियो एहन भोगक अन्तर्गत ओ कोनो महापुरुषक संगति सँ भवबन्धन सँ मुक्त भऽ जाइत अछि। दोसर शब्दमे, बद्धजीव सदा ही कोनो न कोनो इन्द्रियतृप्तिमे लागल रहैत अछि, लेकिन जखन सुसंगति सँ ई समझि लैत अछि कि ई तो एक ही वस्तुक पुनरावृत्ति अछि आओर ओहिमे वास्तविक कृष्णभावनामृतक उदय होइत अछि तो कहियो–कहियो ओ एहने तथाकथित आवृत्तिमूलक सुख सँ मुक्त भऽ जाइत अछि।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।।३७।।

यत्– जे; **तत्**– ओ; **अग्रे**– आरम्भ मे; **विषम्-इव**– विषक समान; **परिणामे**– अन्त मे; **अमृत**– अमृत; **उपमम्**– सदृश; **तत्**– ओ; **सुखम्**– सुख; **सात्त्विकम्**– सतोगुणी; **प्रोक्तम्**– कहाबैत अछि; **आत्म**– अपन; **बुद्धि**– बुद्धिक; **प्रसाद् जम्**– तुष्टि सँ उत्पन्न।

जे प्रारम्भमे विष जेना लागैत अछि लेकिन अन्तमे अमृतक समान अछि आओर जे मनुष्यमे आत्मसाक्षात्कार जगवैत अछि, ओ सात्विक सुख कहाबैत अछि।

तात्पर्य: आत्म साक्षात्कारक साधनमे मन तथा इन्द्रिय केँ वशमे करब तथा मन केँ आत्मकेन्द्रित करक लेल नाना प्रकारक विधि–विधानक पालन कर पड़ैत अछि। ई सब विधि कठिन आओर विषक समान अत्यन्त कड़वी लागएवला अछि, लेकिन यदि क्यो एहि नियमक पालनमे सफल भऽ जाइत अछि आओर दिव्य पद केँ प्राप्त भऽ जाइत अछि तो ओ वास्तविक अमृतक पान कर लागैत अछि आओर जीवनक सुख प्राप्त करैत अछि।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।।३८।।

विषय- इन्द्रिय विषय; **इन्द्रिय**- इन्द्रियक; **संयोगात्**- संयोग सँ; **यत्**- जे; **तत्**- ओ; **अग्रे**- प्रारम्भ मे; **अमृत उपमम्**- अमृतक समान; **परिणामे**- अन्त मे; **विषम् इव**- विषक समान; **तत्**- ओ; **सुखम्**- सुख; **राजसम्**- राजसी; **स्मृतम्**- मानल जाइत अछि।

जे सुख इन्द्रिय द्वारा ओकरा विषयक संसर्ग सँ प्राप्त होइत अछि आओर जे प्रारम्भमे अमृत तुल्य तथा अन्तमे विषतुल्य लागैत अछि, ओ रजोगुणी कहाबैत अछि।

तात्पर्यः युवक -युवतीक मिलन प्रारम्भमे इन्द्रिय केँ ई अत्यन्त सुखगर लागि सकैत अछि, लेकिन अन्तमे या किछु समयक बाद ओहे विष तुल्य बनि जाइत अछि। तखन ओ विलग भऽ जाइत अछि। पुनः शोक, विषाद आदि उत्पन्न होइत अछि। एहन सुख सदैव राजसी होइत अछि। जे सुख इन्द्रिय आओर विषयक संयोग सँ प्राप्त होइत अछि, ओ सदैव दुःखक कारण बनैत अछि। अतएव एहि सँ सब तरह सँ बचवाक चाही।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।३९।।

यत्- जे; **अग्रे**- प्रारम्भ मे; **च**- भी; **अनुबन्धे**- अन्त मे; **सुखम्**- सुख; **मोहनम्**- मोहमय; **आत्मनः**- अपन; **निद्रा**- नींद; **आलस्य**- आलस्य; **प्रमाद**- मोह सँ; **उत्थम्**- उत्पन्न; **तत्**- ओ; **तामसम्**- तामसी; **उदाहृतम्**- कहाबैत अछि।

जे सुख आत्म साक्षात्कारक प्रति अन्धा अछि, जे प्रारम्भ सँ लऽकऽ अन्त तक मोहकारक अछि आओर जे निद्रा, आलस्य तथा मोह सँ उत्पन्न होइत अछि, ओ तामसी कहाबैत अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति आलस्य तथा निद्रामे ही सुखी रहैत अछि, ओ निश्चय ही तमोगुणी अछि। जाहि व्यक्ति केँ एकर कोनो अनुमान नहि अछि कि कोन प्रकार कर्म कएल जाए आओर कोन प्रकार नहि, ओ भी तमोगुणी अछि। तमोगुणी व्यक्तिक लेल सब वस्तु भ्रम (मोह) अछि। ओकरा न तो प्रारम्भमे सुख मिलैत अछि, न अन्तमे। रजोगुणी व्यक्तिक

लेल प्रारम्भमे किछु क्षणिक सुख आओर अन्तमे दुख भऽ सकैत अछि, लेकिन जे तमोगुणी अछि, ओकरा प्रारम्भमे तथा अन्तमे दुख ही दुख भेटैत अछि।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः॥४०॥

न– नहि; **तत्**– ओ; **अस्ति**– अछि; **पृथिव्याम्**– पृथ्वी पर; **वा**– अथवा; **दिवि**– उच्चतर लोकमे; **देवेषु**– देवतामे; **पुनः**– फेर; **सत्त्वम्**– अस्तित्व; **प्रकृति जैः**– प्रकृति सँ उत्पन्न; **मृक्तम्**– मुक्त; **यत्**– जे; **एभिः**– एकर प्रभाव सँ; **स्यात्**– हो; **त्रिभिः**– तीन; **गुणैः**– गुण सँ।

एहि लोकमे, स्वर्ग लोकमे या देवताक मध्यमे कोनो भी एहन व्यक्ति विद्यमान नहि अछि, जे प्रकृतिक तीनू गुण सँ मुक्त हो।

तात्पर्यः भगवान् एहि श्लोकमे समग्र ब्रह्माण्डमे प्रकृतिक तीन गुणक प्रभावक संक्षिप्त वर्णन दऽ रहला अछि।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥४१॥

ब्राह्मण– ब्राह्मण; **क्षत्रिय**– क्षत्रिय; **विशाम्**– तथा वैश्यक; **शूद्राणाम्**– शुद्रक; **च**– तथा; **परन्तप**– हे शत्रुक विजेता; **कर्माणि**– कार्यकलाप; **प्रविभक्तानि**– विभाजित अछि; **स्वभाव**– अपन स्वभाव सँ; **प्रभवैः**– उत्पन्न; **गुणैः**– गुणक द्वारा।

हे परन्तप! ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रमे प्रकृतिक गुणक अनुसार ओकर अपन स्वभाव द्वारा उत्पन्न गुणक द्वारा भेद कएल जाइत अछि।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥४२॥

शमः– शान्तिप्रियता; **दमः**– आत्मसंयम; **तपः**– तपस्या; **शौचम्**– पवित्रता; **क्षान्तिः**– सहिष्णुता; **आर्जवम्**– सत्यनिष्ठा; **एव**– निश्चय ही; **च**– तथा; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **विज्ञानम्**– विज्ञान; **आस्तिक्यम्**– धार्मिकता; **ब्रह्म**– ब्राह्मणक; **कर्म**– कर्तव्य; **स्वभावजम्**– स्वभाव सँ उत्पन्न; स्वाभाविक।

शान्तिप्रियता, आत्मसंयम, तपस्या, पवित्रता, सहिष्णुता, सत्यनिष्ठा, ज्ञान, विज्ञान तथा धार्मिकता- ई सब स्वाभाविक गुण अछि, जकरा द्वारा ब्राह्मण कर्म करैत छथि।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥४३॥

शौर्यम्- वीरता; **तेजः**- शक्ति; **धृतिः**- संकल्प, धैर्य; **दाक्ष्यम्**- दक्षता; **युद्धे**- युद्ध मे; **च**- तथा; **अपि**- भी; **अपलायनम्**- विमुख नहि हैब; **दानम्**- उदारता; **ईश्वर**- नेतृत्वक; **भावः**- स्वभाव; **क्षात्रम्**- क्षत्रियक; **कर्म**- कर्तव्य; **स्वभावजम्**- स्वभाव सँ उत्पन्न; स्वाभाविक।

वीरता, शक्ति, संकल्प, दक्षता, युद्धमे धैर्य, उदारता तथा नेतृत्व-ई क्षत्रियक स्वाभाविक गुण अछि।

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥४४॥

कृषि- हल जोतव; **गो**- गायक; **रक्ष्य**- रक्षा; **वाणिज्यम्**- व्यापार; **वैश्य**- वैश्यक; **कर्म**- कर्तव्य; **स्वभावजम्**- स्वाभाविक; **परिचर्या**- सेवा; **आत्मकम्**- सँ युक्त; **कर्म**- कर्तव्य; **शूद्रस्य**- शूद्रक; **अपि**- भी; **स्वभावजम्**- स्वाभाविक।

कृषि करब, गोरक्षा तथा व्यापार वैश्यक स्वाभाविक कर्म अछि आओर शूद्रक कर्म श्रम तथा अन्यक सेवा करब अछि।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥४५॥

स्वे स्वे- अपन-अपन; **कर्मणि**- कर्म मे; **अभिरतः**- संलग्न; **संसिद्धिम्**- सिद्धि केँ; **लभते**- प्राप्त करैत अछि; **नरः**- मनुष्य; **स्वकर्म**- अपन कर्म मे; **निरतः**- लागल; **सिद्धिम्**- सिद्धि केँ; **यथा**- जाहि प्रकार; **विन्दति**- प्राप्त करैत अछि; **तत्**- ओ; **शृणु**- सुनु।

अपन अपन कर्मक गुणक पालन करैत प्रत्येक व्यक्ति सिद्ध भऽ सकैत अछि। आब अहाँ हमरा सँ सुनु कि ई कोन प्रकार कएल जाइत अछि।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥४६॥

यतः– जाहि सँ; **प्रवृतिः**– उद्भव; **भूतानाम्**– समस्त जीवक; **येन**– जाहि सँ; **सर्वम्**– समस्त; **इदम्**– ई; **ततम्**– व्याप्त अछि; **स्वकर्मणा**– अपन कर्म सँ; **तम्**– ओकरा; **अभ्यर्च्य**– पूजा करिक; **सिद्धिम्**– सिद्धि केँ; **विन्दति**– प्राप्त करैत अछि; **मानवः**– मनुष्य।

जे सब प्राणीक उदगम छथि आओर सर्वव्यापी छथि, ओहि भगवानक उपासना करिक मनुष्य अपन कर्म करैत पूर्णता प्राप्तक सकैत अछि।

तात्पर्यः जेना कि पन्द्रहम अध्यायमे बताओल गेल अछि कि समस्त जीव परमेश्वरक भिन्नांश अछि। ओहि प्रकार परमेश्वर ही समस्त जीवक आदि छथि। वेदान्त सूत्रमे एकर पुष्टि भेल अछि– **''जन्माद्यस्य यतः''**। अतएव परमेश्वर प्रत्येक जीवक जीवनक उद्गम छथि। जेना कि भगवद्गीताक सातम अध्यायमे कहल गेलै अछि, परमेश्वर अपन परा तथा अपरा, एहि दू शक्ति द्वारा सर्वव्यापी छथि। अतएव मनुष्य केँ चाही कि हुनकर शक्ति सहित भगवानक पूजा करे। सामान्यतया वैष्णव जन परमेश्वरक पूजा हुनकर अन्तरंगा शक्ति समेत करैत छथि। हुनकर बहिरंगा शक्ति हुनकर अन्तरंगा शक्तिक विकृत प्रतिबिम्ब अछि। बहिरंगा शक्ति पृष्ठभूमि अछि, लेकिन परमेश्वर परमात्मा रुपमे पूर्णांशक विस्तार करिक सर्वत्र स्थित अछि। ओ सर्वत्र समस्त देवता, मनुष्य आओर पशुक परमात्मा छथि। अतएव मनुष्य केँ ई जानबाक चाही कि परमेश्वरक भिन्नांश भेलाक कारण ओकर कर्तव्य अछि कि ओ भगवानक सेवा करे। प्रत्येक व्यक्ति केँ कृष्णभावनामृतमे भगवानक भक्ति करक चाही। प्रत्येक व्यक्ति केँ सोचबाक चाही कि इन्द्रियक स्वामी हृषीकेश द्वारा ओ विशेष कर्ममे प्रवृत्त कएल गेल अछि। अतएव जे जाहि कर्ममे लागल अछि, ओकरे फल द्वारा भगवान् कृष्ण केँ पूजा करैक चाही। यदि ओ एहि प्रकार सँ कृष्णभावनामय भऽकऽ सोचैत अछि, तो भगवत्कृपा सँ ओ पूर्ण ज्ञान प्राप्तक लैत अछि। इहै जीवनक सिद्धि अछि।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥४७॥

श्रेयान्- श्रेष्ठ; **स्वधर्मः**- अपन वृत्तिपरक कार्य; **विगुणः**- ठीक-ठीक सम्पन्न नहि भऽकऽ; **परधर्मात्**- दोसरक वृत्तिपरक कार्य सँ; **सु अनष्ठितात्**- ठीक-ठीक कएल गेल; **स्वभाव नियतम्**- स्वभावक अनुसार संस्तुत; **कर्म**- कर्म; **कुर्वन्**- केला सँ; **न**- कहियो नहि; **आप्नोति**- प्राप्त करैत अछि; **किल्विषम्**- पाप केँ।

अपन वृत्तिपरक कार्य केँ करब, चाहे ओ कतेको ही त्रुटिपूर्ण ढंग सँ किएक न कएल जाए अन्य ककरो कार्य केँ स्वीकार कऽ आओर बढ़ियाँ प्रकार करक अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ अछि। अपन स्वभावक अनुसार निर्दिष्ट कर्म कहियो भी पाप सँ प्रभावित नहि होइत अछि।

तात्पर्यः भगवद्‌गीतामे मनुष्यक वृत्तिपरक कार्य (स्वधर्म)क निर्देश अछि। जेना कि पूर्ववर्ती श्लोकमे वर्णन भेल अछि। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्रक कर्तव्य हुनक विशेष प्राकृतिक गुण (स्वभाव)क द्वारा निर्दिष्ट होइत अछि। ककरो दोसरक कार्यक अनुकरण नहि करक चाही। मनुष्य केँ चाही कि परमेश्वर केँ प्रसन्न करक लेल कार्य करे। उदाहरणार्थ, अर्जुन क्षत्रिय छलाह। ओ दोसरक पक्षमे युद्ध कर सँ बचि रहल छलाह। लेकिन यदि एहन युद्ध भगवान् कृष्णक लेल कर पड़े, तो पतन सँ घबड़ेबाक आवश्यकता नहि अछि। प्रत्येक मनुष्य केँ यज्ञक लेल अथवा भगवान् विष्णुक लेल कार्य करक चाही। निजी इन्द्रियतृप्तिक लेल कएल गेल कार्य बन्धनक कारण अछि। निष्कर्ष ई निकलल कि मनुष्य केँ चाही कि ओ अपन अर्जित विशेष गुणक अनुसार कार्यमे प्रवृत्त भऽ आओर परमेश्वरक सेवा करक लेल ही कार्य करक निश्चय करे।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥४८॥

सहजम्- एक संग उत्पन्न; **कर्म**- कर्म; **कौन्तेय**- हे कुन्तीपुत्र; **स दोषम्**- दोषयुक्त; **अपि**- यद्यपि; **न**- कहियो नहि; **त्यजेत्**- त्यागक चाही; **सर्व-आरम्भाः**- सब उद्योग; **हि**- निश्चय ही; **दोषेण**- दोष सँ; **धूमेन**- धूआँ सँ; **अग्निः**- अग्नि; **इव**- सदृश; **आवृताः**- ढ़कल।

प्रत्येक उद्योग (प्रयास) कोनो न कोनो दोष सँ आवृत होइत अछि, जाहि प्रकार अग्नि धूआँ सँ आवृत रहैत अछि। अतएव हे कुन्तीपुत्र! मनुष्य केँ चाही कि स्वभाव सँ उत्पन्न कर्म करे, भले ही ओ दोषपूर्ण किएक न हो, कहियो त्यागे नहि।

तात्पर्यः वद्ध जीवनमे समस्त कर्म भौतिक गुण सँ दूषित रहैत अछि। एतय तक कि ब्राह्मण तक केँ एहन यज्ञ कर पड़ैत अछि, जाहिमे पशु हत्या अनिवार्य अछि। एहि प्रकार क्षत्रीय चाहे कतबो ही पवित्र किएक नहि हो, ओकरा शत्रु सँ युद्ध करए पड़ैत अछि। ओ एहि सँ बचि नहि सकता। परन्तु एतय एक अत्यन्त उदाहरण देल गेल अछि। यद्यपि अग्नि शुद्ध होइत अछि तो भी ओहिमे धुआँ रहैत अछि। लेकिन एतबो पर भी अग्नि अशुद्ध नहि होइत अछि। एहि सँ निष्कर्ष निकालल जा सकैत अछि कि संसारमे प्रकृतिक कल्मष सँ क्यो भी पूर्णतः मुक्त नहि अछि। अतएव मनुष्य केँ चाही कि कृष्णभावनामृतमे रहि कऽ अपन वृत्तिपरक कार्य सँ परमेश्वरक सेवा करक संकल्प ले। इहै सिद्धि अवस्था अछि। जखन कोनो भी वृत्तिपरक कार्य भगवान् केँ प्रसन्न करक लेल कएल जाइत अछि, तो ओहि कार्यक सब दोष शुद्ध भऽ जाइत अछि। जखन भक्ति सँ सम्बन्धित कर्मफल शुद्ध भऽ जाइत अछि, तो मनुष्य अपन अन्तरक दर्शन कऽ सकैत अछि आओर इहै आत्म साक्षात्कार अछि।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति॥४९॥

असक्त बुद्धिः– आसक्त रहित बुद्धिवाला; **सर्वत्र**– सब जगह; **जित–आत्मा**– मनक ऊपर संयम राखएवाला; **विगत स्पृहः**– भौतिक इच्छा सँ रहित; **नैष्कर्म्य–सिद्धिम्**– निष्कर्मक सिद्धि; **परमाम्**– परम; **संन्यासेन**– संन्यासक द्वारा; **अधिगच्छति**– प्राप्त करैत अछि।

जे आत्मसंयमी तथा अनासक्त अछि एवं जे समस्त भौतिक भोगक परवाह नहि करैत, ओ संन्यासक अभ्यास द्वारा कर्मफल सँ मुक्तिक सर्वोच्च सिद्ध अवस्था प्राप्तक सकैत अछि।

तात्पर्यः सच्चा संन्यासक अर्थ अछि कि मनुष्य सदा अपना केँ परमेश्वरक अंश मानिक ई सोचे कि ओकरा अपन कार्यक फल केँ भोगैक

कोनो अधिकार नहि अछि। चूँकि ओ परमेश्वरक अंश अछि, अतएव ओकर कार्यक फल परमेश्वर द्वारा भोग लेबाक चाही, इहै वास्तवमे कृष्णभावनामृत अछि। जे व्यक्ति कृष्णभावनामृतमे स्थित भऽकऽ कर्म करैत अछि, ओहे वास्तवमे संन्यासी अछि। एहन मनोवृत्ति भेला सँ मनुष्य सन्तुष्ट रहैत अछि किएक तऽ ओ वास्तवमे भगवानक लेल कार्य कऽ रहैत अछि। एहि प्रकार ओ कोनो भी भौतिक वस्तुक लेल आसक्त नहि होइत, ओ भगवानक सेवा सँ प्राप्त दिव्य सुख सँ परे कोनो भी वस्तुमे आन्नद न लेवाक आदी भऽ जाइत अछि। संन्यासी केँ पूर्व कार्यकलापक बन्धन सँ मुक्त मानल जाइत अछि, लेकिन जे व्यक्ति कृष्णभावनामृतमे होइत अछि, ओ बिना संन्यास ग्रहण कैने ही सिद्धि प्राप्तक लैत अछि। ई मनोदशा योगरुढ या योगक सिद्धावस्था कहलाबैत अछि। जेना कि तृतीय अध्यायमे पुष्टि भेल अछि– **''यस्त्वामरतिरेव स्यात्''**। जे व्यक्ति अपनेमे संतुष्ट रहैत अछि, ओकरा अपन कर्म सँ कोनो प्रकारक बन्धनक भय नहि रहि जाइत अछि।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।५०।।

सिद्धिम्– सिद्धि केँ; **प्राप्तः**– प्राप्त कएल; **यथा**– जाहि प्रकार; **ब्रह्म**– परमेश्वर; **तथा**– ओहि प्रकार; **आप्नोति**– प्राप्त करैत अछि; **निबोध**– समझबाक यत्न करी; **मे**– हमरा सँ; **समासेन**– संक्षेप मे; **एव**– निश्चय ही; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **निष्ठा**– अवस्था; **ज्ञानस्य**– ज्ञानक; **या**– जे; **परा**– दिव्य।

हे कुन्तीपुत्र! जाहि प्रकार एहि सिद्धि केँ प्राप्त भेल व्यक्ति परम सिद्धावस्था अर्थात् ब्रह्म केँ, जे सर्वोच्च ज्ञानक अवस्था अछि, ओकर हम संक्षेपमे अहाँ सँ वर्णन करब। ओकरा अहाँ जानू।

तात्पर्यः भगवान् अर्जुन केँ बतबैत छथि कि कोन तरहेँ क्यो व्यक्ति केवल अपन वृत्तिपरक कार्यमे लागि कऽ परम सिद्धावस्था केँ प्राप्तक सकैत अछि, यदि ओ कार्य भगवानक लेल कयल गेल हो। यदि मनुष्य अपन कर्मक फल केँ परमेश्वरक तुष्टि लेल ही त्यागि दैत अछि, तो ओकरा ब्रह्मक चरम अवस्था प्राप्त भऽ जाइत अछि। ई आत्मसाक्षात्कारक

विधि अछि। ज्ञानक वास्तविक सिद्धि शुद्ध कृष्णभावनामृत प्राप्त करमे अछि, एकर वर्णन अगिला श्लोकमे कएल गेल अछि।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥५१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥५२॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥५३॥

बुद्ध्या– बुद्धि सँ; **विशुद्धया**– नितान्त शुद्ध; **युक्तः**– रत; **धृत्या**– धैर्य सँ; **आत्मानम्**– स्व केँ; **नियम्य**– वश मे करिक; **च**– भी; **शब्द आदीन्**– शब्द आदि; **विषयान्**– इन्द्रियविषय केँ; **त्यक्त्वा**– त्यागिक; **द्वेषौ**– घृणा केँ; **व्युदस्य**– एक तरफ राखिक; **राग**– आसक्ति; **विविक्त सेवी**– एकान्त स्थान मे रहैत; **लघु आशी**– अल्प भोजन करएवाला; **यत**– वश मे करिक; **वाक्**– वाणी; **काय**– शरीर; **मानसः**– मन केँ; **ध्यान योगपरः**– समाधि मे लीन; **नित्यम्**– चौबीसो घण्टा; **वैराग्यम्**– वैराग्यक; **समुपाश्रितः**– आश्रय लऽकऽ; **अहङ्कारम्**– मिथ्या अहंकार केँ; **बलम्**– झूठ बल केँ; **दर्पम्**– झूठ घमण्ड केँ; **कामम्**– काम केँ; **क्रोधम्**– क्रोध केँ; **परिग्रहम्**– भौतिक वस्तुक संग्रह केँ; **विमुच्य**– त्यागिक; **निर्ममः**– स्वामित्वक भावना सँ रहित; **शान्तः**– शान्त; **ब्रह्म भूयाय**– आत्म साक्षात्कारक लेल; **कल्पते**– योग्य भऽ जाइत अछि।

अपन बुद्धि सँ शुद्ध भऽकऽ तथा धैर्यपूर्वक मन केँ वशमे करैत इन्द्रियतृप्तिक विषयक त्यागि कऽ राग तथा द्वेष सँ मुक्त भऽकऽ जे व्यक्ति एकान्त स्थानमे वास करैत अछि, जे थोड़ेक खाइत अछि, जे अपन शरीर मन तथा वाणी केँ वशमे राखैत अछि, जे सदैव समाधिमे रहैत अछि तथा पूर्णतया विरक्त, मिथ्या अहंकार, मिथ्या शक्ति, मिथ्या गर्व, काम, क्रोध तथा भौतिक वस्तुक संग्रह सँ मुक्त अछि, जे मिथ्या स्वामित्वक भावना सँ रहित तथा शान्त अछि ओ निश्चय ही आत्म साक्षात्कारक पद केँ प्राप्त होइत अछि।

तात्पर्यः जे मनुष्य बुद्धि द्वारा शुद्ध भऽ जाइत अछि, ओ अपने आप

केँ सत्त्वगुणमे अधिष्ठित कऽ लैत अछि। एहि प्रकार ओ मन केँ वशमे करि कऽ सदैव समाधिमे रहैत अछि। ओ इन्द्रियतृप्तिक विषयक प्रति आसक्त नहि रहैत अछि आओर अपन कार्यमे राग तथा द्वेष सँ मुक्त होइत अछि। एहन विरक्त व्यक्ति स्वभावतः एकान्त स्थानमे रहनाइ पसन्द करैत अछि। ओ आवश्यकता सँ अधिक खाइत नहि अछि आओर अपन शरीर तथा मनक गतिविधि पर नियन्त्रण राखैत अछि। ओ मिथ्या अहंकार सँ रहित होइत अछि किएक तऽ ओ अपना केँ शरीर नहि समझैत अछि। न ही ओ अनेक भौतिक वस्तु स्वीकार करिक शरीर केँ स्थूल तथा बलवान बनबैक इच्छा करैत अछि। चूँकि ओ देहात्मबुद्धि सँ रहित होइत अछि, अतएव ओ मिथ्या गर्व नहि करैत अछि। भगवत्कृपा सँ ओकरा जतेक किछु प्राप्त भऽ जाइत अछि, ओहि सँ, ओ संतुष्ट रहैत अछि आओर इन्द्रियतृप्ति नहि भेलो पर कौखन क्रुद्ध नहि होइत अछि। न ही ओ इन्द्रियविषय केँ प्राप्त करक लेल प्रयास करैत अछि। एहि प्रकार जखन ओ मिथ्या अहंकार सँ पूर्णतया मुक्त भऽ जाइत छथि, तो ओ समस्त भौतिक वस्तु सँ विरक्त बनि जाइत छथि आओर इहै ब्रह्मक आत्मसाक्षात्कार अवस्था अछि। ई ब्रह्मभूत अवस्था कहाबैत अछि। जखन मनुष्य देहात्मबुद्धि सँ मुक्त भऽ जाइत अछि, तो ओ शान्त भऽ जाइत अछि आओर हुनका उत्तेजित नहि कएल जा सकैत अछि। एकर वर्णन भगवद्‌गीताक दोसर अध्यायमे एहि प्रकार भेल अछि– **''आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् तद्वत्कामा यं प्रविशनित सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी''**। जे मनुष्य इच्छाक अनवरत प्रवाह सँ विचलित नहि होइत, जाहि प्रकार नदीक जलक निरन्तर प्रवेश करैत रहला पर आओर सदा भरल रहलो पर भी समुद्र शान्त रहैत अछि, ओहि तरहेँ केवल ओहे शान्ति प्राप्तक सकैत अछि, ओ नहि, जे एहन इच्छाक तुष्टिक लेल निरन्तर उद्योग करैत रहैत अछि।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्‌भक्तिं लभते पराम्॥५४॥

ब्रह्मभूतः– ब्रह्म सँ तदाकार भऽकऽ; **प्रसन्न आत्मा**– पूर्णतया प्रमुदित; **न** – कहियो नहि; **शोचति**– खेद करैत अछि; **काङ्क्षति**– इच्छा करैत अछि; **समः**– समान भाव सँ; **सर्वेषु**– समस्त; **भूतेषु**– जीव पर;

मत-भक्तिम्- हमर भक्ति केँ; **लभते**- प्राप्त करैत अछि; **पराम्**- दिव्य।

एहि प्रकार जे दिव्य पद पर स्थित अछि, ओ तुरन्त परब्रह्मक अनुभव करैत अछि आओर पूर्णतया प्रसन्न भऽ जाइत अछि। ओ न तो कौखन शोक करैत अछि, न कोनो वस्तु केँ कामना करैत अछि। ओ प्रत्येक जीव पर समभाव राखैत छथि। ओहि अवस्थामे ओ हमर शुद्ध भक्ति केँ प्राप्त करैत अछि।

तात्पर्यः देहात्मबुद्धिक अन्तर्गत, जखन क्यो इन्द्रियतृप्तिक लेल कर्म करैत अछि, तो दुखक भागी होइत अछि, लेकिन परम जगतमे शुद्ध भक्तिमे रत रहला पर कोनो दुःख नहि रहि जाइत अछि। कृष्णभावनाभावित भक्त केँ न तो, कोनो प्रकार केँ शोक होइत अछि, न आकांक्षा होइत अछि। चूँकि ईश्वर पूर्ण छथि, अतएव ईश्वरमे सेवारत जीव भी कृष्णभावनामे रहि कऽ अपनामे पूर्ण रहैत अछि। ओ एहन नदीक तुल्य अछि, जकर जलक सब गंदगी साफ कऽ देल गेलै अछि। चूँकि शुद्ध भक्तमे कृष्णक अतिरिक्त कोनो विचार ही नहि उठैत अछि अतएव ओ प्रसन्न रहैत अछि। ओ न तो कोनो भौतिक क्षति पर शोक करैत अछि, न कोनो लाभक आकांक्षा करैत अछि, किएक तऽ ओ भगवद्भक्ति सँ पूर्ण होइत अछि। ओ कोनो भौतिक भोगक आकांक्षा नहि करैत अछि किएक तऽ ओ जानैत अछि कि प्रत्येक जीव भगवानक अंश अछि, अतएव ओ हुनकर नित्य दास अछि। ओ भौतिक जगतमे न तो ककरो अपना सँ उच्च देखैत अछि न ककरो निम्न। ओकरा लेल पत्थर आ सोना बराबर होइत अछि। ई ब्रह्मभूत अवस्था अछि, जकरा शुद्ध भक्त सरलता सँ प्राप्तक लैत अछि। जाहि प्रकार विषदंतहीन सर्प सँ कोनो भय नहि रहि जाइत ओहि प्रकार स्वतः संयमित इन्द्रिय सँ कोनो भय नहि रहि जाइत अछि। ई संसार ओहि व्यक्तिक लेल दुखमय अछि, जे भौतिकता सँ ग्रस्त अछि। लेकिन भक्तक लेल समग्र जगत् वैकुण्ठ तुल्य अछि। एहि ब्राह्मण्डक महान सँ महानतम पुरुष भी भक्तक लेल एक क्षुद्र चींटी सँ अधिक महत्त्वपूर्ण नहि होइत अछि। एहन अवस्था भगवानक कृपा सँ होइत अछि।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥५५॥

भक्त्या– शुद्ध भक्ति सँ; **माम्**– हमरा; **अभिजानाति**– जानि सकैत अछि; **यावान्**– जतेक; **यः च अस्मि**– जेना हम छी; **तत्त्वतः**– सत्यतः; **ततः**– तत्पश्चात्; **माम्**– हमरा; **ज्ञात्वा**– जानि कऽ; **विशते**– प्रवेश करैत अछि; **तत्–अनन्तरम्**– तत्पश्चात्।

लेकिन भक्ति सँ भगवान् केँ यथारूपमे जानल जा सकैत अछि। जखन मनुष्य एहन भक्ति सँ हमर पूर्ण भावनामृतमे होइत अछि, तो ओ वैकुण्ठ जगत्मे प्रवेश कऽ सकैत अछि।

तात्पर्यः जे व्यक्ति कृष्ण तत्त्व सँ पूर्णतया अवगत अछि, ओहे वैकुण्ठ जगत् या कृष्णक धाममे प्रवेशक सकैत अछि। ब्रह्मभूत भेलाक अर्थ ई नहि अछि कि ओ अपन स्वरुप खो बैठैत अछि। भक्ति तो रहिते ही अछि आओर जाधरि भक्तिक अस्तित्व रहैत अछि, ताधरि ईश्वर, भक्त तथा भक्तिक विधि रहैत अछि। एहन ज्ञानक नाश मुक्तिक बाद भी नहि होइत अछि। मुक्तिक अर्थ देहात्मबुद्धि सँ मुक्ति प्राप्त करब अछि। आध्यात्मिक जीवनमे ओहने ही अन्तर, ओहे स्वरुप (व्यक्तित्व) बनल रहैत अछि, लेकिन शुद्ध कृष्णभावनामृतमे हमरामे प्रवेश करैत अछि। भक्त अपन शुद्ध भक्तिक कारण परमेश्वरक दिव्य गुण तथा ऐश्वर्य केँ यथार्थ रुपमे जानि सकैत अछि। जेना कि ग्यारहम अध्यायमे कहल जा चुकल अछि, केवल भक्ति द्वारा ही ई समझल जा सकैत अछि। एकरे पुष्टि एतय भी भेल अछि। मनुष्य भक्ति द्वारा भगवान् केँ समझि सकैत अछि आओर हुनकर धाममे प्रवेशक सकैत अछि।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यापाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥५६॥

सर्व– समस्त; **कर्माणि**– कार्यकलाप केँ; **अपि**– यद्यपि; **सदा**– सदैव; **कुर्वाणः**– करैत; **मत् व्यपाश्रयः**– हमरा संरक्षण मे; **मत् प्रसादात्**– हमर कृपा सँ; **अवाप्नोति**– प्राप्त करैत अछि; **शाश्वतम्**– नित्य; **पदम्**– धाम केँ; **अव्ययम्**– अविनाशी।

हमर शुद्ध भक्त हमर संरक्षणमे, समस्त प्रकारक कार्यमे संलग्न रहि कऽ भी हमर कृपा सँ नित्य तथा अविनाशी धाम केँ प्राप्त कऽ सकैत अछि।

तात्पर्यः भौतिक कल्मष सँ रहित भेलाक लेल शुद्ध भक्त परमेश्वर या हुनकर प्रतिनिधि स्वरुप गुरुक निर्देशनमे कर्म करैत अछि। हुनका लेल समयक कोनो सीमा नहि अछि। ओ सदैव परमेश्वरक निर्देशनमे कार्यमे संलग्न रहैत छथि। एहन भक्त पर जे कृष्णभावनामृतमे रहैत अछि, भगवान् अत्यधिक दयालु होइत छथि। ओ समस्त कठिनाईक बावजूद अन्ततोगत्वा दिव्य धाम केँ प्राप्त होइत छथि।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥५७॥

चेतसा– बुद्धि सँ; **सर्वकर्माणि**– समस्त प्रकारक कार्य; **मयि**– हमरा मे; **सन्न्यस्य**– त्यागि कऽ; **मत् परः**– हमर संरक्षण मे; **बुद्धियोगम्**– भक्तिक कार्यक; **उपाश्रित्य**– शरण लऽकऽ; **मत् चित्तः**– हमर चेतना मे; **सततम्**– सदैव; **भव**– होओ।

समस्त कार्यक लेल हमरा पर निर्भर रहू आओर हमर संरक्षणमे सदा कर्म करु। एहन भक्तिमे हमरा प्रति पूर्णतया सचेत रहू।

तात्पर्यः एहि श्लोकमे मत्परः शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अछि। ई सूचित करैत अछि कि मनुष्य जीवनमे भगवान् कृष्ण केँ प्रसन्न करक लेल कृष्णभावनाभावित भऽकऽ कार्य करक अतिरिक्त अन्य कोनो लक्ष्य नहि होइत अछि। जखन ओ एहि प्रकार कार्यक रहल हो तो ओकरा केवल कृष्णक ही चिन्तन एहि प्रकार सँ करक चाही– कृष्ण भगवान् हमरा एहि विशेष कार्य केँ पूरा करक लेल नियुक्त कएलनि अछि आओर एहि तरह कार्य करैत ओकरा स्वाभाविक रुप सँ कृष्णक चिन्तन भऽ आबैत अछि। ओहे पूर्ण कृष्णभावनामृत अछि। कृष्णभावनामय जीवनक सिद्धि सुनिश्चित अछि।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥५८॥

मत्– हमर; **चित्तः**– चेतना मे; **सर्व**– समस्त; **दुर्गाणि**– बाधा केँ; **मत्-प्रसादात्**– हमरा कृपा सँ; **तरिष्यसि**– अहाँ पार कऽ सकब; **अथ**– लेकिन; **चेत्**– यदि; **त्वम्**– अहाँ; **अहङ्कारात्**– मिथ्या अहंकार सँ; **न श्रोष्यसि**– नहि सूनैत छी; **विनङ्क्ष्यसि**– नष्ट भऽ जाएब।

यदि अहाँ हमरा सँ भावनाभावित होएव, तो हमर कृपा सँ अहाँ बद्ध जीवनक सब अवरोध केँ लाँघि सकब। लेकिन यदि अहाँ मिथ्या अहंकार वश एहन चेतनामे कर्म नहि करब आओर हमर बात नहि सुनब, तो अहाँ विनष्ट भऽ जाएव।

तात्पर्यः पूर्ण कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अपन अस्तित्वक लेल कर्तव्य करक विषयमे आवश्यकता सँ अधिक उद्विग्न नहि रहैत अछि जे मूर्ख अछि, ओ समस्त चिन्ता सँ मुक्त केने रहए, एहि बात केँ नहि समझि सकैत अछि। जे व्यक्ति कृष्णभावनामृतमे कर्म करैत अछि, भगवान् कृष्ण हुनक घनिष्ठ मित्र बनि जाइत छथिन। ओ सदैव अपन मित्रक सुविधाक ध्यान राखैत छथिन आओर जे मित्र चौबीस घंटा हुनका प्रसन्न करक लेल निष्ठापूर्वक कार्यमे लागल रहैत अछि, ओ हुनका आत्मदान कऽ दैत छथि। अतएव ककरो देहात्मबुद्धिक मिथ्या अहंकारमे नहि बहि जेबाक चाही। ओकरा झूठे ही ई नहि सोचक चाही कि ओ प्रकृतिक नियम सँ स्वतंत्र अछि या कर्म करक लेल मुक्त अछि। ओ पहिने सँ कठोर भौतिक नियमक अधीन अछि। लेकिन जखने ओ कृष्णभावनाभावित भऽकऽ कर्म करैत अछि तो ओ भौतिक दुश्चिन्ता सँ मुक्त भऽ जाइत अछि।

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥५९॥

यत्- यदि; **अहङ्कारम्**- मिथ्या अहंकारक; **आश्रित्य**- शरण लऽकऽ; **न योत्स्ये**- हम नहि लड़ब; **इति**- एहि प्रकार; **मन्यसे**- अहाँ सोचैत हो; **मिथ्या-एष**- तो ई सब झूठ अछि; **व्यवसायः**- संकल्प; **ते**- अहाँक; **प्रकृतिः**- भौतिक प्रकृति; **त्वाम्**- अहाँ केँ; **नियोक्ष्यति**- लगा लेत।

यदि अहाँ हमर निर्देशानुसार कर्म नहि करैत छी आओर युद्धमे प्रवृत्त नहि होइत हो, तो अहाँ कुमार्ग पर जाएव। अहाँ केँ अपन स्वभाववश युद्धमे लाग पड़त।

तात्पर्यः अर्जुन एक सैनिक छलाह आओर क्षत्रिय स्वभाव लऽकऽ जन्मल छलाह। अतएव हुनकर स्वाभाविक कर्तव्य छल कि ओ युद्ध करथि। लेकिन मिथ्या अहंकारवश ओ डरि रहल छलाह कि अपन गुरु, पितामह तथा मित्रक बध करि कऽ ओ पापक भागी हेताह। वास्तवमे

ओ अपना केँ अपन कर्मक स्वामी मानि रहल छलाह, मानू ओहे एहन कर्मक अच्छा बुरा फलक निर्देशनक रहला हो। ओ बिसरि गेल छलाह कि ओतय साक्षात् भगवान् उपस्थित छथि आओर हुनका युद्ध करकक आदेश दऽ रहला अछि। इहै अछि बद्धजीवक विस्मृति। परमपुरुष निर्देश दैत छथि कि कोन चीज अच्छा अछि आओर की बुरा। मनुष्य केँ जीवन सिद्धि प्राप्त करक लेल केवल कृष्णभावनाभावितमे कर्म करक चाही।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥६०॥

स्वभावजेन– अपन स्वभाव सँ उत्पन्न; **कौन्तेय**– हे कुन्तीपुत्र; **निबद्धः**– बद्ध; **स्वेन**– अहाँ अपने; **कर्मणा**– कार्यकलाप सँ; **कर्तुम्**– करक लेल; **न**– नहि; **इच्छसि**– इच्छा करैत हो; **यत्**– जे; **मोहात्**– मोह सँ; **करिष्यसि**– करब; **अवशः**– अनिच्छा सँ; **अपि**– भी; **तत्**– ओ।

एहि समय अहाँ मोहवश हमर निर्देशानुसार कर्म करए सँ मना कऽ रहल छी। लेकिन हे कुन्तीपुत्र! अहाँ अपने ही स्वभाव सँ उत्पन्न कर्म द्वारा बाध्य भऽकऽ ओहे सब करब।

तात्पर्यः यदि क्यो परमेश्वरक निर्देशानुसार कर्म कर सँ मना करैत अछि, तो ओ ओहि गुणक द्वारा कर्म करक लेल बाध्य होइत अछि, जाहिमे ओ स्थित होइत अछि। प्रत्येक व्यक्ति प्रकृतिक गुणक विशेष संयोगक वशीभूत अछि आओर तदनुसार कर्म करैत अछि। किन्तु जे स्वेच्छा सँ परमेश्वरक निर्देशानुसार कार्यरत अछि, ओहे गौरवान्वित होइत अछि।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया॥६१॥

ईश्वरः– भगवान्; **सर्व भूतानाम्**– समस्त जीवक; **हृत् देशे**– हृदयमे; **अर्जुन**– हे अर्जुन; **तिष्ठति**– वास करैत अछि; **भ्रामयन्**– भ्रमण करक लेल बाध्य करैत; **सर्वभूतानि**– समस्त जीवक; **यन्त्र**– यन्त्रमे; **आरुढानि**– सवार, चढ़ल; **मायया**– भौतिक शक्तिक वशीभूत भऽकऽ।

हे अर्जुन! परमेश्वर प्रत्येक जीवक हृदयमे स्थित छथि आओर भौतिक शक्ति सँ निर्मित यंत्रमे सवारक जकाँ बैठल समस्त जीव केँ अपन माया सँ भरमा (घुमा) रहला अछि।

तात्पर्य: अर्जुन परम ज्ञाता नहि छलाह आओर लड़ या नहि लड़क निर्णय हुनकर क्षुद्र विवेक तक सीमित छल। भगवान् कृष्ण उपदेश देलनि कि जीवात्मा (व्यक्ति) ही सर्वेसर्वा नहि अछि। भगवान् अन्तर्यामी परमात्मा रुपमे हृदयमे स्थित भऽकऽ जीव केँ निर्देश दैत छथि। शरीर परिर्वतन होइते ही जीव अपन विगत कर्म केँ बिसरि जाइत अछि लेकिन परमात्मा जे भूत, वर्तमान तथा भविष्यक ज्ञाता छथि, ओकर समस्त कार्यक साक्षी रहैत छथि। अतएव जीवक सब कार्यक संचालन इहै परमात्मा द्वारा होइत अछि। जीव जतेक योग्य होइत अछि ओतबे ही पाबैत अछि आओर ओहि भौतिक शरीर द्वारा वहन कएल जाइत अछि, जे परमात्माक निर्देशमे भौतिक शक्ति द्वारा उत्पन्न कएल जाइत अछि। जखने जीव केँ कोनो विशेष प्रकारक शरीरमे स्थापितक देल जाइत अछि, ओ शारीरिक अवस्थाक अन्तर्गत कार्य कर प्रारम्भक दैत अछि। व्यक्ति तो सदैव भगवानक नियंत्रणमे रहैत अछि। अतएव ओकर कर्तव्य अछि कि शरणागत हो आओर अगिला श्लोकक इहै आदेश अछि।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥६२॥

तम्- ओकर; **एव**- निश्चय ही; **शरणं गच्छ**- शरण मे जाउ; **सर्व भावेन**- सब प्रकार सँ; **भारत**- हे भरतपुत्र; **तत्-प्रसादात्**- हुनकर कृपा सँ; **पराम्**- दिव्य; **शान्तिम्**- शान्ति केँ; **स्थानम्**- धाम केँ; **प्राप्सयसि**- प्राप्त करब; **शाश्वतम्**- शाश्वत।

हे भारत! सब प्रकार सँ हुनके शरणमे जाउ। हुनके कृपा सँ अहाँ परम शान्ति केँ तथा परम नित्यधाम केँ प्राप्त करब।

तात्पर्य: भगवद्गीताक पन्द्रहम अध्यायमे कहल गेलै अछि- **''सर्वस्य चाहं ह्रदि सन्निविष्टः''** भगवान् प्रत्येक जीवक हृदयमे स्थित अछि। अतएव ई कथन कि मनुष्य अन्तः स्थित परमात्माक शरण लऽकऽ अर्थ अछि कि ओ भगवान् कृष्णक शरण लिए। कृष्ण केँ पहिने ही अर्जुन परम स्वीकारक लेलनि अछि। दसम अध्यायमे हुनका परमब्रह्म परमधामक रुपमे स्वीकार कएल जा चुकल अछि। अर्जुन कृष्ण केँ भगवान् तथा समस्त जीवक परम धामक रुपमे स्वीकारक रखलनि अछि, इसलिए

नहि कि ओ हुनकर निजी अनुभव अछि, वरना एहि लेल भी कि नारद, देवल, असित, व्यास सनक महापुरुष एकर प्रमाण छथि।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥६३॥

इति– एहि प्रकार; **ते**– अहाँ केँ; **ज्ञानम्**– ज्ञान; **आख्यातम्**– वर्ण कएल गेल; **गुह्यात्**– गुह्य सँ; **गुह्यतरम्**– अधिक गुह्य; **मया**– हमरा द्वारा; **विमृश्च**– मनन करिक; **एतन्**– एहि; **अशेषेण**– पूर्णतया; **यथा**– जेना; **इच्छसि**– इच्छा हो; **तथा**– ओहने; **कुरु**– करु।

एहि प्रकार हम अहाँ केँ गुह्यतर ज्ञान बतला देलहुँ अछि। एहि पर पूरा तरह सँ मनन करु आओर तखन जे चाही से करु।

तात्पर्यः भगवान् पहिने ही अर्जुन केँ ब्रह्मभूत ज्ञान बता देलथिन अछि। जे एहि ब्रह्मभूत अवस्थामे होइत अछि, ओ प्रसन्न रहैत अछि, न तो ओ शोक करैत अछि, न कोनो वस्तुक कामना करैत अछि। एहन गुह्यज्ञानक कारण होइत अछि। कृष्ण परमात्माक ज्ञान भी प्रकट करैत छथि। ई ब्रह्मज्ञान भी अछि, लेकिन ई ओहि सँ श्रेष्ठ अछि। एतय यथेच्छसि तथा कुरु–जेहन इच्छा हो ओहने करु। ई सूचित करैत अछि कि ईश्वर जीवक यत्किंचित स्वतंत्रतामे हस्तक्षेप नहि करता। अर्जुन केँ हुनकर सर्वश्रेष्ठ उपदेश ई अछि कि हृदयमे आसीन परमात्माक शरणगत भेल जाए। सही विवेक सँ मनुष्य केँ परमात्माक आदेशानुसार कर्म करक लेल तैयार होमक चाही, एहि सँ मनुष्य निरन्तर कृष्णभावनामृतमे स्थित भऽ सकत, जे मानव जीवनक सर्वोच्च सिद्धि अछि।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥६४॥

सर्व गुह्य ततम्– सब मे अत्यन्त गुह्य; **भूयः**– पुनः; **शृणु**– सुनु; **मे**– हमरा सँ; **परमम्**– परम्; **वचः**– आदेश; **इष्टः असि**– अहाँ प्रिय छी; **मे**– हमर; **दृढ़म्**– अत्यन्त; **इति**– एहि प्रकार; **ततः**– अतएव; **वक्ष्यामि**– कहि रहल छी; **ते**– अहाँक; **हितम्**– लाभक लेल।

चूँकि अहाँ हमर अत्यन्त प्रिय मित्र छी, अतएव हम अहाँ केँ अपन परम आदेश, जे सर्वाधिक गुह्यज्ञान अछि, बता रहलहुँ अछि।

एकरा अपन हितक लेल सुनु।

तात्पर्यः अर्जुन केँ गुह्यज्ञान (ब्रह्मज्ञान) तथा गुह्यतर ज्ञान (परमात्माज्ञान) प्रदान केलाक बाद भगवान् आब हुनका गुह्यतम ज्ञान प्रदान कर जा रहल छथिन–ई अछि भगवानक शरणागत भेलाक ज्ञान। नवम अध्यायक अन्तमे भगवान् कहने छलथिन– मन्मनाः–सदैव हमर चिन्तन करु। ओहि आदेश केँ एतय भगवद्गीताक सारक रुपमे जोर देवाक लेल दोहरायल जा रहल अछि। ई सार सामान्य जनक समझिमे नहि आबैत अछि। लेकिन जे कृष्णक सचमुच अत्यन्त प्रिय छथि, कृष्णक शुद्ध भक्त छथि, ओ समझि लैत छथि।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥६५॥

मत् मनाः– हमरा विषयमे सोचैत हुए; **भव**– हो ओ; **मत् भक्तः**– हमर भक्त; **मत् याजी**– हमर पूजक; **माम्**– हमरा; **नमस्कुरु**– नमस्कार करु; **माम्**– हमरा पास; **एव**– ही; **एष्यसि**– आएब; **सत्यम्**– सच सच; **ते**– अहाँ सँ; **प्रतिजाने**– प्रतिज्ञा करैत छी; **प्रियः**– प्रिय; **असि**– छी; **मे**– हमर।

सदैव हमर चिन्ता करु, हमर भक्त बनू, हमर पूजा करु, आओर हमरा नमस्कार करु। एहि प्रकार अहाँ निश्चित रुप सँ हमरा पास आएव। हम अहाँ केँ वचन दैत छी, किएक तऽ अहाँ हमर परम प्रिय मित्र छी।

तात्पर्यः ज्ञानक गुह्यतमम अंश अछि कि मनुष्य कृष्णक शुद्ध भक्त बने, सदैव हुनकर चिन्तन करे आओर हुनके लेल कर्म करे। भगवानक ई प्रतिज्ञा अछि कि जे एहि प्रकार कृष्णभावनामय होइत, ओ निश्चित रुप सँ कृष्णधाम केँ जाएत जतय ओ साक्षात् कृष्णक सान्निध्यमे रहत। ई गुह्यतम ज्ञान अर्जुन केँ बताओल गेलनि कारण ओ भगवान् कृष्णक प्रिय मित्र एवं सखा छथि। अतः जे क्यो भी अर्जुनक पथक अनुशरण करता, ओ कृष्णक प्रिय सखा बनि केँ अर्जुन जेना ही सिद्धि प्राप्तक सकता।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥६६॥

सर्व धर्मान्– समस्त प्रकारक धर्म; **परित्यज्य**– त्यागिक; **माम्**– हमर; **एकम्**– एक मात्र; **शरणम्**– शरणमे; **व्रज**– जाउ; **अहम्**– हम; **त्वाम्**– अहाँ केँ; **सर्व**– समस्त; **पापेभ्यः**– पाप सँ; **मोक्षयिष्यामि**– उद्धार करब; **मा**– मत; **शुचः**– चिन्ता करु।

समस्त प्रकारक धर्मक परित्याग करु आओर हमर शरणमे आ जाउ। हम समस्त पाप सँ अहाँक उद्धारक देब, डरु नहि।

तात्पर्यः भगवान् अनेक प्रकारक ज्ञान तथा धर्मक विधि बतौलनि अछि। परब्रह्मक ज्ञान, परमात्माक ज्ञान, अनेक प्रकारक आश्रम तथा वर्णक ज्ञान, संन्यासक ज्ञान, अनासक्ति, इन्द्रिय तथा मनक संयम, ध्यान आदिक ज्ञान। ओ अनेक प्रकार सँ नाना प्रकारक धर्मक वर्णन कैलनि अछि। आब भगवद्‌गीताक सार प्रस्तुत करैत भगवान् कहैत छथि कि हे अर्जुन! एखन तक बताओल सब विधिक परित्याग करिक, आब केवल हमर शरणमे आउ। एहि शरणागति सँ ओ समस्त पाप सँ बचि जाएब किएक तऽ भगवान् स्वयं हुनकर रक्षाक वचन दऽ रहल छथिन। अनन्य भाव सँ कृष्णक भक्ति, गुह्यतम ज्ञान अछि आओर सम्पूर्ण गीताक इहै सार अछि। कर्मयोगी, दार्शनिक, योगी तथा भक्त सब अध्यात्मवादी कहाबैत अछि, लेकिन एहिमे सँ शुद्ध भक्त ही सर्वश्रेष्ठ अछि। एतय ''**मा शुचः**'' (मत डरु, मत झिझकू, मत चिन्ता करु) विशिष्ट शब्दक प्रयोग अत्यन्त सार्थक अछि। मनुष्य केँ ई चिन्ता होइत अछि कि कोन प्रकारे समस्त धर्म केँ त्यागे आओर एकमात्र कृष्णक शरणमे जाए, लेकिन एहन चिन्ता व्यर्थ अछि।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥६७॥

इदम्– ई; **ते**– अहाँक द्वारा; **न**– कहियो नहि; **अतपस्काय**– असंयमीक लेल; **अभक्ताय**– अभक्तक लेल; **कदाचन**– कोनो समय; **च**– भी; **अशुश्रूषवे**– जे भक्तिमे रत नहि अछि; **वाच्यम्**– कहक लेल; **माम्**– हमरा प्रति; **यः**– जे; **अभ्यसूयते**– द्वेष करैत अछि।

ई गुह्यज्ञान ओकरा कहियो भी नहि बताएल जाय जे न तो संयमी अछि, न एक निष्ठ, न भक्तिमे रत रहैत अछि न ही ओ जे हमरा

सँ द्वेष करैत हो।

तात्पर्यः जे लोग तपस्यामय धार्मिक अनुष्ठान नहि केलक, जे कृष्णभावनामृतमे भक्तिक कहियो प्रयत्न नहि केलक, जे कोनो शुद्ध भक्तक सेवा नहि केलक तथा विशेषतया जे लोग कृष्ण केँ केवल ऐतिहासिक पुरुष मानैत हो, या जे भगवान् कृष्णक महानता सँ द्वेष राखैत हो, ओकरा ई परम गुह्यज्ञान नहि बतेबाक चाही। श्रद्धाविहीन लोग भगवद्‌गीता तथा कृष्ण केँ नहि समझि पायत। शुद्ध भक्त सँ कृष्ण केँ समझे बिना ककरो भगवद्‌गीताक टीका करक साहस नहि करक चाही।

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥६८॥

यः- जे; **इदम्**- एहि; **परमम्**- अत्यन्त; **गुह्यम्**- रहस्य केँ; **मत्**- हमर; **भक्तेषु**- भक्त मे सँ; **अभिधास्यति**- कहैत अछि; **भक्तिम्**- भक्ति केँ; **मयि**- हमरा; **पराम्**- दिव्य; **कृत्वा**- करिक; **माम्**- हमरा; **एव**- निश्चय ही; **एष्यति**- प्राप्त होइत अछि; **असंशयः**- एहिमे कोनो सन्देह नहि।

जे व्यक्ति भक्त केँ ई परम रहस्य बतबैत अछि, ओ शुद्धभक्ति केँ प्राप्त हैत आओर अन्तमे ओ हमरा पास वापस आएत।

तात्पर्यः भगवद्‌गीताक विवेचना हुनके सँ कएल जाय, जे कृष्ण केँ भगवानक रुपमे स्वीकार करक लेल तैयार हो। ई एकमात्र भक्तक विषय अछि, दार्शनिक चिन्तकक नहि, लेकिन जे क्यो भी भगवद्‌गीताक यथारुपमे प्रस्तुत करक सच्चा मन सँ प्रयास करैत अछि ओ भक्तिक कार्यकलापमे प्रगति करैत अछि आओर शुद्ध भक्तिमय जीवन केँ प्राप्त होइत अछि। एहन शुद्ध भक्तिक फलस्वरुप हुनकर भगवद्धाम जाएब ध्रुव अछि।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥६९॥

न- कहियो नहि; **च**- तथा; **तस्मात्**- ओकर अपेक्षा; **मनुष्येषु**- मनुष्य मे; **कश्चित्**- क्यो; **मे**- हमरा; **प्रिय कृत् तमः**- अत्यन्त प्रिय; **भविता**- हैत; **न**- न तो; **तस्मात्**- ओकर अपेक्षा, ओकरासँ; **अन्यः**- कोनो दोसर; **प्रियतरः**- अधिक प्रिय; **भुवि**- एहि संसारमे।

एहि संसारमे ओकर अपेक्षा क्यो अन्य सेवक न तो हमरा अधिक प्रिय अछि आओर न कहियो हैत।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।।७०।।

अध्येष्यते– अध्ययन या पाठ करत; **च**– भी; **यः**– जे; **इमम्**– एहि; **धर्म्यम्**– पवित्र; **संवादम्**– वार्तालाप या संवाद केँ; **आवयोः**– हमरा दूनू केँ; **ज्ञान**– ज्ञान रुपी; **यज्ञेन**– यज्ञ सँ; **तेन**– ओकरा द्वारा; **अहम्**– हम; **इष्टः**– पूजित; **स्याम्**– होएव; **इति**– एहि प्रकार; **मे**– हमर; **मतिः**– मत।

आओर हम घोषित करैत छी कि जे हमर एहि पवित्र संवादक अध्ययन करैत अछि, ओ अपन बुद्धि सँ हमर पूजा करैत अछि।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।।७१।।

श्रद्धावान्– श्रद्धालु; **अनसूयः**– द्वेषरहित; **च**– तथा; **शृणुयात्**– सुनैत अछि; **अपि**– निश्चय ही; **यः**– जे; **नरः**– मनुष्य; **सः**– ओ; **अपि**– भी; **मुक्तः**– मुक्त भऽकऽ; **शुभान्**– शुभ; **लोकान्**– लोक केँ; **प्राप्नुयात्**– प्राप्त करैत अछि; **पुण्य कर्मणाम्**– पुण्यात्माक।

जे श्रद्धा समेत तथा द्वेषरहित भऽकऽ ई सुनैत अछि, ओ सब पाप सँ मुक्त भऽ जाइत अछि आओर ओहि शुभ लोकके प्राप्त होइत अछि, जतय पुण्यात्मा निवास करैत छथि।

तात्पर्यः एतय स्पष्ट कएल गेल अछि कि प्रत्येक व्यक्ति भक्त नहि होइत अछि, तइयो बहुत लोग एहन अछि, जे भगवान् सँ द्वेष नहि राखैत अछि। यदि एहन लोग भगवानक बारेमे कोनो प्रमाणिक भक्त सँ भगवद्गीता सुनैत अछि तो ओ अपन सब पाप सँ तुरन्त मुक्त भऽ जाइत अछि आओर एहन लोक केँ प्राप्त होइत अछि जतए पुण्यात्मा वास करैत अछि। एहि प्रकार भगवद्भक्त हर एक व्यक्तिक लेल अवसर प्रदान करैत छथि कि ओ समस्त पाप सँ मुक्त भऽकऽ भगवानक भक्त बने। सामान्यतया जे लोग पाप सँ मुक्त अछि, जे परमात्मा छथि ओ अत्यन्त सरलता सँ कृष्णभावनामृत केँ ग्रहणक लैत छथि। परन्तु जे भक्तिक

आचरण कर वाला पुण्यात्मा छथि, किन्तु शुद्ध नहि होइत छथि, ओ ध्रुवलोक केँ प्राप्त होइत छथि, जतय ध्रुव महाराजक अध्यक्षता अछि। ओ भगवानक महान भक्त छथि आओर हुनक अपन विशेष लोक अछि, जे ध्रुवतारा या ध्रुवलोक कहाबैत अछि।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥७२॥

कच्चित्- की; **एतत्**- ओ; **श्रुतम्**- सुनल गेल; **पार्थ**- हे पृथापुत्र; **त्वया**- अहाँक द्वारा; **एक अग्रेण**- एकाग्र; **चेतसा**- मन सँ; **कच्चित्**- की (क्या); **अज्ञान**- अज्ञानक; **सम्मोहः**- मोह, भ्रम; **प्रणष्टः**- दूर भऽ गेल; **ते**- अहाँक; **धनञ्जय**- हे सम्पत्तिक विजेता (अर्जुन)।

हे पृथापुत्र! हे धनञ्जय! की अहाँ एहि शास्त्र केँ एकाग्र चित्त भऽकऽ सुनलहुँ? आओर की आब अहाँक अज्ञान तथा मोह (भ्रम) दूर भऽ गेल?

तात्पर्यः भगवान् कृष्ण अर्जुनक गुरुक काज कऽ रहल छलाह। अतएव ई हुनकर धर्म छलनि कि अर्जुन सँ पूछितथिन कि ओ पूर्ण भगवद्गीता सही ढंग सँ समझला या नहि। यदि नहि समझला अछि, तो भगवान् हुनका पुनः कोनो अंश विशेष या सम्पूर्ण भगवद्गीता बताबै लेल तैयार छलाह। वस्तुतः जे भी व्यक्ति कृष्ण सनक प्रमाणिक गुरु या हुनकर प्रतिनिधि सँ भगवद्गीता सुनैत अछि, ओकर सब अज्ञान दूर भऽ जाइत अछि।

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥७३॥

अर्जुनः उवाच- अर्जुन कहलथिन; **नष्टः**- दूर भेल; **मोहः**- मोह; **स्मृतिः**- स्मरणशक्ति; **लब्धा**- पुनः प्राप्त भेल; **त्वत् प्रसादात्**- अहाँक कृपा सँ; **मया**- हमरा द्वारा; **अच्युत**- हे अच्युत कृष्ण; **स्थितः**- स्थित; **अस्मि**- छी; **गत**- दूर भेल; **संदेहः**- सब संशय; **करिष्ये**- पूरा करब; **वचनम्**- आदेश केँ; **तव**- अहाँक।

अर्जुन कहलथिन-हे कृष्ण! हे अच्युत! आब हमर मोह दूर भऽ गेल। अहाँक अनुग्रह सँ हमरा अपन स्मरण शक्ति वापस मिल गेल। आब हम संशयरहित तथा दृढ़ छी आओर अहाँक आदेशानुसार कर्म करक लेल उद्यत छी।

तात्पर्यः जीव जकर प्रतिनिधित्व अर्जुनक रहला अछि, हुनकर स्वरुप ई अछि कि ओ परमेश्वरक अनुसार कर्म करथि। ओ आत्मानुशासन (संयम)क लेल बनल छथि। एहि श्लोकमे मोह शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अछि। मोह ज्ञानक विरोधी होइत अछि। वास्तविक ज्ञान तो ई समझनाइ अछि कि प्रत्येक जीव भगवानक शाश्वत सेवक अछि। लेकिन जीव अपना केँ एहि स्थितिमे नहि समझिक सोचैत अछि ओ सेवक नहि अपितु एहि जगत्क स्वामी अछि, किएक तऽ ओ प्रकृति पर प्रभुत्व जताबए चाहैत अछि। ई मोह भगवत्कृपा सँ या शुद्ध भक्तक कृपा सँ जीतल जा सकैत अछि। एहि मोह केँ दूर भेला पर मनुष्य कृष्णभावनामृतमे कर्म करक लेल राजी भऽ जाइत अछि। कृष्णक आदेशानुसार कर्म करब कृष्णभावनामृत अछि। बद्धजीव माया द्वारा मोहित भेलाक कारण ई नहि समझि पाबैत अछि कि परमेश्वर स्वामी छथि, जे ज्ञानमय छथि आओर सर्वसम्पत्तिवान छथि। ओ अपन भक्त केँ जे किछु ओ चाहथि दऽ सकैत छथि। ओ सबहक मित्र छथि आओर भक्त पर विशेष कृपालु रहैत छथि। ओ प्रकृति तथा समस्त जीवक अधीक्षक छथि। ओ अक्षय कालक नियन्त्रक छथि आओर समस्त ऐश्वर्य एवं शक्ति सँ पूर्ण छथि। भगवान् भक्त केँ आत्मसमर्पण भीक सकैत छथि। जे हुनका नहि जानैत अछि ओ मोहवशमे अछि, ओ भक्त नहि बल्कि मायाक सेवक बनि जाइत अछि। लेकिन अर्जुन भगवान् कृष्ण सँ भगवद्गीता सुनि कऽ समस्त मोह सँ मुक्त भऽ गेलाह। ओ ई समझि गेला कि कृष्ण केवल हुनक मित्र ही नहि बल्कि भगवान् छथि आओर ओ कृष्ण केँ वास्तवमे समझि गेलाह। अतएव भगवद्गीताक पाठ करबक अर्थ अछि कृष्णक वास्तविकताक संग जानव। जखन मनुष्य केँ पूर्ण ज्ञान होइत अछि तो ओ स्वभावतः कृष्णक आत्मसर्पण करैत अछि। पुनः ओ भगवानक आदेशानुसार युद्ध करक लेल अपन धनुष-वाण ग्रहण करि लेलथि।

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्।।७४।।

संञ्जयः उवाच– संजय कहलखिन; **इति**– एहि प्रकार; **अहम्**– हम; **वासुदेवस्य**– कृष्णक; **पार्थस्य**– अर्जुनक; **च**– भी; **महा आत्मनः**– महात्माक; **संवादम्**– वार्ता; **इमम्**– ई; **अश्रौषम्**– सुनलहुँ अछि; **अद्भुतम्**– अद्भुत; **रोम हर्षणम्**– रोंगटे खड़ा हुअबला।

संजय कहलखिन– एहि प्रकार हम कृष्ण तथा अर्जुन एहि दूनू महापुरुषक वार्ता सुनलहुँ आओर ई सन्देश एतेक अद्भुत अछि कि हमर शरीरमे रोमाञ्च भऽ रहल अछि।

तात्पर्यः भगवद्गीताक प्रारम्भमे धृतराष्ट्र अपन मंत्री संजय सँ पूछलथिन कुरुक्षेत्रक युद्धस्थलमे की भेल? गुरु व्यासदेवक कृपा सँ संजय केँ हृदयमे सब घटना स्फुरित भेल छल। एहि प्रकार ओ युद्धस्थलक विषय वस्तु सुनेने छलथिन। ई वार्ता आश्चर्यप्रद छल, किएक तऽ एकर पूर्व दू महापुरुषक बीच एहन महत्त्वपूर्ण वार्ता कहियो नहि भेल छल आओर न भविष्यमे कहियो हैत। ई वार्ता एहि लेल आश्चर्यप्रद छल, किएक तऽ भगवान् भी अपने तथा अपन शक्तिक विषयमे जीवात्मा अर्जुन सँ वर्णनक रहल छलाह, जे परमभक्त छथि। यदि हम कृष्ण केँ समझक लेल अर्जुनक अनुसरण करी तो हमर जीवन सुखी एवं सफल भऽ जाइत। संजय एकर अनुभव कैलनि आओर जेना-जेना हुनका समझमे आबैत गेलैन ओ ओहि वार्ता धृतराष्ट्र सँ कहलथिन। आव ई निष्कर्ष निकलल कि जतए-जतए कृष्ण तथा अर्जुन छथि ओतए-ओतए विजय होइत अछि।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।७५।।

व्यास प्रसादात्– व्यासदेवक कृपा सँ; **श्रुतवान्**– सुनलहुँ अछि; **एतत्**– एहि; **गुह्यम्**– गोपनीय; **अहम्**– हम; **परम्**– परम; **योगम्**– योग केँ; **योग ईश्वरात्**– योगक स्वामी; **कृष्णात्**– कृष्ण सँ; **साक्षात्**– साक्षात्; **कथयतः**– कहैत; **स्वयम्**– स्वयं।

व्यासक कृपा सँ हम ई परम गुह्य बात साक्षात् योगेश्वर कृष्णक

मुख सँ अर्जुनक प्रति कहल जाइत भेल सुनलहुँ।

तात्पर्यः नारद कृष्णक शिष्य छथि आओर व्यासदेवक गुरु अतएव व्यास अर्जुनक ही समान प्रामाणिक छथि किएक तऽ ओ गुरु-परम्परामे आबैत छथि आओर संजय व्यासदेवक शिष्य छथि। अतएव व्यासक कृपा सँ संजयक इन्द्रिय विमल भऽ सकल आओर ओ कृष्णक साक्षात् दर्शनक सकलाह तथा हुनकर वार्ता सुनि सकलाह। जे व्यक्ति कृष्णक प्रत्यक्ष श्रवण करैत अछि, ओ एहि गुह्यज्ञान केँ समझि सकैत अछि। यदि ओ गुरु परम्परामे नहि रहितथि तो ओ कृष्णक वार्ता नहि सुनि सकितथि। अतएव हुनकर ज्ञान सदैव अधूरा रहैत, विशेषतया जतय तक भगवद्गीता समझैक प्रश्न अछि।

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥७६॥

राजन्- हे राजा; **संस्मृत्य**- स्मरण करि कऽ; **संस्मृत्य**- स्मरण करिक; **संवादम्**- वार्ता केँ; **इमम्**- एहि; **अद्भुतम्**- आश्चर्यजनक; **केशव**- भगवान् कृष्ण; **अर्जुनयोः**- अर्जुनक; **पुण्यम्**- पवित्र; **हृष्यामि**- हर्षित होइत छी; **च**- भी; **मुहुःमुहुः**- बारम्बार।

हे राजन्! जखन हम कृष्ण तथा अर्जुनक मध्य भेल ई आश्चर्यजनक तथा पवित्र वार्ताक बारम्बार, स्मरण करैत छी तो प्रति क्षण आह्लाद सँ गद्गद् भऽ जाइत छी।

तात्पर्यः जखन क्यो गीताक सही स्रोत सँ अर्थात् कृष्ण सँ सुनैत अछि, तो ओकरा पूर्ण कृष्णभावनामृत प्राप्त होइत अछि आओर जीवनक भोग आनन्द सहित किछु काल तक नहि, अपितु प्रत्येक क्षण करैत अछि।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥७७॥

तत्- ओहि; **च**- भी; **संस्मृत्य**- स्मरण करिक; **रुपम्**- स्वरुप केँ; **अति**- अत्यधिक; **अद्भुतम्**- अदभुत; **हरेः**- भगवान् कृष्णक; **विस्मयः**- आश्यर्च; **मे**- हमर; **महान**- महान; **राजन्**- हे राजा; **हृष्यामि**- हर्षित भऽ रहलहुँ अछि; **पुनःपुनः**- बारम्बार।

हे राजन्! भगवान् कृष्णक अद्भूत रूपक स्मरण करिते हम

अधिकाधिक आश्चर्यचकित होइत छी आओर पुनः पुनः हर्षित होइत छी।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥७८॥

यत्र- जत; **योगेश्वरः**- योगक स्वामी; **कृष्णः**- भगवान् कृष्ण; **यत्र**- जतय; **पार्थ**- पृथापुत्र; **धनुर्धरः**- धनुषधारी; **तत्र**- ओत; **श्रीः**- ऐश्वर्य; **विजयः**- जीत; **भूतिः**- विलक्षण शक्ति; **ध्रुवा**- निश्चित; **नीतिः**- नीति; **मतिः-मम**- हमर मत।

जतए योगेश्वर कृष्ण आओर परम धनुर्धर अर्जुन छथि, ओतए (वही) ऐश्वर्य, विजय, आलौकिक शक्ति तथा नीति भी निश्चित रुप सँ रहैत अछि। एहन हमर मति अछि।

तात्पर्यः संजय राजा धृतराष्ट्र सँ कहलखिन- हमर मत अछि, जतए कृष्ण तथा अर्जुन उपस्थित छथि, ओतहि सम्पूर्ण श्री होइत। विजय तो अर्जुनक पक्षमे निश्चित अछि, किएक तऽ ओहि पक्षमे कृष्ण भी छथि। मनुष्य केँ कृष्णक भक्त बनि जेबाक चाही। समस्त धर्मक सार अछि- भगवान् कृष्णक शरणागति।

उपसंहार-संन्यासक सिद्धिक संक्षिप्त संदेश

भगवद्‌गीताक शुभारम्भ धृतराष्ट्रक जिज्ञासा सँ भेल। ओ भीष्म, द्रोण तथा कर्ण सनक महारथीक सहायता सँ अपन पुत्रक विजयक प्रति आशावान छलाह। हुनका आशा छल कि विजय हुनके पक्षमे हैत। लेकिन युद्धक्षेत्रक दृश्यक वर्णनक करक बाद संजय राजा सँ कहलथिन कि अपने अपन विजयक बात सोचि रहल छी, लेकिन हमर मत अछि कि जतए कृष्ण तथा अर्जुन उपस्थित छथि, ओतय सम्पूर्ण श्री होएत। ओ प्रत्यक्ष पुष्टि कैलनि कि धृतराष्ट्र केँ अपन पक्षक विजयक आशा नहि रखबाक चाही। विजय तो अर्जुनक पक्षक निश्चित अछि, किएक तऽ ओहि पक्षमे कृष्ण छथि। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनक सारथीक पद स्वीकार करब एक ऐश्वर्यक प्रदर्शन छल। कृष्ण समस्त ऐश्वर्य सँ पूर्ण छथि आओर एहिमे सँ वैराग्य एक अछि। एहन वैराग्यक भी अनेक उदाहरण प्राप्त अछि किएक तऽ कृष्ण वैराग्यक भी ईश्वर छथि।

युद्ध तो वास्तवमे दुर्योधन तथा युधिष्ठिरक बीच छल। अर्जुन अपन जेष्ठ भ्राता युधिष्ठिरक ओर सँ लड़ि रहल छलाह। चूँकि कृष्ण तथा अर्जुन युधिष्ठिरक ओर छलाह अतएव युधिष्ठिरक विजय ध्रुव छल। युद्ध केँ ई निर्णय करक छल कि संसार पर शासन के करताह। संजय भविष्यवाणी कैलनि कि सत्ता युधिष्ठिरक हाथमे चल जाएत। एतय एकरो भविष्यवाणी भेल कि एहि युद्धमे विजय प्राप्त करला बाद युधिष्ठिर उत्तरोत्तर समृद्धि लाभ करता, किएक तऽ ओ न केवल पुण्यात्मा तथा पवित्रात्मा छलाह, अपितु ओ कठोर नीतिवादी भी छलाह। ओ जीवन भरि कहियो असत्य भाषण नहि कएलनि। भगवान् अवतार लैत छथि भक्तक उद्धार, दुष्टक विनाश तथा धर्मक पुनः स्थापना करबाक उद्देश्य प्राप्त लेल।

महर्षि नारद कृष्णक शिष्य छथि आओर वेदव्यासक गुरु। अतएव व्यास अर्जुनक ही समान प्रामाणिक छथि, किएक तऽ ओ गुरु-परम्परामे आबैत छथि आओर संजय व्यासदेवक शिष्य छथि अतएव व्यासक कृपा सँ संजयक इन्द्रिय विमल भऽ सकल आओर ओ कृष्णक साक्षात् दर्शनक सकलाह तथा हुनकर वार्त्ता सुनि सकलाह। यदि ओ गुरु परम्परामे नहि होइतथि तो ओ कृष्णक वार्त्ता नहि सुनि सकता। अतएव हुनकर ज्ञान सदैव अधूरा रहैत। विशेषतया जतय भगवद्गीता समझक प्रश्न अछि। जे व्यक्ति कृष्णक प्रत्यक्ष श्रवण करैत छथि, ओ एहि गुह्यज्ञान केँ समझि सकैत छथि। संजय स्वीकार करैत छथि कि व्यासदेवक कृपा सँ ही ओ भगवान् कृष्ण केँ समझि सकलाह।

भगवद्गीताक अन्य विशेषता ई अछि कि वास्तविक सत्य भगवान् कृष्ण छथि। परम सत्यक अनुभूति तीन रुपमे होइत अछि-निर्गुण ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् श्रीकृष्ण। परम सत्यक पूर्ण ज्ञानक अर्थ अछि, कृष्णक पूर्णज्ञान। यदि क्यो कृष्ण केँ जानि लैत अछि कारण ज्ञानक सब विभाग एहि ज्ञानक अंश अछि। कृष्ण दिव्य छथि किएक तऽ ओ अपन नित्य अन्तरंगा शक्तिमे स्थित रहैत छथि। जीव हुनकर शक्ति सँ प्रकट अछि आओर दू श्रेणीमे होइत अछि- नित्यवद्ध तथा नित्यमुक्त। एहन जीवक संख्या असंख्य अछि आओर ओ सब कृष्णक मूल अंश मानल जाइत अछि। भौतिक शक्ति २४ प्रकार सँ प्रकट होइत अछि। सृष्टि शाश्वतकाल द्वारा प्रभावित अछि आओर बहिरंगा शक्ति द्वारा एकर सृजन तथा संहार होइत अछि। ई दृश्य जगतमे पुनः-पुनः प्रकट तथा

अप्रकट होइत रहैत अछि।

भगवद्‌गीतामे स्पष्ट उपदेश देल गेल अछि– **हमर शरणमे आउ**। जे एना करैत छथि ओ सर्वोच्च योगी छथि। एहि प्रकार श्रीमद्‌भगवद्‌गीताक अठारहम अध्याय **''उपसंहार-संन्यासक सिद्धि''** पूर्ण भेल।



श्रीमद्‌भगवद्‌गीताक अध्याय एवं श्लोक संख्या			
अध्याय	श्लोक संख्या	अध्याय	श्लोक संख्या
अध्याय १	४६	अध्याय १०	४२
अध्याय २	७२	अध्याय ११	५५
अध्याय ३	४३	अध्याय १२	२०
अध्याय ४	४२	अध्याय १३	३५
अध्याय ५	२९	अध्याय १४	२७
अध्याय ६	४७	अध्याय १५	२०
अध्याय ७	३०	अध्याय १६	२४
अध्याय ८	२८	अध्याय १७	२८
अध्याय ९	३४	अध्याय १८	७८

शब्दकोष
(GLOSSARY)

स्वर वर्णः-

अकार्य – One who teaches by his own example
अग्नि – The demigod of fire
अग्निहोत्र यज्ञ – The ceremonial five sacrifice performed in Vedic rituals
अहंकार – False ego, by which the soul misidentifies with the material body
अहिंसा – Non-violence
अकर्म – Non-action, devotional activity for which one suffers no reaction
अविद्या – Ignorance
अर्चना – The procedures followed for worshiping the arca-vigraha (आर्क विग्रह)
अष्टांगयज्ञ – The eight fold path consisting of यम आओर नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आओर समाधि।
असुर – A person opposed to the service of the Lord
आत्मा – The self, Usually it indicates the individual soul
अवतार – One who descends, a fully or partially empowered incarnation of God. Who descends from the spiritual realm for a particular mission.
आनन्द – Spiritual bliss
आर्यन – A civilized follower of Vedic Culture
आश्रम – The four spiritual orders according to the Vedic Social System (ब्रह्मचर्य-Student life, ग्रहस्थ-House holder life, वाणप्रस्थ- Retirement आओर संन्यास- Renunciation)
इन्द्र – The Chief Sovereign of heaven and presiding deity of rain
इन्द्रिय – Organ (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन)

ॐ (ओमकारा) – The sacred syllable that represents the Absolute truth- परमसत्य
उपनिषद् – 108 Philosophical treatises that appear within the Vedas

व्यंजन वर्णः-

काल – Tense, Time
कलियुग – The age of quarrel and hypocrisy
कर्म – Material activities, for which one incurs subsequent reactions
कर्मयोग – The path of God realization through dedicating the fruits of one's work to God
कर्मी – One engaged in Karma, a materialist
कृष्णलोक – The Supreme abode of Lord Krishna
कौरव – The descendants of Kuru, in particular the sons of Dhritrashtra who opposed the Pandavas
गन्धर्व – The celestial singers and musicians among the demigods
गरुड़ – The bird carrier of Lord Vishnu
गोलोक – The eternal abode of Lord Krishna
गोस्वामी – A swami, One fully able to control his senses
ग्रहस्थ – A married man living according to the Vedic Social System
गुण – The three modes or qualities of the material world-goodness, passion and ignorance
गुरु – A spiritual master
चैतन्य महाप्रभु – Lord Krishna's incarnation in the age of Kali
चंडाल – A dog eater, an outcaste
चन्द्र – The presiding demigod of the moon
चतुर्मास्या – The four months of the rainy season, during which devotees of Vishnu observe special austerities
जीव(जीवात्मा)– The eternal individual soul
तमोगुण – The mode of ignorance
देव – A demigod or godly person

द्वापरयुग	– An age, there are four Yugas, which cycle perpetually सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग as the ages proceed from Satya to Kali religion and the good qualities of men gradually decline.
धर्म	– (i) Religious principles (ii) One's eternal, natural occupation (devotional service to the Lord)
ध्यान	– Meditation
निष्कर्म	– Another term of अकर्म
निर्गुण	– Without attributes or qualities In reference to Supreme Lord, the term signifies that He is beyond material qualities
नारायण	– The four armed form of Lord Krishna, who presides over the Baikunth planets
निर्वाण	– Freedom from material existence
पाण्डव	– The five sons of King Pandu - युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव।
पांडु	– The brother of Dhritrashtra and father of Pandava brothers
परमात्मा	– The super soul, the localized aspect of Supreme Lord The indwelling witness and guide who accompanies every conditioned soul
परम्परा	– A disciplic succession
प्रकृति	– Energy or nature
प्राणायाम	– Breath control, as a means of advancement in Yoga
प्रसादम्	– Sanctified food, Food offered in devotion to Lord Krishna
प्रेम	– Pure, spontaneous devotional love for God
पृथा	– Kunti, mother of Pandavas
पुराण	– The eighteen historical supplements to the Vedas
पुरुष	– The enjoyer, the individual soul or the

		Supreme Lord
पुरुष अवतार	–	The primary expansions of Lord Vishnu who effect the creation, maintenance and destruction of the material universe
ब्रह्मा	–	The first created being of the universe, directed by Lord Vishnu, he creates all life forms in the universe and rules the mode of passion
ब्रह्मचारी	–	A celibrate student, according to Vedic Social System
ब्रह्म जिज्ञासा	–	Inquiry into spiritual knowledge
ब्रह्म ज्योति	–	The spiritual effulgence emanating from the transcendental body of Lord Krishna and illuminating the spiritual world
ब्रह्मलोक	–	The abode of Lord Brahma, the highest planet in the world
ब्रह्मण	–	(i) The individual soul (ii) The impersonal all pervasive aspect of the Supreme (iii) Supreme personality of God Head (iv) Total material substance
ब्राह्मण	–	A member of the most intelligent class of men according to the four Vedic occupational divisions of society
बुद्धियोग	–	Another term of Bhakti-Yoga (भक्तियोग) devotional service to Lord Krishna
भगवान्	–	He who possess all opulence The Supreme Lord, who is the reservoir of all beauty strength, fame, wealth, knowledge and renunciation
भक्त	–	Devotee
भक्ति	–	Devotional service to the Supreme Lord
भक्तियोग	–	Linking with the Supreme Lord through devotional service
भरत	–	An ancient king of India from whom the Pandavas descended

भाव	–	Ecstasy, the stage of bhakti just prior to pure love for God
भीष्म	–	The noble general respected as the grandfather of the Kuru Dynasty
महामंत्र	–	The great mantra: हरे कृष्ण, हरे कृष्ण
महात्मा	–	A great soul, a liberated person who is fully Krishna conscious
मंत्र	–	A transcendental sound or Vedic hymn
मनु	–	The demigod who is the father of mankind
माया	–	Illusion, the energy of the Supreme Lord that deludes living entities into forgetfulness of their spiritual nature and of God
मायावादी	–	An impersonalist
मुक्ति	–	Liberation from material existence
मुनि	–	A sage
यज्ञ	–	Sacrifice
यक्ष	–	The ghostly followers of the demigod Kuvera (कुवेर)
यमराज	–	The demigod who punishes the sinful after death
योग	–	Spiritual discipline to think oneself with the Supreme
योगमाया	–	The internal, spiritual energy of the Lord
रजोगुण	–	The mode of passion
राक्षस	–	A race of man eating demons
राम	–	The name of Lord Krishna Meaning - the source of all pleasures. Lord Rama, an incarnation of Krishna as a perfect righteous king
लीला	–	A transcendental pastime or activity performed by the Supreme Lord
लोक	–	A planet
वैकुण्ठ	–	The eternal planet of the spiritual world
वैष्णव	–	A devotee of the Supreme Lord
वैश्य	–	A member of the mercantile and agricultural

		class, according to the four Vedic occupational divisions of society
वाणप्रस्थ	–	A man who has retired from householder life to cultivate greater renunciation, according to the Vedic Social System
वर्णाश्रम धर्म	–	The Vedic Social System, which organizes society into four occupational and four spiritual divisions (वर्ण आओर आश्रम)
वसुदेव	–	The father of Lord Krishna
वासुदेव	–	Krishna, the son of Vasudeva (वसुदेव)
वेद	–	The four original scriptures (ऋग्वेद, यर्जुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद)
वेदान्त सुत्र	–	The philosophical treatise written by व्यासदेव consisting of succinct aphorism that embody the essential meaning of the Upanishad (उपनिषद्)
विद्या	–	Knowledge
विकर्म	–	Work performed against scriptual directions, sinful action
विराट रुप	–	The universal form of the Supreme Lord
विष्णु	–	The personality of God head
विष्णु तत्त्व	–	The status or category of God head
विश्व रुप	–	The universal form of the Supreme Lord
वृन्दावन	–	The transcendental abode of Lord Krishna
व्यासदेव	–	The Compiler of the Vedas and Author of the Puranas, Mahabharata and Vedanta Sutra
सच्चिदानन्द	–	Eternal, blissful and full of knowledge
साधु	–	A saint or Krishna conscious person
सगुण	–	Possessing attributes or qualities
समाधि	–	Trance, complete absorption in God consciousness
संसार	–	The cycle of repeated birth and death in the material world
सनातन धर्म	–	The eternal religion, devotional service
सांख्य	–	(i) Analytical discrimination between spirit

and matter (ii) the path of devotional service

संकीर्तन – Congregational glorification of God, especially through chanting of His holy name

संन्यास – The renounced order of life for spiritual culture

संन्यासी – A person in the renounced order

शास्त्र – Revealed scripture, Vedic literature

सत्त्वगुण – The mode of goodness

शिव – The demigod who supervises the material mode of ignorance and who annihilates the material cosmos

स्मरणम् – Devotional remembrance (of Lord Krishna) one of the nine basic forms of Bhakti-Yoga

स्मृति – Revealed scriptures supplementary to the Vedas, such as the Puranas

सोमरस – A celestial beverage imbibed by the demigods.

श्रवणम् – Hearing about the Lord, one of the nine basic forms of devotional service

श्रुति – The Vedas

श्रीमद्भागवत – The Purana or history written by वेदव्यास specially to give a deep understanding of Lord Krishna

शूद्र – A member of the labourer class of men, according to the four Vedic occupational divisions of society

स्वामी – One fully able to control his senses, a person in the renounced order

स्वर्गलोक – The heavenly material planet, the abodes of the demigods

स्वरुप – The original spiritual form or constitutional position of the soul

त्रेतायुग – See Yugas (द्वापर युग)

ज्ञान – Transcendental knowledge

।।इति शुभम्।।

मिथिलाक्षर वर्णमाला

स्वर वर्ण

𑒁	𑒂	𑒃	𑒄	𑒅	𑒆	𑒇
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ

𑒉	𑒋	𑒌	𑒍	𑒎	𑒁𑓀	𑒁𑓁
ऌ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः

व्यंजन वर्ण

𑒏	𑒐	𑒑	𑒒	𑒓	𑒔	𑒕
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ

𑒖	𑒗	𑒘	𑒙	𑒚	𑒛	𑒜
ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ

𑒝	𑒞	𑒟	𑒠	𑒡	𑒢
ण	त	थ	द	ध	न

𑒣	𑒤	𑒥	𑒦	𑒧
प	**फ**	**ब**	**भ**	**म**

अंत:स्थ वर्ण

𑒨	𑒩	𑒪	𑒫	𑒬	𑒭	𑒮
य	**र**	**ल**	**व**	**श**	**ष**	**स**

𑒯	𑒏𑓂𑒭	𑒞𑓂𑒩	𑒖𑓂𑒘
ह	**क्ष**	**त्र**	**ज्ञ**

अंक पद्धति

मिथिलाक्षर	𑓑	𑓒	𑓓	𑓔	𑓕	𑓖	𑓗	𑓘	𑓙	𑓑𑓐
हिन्दी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
अंग्रेजी	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10



लेखक परिचय



G. C. Jha

G. C. Jha retired as Dy. Wireless Advisor to Govt. of India Ministry of Communication and information Technology. He holds a Bachelor of Engineering in Electronics & Communication from B.I.T. Sindri, Dhanbad,. G. C. Jha brings with him 45 years of rich experience in Radio Frequency Management. He has held several management roles in Radio Frequency Management and Wireless Monitoring organization in wireless planning and coordination wing of Department of Telecommunications as Head of Frequency Management group, Chief of Satellite Monitoring Earth station, Regional Engineer Incharge, Head of Training and Development centre and Officer Incharge of International Monitoring Station. He has active participation in National Frequency Allocation plan (NFAP)/ conferences/National Study groups/WRC and ITU related matters. He was closely associated with world Bank project of WPC/DOT regarding Automated Spectrum Management system (ASMS).

He was on deputation to Foreign Assignment in Ministry of Posts Telephones and Telegraphs in Sultanate of Oman at Muscat from August 1989 to October 1994 for Radio Frequency Management. He has pursued in service training in Radio Frequency Management at ITU Head Quarters Geneva, Switzerland, Radio Frequency Management at Regulatory Authority Germany (REG). Microwave Communication/Satellite Communication/ Pulse Code Modulation at ALTTC, Ghaziabad, India and advanced Level Course in Troposcatter Communication Conducted by National Physics Laboratory of India, New Delhi.

POST RETIREMENT :

He was Principal Consultant, SENAO-International, Taiwan, India Office, New Delhi in Radio Frequency Management during April 2005 to August 2006.

He was professional Advisor / Consultant Radio Frequency Management to Aircel Limited / Dishnet Wireless Limited, New Delhi during August 2006 to August 2016.

Now, he is Independent Senior Consultant Radio Frequency Management.

Mr. G. C. Jha S/o Sh. Upendra Nath Jha belongs to village Kasrour, Distt. Darbhanga, Bihar. He has also studied in M. L. Academy Laheriasarai and C. M. College, Darbhanga, Presently, he is stationed at C-13/168, Sector-3, Rohini, Delhi-110085

Mobile : 9999025311

Other Publications :

Smart Wireless Solutions, Bhakt Puran, Mithilak Dharohar, Bhagwatprem Darshan, Geeta Sar (Essence fo Bhagavad Geeta).